# धनुर्वेद

डॉ० देवव्रत आचार्य

# DHANURVEDA

## (Sub-Veda of Yajur-Veda)

Compilation, Translation & Commentary :

**Dr. Devvrat Acharya**

Vyakaranacharya, Darshanacharya, Vidyavaridhi (Ph.D.)
Vyayam Visharad, Vyayam Parangat, (D.Y.Ed.)

**VIJAYKUMAR GOVINDRAM HASANAND**

| | | |
|---|---|---|
| *ISBN* | : | 81-7077-020-3 |
| *Publisher* | : | **Vijaykumar Govindram Hasanand**<br>4408, Nai Sarak, Delhi-6. (Ph.: 2914945)<br>E-mail : ajay@vedicbooks.com |
| *Edition* | : | 1999 |
| *Price* | : | Rs. 400.00 |
| *Lasertypesetting* | : | **BHAGWATI LASER PRINTS,** |
| *Printer* | : | **SPEEDOGRAPHICS,**<br>B-20, Patparganj, New Delhi-91 |

---

**DHANURVEDA** ***by Dr. Devvrat Acharya***

---

# विषय सूची

## पूर्वार्द्ध

## उत्तरार्द्ध

## ग्रन्थ-संकेत सूची

| | | | |
|---|---|---|---|
| अप० | अपराजित पृच्छा | नी०प्र० | नीतिप्रकाशिका |
| अ०पु० | अग्निपुराण | मान० | मानसोल्लास |
| आ०भै० | आकाश भैरवतन्त्र | यु०क० | युक्तिकल्पतरु |
| औ०ध० | औशनस धनुर्वेद | रामा० | रामायण |
| कौ०अ० | कौटिलीय अर्थशास्त्र | वा०ध० | वाशिष्ठ धनुर्वेद संहिता |
| भा०भा०टी० | भारत भावदीप टीका | वि०ध० | विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् |
| मनु० | मनुस्मृति | वी०मी० | वीरमित्रोदय |
| म०पु० | मत्स्यपुराण | सम० | समराङ्गणसूत्रधार |
| महा० | महाभारत | शुक्र० | शुक्रनीति |

# भूमिका

युद्ध करने एवं लड़ने की प्रवृत्ति प्राणियों में अनादिकाल से ही चली आ रही है। देशकाल एवं परिस्थिति के अनुसार इसका विकास या ह्रास होता रहा है। मनुष्येतर प्राणियों में यह प्रवृत्ति नख-दन्त और अन्य उपायों द्वारा अपनी रक्षा करने या उदरपूर्त्ति तक ही सीमित है, परन्तु मनुष्य प्रहार के इन साधनों से विहीन है। उसने अपने बुद्धि-कौशल से विविध शस्त्रास्त्रों का आविष्कार करके न केवल हिंस्रप्राणियों से अपनी सुरक्षा की, अपितु विश्व के समस्त जीव-जन्तु तथा अन्य साधनों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। शस्त्रास्त्र एवं युद्ध सम्बन्धी ज्ञान-विज्ञान का कथन करनेवाले शास्त्र को धनुर्वेद कहा गया है।[१]

ऋषियों ने सृष्टि के आदि में व्यवहार के लिये सभी वस्तुओं के नाम एवं कर्त्तव्य कर्मों का निर्धारण वेद से ही किया।[२] संसार के उपलब्ध साहित्य में वेद सबसे प्राचीनतम हैं। इनका ज्ञान चार ऋषियों के हृदय में परम पिता परमात्मा की प्रेरणा से हुआ। इन चारों वेदों के चार उपवेद हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का अर्थवेद (शिल्पशास्त्र) सुप्रसिद्ध है।[३] इन उपवेदों में आयुर्वेद के ग्रन्थ चरक, सुश्रुत् प्रभृति, गान्धर्ववेद के भरतनाट्यं इत्यादि और अर्थवेद के मयादि द्वारा विरचित शिल्पशास्त्र के ग्रन्थ, अश्वशास्त्र, सूपशास्त्र, चौंसठ कला इत्यादि के ग्रन्थ अब भी किसी-न-किसी रूप में उपलब्ध हैं, परन्तु धनुर्वेद-सम्बन्धी मूलग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं।

यद्यपि विश्वामित्र, जामदग्न्य, शिव, वशिष्ठादि के नामों से युक्त धनुर्वेद की छोटी पुस्तकें मिलती हैं, परन्तु इनको मूलग्रन्थ स्वीकार करना बहुत ही कठिन है। स्वामी दयानन्दजी ने महर्षि अङ्गिराकृत धनुर्वेद का उल्लेख किया है।[४] आचार्य द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री ने द्रोणाचार्य द्वारा निर्मित 'धनुष्प्रदीप' नामक ग्रन्थ का वर्णन किया है जिसमें सात सहस्र श्लोक थे। इसी भाँति वीरवर परशुरामजी द्वारा प्रणीत साठ सहस्र श्लोकवाला धनुश्चन्द्रोदय नामक ग्रन्थ भी विद्यमान था, ऐसी उनकी मान्यता है।[५] परन्तु इन ग्रन्थों का कहीं अन्यत्र उल्लेख नहीं मिलता। जामदग्न्य धनुर्वेद के नाम से कुछ श्लोकों का सङ्कलन अवश्य उपलब्ध है।

महर्षि वैशम्पायनकृत नीतिप्रकाशिका में धनुर्वेद का आदि प्रवक्ता ब्रह्मा को माना है, जिसने एक लाख अध्यायोंवाले धनुर्वेद का उपदेश वेन-पुत्र महाराज पृथु को दिया।[६] इसी का संक्षेप करके रुद्र ने पचास हज़ार, इन्द्र ने बारह, प्राचेतस ने छह और बृहस्पति ने तीन हज़ार अध्यायों से युक्त धनुर्वेद का प्रवचन किया। शुक्राचार्य ने उसे और संक्षिप्त करके एक सहस्र अध्यायोंवाले

---

१. शुक्रनीति। —४। २७८
२. सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्। वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥ —मनु०
३. सर्वदर्शनसंग्रहः, प्रस्थानभेद पृष्ठ ७-८
४. सत्यार्थप्रकाश तीसरा समुल्लास। संस्कारविधि, वेदारम्भ-संस्कार।
५. संस्कृत-साहित्यविमर्श, पृष्ठ ९१
६. लक्ष्याध्यायान् जगौ ब्रह्मा राजशास्त्रे महामतिः। —नीतिप्रकाशिका अ० १ श्लोक २०-२८

नीतिशास्त्र (शुक्रनीति) का निर्माण किया। भारद्वाज मुनि ने सात सौ, गौरशिरा ने पाँच सौ, महर्षि वेदव्यास ने उसे भी संक्षिप्त करके तीन सौ अध्यायवाले नीतिशास्त्र को बनाया। महर्षि वैशम्पायन ने उसका भी संक्षेप करके आठ अध्यायवाले शास्त्र का प्रवचन किया।[१]

पाञ्चरात्रागम सनत्कुमार संहिता के अनुसार भगवान् हरि ने ही समस्त शस्त्रास्त्रों का निर्माण करके उन्हें देवताओं को दिया। भगवान् हरि ने ही धनुर्वेद ब्रह्मा को पढ़ाया। महर्षि ब्रह्मा से क्रमशः शिव, बृहस्पति, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, ऋषि, देवता, किन्नर, राक्षस इत्यादि ने परम्परा से धनुर्वेद पढ़ा।[२]

वीरचिन्तामणि में ब्रह्मा, रुद्र, प्रजापति और विश्वामित्र द्वारा प्रोक्त धनुर्वेद को परशुराम, द्रोण, भीष्म इत्यादि ने पढ़ा, ऐसा माना है।[३] शिव-धनुर्वेद के मतानुसार भगवान् शिव ने सबसे पहले परशुराम को धनुर्वेद का उपदेश दिया। यही मत वाशिष्ठ धनुर्वेद का है।[४] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में पुष्कर और राम (परशुराम) का संवाद मिलता है जिसमें धनुर्वेद का उल्लेख छह अध्यायों में किया है।[५] इसी भाँति जामदग्न्य धनुर्वेद के भी कुछ उद्धरण मिलते हैं। इन सबका यही निष्कर्ष है कि धनुर्वेद के आचार्यों में परशुराम का विशिष्ट स्थान है।

प्राचीन काल में आर्यावर्त देश में धनुर्वेद की छह-सात परम्पराएँ विद्यमान थीं। उनमें तन्त्र प्रधान (हाथ-पैर द्वारा किये गये) युद्ध का वर्णन महर्षि वशिष्ठ ने वाशिष्ठ धनुर्वेद में किया है। इसी भाँति धनुष से भिन्न कुन्त, गदा, खड्ग इत्यादि की प्रयोग-विधियों का उल्लेख विश्वामित्र ने, अस्त्रविद्या का जामदग्न्य (परशुराम) ने, सञ्जीवनीविद्या का शुक्राचार्य ने औशनस धनुर्वेद में, विद्युत्-शास्त्र का प्रवचन भारद्वाज ने और विविध शस्त्रास्त्रों का वर्णन महर्षि वैशम्पायन ने किया था।[६]

धनुर्वेद के मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और मन्त्रमुक्त ये चार पाद हैं।[७] आदान, सन्धान, मोक्षण, विनिवर्तन, स्थान, मुष्टि, प्रयोग, प्रायश्चित्त, मण्डल और रहस्य ये दश अङ्ग हैं।[८] शब्द, स्पर्श, गन्ध, रस, दूर, चल, अदर्शन, पृष्ठ, स्थित, स्थिर, भ्रमण, प्रतिबिम्ब, उद्देश (ऊपर) लक्ष्यों पर शरनिपातन करना (वेध करना) ये १३ उपाङ्ग हैं।[९] मुक्त और अमुक्त आयुधों की संख्या बत्तीस

---

१. —नीतिप्रकाशिका अ० १ श्लोक २०-२८
२. सनत्कुमार संहिता, पृष्ठ ४१५ श्लोक २२-२६
३. वीरचिन्तामणि, पृष्ठ-२
४. **शिवो भार्गवरामाय धनुर्विद्यामदात् पुरा।** —शिवधनुर्वेद श्लोक १३
५. **अथोवाच महादेवो भार्गवाय च धीमते।**
**तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि याथातथ्येन संशृणु॥** —विष्णुधर्मोत्तरपुराण, श्लोक १
६. द्र० राजराजेश्वर परशुराम, पृष्ठ-३६
७. **चतुष्पाच्च धनुर्वेदः साङ्गोपाङ्ग-सरहस्यकः।** —नीति० प्रका० पृ० ९
८. **आदानमथ सन्धानं मोक्षणं विनिवर्तनम्। स्थानं मुष्टिः प्रयोगश्च प्रायश्चित्तानि मण्डलम्॥**
**रहस्यञ्चेति दशधा धनुर्वेदाङ्गमिष्यते॥** —महा० आदि० २२०।७२ भा० भा० दी०
९. नीति० प्र० पृष्ठ० ९

है।[१] उनमें पहले धनुष इत्यादि १२ आयुध मुक्त आयुधों में आते हैं। शेष खड्गादि २० अमुक्त आयुध कहे गये हैं।

तीसरे पाद में दण्डचक्र इत्यादि ४४ अस्त्र उपसंहार-सहित गिनाये हैं। उनमें पाँच कंकालादि आसुर अस्त्र मिलकर कुल संख्या ४९ हो जाती है। चतुर्थ पाद में विष्णुचक्र, वज्र, ब्रह्मास्त्र इत्यादि, जिनका उपसंहार (निरोध का उपाय) ही नहीं है, मन्त्रमुक्त कहलाते हैं।

इसी भाँति आकाशभैरव तन्त्रग्रन्थ में भी ३२ और अपराजितपृच्छा में ३६ आयुधों की गणना की है।[२]

शस्त्रास्त्रों के साथ व्यूहरचना भी धनुर्वेद के ही अन्तर्गत आती है।[३]

धनुष, चक्र, कुन्त, खड्ग, क्षुरिका, गदा और बाहु द्वारा किया गया—ये युद्ध के सात प्रकार हैं।[४] सात युद्धों के ज्ञाता को आचार्य, चार के ज्ञाता को भार्गव, दो युद्धों को जाननेवाले को योद्धा और एक युद्धवेत्ता को गणक नाम से सम्बोधित किया जाता है।[५]

मन्त्रास्त्रों द्वारा किया गया युद्ध दैविक, नालादि (तोप-बन्दूक) द्वारा किया आसुर या मायिक और हाथों में शस्त्रास्त्र लेकर किया जानेवाला युद्ध मानव कहलाता है।[६] अस्त्रों की भी दिव्य, नाग, मानुष और राक्षस—ये चार प्रजातियाँ हैं।[७]

धर्मयुद्ध में कुटिल-अस्त्र और आग्नेयास्त्रों का प्रयोग निषिद्ध कहा गया है, परन्तु मायायुद्ध और कूटयुद्धों में इनका प्रयोग देखा जाता है।[८]

धर्मपूर्वक प्रजापालन, साधुजनों की दुष्ट-दस्यु चौरादि से रक्षा करना ही धनुर्वेद का प्रयोजन है। जिस ग्राम वा नगर में एक भी अच्छा धनुर्धर है वहाँ से शत्रु और दुष्ट मनुष्य इसी भाँति दूर भागते हैं जैसेकि सिंह के सामने से मृग।[९]

धनुर्वेद से केवल धनुष बाण का ही ग्रहण नहीं किया जाता अपितु धनु शब्द रूढ़ि होकर भी उपलक्षण रूप में चारों प्रकार के आयुधों का ग्रहण करता है।

धनुष तीन स्थानों पर नत (झुका हुआ) शार्ङ्ग, इन्द्रधनुष की भाँति सारा झुका हुआ वैणव,

---

१. नीतिप्रकाशिका २।१६
२. (क) आकाशभैरव ५००।१०-१३
   (ख) अपराजित, पृ० ५९८
३. शुक्रनीति ४।२७८
४. **धनुश्चक्रं च कुन्तं च खड्गञ्च छुरिका गदा।**
   **सप्तमं बाहुयुद्धं स्यादेवं युद्धानि सप्तधा॥** —विष्णुधर्मोत्तपुराण श्लो० ९
५. वही, श्लोक १०
६. शुक्र० ४।५३
७. (क) **स निर्भिन्नो विविधैरस्त्रपूगैः। दिव्यैर्नागैर्मानुषै राक्षसैश्च।** —महा० द्रोण० १७८।५८
   (ख) महा० कर्ण० ७।६, वहीं भारतभावदीप टीका
८. मनु० १०।९३, वि० ध० २।१७७।७१, महा० द्रोण० १८९।११-१२
९. विष्णुधर्मोत्तरपुराण श्लोक-५-६

एक वितस्ति प्रमाण शरों को फेंकनेवाला दो हाथ लम्बा धनुष शस्त्र और दो डोरी बन्धा हुआ पत्थर, मिट्टी की गोली फेंकनेवाला धनुष चाप कहलाता है। इसी भाँति त्रैयम्बक धनुर्वेद में क्रिया के अनुसार योगिक चाप, क्रिया चाप, शलाका, ज्याघात, श्रमिक, सांग्रामिक, दूरपाती, दृढ़भेदी, विकर्षी, कार्यसाधक ये दश भेद धनुष के किये हैं। साढ़े पाँच हाथ लम्बा दैविक, चार हाथ का मानव और साढ़े तीन हाथ परिमाणवाला निकृष्ट धनुष होता है। शास्त्रोक्त धनुष का भार १०० पल होता है। बिना भार के धनुष किसी काम का नहीं होता, अतः धनुष में भार अवश्य होना चाहिये। इसी भाँति दशवें कार्यसाधक धनुष का भार दो सहस्र पल होता है। इसका अभिप्राय है कि इतना भार धनुष की डोरी से लटकाने पर वह ३ फुट नीचे तक जायेगी तब उसकी क्षमता दो सहस्त्र पल शक्ति होगी।

लोह (काला लोहा, तांबा, रजत, स्वर्ण आदि), सींग और काष्ठ इन तीन द्रव्यों से धनुष का निर्माण किया जाता है। धनुष में पकड़ने की मूँठ, किनारे स्त्री की भ्रूलता के समान क्रमशः पतले, प्रत्यञ्चा अटकाने के लिये कोटि और उछालने की शक्ति—ये गुण होने चाहियें। धनुष की डोरी (प्रत्यञ्चा) रेशम के सूत्र से आवेष्टित, हरिण, भैंस और गाय के स्नायु अथवा, बाँस, आक की त्वचा से बनानी चाहिये। इसकी मोटाई कनिष्ठ अंगुली जितनी रखनी उचित है। प्रत्यञ्चा में कहीं पर भी ग्रन्थि रहना उचित नहीं है।

**शर**—स्त्री, पुरुष और नपुंसक ये तीन भेद शरकाण्डों के होते हैं। जिस शर का अगला भाग स्थूल हो वह स्त्री, पृष्ठभाग स्थूल होने पर पुरुष और सब ओर समान होने से नपुंसक संज्ञा होती है। स्त्री-बाण बहुत दूर तक जाता है। पुरुष-बाण से दृढ़ लक्ष्यवेध और नपुंसक से लक्ष्यवेध किया जाता है। बारह मुष्टि मान का शर ज्येष्ठ, ११ मुष्टि का मध्यम और १० मुष्टिवाला निकृष्ट माना जाता है। फेंका हुआ बाण वायु से प्रभावित न होकर सीधा लक्ष्य की ओर जाये इसके लिये उसके पृष्ठभाग में छह अंगुल प्रमाण के तीन या चार पंख लगाये जाते हैं। शरों के फलमुख विभिन्न कार्यों के अनुसार विविध प्रकार के बनाये जाते हैं। सारे लोहे के बने हुए बाणों को नाराच कहते हैं। वैतस्तिक बाणों का प्रयोग निकट के युद्ध में होता है। द्रोणाचार्यादि कुछ योद्धा ही इनके प्रयोग में निपुण थे। नालीक (गोली) बहुत छोटा बाण होता है, जिसे बहुत दूर, दुर्ग या ऊँचे लक्ष्य को गिराने के लिये प्रयुक्त किया जाता है। यह नल यन्त्र से छोड़ा जाता है। वाशिष्ठ धनुर्वेद में खग नामक बाण, जिसकी नाली में अग्निचूर्ण (बारूद) भरा होता है, वायु के सामने फेंकने पर पुनः अपने स्थान पर लौट आता था, उसका वर्णन भी आया है।

**लक्ष्य**—लक्ष्य चार प्रकार का होता है। जहाँ धनुर्धर और लक्ष्य दोनों स्थिर हों वह स्थिर लक्ष्य, जहाँ धनुर्धर स्थिर और लक्ष्य चलता हो वह चल लक्ष्य, जब चलता हुआ धनुर्धर स्थिर लक्ष्य को बेधता है तब चलाचल और दोनों के गतिमान् रहने पर द्वयचल लक्ष्य कहलाता है। सूर्योदय एवं अस्त होते समय जितना समय लगता है उतने समय में चार सौ शरों को फेंकनेवाला ज्येष्ठ धन्वी, ३०० वाला मध्यम और २०० वाला कनिष्ठ योद्धा माना जाता है। छह मास में मुष्टि (बाण को पकड़ने का अभ्यास) और एक वर्ष में धनुष को पकड़ने का अभ्यास होता है।

साठ धनुष (१२० गज) की दूरी पर लक्ष्य को बेधना उत्तम, चालीस धनुष (८० गज) का मध्यम और बीस धनुष (४० गज) का निकृष्ट लक्ष्य माना गया है। चन्द्रक (चाँदमारी) सोलह अंगुल चौड़ा और पुरुष की ऊँचाई जितना बनाना चाहिये। जिसमें दो अङ्गुल विस्तृत कुन्द के फूल-जैसा बिन्दु मध्य में लगा रहे। धनुष द्वारा लक्ष्यवेध में सफल होने पर भी प्रतिवर्ष शरदऋतु में दो मास अभ्यास करना चाहिये।

**चक्र**—मुक्तायुधों में चक्र की भी गणना की है। सुदर्शनचक्र का नाम तो सबने सुना ही है। यह देवताओं का आयुध था जो सौरशक्ति से चलता और अपने लक्ष्य को गिराकर पुनः प्रयोक्ता के पास वापस आ जाता था। औशनस धनुर्वेद में इसके तीन भेद किये हैं। अग्निपुराण में चक्र के सात कर्म—छेदन, भेदन, पातन, भ्रमण, शयन, विकर्तन और कर्तन बतलाये हैं। चक्र को हाथ में लेकर सिंहकर्णी मुष्टि से पकड़कर दाहिने-बायें घुमाकर लक्ष्य पर छोड़ा जाता है।

**कुन्त**—सात युद्धों में तृतीय स्थान कुन्त का है। वाशिष्ठ धनुर्वेद में कुन्त द्वारा किये युद्ध को मध्यम कहा है। इसका दण्ड काष्ठ का एवं फल धातु निर्मित होता है। कुन्त के निचले भाग को अशनि कहते हैं। इसी का दूसरा नाम चोत्थक भी कहा है। शक्ति, प्रास, भिण्डिपाल, तोमर, शूल इत्यादि कुन्त से ही मिलते हुए आयुध हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र में इनका आकार हलमुख-जैसा बतलाया है।

**खड्ग**—वाशिष्ठ धनुर्वेद के अनुसार सप्तविध युद्धों में खड्ग का चतुर्थ स्थान होते हुए भी व्यवहार में इसका द्वितीय स्थान है। इसका महत्त्व नीतिप्रकाशिका एवं अग्निपुराण में दो कथाओं द्वारा स्पष्ट किया है। अग्रपृथु, मूलपृथु, संक्षिप्तमध्य और समकाय—ये चार भेद औशनस धनुर्वेद में खड्ग के किये हैं। इनके मुखाग्र भी १२ गिनाये हैं। बृहत्-संहिता और मानसोल्लास में भी खड्ग के अनेक भेद-प्रभेद, जाति तथा अन्य गुणों का उल्लेख किया है, परन्तु सर्वाधिक प्रामाणिक विवरण महाराजा भोजकृत युक्तिकल्पतरु नामक ग्रन्थ में मिलता है, जिसमें खड्ग की गुणवत्ता का ज्ञान करने के लिये अङ्ग, रूप, जाति, नेत्र, अरिष्ट, भूमि, ध्वनि और मान—ये आठ परीक्षण की विधियाँ दी गई हैं। अग्निपुराण, मानसोल्लास और महाभारत में खड्ग सञ्चालन के ३२ विज्ञानों का वर्णन किया है।

**छुरिका**—निकट आये शत्रु का प्रतिकार करने के लिए असिपुत्री या छुरिका ही उत्तम साधन है। यद्यपि रणस्थल में इसकी विशेष उपयोगिता प्रतीत नहीं होती, परन्तु सप्तविध युद्धों में इसकी गणना करने से इसका महत्त्व बढ़ जाता है। इसकी तीन धार या दो धार होती हैं, तथा मूठ भैंस इत्यादि के सींग से बनाई जाती है। चर्मनिर्मित कोष्ट में रखकर इसे कटिप्रदेश में बाँधा जाता है। मानसोल्लास में इसके प्रहार एवं आत्मरक्षणार्थ विज्ञान दिये हैं।

**गदा**—गदा प्रहरण का पुराना आयुध है। मुद्गर, स्थूण, परिघ इत्यादि इसी के भेद-प्रभेद हैं, परन्तु मध्यकाल के पश्चात् इसका प्रयोग कम होने लगा। इसमें युद्धकाल में हाथियों का कम प्रयोग और मनुष्यों की शक्ति में ह्रास होना ये दो मुख्य कारण प्रतीत होते हैं। आगे जाकर लाठी ने ही गदा का स्थान ले लिया। इसके विज्ञान लाठी के समकक्ष ही हैं। पचास अंगुल

की गदा श्रेष्ठ, चालीस अंगुल की मध्यम और तीस अंगुल की कनिष्ठ कही गई है। एक सहस्र पल भारवाली उत्तम, आठ सौ पल की मध्यम और छह सौ पल भार से युक्त कनिष्ठ गदा होती है। इसके आठ, बारह या सोलह किनारे होते हैं। महाभारत, नीतिप्रकाशिका और अग्निपुराण में इसके बहुत से विज्ञान दिये हैं।

प्रहरण के अन्य आयुध परशु, तोमर, पाश, वज्र, लगुड प्रभृति को महत्त्वपूर्ण विचारकर उनका भी यथोचित वर्णन किया गया है। गुण-कर्म एवं सञ्चालन-विधि के अनुसार इनकी गणना पूर्वोक्त छह प्रकार के युद्धों में ही की जा सकती है।

**नियुद्ध**—जब योद्धाओं के सारे शस्त्रास्त्र समाप्त हो जाते हैं तब परस्पर एक-दूसरे को पकड़कर मुष्टि, पाद इत्यादि के प्रहारों से किया जानेवाला युद्ध नियुद्ध या बाहुयुद्ध कहलाता है। इसके लिये आहार, दिनचर्या, व्यायाम तथा अभ्यास द्वारा शरीर को सुदृढ़ बनाना आवश्यक है। अज्ञातकर्तृक मल्लपुराण नामक ग्रन्थ में शरीर संवर्धन के विविध उपाय विस्तार से बतलाये हैं। रामायण, महाभारत, अग्निपुराण एवं मानसोल्लास में इसके अनेक दाव-पेचों का सजीव वर्णन किया है।

**व्यूह-रचना**—युद्ध-स्थल में विविध रीति से सेना की स्थापना करनी व्यूह-रचना कहलाती है। अथर्ववेद में व्यूह-रचना द्वारा सेना की रक्षा करने के लिये कहा है। श्री रामचन्द्रजी ने गरुडव्यूह की रचना करके लङ्का पर चढ़ाई की। महाभारत युद्ध के समय तो यह कला अपनी चरमोन्नति पर थी। इसी भाँति कौटिल्य अर्थशास्त्र, कामन्दकीय नीतिसार में सैकड़ों प्रकार के व्यूहों के भेद-प्रभेद कहे हैं, परन्तु इसका सबसे अधिक प्रामाणिक विवरण वीरमित्रोदय के अन्तर्गत राजविजय नामक ग्रन्थ के उद्धरणों से प्राप्त हुआ है, जिन्हें यथाशक्ति चित्रों के माध्यम से अङ्कित करने का प्रयत्न किया गया है।

**दिव्यास्त्र**—विद्युदादि आकाशस्थ पदार्थों की शक्ति से जो युद्ध किया जाता है उसे दैविक और शतघ्नी, भुशुण्डी, नालीकादि आग्नेयास्त्रों से किये युद्ध को मायायुद्ध कहते हैं। अग्निचूर्ण (बारूद) का प्रयोग प्राचीनकाल से ही चला आ रहा है। चतुर्विध आयुधों में यन्त्रमुक्त और मन्त्रमुक्त आयुधों की धनुर्वेद के चौथे पाद में गणना की है। समराङ्गणसूत्रधार के ३१वें अध्याय में विविध यन्त्रों का वर्णन किया गया है। पृथिवी, जल, वायु, अग्नि इत्यादि को वश में करके आधारविशेष में उसका प्रयोग करना यन्त्र कहा गया है। अथवा अपनी बुद्धि से इन तत्त्वों को अपने वश में करके कार्य करवाना यन्त्र कहलाता है। इसी भाँति दण्डचक्र, सरणी, दान्त इत्यादि के द्वारा शक्ति का वर्धन करके काम लेना मन्त्र कहा है। इन अस्त्रों का रहस्य, प्रयोग एवं सञ्चालन विशिष्ट अधिकारी योद्धाओं को ही ज्ञात था।

## प्रस्तुत ग्रन्थ की शैली

इस ग्रन्थ में वाशिष्ठ धनुर्वेद संहिता में कहे—

धनुश्चक्रं च कुन्तं च खड्गं च छुरिका गदा।<br>सप्तमं बाहुयुद्धं स्यादेवं युद्धानि सप्तधा॥

इस तथ्य को आधार मानकर इसी क्रम से शस्त्रास्त्रों का महत्त्व, निर्माणविधि, स्वरूप-

निर्धारण और उसके सञ्चालन के विज्ञान दिये हैं। स्वरूप-निर्धारण में पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण, प्रस्तर प्रतिमा, भित्तिचित्र, मुद्रायें तथा शस्त्रादिक निर्माण को देखकर विषय को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। विविध विज्ञानों को क्रियात्मक रूप में परखकर चित्रों की सहायता से चित्रित किया है।

इसकी सङ्कलन शैली में जैसे वीरमित्रोदय और युक्तिकल्पतरु में विषय को स्पष्ट करने के लिये अनेक ग्रन्थों के सन्दर्भ दिये हैं वैसे ही यहाँ पर भी वैसा ही क्रम रखने का प्रयास किया है। जिस विषय का जो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है उसको प्राधान्य देकर अन्य ग्रन्थों से उसकी सम्पुष्टि या अधिक कथन का उल्लेख किया है। जैसे धनुष प्रकरण में वाशिष्ठ धनुर्वेद को आधार मानकर अन्य ग्रन्थों के प्रमाणों से उसकी सम्पुष्टि की है। इसी भाँति व्यूह-रचना में राजविजय को प्रामाणिक मानकर अन्य प्रमाण उसकी सहायतार्थ प्रस्तुत किये हैं।

यहाँ इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि यह ग्रन्थ समालोचना प्रधान न होकर विवेचनात्मक या रचनात्मक है, जिसमें अधिक-से-अधिक विषय का सर्वाङ्गीण ज्ञान पाठक को हो सके। धनुर्वेद के दुर्लभ एवं लुप्त होते ग्रन्थों से विषय को स्पष्ट करने के लिये उद्धरण लिये हैं, जिनसे एक ही स्थान पर विभिन्न विचारों का तारतम्य बन सके। सङ्कलन-प्रधान ग्रन्थ होने के कारण फुटनोट तथा अन्य पाठ यथाशक्ति पूरे ही देने का प्रयास किया गया है। लुप्त होती हुई प्राचीन विद्या का यह दिग्दर्शनमात्र ही है।

चिरकाल से विलुप्त परम्परा की यत्र-तत्र उपलब्ध कड़ियों को जोड़कर धनुर्वेद को सचित्र और क्रमबद्ध करने का यह प्रथम प्रयास है। महर्षि स्वामी दयानन्दजी को राजस्थान में धनुर्वेद का कहीं एक पृष्ठ प्राप्त हुआ, और उन्होंने कहा था कि यदि जीवन रहा तो धनुर्वेद का प्रकाश किया जायेगा। आज मैं अपने आप को गौरवान्वित मानता हूँ कि मुझे उनकी इस इच्छा को पूर्ण करने का यह सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस ग्रन्थ का सम्पादन स्वामी जगदीश्वरानन्दजी सरस्वती ने जिस आत्मीयता और मनोयोग से किया है इसके लिये मैं उनका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। मेरे सतीर्थ्य श्री विरजानन्दजी दैवकरणि ने चित्र बनवाने और अन्य सामग्री उपलब्ध कराने में बहुत सहयोग दिया है। आर्यसमाज सी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली के आर्य सज्जनों ने भी इस महत्त्वपूर्ण कार्य में अपनी आहुति सर्वप्रथम देकर आर्यत्व को सार्थक किया है। मैं इन सबका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

—देवव्रत आचार्य

# वीर मित्रोदय में औशनस धनुर्वेद का पृष्ठ

अथखड्गप्रशंसा औशनसेधनुर्वेदे जमदग्निंप्रतिशुक्रोनगंवातुवाच असिरेवपरं
शस्त्रंखड्गहस्तेत्रिलोकेऽस्त्ययं अमोघाकारसदृशंसर्वशास्त्रत्वयप्रदःसर्वप्रकारेणत्वया
त्रदःशत्रूणांत्वयकारकःस्मृतः अज्ञानेचापकुञ्जेवावलेसावीगतेपिवा प्रविष्टेचोपवि
ष्टेचखड्गएवपरायणं संकटेचविषमेगिरिदुर्गेनिम्नगर्त्तेसिकतास्थलितेवा कंटका
कुमहतेपिचदेशेखड्गएवशरणंजमदग्ने छिन्नेरथेवाजिनिकुंजरेवागृहेदुमेनागरवो
प्रमादे सर्वत्रैवचवर्ज्यसंकटपरायणंस्यादसिरेवनित्यं धनुरिहशरपातादेवचैहंतिश
त्रून्दतिरिपुसमूहंवाजिवह्निर्जवेन सुनटकरगतस्तादिप्रमभ्यासमात्रेशमयतिरिपु
सैन्यानयोगेनखड्गः प्रतेगजस्थोरथवाजिगोवाशरत्त्वयेप्राप्तमणान्वयेच सम्प्रणिता
वाविषमस्थितोवानरोसिनामहीयतीहसर्वान् खड्गेदेवाप्रजांश्चविरथस्यविवाजि
नः शत्रुमध्यगतस्यनान्यत्खड्गात्परायणमिति नकुलेनाप्युक्तं खड्गाद्गजी

---

# शाङ्र्गधर धनुर्वेद की पाण्डुलिपि

सस्या — १शरीकृष्य

॥श्रीगणेशायनमः॥ ईश्वरोक्ताद्धनुर्वेदाद्व्यासेनापिप्रभाषितात् पद्यान्या
ख्यायरचितोग्रन्थः संक्षेपतोमया १ विनाशार्ङ्गधरेणान्योधनुर्वेदार्थ
तत्ववित् यतःस्वप्नेनिशिप्राप्तोशिवेनैतद्विचारणा २ अतःसन्देह
दोलायांरोपणीयंनमानसम् ग्रन्थेस्मिन्व्याप्यचतुरैर्वीरचिंतामणौकवि
तु ३ यस्याभ्यासप्रसादेनसिंहन्तेधनुर्धराः जेतारःपरसैन्यानांतस्याभ्या
सोविधीयते ४ एकोपियत्रनगरेप्रसिद्धःस्याद्धनुर्धरः ततोयान्त्यरयो
दूरंमृगाःसिंहार्दिताइव ५ इतिधनुर्धरप्रशंसा अथधनुर्दानविधिः

सिंहहारिव १=

आचार्येणधनुर्देयंब्राह्मणेसुपरीक्षिते लुब्धेधूर्तेकृतघ्नेचमन्दबुद्धौ
नदीयते ६ ब्राह्मणायधनुर्देयंखड्गंवैक्षत्रियायच वैश्यायदापयेत्कुं
तंशूद्रायदापयेत् ७ धनुश्चक्रंचकुंतंचखड्गंचछुरिकागदा सप्त
मंबाहुयुद्धंस्यादेवंयुद्धानिसप्तधा ८ आचार्य्यःसप्तयोद्धास्याच्चतुर्भिर्भार्ग
वःस्मृतः द्वाभ्यांचैवनवेद्योह्येकेनगणकोभवेत् ९ जन्मस्थेचतृतीये
चषष्ठेवैसप्तमेतथा दशमैकादशेचंद्रेशस्त्रकर्म्माणिकारयेत् १० हस्तः
पुनर्वसुःपुष्योरोहिणीचोत्तरात्रयम् अनुराधाश्विनीचैवरेवतीदशमस्तथा

# प्रथम अध्याय

चारों वेदों के चार उपवेदों में धनुर्वेद कौन-से वेद का उपवेद है, इसपर विचार किया जाता है। वाशिष्ठ धनुर्वेद के प्रारम्भ में ही धनुर्वेद को यजुर्वेद और अथर्ववेद का उपवेद स्वीकार किया है।[१] मधुसूदन स्वामी ने इसे यजुर्वेद का उपवेद माना है।[२] इसी भाँति शुक्रनीति[३] कोदण्डमण्डन[४] एवं नीतिप्रकाशिका[५] में इसे यजुर्वेद का ही उपवेद माना गया है। यहाँ यह कहना भी युक्ति-संगत होगा कि प्राधान्य से धनुर्वेद का प्रकरण यजुर्वेद में और अन्य दिव्यास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान-विज्ञान का वर्णन अथर्ववेद में उपलब्ध होता है।

धनुर्वेद में न केवल धनुष शब्द का ग्रहण किया गया है अपितु उपलक्षण से सभी आयुध इसके अन्तर्गत आते हैं, जैसाकि विश्वकोषकार ने भी कहा है—"**धनूंषि उपलक्षणेन धनुरादीन्यस्त्राणि विद्यन्ते ज्ञायन्त अनेनेति धनुर्वेदः।**"[६] प्रस्थानभेद के लेखक ने भी इसी की पुष्टि की है।[७] शुक्राचार्य ने युद्धोपकरण, शस्त्रास्त्र और व्यूहरचना के दिग्दर्शक शास्त्र को धनुर्वेद कहा है।[८] स्वामी दयानन्दजी ने राजप्रजा-सम्बन्धी कार्यों को धनुर्वेद में परिगणित किया है।[९] इसी प्रकार शुक्रनीति में शस्त्र-प्रहरण, मल्लयुद्ध, इच्छित स्थान पर अस्त्र निपातन, व्यूह-रचना और हाथी, घोड़े, रथादि से युद्ध करना ये पाँच कलायें धनुर्वेद में समाविष्ट की हैं।[१०]

इसके चार पाद कहे हैं। ये पाद कौन-कौन-से हैं, इस विषय में विभिन्न मत हैं। वाशिष्ठ धनुर्वेद-संहिता में दीक्षा, संग्रह, सिद्ध-प्रयोग और प्रयोगविधि इन चार पादों की गणना की है।[११] महाभारत के टीकाकार श्री नीलकण्ठ शास्त्री ने मन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, मुक्तामुक्त और अमुक्त[१२]

---

१. वाशिष्ठ धनुर्वेद-संहिता, पृष्ठ १

२. **तथाहि ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेद इति वेदाश्चत्वारः।**
**अथ वेदचतुष्टयस्य क्रमेण चत्वार उपवेदाः। आयुर्वेद.....एवं धनुर्वेदः।** —प्रस्थानभेद पृष्ठ ७

३. **युद्धशस्त्रास्त्रकुशलो रचनाकुशलो भवेत्।**
**यजुर्वेदोपवेदोऽयं धनुर्वेदस्तु येन च॥** —शुक्र ४। २७८

४. **यजुर्वेदोपवेदोऽयं धनुर्वेदो निगद्यते।** —कोदण्ड १। ३

५. **यजुर्वेदस्योपवेदो धनुर्वेद उदाहृतः। ऋचोपवेद आयुः स्यात् साम्नो गान्धर्व उच्यते॥**
**अथर्वणस्य भरतमिति वेदोपवेदकाः। खड्ग विद्यादिकं यत्तु यजुर्वेदाङ्गं हि तत्॥**
—नीतिप्रकाशिका पृष्ठ-५

६. हिन्दी विश्वकोष भाग ११, पृष्ठ ७६

७. **अत्र धनुः शब्दश्चापे रूढोऽपि चतुर्विधायुधे प्रवर्तते।**
**तच्चतुर्विधं—मुक्तममुक्तं मुक्तामुक्तं यन्त्रमुक्तम्।** —प्रस्थानभेद, पृष्ठ ७

८. शुक्रनीति ४। २७८

९. सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास

१०. शुक्र० ४। ३१७, ४। ३१९

११. वाशिष्ठ धनुर्वेद, पृष्ठ २

१२. **चतुष्पादं दशविधं धनुर्वेदमरिन्दमः।**
**अर्जुनाद् वेदवेदज्ञः सकलं दिव्यमानुषम्॥** —महा० आदिपर्व २२०। ७२

ये चार पाद कहे हैं। आगे सूत्र, शिक्षा, प्रयोग, रहस्य—ये चार पाद भी धनुर्वेद के स्वीकार किये हैं।[१]

अग्निपुराण में रथ, हाथी, घोड़े और पदाति ये चार पाद माने हैं।[२] नीतिप्रकाशिका में मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और मन्त्रमुक्त को स्वीकार किया है तथा अन्यत्र कुछ आचार्य शस्त्र, अस्त्र, प्रत्यस्त्र, परमास्त्र इन चार पादों को मानते हैं, यह भी लिखा है।[३]

## धनुर्वेद के अङ्ग

महाभारत आदिपर्व २२०।७२ में धनुर्वेद को दस अङ्गवाला बतलाया है। नीलकण्ठ शास्त्री ने भारतभावदीप टीका में इन दस अङ्गों की गणना करते हुए श्लोक उद्धृत किया है—

आदानमथ सन्धानं मोक्षणं विनिवर्तनम्।
स्थानं मुष्टिः प्रयोगश्च प्रायश्चित्तानि मण्डलम्॥
रहस्यञ्चेति दशधा धनुर्वेदाङ्गमिष्यते।

तरकस से बाण को निकालना आदान कहलाता है। बाण को धनुष की प्रत्यञ्चा पर चढ़ाना सन्धान, लक्ष्य पर बाण को फेंकना मोक्षण, अल्पबलवाले लक्ष्य पर छोड़े गये अस्त्र को वापस लौटाना विनिवर्तन, विभिन्न पैंतरों में खड़े होकर धनुष पकड़ना, डोरी को खेंचना और बाण छोड़ना स्थान कहलाता है। तीन या चार अङ्गुलियों से धनुष को पकड़ना मुष्टि, अंगूठा-तर्जनी या मध्यमा अंगुली से डोरी को खेंचना प्रयोग, स्वतः या दूसरे से प्राप्त होनेवाले डोरी के आघात को दस्ताना पहनकर निवारण करना, कवच पहनकर दूसरों द्वारा छोड़े गये बाणों को रोकना अथवा सामने से आते हुए बाण को अपने बाण द्वारा काट देना प्रायश्चित्त कहलाता है। इसी भाँति घूमते हुए वाहन से छोड़े गये बाण का स्वयं भी रथारूढ़ होकर वेधना मण्डल और शब्द के ऊपर बाण छोड़ना या एकसाथ अनेक लक्ष्यों पर शर-सन्धान करना ये सब रहस्य के अन्तर्गत आते हैं।

## अग्निपुराण में धनुर्वेद के पाँच अङ्ग[४]

यन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, मुक्तसंधारित, अमुक्त और बाहुयुद्ध—पाँच प्रकार का धनुर्वेद होता है। शस्त्र और अस्त्र ये दो भेद कहे हैं। शस्त्रास्त्रों के भी ऋजु और मायायुक्त दो भेद होते हैं।

---

१. पृष्ठ ८ के चतुष्पादं......श्लोक पर नीलकण्ठ शास्त्रीकृत भारतभावदीप टीका—
मन्त्रमुक्तं पाणिमुक्तं मुक्तामुक्तं तथैव च। अमुक्तञ्च धनुर्वेदे चतुष्पाच्छस्त्रमीरितम्॥
यद्वा सूत्र, शिक्षा, प्रयोग, रहस्य चत्वारो ग्रन्थपादाः॥

२. चतुष्पादो धनुर्वेदस्तथा पञ्चविधो जनः। रथनागाश्वपत्तीनां पादानाश्रित्य कीर्तितः॥
—अग्निपुराण २४९।१-६

३. मुक्तञ्चैव ह्यमुक्तञ्च मुक्तामुक्तमतः परम्। मन्त्रमुक्तञ्च चत्वारि धनुर्वेदपदानि वै॥
शस्त्रमस्त्रञ्च प्रत्यस्त्रं परमास्त्रमितीव च। चातुर्विध्यं धनुर्वेदे केचिदाहुर्धनुर्विदः॥
उपादानं चैव सन्धानं विमोक्षसंहतिस्तथा। धनुर्वेदश्चतुर्धेति वदन्तीति परे जगुः॥
—नी० प्र० २।११-१४-१५

४. अ० पु० २४९।३-६

**यन्त्रमुक्त**—क्षेपणी (गुलेल) चाप या यन्त्र (तोप-बन्दूकादि) द्वारा छोड़े गये अस्त्र को यन्त्रमुक्त कहते हैं।

**पाणिमुक्त**—हाथ से फेंके गये शिला, तोमर, चक्रादि को पाणिमुक्त कहा गया है।

**मुक्तसन्धारित**—प्रास, शक्ति, कुन्त आदि जिन्हें फेंककर पुनः वापस पकड़ लेते या लौटा लेते हैं।

**अमुक्त**—जिन्हें हाथ में पकड़कर चलाया जाये जैसे तलवार छुरी गदा इत्यादि।

**नियुद्धम्**—सब शस्त्रास्त्रों के समाप्त हो जाने पर हाथ-पैरों से दावपेच लगाकर किया जानेवाला युद्ध।

विष्णुधर्मोत्तर में इतना और अधिक कहा है[1]—

हाथ इत्यादि से किया प्रहार नियुद्ध कहलाता है। इसके लिये शरीर के अङ्गों को व्यायाम, भाराकर्षणादि के द्वारा सुदृढ़ बनाना आवश्यक है।

## आयुधों के भेद-प्रभेद

सभी शस्त्रास्त्रों के मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और मन्त्रमुक्त ये चार भेद किये गये हैं। यहाँ नीतिप्रकाशिका का द्वितीय सर्ग आद्योपान्त दिया जा रहा है जिसमें विभिन्न शस्त्रास्त्रों की संख्या, श्रेणी, उपसंहार का विस्तृत विवेचन किया गया है। साथ में अन्य ग्रन्थों के प्रमाण भी दिये हैं।

**मुक्तञ्चैव ह्यमुक्तञ्च मुक्तामुक्तमतः परम्। मन्त्रमुक्तञ्च चत्वारि धनुर्वेदपदानि वै॥ ११॥**
**मुक्तं बाणादिविज्ञेयं खड्गादिकममुक्तकम्। सोपसंहारमस्त्रं तु मुक्तामुक्तमुदाहृतम्॥ १२॥**
**उपसंहाररहितं मन्त्रमुक्तमिहोच्यते। चतुर्भिरेभिः पादैस्तु धनुर्वेदः प्रकाशते॥ १३॥**
**शस्त्रमस्त्रञ्च प्रत्यस्त्रं परमास्त्रमितीव च। चातुर्विध्यं धनुर्वेदे केचिदाहुर्धनुर्विदः॥ १४॥**
**आदानञ्चैव सन्धानं विमोक्षसंहृतिस्तथा। धनुर्वेदश्चतुर्धेति वदन्तीति परे जगुः॥ १५॥**
**तत्राद्यं मतमालम्ब्य मुक्तामुक्तायुधान्यहम्। द्वात्रिंशद् भेदतो वच्मि तत्रायं विस्तृतिक्रमः॥ १६॥**

---

**अर्थ**—मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और मन्त्रमुक्त ये चार धनुर्वेद के पाद कहे हैं॥ ११॥

बाणादि मुक्त, खड्गादि अमुक्त, उपसंहारसहित अस्त्र को मुक्तामुक्त और उपसंहार से रहित को मन्त्रमुक्त कहते हैं। इन चार पादों से युक्त धनुर्वेद सुशोभित है॥ १२-१३॥

कुछ धनुर्विदों के मत में शस्त्र, अस्त्र, प्रत्यस्त्र और परमास्त्र ये चार धनुर्वेद के पाद होते हैं॥ १४॥

अन्य के मतानुसार आदान, सन्धान, विमोक्ष और संहृति के भेद से धनुर्वेद चार विभागों से युक्त होता है॥ १५॥

इन मतों में प्रारम्भ के मत (मुक्त, अमुक्तादि) पक्ष का आलम्बन लेकर इनके बत्तीस भेदों को कहता हूँ॥ १६॥

---

१. विष्णुधर्मोत्तर० अध्याय १७८

धनुरिषुर्भिण्डिपालश्शक्तिर्द्रुघणतोमराः। नलिका लगुडाः पाशश्चक्रं वै दन्तकण्टकः॥ १७॥
भुशुण्डीति द्वादशैते मुक्तभेदाः प्रकीर्तिताः। धनुर्वेदस्याद्यपादस्तवायं कथितो नृप॥ १८॥

**द्वितीयः पादः**

वज्रमीली च परशुर्गोशीर्षमसिधेनुका। लवित्रमास्तरः कुन्तस्स्थूणः प्रासः पिनाककः॥ १९॥
गदा मुद्गरः सीरो मुसलः पट्टिसः तथा। मौष्टिकं परिघश्चैव मयूखी च शतघ्निका॥ २०॥
अमुक्ता विंशतिरिमे द्वितीयः पाद उच्यते। मुक्तामुक्तशस्त्राणि द्वात्रिंशद् गणितानि ते॥ २१॥

**आकाशभैरवतन्त्रे साम्राज्यलक्ष्मीपीठिकायां पञ्चशततमे पटले, नवरात्रे शस्त्रपूजादिकथनं तेषां गणना च—**

आयुधानि ततो राजा द्वात्रिंशत् परिपूजयेत्। आद्यञ्चापोऽत्र कथितं तद् भेदः स्याच्चतुर्विधः॥ १०॥
कोदण्डं त्रिणतञ्चैव गुलिकास्त्रं भिदोचितम्। द्वितीयन्तु शरः प्रोक्तस्तद्भेदः पञ्चधा भवेत्॥ ११॥
अर्धचन्द्रः क्षुरप्रश्च करीराङ्कुरसन्निभः। करवीरदलाकारस्तथाधोमुखकण्टकः॥ १२॥
असिस्तृतीयं कथितं तद् भेदस्तु चतुर्विधः। खड्गः साधनखड्गश्च पट्टसः करवालकः॥ १३॥
चतुर्थं क्षुरिका प्रोक्तं पञ्चमं परशुर्भवेत्। षष्ठन्तु चक्रमाख्यातं सप्तमं शूलमुच्यते॥ १४॥
अष्टमं शक्तिराख्यातं नवमं भिण्डिवालकम्। दशमं परिघः प्रोक्तो वज्रमेकादशं स्मृतम्॥ १५॥
द्वादशं लगुडं प्रोक्तमयःशङ्कुभिराचितम्। त्रयोदशं गदाप्रोक्तं खेटकन्तु चतुर्दशम्॥ १६॥
भल्लः पञ्चदशम्प्रोक्तं तद्भेदस्त्रिविधः स्मृतः। भल्लो वराहभल्लश्च तोत्रश्च परिकीर्तितः॥ १७॥

---

धनुष, बाण, भिण्डिपाल, शक्ति, द्रुघण, तोमर, नलिका, लगुड, पाश, चक्र, दन्तकण्टक और भुशुण्डी ये बारह मुक्त के भेद कहे हैं। हे महाराज! इस प्रकार यह तुम्हें धनुर्वेद के प्रथम पाद का वर्णन कर दिया है।

—वज्र, ईली, परशु, गोशीर्ष, छुरि, लवित्र, आस्तर, कुन्त, स्थूण, प्रास, पिनाक, गदा, मुद्गर, सीर, मुसल, पट्टिश, मौष्टिक, परिघ, मयूखी और शतघ्नी—ये बीस आयुध अमुक्त कहलाते हैं। इन्हें हाथ में पकड़कर ही प्रहार किया जाता है। यह धनुर्वेद का दूसरा पाद कहलाता है। इस प्रकार मुक्त और अमुक्त बत्तीस शस्त्रास्त्र कह दिये गये हैं॥ १९-२०-२१॥

उसके पश्चात् राजा बत्तीस आयुधों की पूजा करे। इनमें पहला आयुध चाप है जिसके चार भेद—कोदण्ड, तीन बार मुड़ा हुआ, गुलेल के लिये और भेदन करने के लिये, कहे हैं॥ १०॥

दूसरा बाण कहा है जिसके पाँच भेद, अर्धचन्द्र, क्षुरप्र, करीर के अङ्कुर जैसा, कनेर के पत्र सदृश और जिसके काँटे नीचे की ओर हों, होते हैं॥ १२॥

तीसरा आयुध खड्ग कहा है, जिसके चार भेद होते हैं। जैसे खड्ग, साधनखड्ग, पट्टस और करवाल॥ १३॥

चौथा आयुध छुरी, पाँचवा परशु, छठा चक्र और सातवाँ शूल, आठवाँ शक्ति, नवाँ भिन्दिपाल, दशवाँ परिघ और ग्यारहवाँ वज्र कहा है॥ १४-१५॥

बारहवाँ आयुध लगुड है जोकि लोहे की कीलों से जड़ा हुआ होता है, चोदहवाँ ढाल, पन्द्रहवाँ भाला कहा है जिसके तीन भेद—भाला, सूअर के कान की आकृति सदृश भाला और अङ्कुश कहे हैं॥ १६-१७॥

सल्लः षोडशमाख्यातं मुद्गरस्तदनन्तरम्। कुन्तमष्टादशम्प्रोक्तं कुठारं तदनन्तरम्॥ १८॥
मुसलं त्रिंशमाख्यातं सृणिः स्यादेकविंशकम्। द्वाविंशं यष्टिराख्यातं तद्भेदस्त्रिविधो मतः॥ १९॥
यष्टिश्च फणियष्टिश्च ह्यवलम्बनयष्टिका। त्रयोविंशन्नालिकास्त्रं स्वस्तिकं तदनन्तरम्॥ २०॥
पञ्चविंशं तु टङ्कं स्यात् षड्विंशं हलमीरितम्। सप्तविंशं तु वेत्रं स्यादष्टाविंशं कशेरिता॥ २१॥
एकोनत्रिंशः प्रासः स्यात् सादिर्हस्तोचितः प्रिये। त्रिंशत्तोमरमाख्यातमेकत्रिंशन्तु कम्पणम्॥ २२॥
कूटमायुधतत्वज्ञैर्द्वात्रिंशं परिकीर्तितम् ॥ २३॥

**अपराजितपृच्छानामकग्रन्थे षट्त्रिंशदायुधानि—**

आयुधानामतो वक्ष्ये नाम संख्यावलिं क्रमात्। त्रिशूलच्छुरिकाखड्गखेटाः खट्वाङ्गकं धनुः॥ १०॥
बाणपाशाङ्कुशाः घण्टारिष्टिदर्पणदण्डकाः। शङ्खचक्रं गदावज्रशक्तिमुद्गरभृशुण्डयः॥ ११॥
मुसलः परशुश्चैव कर्तिका च कपालकम्। शिरः सर्पश्च शृङ्गश्च हलः कुन्तस्तथैव च॥ १२॥
पुस्तकाक्षकमण्डलुशुचयः पद्मपत्रके। योगमुद्रा तथा चैव षट्त्रिंशच्छस्त्रकाणि च[1]॥ १३॥

*—अध्याय २३५, पृष्ठ ५९८*

## तृतीयः पादः

दण्डचक्रं धर्मचक्रं कालचक्रं तथैव च। ऐन्द्रचक्रं शूलवतं ब्रह्मशीर्षं च मोदकी॥ २२॥
शिखरी धर्मपाशश्च तथा वरुणपाशकम्। पैनाकास्त्रञ्च वायव्यं शुष्कार्द्रं शिखरास्त्रकम्॥ २३॥
क्रौञ्चास्त्रं हयशीर्षं च विद्याऽविद्येऽस्त्रसंज्ञिके। गान्धर्वास्त्रं नन्दनास्त्रं वर्षणं शोषणं तथा॥ २४॥

---

सोलहवाँ आयुध सल्ल (सेल) और उसके पश्चात् मुद्गर सतरहवाँ, अठारहवाँ कुन्त, उन्नीसवाँ कुठार बीसवाँ मुसल, इक्कीसवाँ सृणि, बाईसवाँ यष्टि कहा है, जिसके तीन भेद होते हैं यथा—

यष्टि (साधारण लाठी), फणियष्टि—सर्प के फण के सदृश आगे से मुड़ी हुई लाठी और बूढ़ों को सहारा लेनेवाली लाठी॥ १८-१९॥

तेइसवाँ नालिकास्त्र (बन्दूक), चौबीसवाँ स्वस्तिक, पच्चीसवाँ टङ्क (छेनी), छब्बीसवाँ हल, सत्ताईसवाँ वेत्र (बेंत गदका) और अठाइसवाँ कशा (चाबुक) कहा है॥ २०-२१॥

उनत्तीसवाँ प्रास होता है जोकि घुड़सवार धारण करते हैं। तीसवाँ तोमर, इकतीसवाँ कम्पण और कूट बत्तीसवाँ आयुध तत्त्वज्ञों ने कहा है॥ २२-२३॥

**अपराजित पृच्छा में छत्तीस आयुध**—त्रिशूल, छुरिका, खड्ग, ढाल, खड्वाङ्ग, धनुष, बाण, पाश, अङ्कुश, घण्टा, रिष्टि, दर्पण, दण्ड, शङ्ख, चक्र, गदा, वज्र, शक्ति, मुद्गर, भृशुण्डी (भुशुण्डी) मुसल, परशु, कर्तिका (आरी), कपाल, शिर, सर्प, सींग, हल, कुन्त, पुस्तक, अक्ष, कमण्डलु, पदम्, पत्र, योगमुद्रा और छत्र ये छत्तीस आयुध कहे हैं॥ १०-१३॥

—दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, ऐन्द्रचक्र, शूलवत, ब्रह्मशीर्ष, मोदकी और शिखरी (गदा), धर्मपाश, वरुणपाश, पैनाक (आग्नेयास्त्र) वायव्य, शुष्क, आर्द्र, शिखरास्त्र, क्रौञ्चास्त्र, हयशीर्ष, विद्यास्त्र, अविद्यास्त्र, गान्धर्वास्त्र, नन्दनास्त्र, वर्षण (वर्षा करनेवाला अस्त्र), शोषण (सुखानेवाला

---

१. यहाँ त्रिशूलादि छत्तीस आयुधों की प्रतिज्ञा करके केवल चौबीस ही का कथन किया है। शेष पुस्तकाक्ष कमण्डलु आदि आयुध कैसे सम्भव हो सकते हैं यह विचारणीय है।

**प्रस्वापनप्रशमने सन्तापनविलापने। मदनं मानवास्त्रञ्च नायनं तामसं तथा॥ २५॥**
**संवर्तं मौसलं सत्यं सौरं मायास्त्रमेव च। त्वाष्ट्रमस्त्रञ्च सोमास्त्रं संहारं मानसं तथा[1]॥ २६॥**
**नागास्त्रं गारुडास्त्रञ्च शैलेषीकेऽस्त्रसंज्ञिके। चतुश्चत्वारि चैतानि सोपसंहारकाणि वै[2]॥ २७॥**
**वक्ष्यामि चोपसंहारान् क्रमप्राप्तान्निबोध मे। याञ्ज्ञात्वा वैरिमुक्तानि चास्त्राणि शमयिष्यसि॥ २८॥**
**सत्यवान् सत्यकीर्तिश्च रभसो दृष्ट एव च। प्रतिहारश्चैवावाङ्मुखपराङ् मुखौ॥ २९॥**
**दृढनाभोऽलक्ष्यलक्ष्यावानिलश्च सुनाभकः। दशाक्षश्शतवक्त्रश्च दशशीर्षशतोदरौ॥ ३०॥**
**धर्मनाभो महानाभस्तुन्दनाभस्तु नाभकः। ज्योतिषो विमलश्चैव नैराश्य कृशनावुभौ॥ ३१॥**
**योगन्धरस्सनिद्रश्च दैत्यः प्रमथजस्तथा। सार्चिमाली धृतिर्माली वृत्तिमान् रुचिरस्तथा॥ ३२॥**
**पित्र्यस्सोमनसश्चैव विधूतमकरौ तथा। करवीरो धनरती धान्यं वै कामरूपकः॥ ३३॥**
**जृम्भकावरणौ चैव मोहः कामरुचिस्तथा। वरुणस्सर्वदमनस्सन्धानस्सर्वनाभकः॥ ३४॥**
**कङ्कालास्त्रं मौसलास्त्रं कापालास्त्रञ्च कङ्कणम्। पैशाचास्त्रञ्चेति पञ्चाप्यसुरास्त्राणि भूपते॥ ३५॥**
**सत्यवान् सर्वदमनः कामरूपस्तथैव च। योगन्धरोऽप्यलक्ष्यश्चासुरास्त्रविघातकाः॥ ३६॥**

---

अस्त्र), प्रस्वापन (सुलानेवाला) प्रशमन (शत्रुओं का क्रोध, दूर करनेवाला), सन्तापन (तपानेवाला), विलापन (रुलानेवाला), मदन (नशा करनेवाला), मानवास्त्र (शत्रु को दूर फेंक देनेवाला), नायन (दिखलानेवाला), तामस (अन्धकार करनेवाला), संवर्त, मौसल, सत्य, सौर, मायास्त्र, त्वाष्ट्र, सोमास्त्र, संहारास्त्र (संहार करनेवाला), मानस (मन की इच्छामात्र से ही सङ्कल्प पूरा करनेवाला), नागास्त्र (सर्पवत् हाथ-पैरों को जकड़नेवाला) गारुडास्त्र (नागास्त्र की जकड़ को दूर करनेवाला), शैल (वायव्यास्त्र द्वारा उत्पन्न वायु को शैलपंक्ति का निर्माण करके रोकनेवाला) और ऐषीकास्त्र—ये चवालीस उपसंहारसहित अस्त्र हैं॥ २२-२७॥

—पूर्वोक्त अस्त्रों के पश्चात् अब उनके उपसंहारक अस्त्रों को क्रमशः कहूँगा, जिनको जानकर शत्रु द्वारा प्रयुक्त अस्त्रों का निवारण किया जा सकेगा॥ २८॥

सत्यवान्, सत्यकीर्ति, रभस, दृष्ट, प्रतिहारतर, अवाङ्मुख, पराङ्मुख, दृढ़नाभ, अलक्ष्य, लक्ष्य, अनिल, सुनाभक, दशाक्ष, शतवक्त्र, दशशीर्ष, शतोदर, धर्मनाभ, महानाभ, तुन्दनाभ, नाभक, ज्योतिष, विमल, नैराश्य, कृशन, योगन्धर, सनिद्र, दैत्य, प्रमथज, सार्चिमाली, धृतिमाली, वृत्तिमान्, रुचिर, पित्र्य, सौमनस, विधूत, मकर, करवीर, धन, रति, धान्य, कामरूप, जृम्भक, आवरण, मोह, कामरुचि, वरुण, सर्वदमन, सन्धान और सर्वनाभ। (ये उनञ्चास शत्रु द्वारा प्रयुक्त अस्त्रों का उपसंहार करनेवाले हैं)॥ २८-३४॥

हे महाराज! कङ्कालास्त्र, मौसलास्त्र, कापालास्त्र, कङ्कणास्त्र और पैशाचास्त्र ये पाँच असुरों द्वारा प्रयुक्त किये जानेवाले अस्त्र हैं॥ ३५॥

इनके उपसंहारक (शान्त करनेवाले) अस्त्र सत्यवान्, सर्वदमन, कामरूप, योगन्धर और अलक्ष्य ये पाँच कहे गये हैं॥ ३६॥

---

१. इन्हीं अस्त्रों का वाल्मीकि रामायण के बालकाण्डान्तर्गत २७-२८वें सर्गों में वर्णन किया है।

२. यहाँ पूर्वोक्त अस्त्रों के संहारक (निरोधक) अस्त्रों को कहा है जैसे आग्नेयास्त्र का संहारक पर्जन्यास्त्र, उसका निरोधक वायव्यास्त्र और उसका भी निरोधक पार्वतास्त्र होता है इसी, भाँति पूर्वोक्त चवालीस अस्त्रों में आधे संहारक हैं। तीसरे पाद में कहे अस्त्र पहले सभी अस्त्रों को प्रशमन करनेवाले हैं।

चतुश्चत्वारिंशदेते पञ्चान्योऽन्यविमर्दनाः। मेलयित्वा च पञ्चाशदेकोना ह्यस्त्रशामकाः॥ ३७॥
सर्वमोचननामा तु सुप्रभातनयो महान्। मुक्तामुक्ताखिलशमो मद्वरात् प्रथितः परः॥ ३८॥
अयं तृतीयपादः स्याद् धनुर्वेदस्य भूपते।

## चतुर्थः पादः

मन्त्रमुक्तमपि वक्ष्ये सावधानमनाः शृणु॥ ३९॥
विष्णुचक्रं वज्रमस्त्रं ब्रह्मास्त्रं कालपाशकम्। नारायणं पाशुपतं नाशाम्यमितरास्त्रकैः॥ ४०॥
स्वान्यसंहारकाभावान्मन्त्रमुक्तान्यमूनि षट्। अयं चतुर्थपादः स्याद् धनुर्वेदस्य सम्मतः॥ ४१॥

*—नी० प्रकाशिकायां द्वितीयः सर्गः*

### युद्धों के भेद—

धनुश्चक्रं च कुन्तं च खड्गं च क्षुरिका गदा। सप्तमं बाहुयुद्धं स्यादेवं युद्धानि सप्तधा॥

*—वा० ध० ९ प्र० ४*

### शुक्रनीतौ—

मन्त्रास्त्रैर्दैविकं युद्धं नालाद्यस्त्रैस्तथासुरम्। शस्त्रबाहूसमुत्थं तु मानवं युद्धमीरितम्॥
एकस्य बहुभिः सार्धं बहूनां बहुभिश्च वा। एकस्यैकेन वा द्वाभ्यां द्वयोर्वा तद् भवेत् खलु॥

*—शुक्रनीति ४/५३-५४*

---

पूर्वोक्त चवालीस अस्त्रों के प्रशमन करनेवाले चवालीस और पाँच आसुरास्त्रों के शामक सत्यवान् आदि पाँच ये कुल मिलाकर उनञ्चास (४९) उपसंहारक अस्त्र होते हैं॥ ३७॥

इनमें सर्वमोचन नामक (सर्वदमन) अस्त्र जोकि सुप्रभा (अस्त्रों की निमात्री सुप्रभा नामक दक्षकन्या) के लिए पुत्र के समान प्रिय एवं महान् है, यह सभी मुक्त और अमुक्त अस्त्रों का शमन करनेवाला है॥ ३८॥

यह धनुर्वेद का तृतीय पाद कहलाता है।

हे राजन्! धनुर्वेद के चतुर्थ पाद के अन्तर्गत मन्त्रमुक्त आयुध का समावेश होता है, जिनका मैं वर्णन करता हूँ। सावधान होकर सुनिये—

विष्णुचक्र (सुदर्शनचक्र), वज्रास्त्र (इन्द्र का अस्त्र), ब्रह्मास्त्र (ब्रह्मा का अस्त्र अथवा ब्रह्मा द्वारा निर्मित), कालपाश (वरुण का अस्त्र), नारायण अस्त्र और पाशुपत (महादेवजी द्वारा प्रयुक्त) ये छह अस्त्र अन्य अस्त्रों द्वारा शमन नहीं किये जा सकते॥ ४०॥

क्योंकि ये छह अस्त्र मन्त्र (रहस्य, विज्ञानविशेष) द्वारा छोड़े जाते हैं, अतः इन्हें मन्त्रमुक्त कहते हैं। यह धनुर्वेद का चौथा पाद है॥ ४१॥

**युद्धों के भेद**—धनुष (धनुष-बाण, यन्त्र क्षेपणी आदि), चक्र, कुन्त (प्रास शक्ति, भाला, त्रिशूल, परशु आदि) खड्ग (ढाल, तलवार) क्षुरिका (छुरि, वज्रमुष्टि, बघनखा आदि) गदा (गदा, द्रुघण, मुद्गर, परिघ आदि) और बाहुयुद्ध (मल्लयुद्ध, नियुद्धादि) ये सात प्रकार के युद्ध होते हैं॥ ९॥

**शुक्रनीति में**—मन्त्रों से प्रेरित अस्त्रों द्वारा किया जानेवाला युद्ध 'दैविक', तोप-बन्दूक द्वारा 'आसुर' और शस्त्रास्त्रों को हाथ में लेकर युद्ध करना 'मानव' कहलाता है। अथवा एक का एक दो वा अनेक के साथ, अनेक का अनेक के साथ तथा एक के संग एक का वा

**अग्निपुराणे—**

**धनुश्रेष्ठानि युद्धानि प्रासमध्यानि तानि च। तानि खड्ग जघन्यानि बाहुप्रत्यवराणि च॥**

*—अ० पु० २४९/७*

**उपाधयः—**

**आचार्यः सप्त युद्धः स्याच्चतुर्भि[१]र्भार्गवः स्मृतः। द्वाभ्यां चैव भवेद् योद्धा एकेन गणको भवेत्॥**

*—वा० ध० पृ० ४*

**धनुर्वेदस्याधिकारिणः—**

**आचार्येण धनुर्देयं ब्राह्मणे सुपरीक्षिते। लुब्धे धूर्त्ते कृतघ्ने च मन्दबुद्धौ न दापयेत्॥७॥**
**ब्राह्मणाय धनुर्देयं खड्गं वै क्षत्रियाय च। वैश्याय दापयेत् कुन्तं गदां शूद्राय दापयेत्[२]॥८॥**

*—वि० ध० पृ० ३*

**अग्नि पुराणे—**

**युद्धाधिकारः शूद्रस्य स्वयं व्यापदिशिक्षया। आपत्तौ वर्णसङ्करैः कार्या युद्धे सहायता॥**

**धनुर्वेदस्य प्रयोजनम्**

**दुष्टदस्युचौरादिभ्यः साधुसंरक्षणं तथा। धर्मतः प्रजापालनं धनुर्वेदस्य प्रयोजनम्॥५॥**

---

दो के संग दो द्वारा किया हुआ युद्ध 'मानव' युद्ध कहलाता है।

**अग्निपुराण में**—धनुष से किया हुआ युद्ध श्रेष्ठ, प्रास द्वारा किया गया मध्यम, खड्ग द्वारा किया गया अधम और बाहुयुद्ध अधमाधम होता है।

**उपाधय में**—सात युद्धों को जाननेवाला आचार्य कहलाता है। चार युद्धों को जानेवाला भार्गव, दो को जाननेवाला योद्धा और एक युद्ध को जाननेवाला गणक होता है॥१०॥

**धनुर्वेदस्याधिकारिणः में**—आचार्य को जिसकी परीक्षा हो चुकी हो, ऐसे ब्राह्मण वृत्तिवाले शिष्य को धनुष का प्रशिक्षण देना चाहिये। लोभी, धूर्त, कृतघ्न और मन्दबुद्धि को धनुष की शिक्षा न दे॥७॥

ब्राह्मण वृत्तिवाले शिष्य को धनुष (तोप, भुशुण्डी आदि का प्रशिक्षण) क्षत्रिय को तलवार, वैश्य को भाला और शूद्र को गदा का प्रशिक्षण देना चाहिये॥८॥

**अग्निपुराण में**—शूद्र को शिकार आदि का अभ्यास होने से युद्ध का अधिकार (शस्त्रास्त्र प्रशिक्षण) स्वयमेव है। राजा पर आपत्ति पड़ने पर वर्णसङ्करों को भी युद्ध में सहायता करनी चाहिये।

**धनुर्वेद का प्रयोजन**—दुष्ट प्रकृतिवाले पुरुष—डाकू, चौरादि से सज्जन, धर्मात्मा व्यक्तियों की रक्षा करना और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करना ही धनुर्वेद का प्रयोजन है॥५॥

---

१. इन पूर्वोक्त सात युद्धों में से किन्हीं चार युद्धों के ज्ञाता को भार्गव उपाधि मिलती थी, ऐसा प्रतीत होता है।

२. यहाँ ब्राह्मणादि का ग्रहण बुद्धिबल के अनुसार किया गया है, जन्म से नहीं।

एकोऽपि यत्र नगरे प्रसिद्धः स्याद् धनुर्धरः। ततो यान्त्यरयो दूरान्मृगाः सिंहगृहादिव॥६॥

—वा० ध० पृ० ३

**धनुः प्रशस्तिः—**

धन्वना गा धन्वनाऽऽजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपक्रामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम॥

—ऋ० ६/७५/२ यजुः० २९/३९

नमो इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्य वो नमो। —यजुः० १६/२२

यावन्ति भुवि शस्त्राणि तेषां श्रेष्ठतरं धनुः।
धनुषां गोचरे तानि न तेषां गोचरो धनुः॥४६६॥

—यश० चम्पू० पृ० ३९३

---

जिस नगर या ग्राम में एक भी विख्यात धनुर्धर रहता हो उस स्थान से शत्रु, चौरादि उसी प्रकार दूर रहते हैं जैसे—सिंह से मृगादि पशु॥६॥

धनुष से हम गायें, धन इत्यादि को जीतें। धनुष से भयङ्कर संग्राम को जीतें। धनुष शत्रु के आक्रमण को रोक देता है। इससे हम सारी दिशाओं में विजय प्राप्त करें। —ऋ०

धनुषबाण धारण करनेवाले योद्धाओं का अन्नादि से सम्मान किया जाये। —यजुः०

संसार में जितने अस्त्र-शस्त्र हैं उनमें धनुष ही सबसे श्रेष्ठ है (सब शस्त्रास्त्रों का कार्य धनुष से पूरा किया जा सकता है), क्योंकि अन्य सब धनुष में निहित हैं, परन्तु अन्य शस्त्रास्त्रों से धनुष का कार्य नहीं लिया जा सकता। —यश०

## द्वितीय अध्याय

प्रथम अध्याय में धनुर्वेद के पाद, अङ्ग एवं शस्त्रास्त्र की गणना करने के पश्चात् अब वाशिष्ठ धनुर्वेद में कहे पूर्वोक्त सात युद्धों में प्रयुक्त शस्त्रास्त्रों के निर्माण एवं सञ्चालन की विधियों का वर्णन क्रमशः किया जायेगा। यद्यपि वाशिष्ठ धनुर्वेद में सात युद्धों का कथन करने के बाद भी केवल धनुष-बाण एवं कुछ व्यूह-रचना का ही संक्षेप में वर्णन किया गया है, परन्तु इसको आधार मानकर अन्य छह युद्ध—चक्र, कुन्त, खड्ग, छुरिका, गदा एवं नियुद्ध का यथासम्भव अन्य ग्रन्थों की सहायता से दिग्दर्शन कराया जायेगा।

यद्यपि धनु शब्द रुढ़ि न होकर यौगिक अर्थों तथा समस्त शस्त्रास्त्रों का प्रतिनिधित्व करता है, परन्तु वर्त्तमान समय में भी प्रचलित धनुष एवं बाण का बहुत उच्चकोटिका ज्ञान-विज्ञान है। प्रस्तुत अध्याय में धनुष के भेद-प्रभेद, मान, भार, शक्ति, निर्माणविधि, का उल्लेख करने के पश्चात्, विविध प्रकार के बाण, एवं उनकी सञ्चालन-पद्धति का वर्णन किया जायेगा।

**धनुर्भेदाः**

**प्रथमं योगिकं चापं युद्धचापं द्वितीयकम्। निजबाहूबलोन्मानात् किञ्चिदूनं शुभं धनुः॥ ३०॥**
**वरं प्राणाधिको धन्वी न तु प्राणाधिकं धनुः। धनुषा पीड्यमानस्तु धन्वी लक्ष्यं न पश्यति॥ ३१॥**
**अतो निजबलोन्मानं चापं स्याच्छुभकारकम्। देवानामुत्तमं चापं ततो न्यूनं च मानवम्॥ ३२॥**

*—वा० ध० स० पृ० ९*

**त्रैयम्बके धनुर्वेदे—**

**धनुर्विधिं प्रवक्ष्यामि शृणुवत्स यथा क्रमम्। यादृशं कारयेच्चापं तादृशं च वदाम्यहम्॥ १॥**
**प्रथमं योगिकं चापं क्रियाचापं द्वितीयकम्। शलाकायां तृतीयं च ज्याघातेन चतुर्थकम्॥ २॥**

*—औश० धनु०*

---

प्रथम योगिक चाप, बाहु सामर्थ्य बढ़ाने के लिये (जैसे वर्त्तमान में प्रचलित लेजियम तथा निशाना सीखने के लिये हलका धनुष) और फिर युद्ध में प्रयुक्त होनेवाले धनुष का अभ्यास करना चाहिये। अपनी भुजाओं के बल के अनुमान से कुछ हल्का धनुष ही अच्छा होता है॥ ३०॥

क्योंकि प्राणों से भी प्रिय धन्वी (धनुष चलानेवाला) होता है, नकि धनुष। भारी धनुष से पीड़ित धन्वी लक्ष्य को ठीक नहीं वेध सकता॥ ३१॥

अतः अपने बल के अनुसार ही धनुष शुभकारक होता है। देवों (धनुर्वेद में दक्ष) का धनुष उत्तम और मनुष्यों का कुछ न्यून गुणयुक्त होता है॥ ३२॥

**त्रैयम्बके धनुर्वेदे**—हे वत्स! जैसा धनुष बनाना चाहिये उसकी विधि यथाक्रम कहता हूँ। सुनो—

पहला—योगिक चाप (अभ्यासार्थ) होता है।
दूसरा—क्रिया चाप (निशाना साधने के लिये)।
तीसरा—शलाका चाप (लोहे की शलाका या नाराचादि बाणों के लिये) होता है।
चौथा—ज्याघात (धनुष की प्रत्यञ्चा काटने के लिये)।

पञ्चमं श्रमिकं चापं षष्ठं साङ्ग्रामिकं स्मृतम्। सप्तमं दूरपातेषु दृढभेदेषु चाष्टमम्॥ ३॥
विकर्षे नवमं प्रोक्तं फलार्थे दशमं स्मृतम्। धनुषं दश विख्यातं शुभमागमसम्मतम्[1]॥ ४॥

**आकाशभैरवतन्त्रे—**

चापस्तु द्विविधः प्रोक्तो दैवो मानुष इत्युमे। उत्तमो देवचापःस्यान्निकृष्टो मानुषः प्रिये॥ ८॥

*—पटल १३५*

## नीतिप्रकाशिकायां धनुर्भेदाः—

धनुर्भेदान् प्रवक्ष्यामि तत्तत् कार्यानुसारतः ॥ २०॥
शार्ङ्गिकं[2] त्रिणतं प्रोक्तं वैणवं सर्वनामितम्। वैतस्तिकं धनुश्शस्त्रं वैणवं तद्धि हस्तकम्॥ २१॥
उपलोत्क्षेपकं चापं वैणवं तद् द्विरज्जुकम्। त्रिहस्तोत्सेधसहितं द्व्यङ्गुलीविस्तृतं तु तत्॥ २२॥

*—नी० प्र० अ० ४*

ते च वैतस्तिका बाणा ये वै चासन्नयोधिनः। तद् धनुः शस्त्रमित्याहुर्धार्यं तद् बुद्धिमत्तरैः॥

*—इति नीतिसारे २०/२१*

उपलोत्क्षेपकं पाषाणगुलिका प्रेरकं द्विरज्जुकं मध्यसम्बद्धगुणद्वयवत्।
द्व्यङ्गुली विस्तृतमङ्गुलीद्वयविस्तृतकाण्डफलकवत्। *—नी० प्र० सीतारामकृततत्वविवृतिः*

---

पाँचवाँ—श्रमिक (निरन्तर अभ्यासार्थ)।
छठा—सांग्रामिक (संग्राम के काम में आनेवाला)।
सातवाँ—लक्ष्य को दूर फैंक देनेवाला।
आठवाँ—दृढ़ लक्ष्यों का भेदन करनेवाला।
नवाँ—विकर्ष (जिसे अधिक खेंचा जा सके)।

और दसवाँ—फल (क्रिया-सिद्धि के लिये अथवा बाणों के फलों को दूर फैंकने के लिये) ये दश प्रकार के धनुष शास्त्र-सम्मत शुभ माने गये हैं॥ २-३-४॥

**आकाशभैरव तन्त्र में**—हे प्रिये! (पार्वती) दो प्रकार का धनुष कहा गया है दैव और मानुष। इनमें दैव चाप उत्तम है और मानुष चाप निकृष्ट॥ ८॥

**नीतिप्रकाशिका में धनुर्भेद**—कार्य के अनुसार धनुष के भेदों को कहूँगा॥ २०॥

जिसका निर्माण सींगों (शरभ आदि के) से होता हो एवं जिसमें तीन मोड़ हों, उसे शार्ङ्ग धनुष कहते हैं। बाँस से निर्मित, एक ताल (चार हाथ) लम्बा इन्द्रधनुष के समान झुकाववाला वैणव धनुष कहलाता है।

वैतस्तिक (बारह अङ्गुल लम्बे) बाणों को छोड़नेवाला धनुष शस्त्र कहा जाता है। यह भी बाँस का एवं एक हाथ लम्बा होता है। निकट युद्ध में बुद्धिमान् योद्धा ही इसका प्रयोग करते हैं।

पत्थर या गोली फेंकनेवाले धनुष को चाप कहते हैं। यह भी बाँस का बना हुआ होता

---

१. यहाँ केवल धनुष के भेद ही गिनाये हैं। इनके निर्माण की पद्धति में क्या विशेषता है यह नहीं बतलाया गया।

२. **व्याख्या**—शृङ्गैर्निर्मितं शार्ङ्गिकम्। तत् त्रिणतम्। वैणवं वेणुरचितम्। तत्तु सर्वमिन्द्रधनुराकारेण नामितं कर्त्तव्यम्। वैतस्तिकानां द्वादशाङ्गुलप्रमाणबाणानां क्षेपकं यद् धनुः तत् शस्त्रमित्युच्यते। तत्तु वैणवं हस्तकं हस्तप्रमाणोन्नतियुक्तम्।

गुप्तकालीन धनुर्धारिणी स्त्री की रेखानुकृति; अहिच्छत्रा से प्राप्त
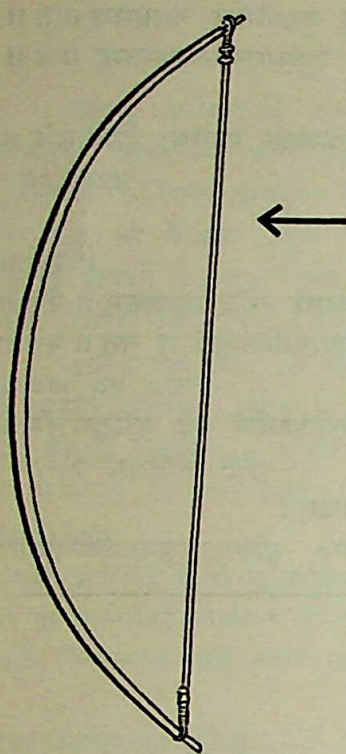
वैणव धनुष

शाङ्र्ग धनुष
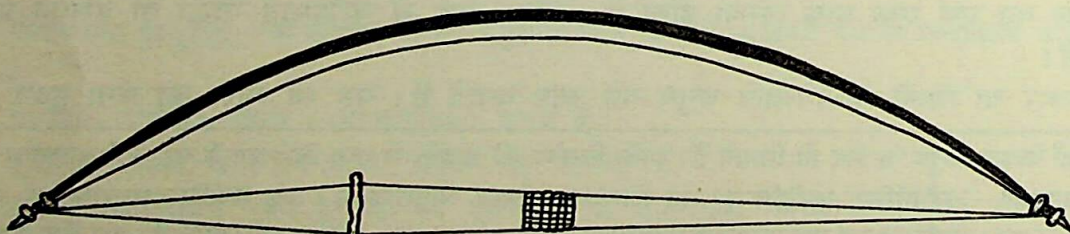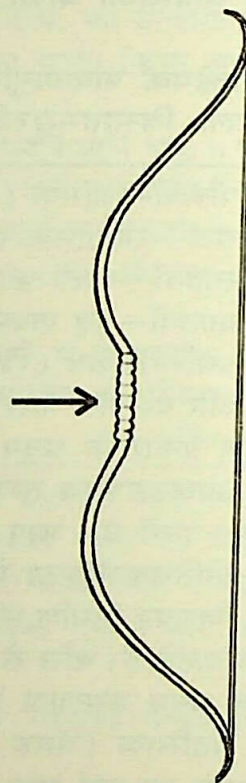
चाप

**धनुर्मानम्—**

**अर्धपञ्चमहस्तं तु श्रेष्ठं चापं प्रकीर्तितम्। तद् विज्ञेयं धनुर्दिव्यं शंकरेण धृतं पुरा॥ ३३॥**
**चतुर्विंशाङ्गुलो हस्तश्चतुर्हस्तं धनुः स्मृतम्। तद् भवेन्मानवं चापं सर्वलक्षणसंयुतम्॥ ३४॥**
**त्रिपर्वं पञ्चपर्वं वा सप्तपर्वं तथा पुनः। नवपर्वं च कोदण्डं सर्वदा शुभकारकम्॥ ३५॥**
**चतुष्पर्वं च षट्पर्वमष्टपर्वं विवर्जयेत्॥ ३६॥**
**केषाञ्चिच्च भवेच्चापं वितस्तिनवसंमितम्॥ ३७॥** —वा० ध०

**विष्णुधर्मोत्तरे—**

**दारुचाप प्रमाणं तु श्रेष्ठं हस्तचतुष्टयम्। तदर्धं समहीने तु प्रोक्ते मध्यकनीयसी॥**
**मुष्टि ग्राह्याणि कृतानि मध्ये सर्वाणि कारयेत्॥** —२/१६-३-४

**शार्ङ्गं पुनर्धनुर्दिव्यं विष्णोः परममायुधम्। वितस्तिसप्तमं मानं निर्मितं विश्वकर्मणा॥ ४४॥**
**पौरुषेयं तु यच्छार्ङ्गं बहुवत्सरशोभितम्। वितस्तिभिः सार्द्धषड्भिर्निर्मितं चार्थसाधनम्॥ ४६॥**
**प्रायो योज्यं धनुः शार्ङ्गं गजारोहाश्वसादिनाम्। रथिनां च पदातीनां वांशं चापं प्रकीर्तितम्॥ ४७॥**
—वा० ध०

---

है। इसकी लम्बाई तीन हाथ होती है। चौड़ाई दो अङ्गुल होती है। इसमें एक के स्थान पर दो डोरी बँधी रहती हैं।

**धनुष का मान**—साढ़े पाँच हाथ लम्बा धनुष श्रेष्ठ होता है। इस दिव्य धनुष को पहले श्री महादेवजी ने धारण किया था॥ ३३॥

चौबीस अङ्गुल का एक हाथ होता है और चार हाथ का एक धनुष होता है। एक धनुष (चार हाथ) का मानव चाप सभी गुणों से युक्त होता है॥ ३४॥

तीन पर्व (पोरियाँ), पाँच पर्व, सात पर्व और नौ पर्व का कोदण्ड धनुष सदा शुभकारक होता है॥ ३५॥

चार, छह और आठ पोरियोंवाला धनुष त्याज्य है॥ ३६॥

क्योंकि इनसे युक्त धनुष के मध्य में पर्व आ जाने से टूटने का डर एवं तीर चलाने में असुविधा होती है।

कुछ के मत में ९ वितस्ति (बालिस्त=साढ़े चार हाथ) का धनुष समुचित होता है॥ ३७॥

**विष्णुधर्मोत्तर में**—काष्ठ के बने धनुष का प्रमाण साढ़े चार हाथ का उत्तम होता है। चार हाथ का मध्यम और साढ़े तीन हाथ का अधम होता है। धनुष को पकड़ने का स्थान (मुष्टि पर) गोल और चिकना बनवाना चाहिये।

विष्णु के परम आयुध दिव्य धनुष शार्ङ्ग को महर्षि विश्वकर्मा ने सात वितस्ति (साढ़े तीन हाथ) का बनाया॥ ४४॥

पौरुषेय शार्ङ्ग धनुष साढ़े छह वितस्ति का बहुत दिनों तक स्थायी रहनेवाला और सभी कार्यों की पूर्ति करनेवाला है॥ ४६॥

शार्ङ्ग धनुष हाथी और घुड़सवारों को प्रयुक्त करना चाहिये और रथ एवं पदाति सैनिकों को बाँस से निर्मित धनुष प्रयुक्त करना उपयुक्त है॥ ४७॥

**त्रैयम्बके—**

**तेषां मध्ये शृणु वत्स मानं यस्य च यादृशम्। अर्धपञ्चमहस्तं तु श्रेष्ठं निर्दिश्यते धनुः॥ ५॥**
**तद् भवेद् दैविकं चापं शङ्करेण तु धारितम्। ततः परशुरामेण ततो रामेण धारितम्॥ ६॥**
**भरतेन च द्रोणेन द्रोणाचार्यार्जुनेन च। अर्जुनात् सात्यकिश्चैव देवचापं निवर्तते॥ ७॥**

*—औश० धनु०*

**वैजयन्तीकोशे—**

**कार्मुकं तु चतुर्हस्तं कोदण्डं त्र्यङ्गुलं विना। कार्मुकात्तु क्रमात् पञ्च विद्धायुधशरायुधे॥ १७३॥**
**गोत्तमं रथायुधकं कोसलं गाण्डिवोऽस्त्रियाम्। पातनं मार्गणं चेति द्विगुणानि यथोत्तरम्॥ १७४॥**
**उच्चलं ब्रह्मदण्डश्च वैशिखं बिम्बसारकम्। द्विगुणानि क्रमादाद्यं त्वष्टोत्तरशताङ्गुलम्॥ १७५॥**

*—वैज० क्षत्रियाध्याय, पृष्ठ ८७*

**त्रैयम्बके—**

**चतुर्विंशाङ्गुलो हस्तश्चतुर्हस्तं धनुः स्मृतम्। तद् भवेन्मानवं चापं सर्वलक्षणसंयुतम्॥ ८॥**
**त्रिपर्व पञ्चपर्व वा सप्तपर्व च वा भवेत्। नवपर्व च कोदण्डं भवतीति चतुर्विधम्॥ ९॥**
**त्रिपर्व कुरुते श्रेयः पञ्चपर्वाथ आगमम्। सप्तलक्षणसम्पूर्णं सप्तपर्व जयावहम्॥ १०॥**
**नवपर्व च कोदण्डं नीतिश्रेयो न मध्यमम्। चतुष्पर्व च षट्पर्व अष्टपर्व विवर्जयेत्॥ ११॥**

---

**त्रैयम्बक में**—शिवजी महाराज कुमार कार्तिकेय से कहते हैं कि हे वत्स! सुनो, धनुषों में से जिसका जितना प्रमाण होना चाहिये उसे कहता हूँ—साढ़े पाँच हाथ का धनुष उत्तम माना गया है॥ ५॥

वह देवताओं का धनुष है। जो सबसे पहले शङ्कर ने धारण किया, उनसे परशुराम ने, फिर श्री रामचन्द्रजी ने धारण किया॥ ६॥

फिर भरत ने फिर द्रोण ने, द्रोणाचार्य से अर्जुन ने, अर्जुन से सात्यकि ने। तब देव धनुष निवृत्त हुआ, अर्थात् उसके पीछे किसी ने धारण नहीं किया॥ ७॥

**वैजयन्ती कोश में**—चार हाथ का कार्मुक धनुष और कोदण्ड, इससे ३ अङ्गुल कम अर्थात् ९३ अङ्गुल का होता है। कार्मुक के मान से दो-दो अङ्गुल अधिक विद्धायुध, शरायुध, रथ में प्रयुक्त, गोतम गाण्डिव, मार्गण, ब्रह्मदण्ड और ताल की लकड़ी से बना हुआ वैशिख होता है। वैशिख का मान १०८ अङ्गुल होता है॥ १७३-१७४-१७५॥

**त्रैयम्बक में**—चौबीस अङ्गुल का हाथ होता है। चार हाथ का धनुष माना जाता है। वह मानव-(मनुष्यों के लिये)-धनुष सारे लक्षणों से युक्त होता है॥ ८॥

तीन पर्वयुक्त धनुष कीर्तिवर्धक (यशकारक) होता है। पाँच पर्ववाला क्रिया-सिद्धि-कारक है। सात उत्तम लक्षणों से युक्त, सात पर्व का धनुष जय दिलानेवाला होता है॥ ९॥

तीन, पाँच, सात और नौ पर्व का चार भेदोंवाला कोदण्ड होता है॥ १०॥

नौ पर्ववाला कोदण्ड धनुष न अधिक श्रेष्ठ और न ही मध्य श्रेणी का होता है। चार, छह और आठ पर्व का धनुष वर्जित है॥ ११॥

**अस्त्रं चैव प्रमाणेन ज्ञेयं नव वितस्तिभिः। द्वादशाङ्गुलमानेन वितस्तिः परिकीर्तिता॥ १२॥**
**उभे जिह्वासने कुर्यादङ्गुलत्रयमुन्नते। ईदृशं कारयेच्चापं चापानां चैव नायकम्॥ १३॥**
**व्याख्यातं विविधं चापमस्त्रकोदण्डमेव च ॥ १४॥**

*—औश० धनु० संकलनम्*

**आकाशभैरवतन्त्रे—**

**सार्द्धैस्तु पञ्चभिर्हस्तैरायतो नवपर्वयुक्। सप्तपर्वाऽथ वा सुज्यश्चापो दैव इतीरितः॥ ९॥**
**चतुर्हस्तायतो देवि त्रिपर्वा पञ्चपर्ववान्। सप्तपर्वान्वितो वापि सद्गुणो मानुषः स्मृतः॥ १०॥**
**कोदण्डमिति देवेशि! कथयन्ति करस्थितम्। शार्ङ्गं पुनर्धनुर्दिव्यं विष्णोः परमायुधम्॥ २१॥**
**वितस्तिभिः सप्तभिर्यदा तञ्च नतन्त्रिधा। सर्वलक्षणसंयुक्तं निर्मितं विश्वकर्मणा॥ २२॥**

*—आ० भै० त० साम्राज्यलक्ष्मीपीठिका, पटलं १३५*

**धनुर्भारः—**

**त्रैयम्बके—**

**शृणु पुत्रक! संगृह्य त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। सर्वेषां चैव चापानां प्रमाणं कथयाम्यहम्॥ १६॥**
**चतुः सर्षपो यवः प्रोक्तः कलिका च चतुर्यवा। माषकश्चतुरष्ठौ च तालो द्वादशमाषकः॥ १७॥**
**पञ्च तालाः पलं चैव तत् पलैश्च पलं शतम्। तेन शास्त्रेण चापानां प्रमाणं चैव लभ्यते॥ १८॥**

---

माप के अनुसार नौ बालिस्त का धनुष जानना चाहिये, बारह अङ्गुल की एक वितस्ति होती है॥ १२॥

धनुष की कोटि (प्रत्यञ्चा अटकाने का स्थान) दोनों ओर तीन अङ्गुल ऊँची बनानी चाहिये। इस प्रकार का धनुष सब धनुषों में श्रेष्ठ होता है। चाप, अस्त्र, कोदण्डादि विविध नाम धनुष के ही हैं॥ १३-१४॥

**आकाशभैरवतन्त्र में**—साढ़े पाँच हाथ और नौ पर्व (पोरियों, गाठों) से युक्त एवं सुदृढ़ प्रत्यञ्चावाला अथवा सात पर्व का दैव धनुष कहा गया है॥ ९॥

हे देवि! (पार्वती) चार हाथ परिमाण तीन पर्व या पाँच पर्व अथवा सात पर्ववाला भी शुभ गुणों से युक्त मानुष धनुष कहलाता है॥ १०॥

कर में स्थित धनुष को हे देवेशि! कोदण्ड कहते हैं। शार्ङ्ग धनुष विष्णु का प्रिय आयुध है, जोकि सात वितस्ति लम्बा और तीन स्थानों से झुका हुआ होता है, जो सभी लक्षणों से युक्त है और जिसे विश्वकर्मा ने बनाया है॥ २१-२२॥

**त्रैयम्बक में धनुर्भार**—महादेवजी बोले—हे पुत्र! सुनो, जो बात तीनों लोकों में दुर्लभ है। उसे संक्षेप में कहता हूँ। सारे ही धनुषों का परिमाण (शक्ति या सामर्थ्य) बताता हूँ॥ १६॥

चार सरसों के दानों के बराबर एक यव (जौ) का मान (भार) होता है। चार यव की एक कलिका, १२ कलिका का एक माषक और १२ माषक (मासा) का एक ताल (तोला) होता है॥ १७॥

पाँच ताल का एक पल होता है। इन १०० पल का शास्त्रानुसार धनुष का भार होता है॥ १८॥

**ततो न सिध्यते चापं गुणे भारं[१] प्रदापयेत्। तावद् भारः प्रदातव्यो यावत् भारसहं भवेत्॥ १९॥**
**द्विशतं योगिकं चापं त्रिशतं च क्रिया धनुः। चतुः शतं शलाकायां धनुश्चैव तदा स्मृतम्॥ २०॥**
**वामं सप्तशतं चापं दक्षिणं द्विशताधिकम्। उभे सव्यापसव्ये च ताभ्यां कारयेच्छुभम्॥ २१॥**
**संग्रामेषु धनुर्वत्स कृत्वा सप्त शतैरपि। दृढस्फोटे सहस्रेण विकर्षे द्वादशैः शतैः॥ २२॥**
**द्वि सहस्रं च वै पुत्र फलार्थे कारयेद् धनुः। ईदृशं च प्रमाणं च धनुषां कीर्तितं मया॥ २३॥**

*—औश० ध० सं०*

**मानसोल्लासे—**

**सहस्रं सार्द्धसाहस्रं द्विसहस्रमिति क्रमात्। [२]बालानां संख्यया युक्तं मृदुमध्यं तथोत्तमम्॥ ९०॥**
**उत्तमेन दृढं हन्याद् दूरं मध्येन दर्शयेत्। मृदुना च तथा लक्ष्यं लाघवं चित्रमेव च॥ ९१॥**

*—पृ० १६२ भाग २*

**धनुर्द्रव्याणि—**

**विश्वामित्र शृणुष्वथ धनुर्द्रव्यं त्रयं क्रमात्। लोहं शृङ्गं च काष्ठं च गदितं शम्भुना पुरा॥ ४८॥**
**लोहानि स्वर्णरजतताम्रकृष्णायसानि। शृङ्गाणि महिषशरभ[३]रोहितानाम्।**
**दारुणि चन्दनवेतसधान्वनशालशाल्मलिसाककककुभवंशाञ्जनानाम्॥ ४९॥** *—वा०ध०, पृ० १३*

---

भार के बिना धनुष खींचने योग्य नहीं होता, इसलिए शक्ति के अनुसार भार धनुष में अवश्य रखना चाहिये। जितना सामर्थ्य हो उतना ही भार रखना उचित है॥ १९॥

योगिक चाप का भार २०० पल, क्रिया धनुष का ३०० पल, शलाका का ४०० पल, वाम (बाँये हाथ से चलाया जानेवाला) धनुष ७०० पल का और दक्षिण (दाँयें हाथ से चालाया जानेवाला ९०० पल का धनुष बनाना चाहिये। इस प्रकार बनाये हुए धनुष शुभ होते हैं॥ २०, २१॥

हे वत्स! संग्राम में प्रयोग किया जानेवाला धनुष ७०० पल का बनाना चाहिये। दृढ़ लक्ष्य के भेदनार्थ १००० पल का, विकर्ष में १२०० पल और हे पुत्र! फलार्थ २००० पल का धनुष बनाना चाहिये। यह धनुषों का प्रमाण मैंने कहा है॥ २२, २३॥

**मानसोल्लास में**—एक सहस्र, पन्द्रह सौ और दो सहस्र पलों के धनुष क्रम से मृदु, मध्य और उत्तम होते हैं॥ ९०॥

उत्तम धनुष से दृढ़ लक्ष्य, मध्य से दूर स्थित लक्ष्य और मृदु धनुष से लघु एवं चित्र लक्ष्य का वेधन करे॥ ९१॥

**धनुष के द्रव्य**—हे विश्वामित्र! क्रम से धनुष के तीन द्रव्य (जिनसे धनुष बनाया जाता है) सुनो, लोह, शृङ्ग और काष्ठ ये तीन द्रव्य श्रीमहादेवजी ने कहे हैं॥ ४८॥

स्वर्ण, चाँदी, तांबा और काला लोहा (फौलाद) इन सबका ग्रहण लोहे से होता है, अर्थात् इन्हें भी लोह नाम से पुकारा जाता है। शृङ्ग—भैंस और रोहित पशुओं के होते हैं। काष्ठ से

---

१. भार शब्द से यह अभिप्राय है कि यदि २० पौण्ड भार धनुष की डोरी से लटका दिया जाये और धनुष की डोरी निश्चित दूरी (तीन फुट) तक झुक जाये तो उस धनुष की शक्ति २० पौण्ड मानी जायेगी। ऐसा सर्वत्र जानना चाहिये। २. यहाँ बालानां के स्थान पर पलानां पाठ प्रतीत होता है।

३. रौहिषगर्दभाभासो रोहितः श्वेतराजिमान्। —वैजयन्ती पृ० ४८

**विष्णुधर्मोत्तरे—**

धनुर्द्रव्यं त्रयं लोहं शृङ्गं दारु च भार्गवः ॥ १ ॥

वंशत्वग्वंशचापं तु कर्त्तव्यं भृगुनन्दन। अन्येषु राम चापेषु शेषद्रव्यमिदं भवेत् ॥ २ ॥
शार्ङ्गं स्नायुचित्तं कार्यं रुक्मबिन्दुविभूषितम्। लोहानि राम चत्वारि शस्यन्ते चापकर्मणि ॥
सुवर्णं रजतं ताम्रं तथा कृष्णायसं द्विज ॥ १० ॥
काञ्चनं चापरत्नं तु सरत्नमपि कारयेत्। माहिषं शारभं शार्ङ्गः रौहिजं चापि कारयेत् ॥ ११ ॥

*—पृ० १७९ ख० २, अ० १५*

**वैद्यकतन्त्रे—**

काश्मीरदेशे शरभोऽष्टपात्[1] स्यात्। उत्साहयुक्तश्चतुरूर्ध्वपादः ॥
उष्ट्रप्रमाणः स महाविषाणः। ख्यातो वनस्थश्च महामृगाख्यः ॥ *(वीर मित्रोदये)*
वार्क्षं चन्दनजं श्रेष्ठं वैतसं धान्वनं तथा। शालशाल्मलिशाखानां ककुभस्याञ्जनस्य च ॥ १२ ॥
वंशस्य च महाभाग सर्वश्रेष्ठतमं विदुः। शरद्गृहीतैः काष्ठैस्तु चापं कार्यं प्रयत्नतः ॥ १३ ॥

*—वि० धर्मो०*

**राजविजये—**

शार्ङ्गं वांशं दार्वीयं [2]तृणराजोद्भवं धनुः। *—वीरमित्रोदये*

---

चन्दन, बेंत, धान्वन, शाल, शाल्मलि, सागवान, ककुभ, बाँस और आबनूस का ग्रहण होता है ॥ ४९ ॥

**विष्णुधर्मोत्तर में**—हे भृगुनन्दन! लोह, शृङ्ग और काष्ठ ये तीन द्रव्य धनुष के लिये उपयुक्त हैं। बाँस के धनुष में बाँस की ही प्रत्यञ्चा लगानी चाहिये और शेष धनुषों का निर्माण इस प्रकार करें।

शार्ङ्ग धनुष स्नायु (ताँत) से युक्त और सोने के बेल-बूटों से चित्रित बनाना चाहिये। हे परशुरामजी! धनुष बनाने में चार लोह-द्रव्य उपयुक्त है। सोना, चाँदी, तांबा और काला लोह। सोने से निर्मित धनुषों को हीरे-मोतियों से भी विभूषित करें। इसी प्रकार भैंस, शरभ और रोहित पशुओं के सींग से शार्ङ्ग धनुष का निर्माण और उसे स्वर्ण-रत्नादि से युक्त बनाये ॥ १०-११ ॥

**वैद्यक तन्त्र में**—कश्मीर देश में शरभ पशु आठ पैरों से युक्त होता है। यह उन्मत्त होकर घूमता है। इसके ४ पैर ऊपर की ओर उठे हुए होते हैं। यह ऊँट जितना लम्बा और विशाल सींगवाला महामृग नाम से प्रसिद्ध है।

काष्ठ धनुषों में चन्दन सर्व श्रेष्ठ है। इसी प्रकार से बेत, धान्वन, शाल, शाल्मलि, ककुभ और आबनूस की शाखाओं का धनुष उत्तम होता है। बाँस का धनुष सबसे उत्तम होता है। शरद् ऋतु में लिये हुए काष्ठों से धनुष बनाना चाहिये ॥ १३ ॥

**राजविजय में**—शृंग, बाँस, दारु और बेत (तालादि) का धनुष होता है।

---

१. शरभोऽष्टपादः सिंहघाती। —भारतभावदीप टीका कर्णपर्व ३२६। १

२. तृणराजोद्भवम्=वैतसंमिति—वीरमित्रोदये। तृणं राजे तलस्तालः। —वैजयन्तिकोष, पृष्ठ ४५

**मानसोल्लासे—**

**पक्ववंशकृतं भव्यं गोलादरदरञ्जितम् ॥ ८६ ॥**

**लाक्षाविलिप्तं कान्तञ्च स्नायुभिः परिवेष्टितम्। स्वर्णपट्टनिबद्धञ्च नानारत्नविचित्रितम् ॥ ८७ ॥**

*—भाग २, अ० १ वि० ४*

**विष्णुधर्मोत्तरे—**

**वंशानामपि तत् श्रेष्ठं यत्र गङ्गामहानदी। सालानामपि तत् श्रेष्ठं गोमती यत्र भार्गव ॥ १४ ॥**

**वितस्ताकूलजं श्रेष्ठं वेतसानां तथैव च। एवं द्रव्यमयं कार्यं चापं लक्षणसंयुतम् ॥ १५ ॥**

*—वि० ध० खण्ड २, अ० १७*

**अग्निपुराणे—**

**धनुर्द्रव्यं त्रयं लोहं शृङ्गं दारु द्विजोत्तमम् ॥ ४ ॥**

**दारु चाप प्रमाणं च श्रेष्ठं हस्तचतुष्टयम् ॥ ५ ॥**

**तदेव समहीनं तु प्रोक्तं मध्यकनीयसी। मुष्टिग्राहनिमित्तानि मध्ये द्रव्याणि कारयेत् ॥ ६ ॥**

**स्वल्पलोहत्वचाशृङ्गं शार्ङ्गं लोहमये द्विज। कामिनी भ्रूलताकारा कोटिः कार्या सुसंयता ॥ ७ ॥**

**पृथग्वा विप्रमिश्रं वा लोहं शार्ङ्गं तं कारयेत्। शार्ङ्गं समुचितं कार्यं रुक्मविन्दुविभूषितम् ॥ ९ ॥**

**नीतिप्रकाशिकायाम्—**

**पृथुग्रीवं सूक्ष्मशिरस्तनुमध्यं सुपृष्ठवत्। चतुष्किष्कु प्रांशुदेहं भीषणं दीर्घजिह्वकम् ॥ ८ ॥**

**दंष्ट्राकरालवदनं रक्ताभं घरघरा स्वनम्। अन्त्रमाला परिक्षिप्तं लेलिहानं च सृक्विणी ॥ ९ ॥**

*—अ० २*

---

**मानसोल्लास में**—पके हुए बाँस से बना हुआ, सौराष्ट्र देश की पीली मिट्टी और दरद से रंगा हुआ, लाख से पुता हुआ, चमकदार तन्तुओं (ताँत) से युक्त, सोने के पत्र एवं अनेक रत्नों से चित्रित धनुष (राजा का) होना चाहिये ॥ ८६–८७ ॥

**विष्णुधर्मोत्तर में**—बाँसों में वे बाँस श्रेष्ठ हैं जहाँ गङ्गा नदी बहती है, अर्थात् (सुन्दरवन, ज्वालापुर आदि) शालवृक्ष गोमती नदी के प्रदेश का श्रेष्ठ है। बेंत का ग्रहण वितस्ता नदी के क्षेत्र से करना चाहिये। इस प्रकार उक्त लक्षणों का धनुष बनाना चाहिये ॥ १४–१५ ॥

**अग्निपुराण में**—लोह, शृंग और दारु ये तीन धनुष-द्रव्य हैं। काष्ठ का धनुष चार हाथ का उत्तम और साढ़े तीन का मध्यम एवं तीन का निकृष्ट होता है। धनुष के मध्य में पकड़ने के लिये एवं आघात से सुरक्षार्थ शार्ङ्ग धनुष में लोहे की पत्ती तथा बाँस की त्वचा एवं लोहे के धनुष में शृंग को मध्य स्थान में लगायें। कामिनी की भ्रुवों के समान सुन्दर कोटि (धनुष के सिरे) बनाने चाहियें। हे विप्र! लोह एवं शार्ङ्ग धनुष परस्पर से दूसरे द्रव्य से संयुक्त या पृथक्-पृथक् बनवायें। शार्ङ्ग धनुष सुवर्ण से चित्रित हो ॥ ६–७–८–९ ॥

**नीतिप्रकाशिका में**—धनुष की मोटी ग्रीवा, सूक्ष्म शिर, मध्य भाग (पृष्ठ भाग) उत्तम, चार हाथ परिमाण, झुका हुआ शरीर, भयङ्कर आकृति, दीर्घ ज्या, भयङ्कर दंष्ट्रा (कोटि), लाल रङ्ग, घर-घर शब्दवाला, ताँत से लिपटा हुआ और होठों को चाटता हुआ (आकर्षण के समय कोटिप्रान्त की उपमा) होता है ॥ ८–९ ॥

**मानसोल्लासे—**

सुप्रमाणं दृढं रम्यमुच्छालगुणसंयुतम्॥ ८८॥ —पृष्ठ ८८

**कौटिल्य-अर्थशास्त्रे—**

तालचापदारवशाङ्र्गाणि कार्मुककोदण्डद्रूणा धनूंषि। —२/१८

**जामदग्न्यधनुर्वेदे—**

लस्तकादटनीं यावदनुपूर्वात् कृशकृतः। श्लक्ष्णो दृढो परावृत्तो धनुर्दण्डः प्रशस्यते॥

—*राजराजेश्वरपरशुराम, पृष्ठ ११६*

**वर्जितधनुः—**

**अतिजीर्णमपक्वञ्च ज्ञातिघृष्टं तथैव च। दग्धं छिद्रं न कर्त्तव्यं बाह्याभ्यन्तरहस्तकम्॥ ३८॥**
**गुणहीनं गुणाक्रान्तं काण्डदोषसमन्वितम्। गलग्रथिं न कर्त्तव्यं तलमध्ये तथैव च॥ ३९॥**
**अपक्वं भंगमायाति ह्यतिजीर्णं तु कर्कशम्। ज्ञातिघृष्टं तु सोद्वेगं कलहो बान्धवैः सह॥ ४०॥**
**दग्धेन दह्यते वेश्म छिद्रं युद्धविनाशनम्। बाह्यो लक्ष्यं न लभ्येत तथैवाभ्यन्तरोऽपि च॥ ४१॥**
**हीने तु सन्धिते बाणे संग्रामे भग्नकारकम्। आक्रान्ते तु पुनःक्वापि लक्ष्यं न प्राप्यते दृढम्॥ ४२॥**

---

**मानसोल्लास में**—समुचित प्रमाण-(लम्बाई)-वाला, देखने में सुन्दर और लचकदार धनुष होना चाहिये॥ ८८॥

**कौटिल्य-अर्थशास्त्र में**—ताल (वृक्ष विशेष), चाप (बाँस की एक जाति), दारु (लकड़ी) और इनसे निर्मित धनुष कार्मुक, कोदण्ड और द्रूणा कहलाते हैं।

**जामदग्न्यधनुर्वेद में**—धनुर्दण्ड लस्तक (मध्य में पकड़ने का भाग) से अटनी (धनुर्दण्ड का अन्तिम सिरा) तक क्रमशः पतला होता जाता है। यह चिकना, दृढ़ और गोल प्रशस्त माना जाता है।

**वर्जित धनुष**—बहुत पुराना, कच्चे बाँस का, जाति के बाँस से रहित तथा अन्य लोगों ने जिसे घिसा दिया हो, जला हुआ, कीड़े से खाया हुआ, जिसके खींचने से हाथ बाहर चला जाये या भीतर रह जाये, प्रत्यञ्चा से रहित (दुर्बल डोरीवाला) और अधिक मोटी प्रत्यञ्चावाला, निकृष्ट स्थान पर उत्पन्न बाँस का तथा जिसके गले एवं तल भाग में गाँठ हो ऐसा धनुष त्याज है।

क्योंकि कच्चे काठ का बना हुआ धनुष शीघ्र ही टूट जाता और जीर्ण काष्ठ के धनुष में लचक नहीं होती। दूसरे लोगों द्वारा प्रयुक्त मन में उद्वेग-(व्याकुलता)-कारक है। दूसरों द्वारा प्रयोग करने पर यदि ठीक कार्य नहीं करे तो उलाहना देने (तूने इसका प्रयोग क्यों किया इत्यादि) पर परस्पर कलह उत्पन्न होता है॥ ४०॥

जला हुआ धनुष धारण करने से घर जल जाता है (यश-कीर्ति समाप्त हो जाती है), छिद्र-युक्त (कीड़ों, घुनादि से खाये हुए) से युद्ध में पराजय होती है, क्योंकि वह मध्य में ही टूट सकता है अथवा टूट न जाये इस भय से पूरा खेंचकर निशाना नहीं लगता। सीधा धनुष न रहने पर हाथ (मुष्टि) बाहर या भीतर रह जाता है, अतः लक्ष्य ठीक दिखलाई नहीं पड़ता॥ ४१॥

दुर्बल प्रत्यञ्चा के धनुष का प्रयोग करने पर डोरी टूट जाती है। मोटी प्रत्यञ्चावाले धनुष से क्षेपण कार्य कम होता है और दृढ़ लक्ष्य का भेदन नहीं होता॥ ४२॥

**गलग्रन्थिस्तलग्रन्थि र्धनहानिकरं धनु:। एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तं सर्वकार्यकरं स्मृतम्॥ ४३॥**

*—वा० ध० स०*

## प्रत्यञ्चा

धनुष के दोनों सिरों पर बाँधी जानेवाली डोरी को प्रत्यञ्चा, गुणा, मौर्वी, जीवा और द्रूणा नामों से पुकारते हैं। इसी पर तीर के पिछले सिरे का सन्धान करके हाथ से खेंचकर लक्ष्यवेध किया जाता है। इसके निर्माण में निम्न विशेषतायें होनी चाहियें—

१—प्रत्यञ्चा सुदीर्घ होनी चाहिये, जोकि खेंचते समय कान तक आ जाये।

२—जिसमें टङ्कार करने का सामर्थ्य हो वही तीर को दूर तक फेंक सकती है।

३—इसका निर्माण ऐसे द्रव्यों से किया जाये कि चाहे जितना खेंचने पर भी युद्ध के मध्य में टूटे नहीं।[१] यहाँ विविध शास्त्रों के अनुसार इसके निर्माण में प्रयुक्त द्रव्य, निर्माण-विधि एवं अन्य गुणों का वर्णन किया जाता है।

**त्र्यैम्बकधनुर्वेदे—**

**गुणानां लक्षणं चैव यादृशं कारयेच्छृणु। सुवृत्तश्च त्रितन्तुश्च ब्रह्मविष्णुर्महेश्वरा:॥ २४॥**
**गुणस्य तन्तवो ज्ञेया द्रव्यं शृणु च षण्मुख। प्रथमा हरिणी स्वायुस्तदभावे तु माहिषी॥ २५॥**
**कर्तव्या महिषाभावे गोस्नायुं साधयेत् बुध:। एत एव गुणा ग्राह्या उत्तमाधममध्यमा:॥ २६॥**
**प्राप्ते भाद्रपदे मासे अथ स्नायु: प्रवर्तते। तस्मात् ततो गुण: कार्य: पवित्र: स्थावरो दृढ:॥ २७॥**

*—औशनस, धनुर्वेदसङ्कलनम्*

**वाशिष्ठधनुर्वेदसंहितायाम्—**

**गुणानां लक्षणं वक्ष्ये यादृशं कारयेद् गुणम्। पट्टसूत्रो गुण: कार्य: कनिष्ठामानसंमित:॥ ५०॥**

---

गले में गाँठ और तल (धनुष के निचले भाग) में गाँठ रहने से धन क्षय होता है, अत: इन दोषों से रहित धनुष सब कार्यों का साधक कहा गया है॥ ४३॥

**अर्थ**—धनुष की गुणा (डोरी) जैसी बनानी चाहिये उसका लक्षण सुनो। धनुष की ज्या तीन सूत्रों की बँटी हुई होनी चाहिये। ये तीन तन्तु ब्रह्मा, विष्णु, महेश (कार्यसाधक) के सदृश होते हैं। अब हे कार्तिकेय! जिन द्रव्यों से ज्या बनाई जाती है उनको सुनो। इसके निर्माण में पहले हरिणी का स्नायु, उसके अभाव में भैंस का, यदि वह भी न हो तो बुद्धिमान् पुरुष गाय के स्नायु (ताँत) से धनुष की डोरी बनावे। इनमें हरिणी का स्नायु श्रेष्ठ, भैंस का मध्यम और गौ का अधम होता है॥ २४-२५-२६॥

वृक्षों की छाल (अर्कादि) की भाद्रपद मास में ज्या हेतु लेनी चाहिये। उसको बट लगाकर सुदृढ़ एवं पवित्र (देखने में सुन्दर) ज्या बनानी चाहिये॥ २७॥

**त्रैयम्बक धनुर्वेद में**—जैसी प्रत्यञ्चा बनानी चाहिये उसके लक्षणों को कहता हूँ। रेशम के सूत्र (धागे) की कनिष्ठ अङ्गुली जितनी मोटी धनुष के माप के अनुसार, बिना गाँठ की,

---

१. **वक्ष्यन्ति वेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषष्वजाना।**
**योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन् ज्येयं समने पारयन्ती॥** —ऋ० ६।७५।३, यजु:० २९।४०

धनुः प्रमाणो निःसन्धिः शुद्धैस्त्रिगुणतन्तुभिः। वर्तितः स्याद्गुणः श्लक्ष्णः सर्वकर्मसहो युधि॥ ५१॥
अभावे पट्टसूत्रस्य हरिणीस्नायुरिष्यते। गुणार्थमपि च ग्राह्याः स्नायवो महिषीभवाः॥ ५२॥
तत्कालहतछागस्य तन्तुना वा गुणा शुभा।[१] निर्लोमतन्तुसूत्रेण कुर्याद् वा गुणमुत्तमम्॥ ५३॥
पक्ववंशत्वचः कार्यो गुणस्तु स्थावरो दृढः। पट्टसूत्रेण सन्नद्धः सर्वकर्मसहो युधि॥ ५४॥
प्राप्ते भाद्रपदेमासे त्वगर्कस्य प्रशस्यते। तस्यास्तत्र गुणः कार्यो पवित्रः स्थावरो दृढः॥ ५५॥
गुणा कार्या समुञ्जानां भंगस्नाय्वर्कवर्मिणाम्।

**राजविजये—**

सुवृत्तः सुदृढो दीर्घः सुमृष्टो गुप्तहीरकः। स्निग्धः श्लक्ष्णः सुस्वरश्च गुणस्याष्टौ गुणाः स्मृताः॥

*—वी० मि०*

**शार्ङ्गधरे—**

पक्ववंशत्वचः कार्यो गुणस्तु स्थावरो दृढः। पट्टसूत्रेण सन्नद्धः सर्वकर्मसहो युधि॥

**आकाश-भैरव-तन्त्रेऽयमधिकः—**

स्नायुभिर्वा गुणाः कार्यस्तदभावे नृलोमभिः॥ २९॥ *—आ० भै० त० पटल १३५*

**विष्णुधर्मोत्तरे—**

ज्याःद्रव्यं त्रितयं चर्म वंशभंगास्त्वचस्तथा॥ १॥ *—वि० ध० ख-२ अ० १७*

---

तीन सूत्रों से बटी हुई, गोल और चिकनी ज्या युद्ध में सब कार्यों का वहन करनेवाली होती है। चाहे जितना खेंचो टूटती नहीं॥ ५०-५१॥ रेशम के अभाव में हरिणी की ताँत लेनी चाहिये। महिषी (भैंस) की ताँत भी ले-सकते हैं। अथवा तत्काल मरे हुए बकरे की ताँत से बनी ज्या शुभकारक होती है। यह ताँत पशु के बालों से युक्त न होकर स्वच्छ सुन्दर बनानी चाहिये अथवा पके हुये अर्क (आक) की छाल से सुदृढ़ एवं रेशम के सूत्र से लिपटी हुई पके बाँस की ज्या सर्व सिद्धिकारक है॥ ५२-५३-५४॥

भाद्रपद मास में अर्क की छाल लेना उचित है। इस नवीन त्वचा=छाल से सुदृढ़ गुणा, भङ्ग, ताँत और अर्क की छाल से बनानी चाहिये॥ ५५½॥

**राजविजय में**—सुवृत्त (गोलाकार) सुदृढ़, दीर्घ, सुमृष्ट (शुद्ध-पवित्र) गुप्त हीरक (गाँठ) से रहित स्निग्ध (नम्र), श्लक्ष्ण (चिकनी) और सुस्वर (सुन्दर स्वरवाली) इन आठ गुणों से युक्त प्रत्यञ्चा कही गई है।

**शार्ङ्गधर में**—पके हुए बाँस की छाल की सुदृढ़ और बहुत समय तक काम दे सके, ऐसी प्रत्यञ्चा दोनों सिरों से रेशम के सूत्र से बँधी सब कार्यों की साधक बनानी चाहिये।

**आकाशभैरव तन्त्र में**—ताँत से गुणा बनाये। इसके अभाव में मनुष्य के बालों से बनानी चाहिये।

**विष्णुधर्मोत्तर में**—चर्म, पका हुआ बाँस और छाल, तीन ज्या द्रव्य हैं।

---

१. तत्कालहतगोकर्णचर्म्मणा छागलेन वा। —इति वीरचिन्तामणौ धनुर्वेदे

**कौटिल्य-अर्थशास्त्रे—**

**मूर्वार्कशणगवेधुवेणु स्नायुनि ज्या।**

**चतुः शतैश्च काण्डानां यो हि लक्ष्यं विसर्जयेत्।**

**सूर्योदये चास्तमाने स ज्येष्ठो धन्विनां भवेत्॥ १०८॥**

**त्रिंशतैर्मध्यमश्चैव द्वि शताभ्यां कनिष्ठकः।** —*वा० ध०*

**श्रमकालः**

**एवं श्रमविधिं कुर्याद् यावत् सिद्धिः प्रजायते। श्रमे सिद्धे च वर्षासु नैव ग्राह्यं धनुष्करे॥ १६३॥**

**पूर्वाभ्यासस्य शस्त्राणामविस्मरण हेतवे। मास द्वयं श्रमं कुर्यात् प्रतिवर्षे शरदृतौ॥ १६४॥**

—*वा० ध०*

---

**कौटिल्य-अर्थशास्त्र में**—मूर्वा, अर्क, शण, गवेधु (रामबाँस) वेणु और स्नायु की प्रत्यञ्चा बनती है।

**अर्थ**—जितने समय में सूर्य उंदय और अस्त होता है उतने काल में जो चार सौ बाणों को लक्ष्य पर छोड़े वह धनुर्धरों में श्रेष्ठ होता है॥ १०८॥

इसी प्रकार तीन सौ बाण छोड़नेवाला मध्यम और दो सौ छोड़नेवाला अधम होता है।

**श्रमकाल**—इस प्रकार पूर्वोक्त चित्रादि लक्ष्यों में सिद्धि न हो तब तक धनुष बाण का सतत अभ्यास करे। सफलता मिलने पर वर्षा ऋतु में धनुष का ग्रहण न करे। पूर्व अभ्यास को बनाये रखने के लिये प्रतिवर्ष शरद् ऋतु में दो मास अभ्यास करते रहना चाहिये॥ १६३-१६४॥

**शराणां मानम्—**

**द्वौ हस्तौ मुष्टिना हीनौ दैर्ध्ये स्थौल्ये कनिष्ठिका॥ ३॥** *—वृ० शा० प० वा० ध० ५८*

**ज्येष्ठस्तु सायको ज्ञेयो भवेद् द्वादशमुष्टयः। एकादश तथा मध्यः कनीयान्दशमुष्टयः॥ ३६॥**

*—अग्निपुराण अ० २४९*

**इषुनीलबृहद्देहो द्विहस्तोत्सेधसंहतः। परिध्या चाङ्गुलिमितोऽनल्पमात्रगतिस्तु सः॥**

*—नी० प्र० ४/२८*

## पंख-बन्धन

फेंका हुआ इषु (तीर) लक्ष्य पर सीधा जाकर लगे, इसके लिये उसके पृष्ठभाग में ३ या चार पंख बाँधे जाते हैं। नाराच (लोहे के बाण) के ५ पंख लगाते हैं। स्नायु, सूत्र और सरेस इत्यादि से इन पंखों को चिपकाया जाता है। शार्ङ्गधनुष से छोड़े जानेवाले इषु पर दश और शेष तीरों में छह अङ्गुल लम्बे पंख लगाने चाहियें। ये पंख सभी समान आकृति में कटे हुये, सीधे चिपके तथा सुदृढ़ होने आवश्यक हैं। इन्हें समान दूरी पर सीधा ही बाँधा जाता है। दूसरी पद्धति के अनुसार परस्पर क्रास करके बाँधते हैं। दोनों का प्रयोजन यही है कि वायु शर की गति को रोक न सके और तीर सीधा जाये। किन पक्षियों के पंख श्रेष्ठ होते हैं यह आगे लिखते हैं।

**सुपर्णं वस्ते मृगोऽस्यादन्तो गोभिः सन्नद्धाः पतति प्रसूताः॥** *—यजुः० २९/४८*

**वाशिष्ठधनुर्वेदे—**

**काकहंसशशादानां मत्स्यादक्रौञ्चकेकिनाम्। गृध्राणां कुरराणाञ्च पक्षा एते सुशोभनाः॥ ६०॥**
**षडङ्गुलप्रमाणेन पक्षच्छेदं च कारयेत्। षडङ्गुलमिताः पक्षाः शार्ङ्गचापस्य मार्गणे॥ ६१॥**
**योज्या दृढाश्चतुः संख्या सन्नद्धाः स्नायुतन्तुभिः॥**

---

दो हाथ से एक मुष्टि (५ अङ्गुल) कम शरों का मान होता है और मोटाई कनिष्ठा अङ्गुली के समान होती है॥ ३॥

अग्निपुराण के अनुसार—ज्येष्ठ शर बारह मुष्टि, (६० अङ्गुल २½ हाथ), मध्य ग्यारह मुष्टि और कनिष्ठ दश मुष्टि लम्बा होता है॥ ३६॥

इषु का रङ्ग नीला, बड़ा शरीर, २ हाथ लम्बाई, एक अङ्गुल मोटाई और शीघ्र गति या बहुत दूर जानेवाला होता है।

**यजुर्वेद**—सुन्दर पंखों और अस्थिमय मुखवाले बाण स्नायु (ताँत) और सरेस से बन्धे हुए वेग से जाते हैं।

**वाशिष्ठ धनुर्वेद**—कव्वा, हंस, शशाद (बाज), बगुला, क्रौंच (सारस), मोर, गृध्र और टटीहरी इनके पङ्ख शरों के लिये उत्तम हैं॥ ६०॥

पङ्ख छह अङ्गुल लम्बे होने चाहिएँ, परन्तु शार्ङ्ग चाप के शरों पर १० अङ्गुल लम्बे पङ्ख बाँधने उचित हैं। चार पंख प्रत्येक शर में लगाकर इन्हें ताँत और सूत्रादि से बाँधना चाहिए॥ ६१॥

**आकाशभैरवे—**

**एकैकस्य शरस्यैव चतुष्पक्षाणि योजयेत्। षडङ्गुलप्रमाणेन पक्षच्छेदं च कारयेत्॥ ३१॥**
**दशाङ्गुलमिताः पक्षाः शार्ङ्गचापस्य मार्गणे। योज्या दृढाश्चतुष्पञ्च सन्नद्धाः स्नायुतन्तुभिः॥ ३२॥**
**कङ्कहंसशुकानाञ्च पक्षा दक्षाश्च केकिनाम्। हंसानां कुरराणाञ्च पक्षाश्चैव सुशोभनाः॥ ३३॥**

*—आ० भै० प० १२५*

## शरों ( बाणों ) के मुख

शरों की प्रहरण क्षमता बढ़ाने के लिये उनके अगले भाग में काष्ठ, हड्डी और लोहादि धातुओं के विविध फलमुख लगाये जाते हैं। इन फलमुखों की आकृति देश, काल एवं कार्य के अनुसार अनेक प्रकार की होती है। वेदों में अनेक मुखोंवाले, तथा हड्डी, लोहादि धातु से निर्मित बाणों का वर्णन आया है[१]। इसके अतिरिक्त विष में बुझाये हुए फलमुखों का प्रयोग भी देखा गया है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में लक्ष्य-छेदन के लिये लोहा, भेदन के लिये अस्थि और ताड़न के लिये काष्ठ के फलमुख लगाने का विधान किया है।[२] रामायण[३], महाभारत[४] विष्णुधर्मोत्तर[५] एवं अन्य संस्कृत वाङ्मय में विविध प्रकार के फलमुखों का वर्णन आता है।

वाशिष्ठ-धनुर्वेद में दस फलमुखों के विविध कार्य बतलाये हैं यथा—

---

**आकाशभैरव में**—क्रौच, हंस, तोता, मयूर और कुरर (टटीहरी) के पङ्ख शरों के लिये प्रशस्त हैं। प्रत्येक शर के चार पङ्ख छह अङ्गुल लम्बे तथा शार्ङ्ग चाप के शर पर दस अङ्गुल लम्बे ताँत को चार पाँच बार लपेट कर बाँधना चाहिये।

**विचारणीय**—शरों के पङ्ख-बन्धन के पश्चात् उसके पृष्ठभाग में धनुष की प्रत्यञ्चा अटकाने के लिये पार्श्वभाग में बाँस की दो खपची स्नायु की सहायता से बाँधनी आवश्यक हैं। अथवा शर का पृष्ठभाग स्थूल हो तो उसी में गड्ढ़ा बना लिया जाता है। आजकल प्लास्टिक का बना हुआ पृष्ठभाग शर में फँसा दिया जाता है। धनुर्वेद में इसका कहीं पर भी वर्णन नहीं आया। यह विचारणीय है। सम्भवतः सामान्य बात समझकर इसका उल्लेख करना आवश्यक न समझा हो।

---

१. अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कती मुखाः। क्रव्यादो वातरंहस आसजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषन्धिना॥ —अथर्व० ११।१०।३
आलक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो अस्या अयोमुखम्। इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः॥ —ऋ० ६।७५।१५
सुपर्णं वस्ते मृगोऽस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धाः पतति प्रसूताः। —यजु० २९।४८

२. कौ० अ० २।१८

३. क्षुरक्षुरप्रनाराचैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः। कर्णिशल्यविपाठैश्च बहुभिर्निशितैः शरैः॥ —रा०यु०का० ७६।६३
नाराचैरर्धनाराचैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि। विव्याधवत्सदन्तैश्च सिंहदंष्ट्रैः क्षुरैस्तथा॥ —रा० यु० ४५।२३

४. ततः क्षुरप्राञ्जलिकार्धचन्द्रानालिकनाराचवराहकर्णाः। गाण्डीवतः प्रादुरासन् सुतीक्ष्णाः सहस्रशो वज्रसमानवेगाः॥ —महा० कर्ण० ८९।२८४

५. (विष्णु० ध० १।२२६।२०-२१)।

आरामुखं[1] क्षुरप्रञ्च गोपुच्छार्धचन्द्रकम्। सूचीमुखञ्च भल्लञ्च वत्सदन्तं द्विभल्लकम्॥ ६४॥
कर्णिकं काकतुण्डञ्च तथान्यान्यप्यनेकशः। फलानि देशभेदेन भवन्ति बहुरूपतः॥ ६५॥

**अथैतेषां कार्याणि—**

आरामुखेन चर्मछेदनं क्षुरप्रेण[2] बाणकर्तनं बाहुकर्तनं वा गोपुच्छेन लक्ष्यसाधनं अर्धचन्द्रेण[3] ग्रीवामस्तक धनुरादीनां छेदनं सूचीमुखेन कवचभेदनं भल्लेनहृदयभेदनं[4] वत्सदन्तेन[5] गुणचर्वणं द्विभल्लेन[6] बाणावरोधनं कर्णिकेन लोहमयबाणानां[7] छेदनं काकतुण्डेन वेध्यानां वेधनं कुर्यात्।

—वा० ध० ६६

अन्यद्गोपुच्छकं ज्ञेयं शुद्धं काष्ठविनिर्मितम्। मुखञ्च लोहयुक्तेन विद्धि त्र्यङ्गुल सम्मितम्॥ ६८॥
बाणस्य स्थाने सेहकांटकयोजनाद् गोपुच्छबाणो भवति।
अनेन शराभ्यासस्तथा लक्ष्याभ्यासो वा कर्त्तव्यः॥ ६९॥

---

आरामुख, क्षुरप्र, गोपुच्छ, अर्धचन्द्र, सूचीमुख, भल्ल, वत्सदन्त, द्विभल्ल, कर्णिक, काकतुण्ड ये दश प्रकार के शरों के मुख होते हैं।

**इनका कार्य**—आरामुख से चर्म (ढाल) का छेदन, क्षुरप्र से प्रतिपक्षी के आते हुए बाण को काटना और बाहु काटना, गोपुच्छ (गाय की पुच्छ के समान आकृतिवाला) से निशाना वेधना, अर्धचन्द्र से ग्रीवा, शिर और धनुष को काटना, सूचीमुख से कवच को भेदना, भल्ल से हृदय को भेदना, वत्सदन्त से धनुष की डोरी को काटना, द्विभल्ल से आते हुए बाणों को रोकना, कर्णिक (कनेर के पुष्प सदृश आकृतिवाले) से निशाने को बींधने का कार्य करें।

एक द्वितीय प्रकार का गोपुच्छ बाण भी होता है, जो शुद्ध काष्ठ का बना हुआ होता है, इसके मुख पर तीन अङ्गुल लम्बा लोह का काँटा लगा हुआ होता है॥ ६८॥

**गोपुच्छ बाण का स्वरूप**—बाण (फलाग्र) के स्थान पर सेह ''शल्यकी'' का काँटा लगा देने पर गोपुच्छ बाण बन जाता है। इससे शर चलाना और निशाना मारने का अभ्यास करना चाहिये।

---

१. आकाशभैरव ३५-३८ में आरामुख के स्थान पर धारामुख-पाठ है।
२. महाभारत में भी इनका ऐसा ही वर्णन मिलता है—
क्षुरप्रेणमहारथ......धनुश्चिच्छेद। —द्रोण० ११४।८१
३. माधवस्य महद् धनुः......अर्धचन्द्रेण चिच्छेद। —द्रोण ११७।२३
४. शिरांसि भल्लैरहरद् बाहूनपि च सायुधान्। —द्रोण १८।२६
५. स वत्सदन्तं सन्धाय जिह्मगानलसंनिभम्। —महा० द्रोण० ११४।८१
६. भल्लाभ्यां साधुमुक्ताभ्यां छित्वाकर्णस्य कार्मुकम्। —महा० द्रो० ३२।६८
भल्लाभ्यां शितधाराभ्यां....... —कर्णपर्व ६३।१०
७. वीरचिन्तामणौ, शार्ङ्गधरे चायमधिकः—
लोहञ्च काकतुण्डेन......
इससे प्रतीत होता है कि लोहयुक्त लक्ष्य का भेदन काकतुण्ड से किया जाता है।

**सर्वलोहास्तु ये बाणा नाराचास्ते प्रकीर्तिताः। पञ्चभिः पृथुलैः पक्षैर्युक्ताः सिध्यन्ति कस्यचित्॥ ७३॥**
**[1]नालिका लघवो बाणा नलयन्त्रेण नोदिताः। अत्युच्च दूरपातेषु दुर्गयुद्धेषु ते मताः॥ ७४॥**

*—वा० ध० ७३-७४*

**युक्तिकल्पतरौ बाणानां लक्षणानि—**

**लघुता दृढता चैव तथा खरतरास्यता॥ ६९॥**
**तन्मानं विदुषा कार्यमङ्गुलीभिर्यथोदितम्। अङ्गुलीमानवैषम्ये विजयो जायते रणे।**
**अङ्गुलीमानसाम्ये तु भङ्गएवोपजायते॥ ७०॥** *—यु० क० अस्त्रशस्त्रयुक्ति पृष्ठ १७५*

## बाणों का स्वरूप

वर्त्तमान युग में युद्ध में आग्नेयास्त्रों का प्रचलन बढ़ जाने से धनुर्विद्या का प्रायः लोप-सा ही हो गया है। इसलिये पूर्वोक्त शरों के फलमुख (बाण) कैसे हैं यह पूर्ण निश्चय से नहीं कहा जा सकता। उनके नाम एवं कार्यों के अनुसार ही स्वरूप निर्धारण का यथासम्भव प्रयास किया गया है।

**१. आरामुख**—शब्दार्थ के अनुसार आरा (आरी) के समान (दाँतों से युक्त) बाण को आरामुख कहते हैं। आकाशभैरव में आरामुख के स्थान पर धारामुख पाठ है। जिसके मुख पर धारयुक्त फल हो उसे धारामुख कहते हैं। वैजयन्ती कोष में आरा चर्मकारों का चर्म भेदनेवाला शस्त्र, जिसे आज भी भाषा में 'आर' कहते हैं, कहा गया है[2]। इससे प्रतीत होता है कि इस बाण का मुख अतितीक्ष्ण एवं लम्बा आर के जैसा होता है।

**२. क्षुरप्र**—शब्दकल्पद्रुम में क्षुरपा घास खोदनेवाले शस्त्र को कहा है, जिसे भाषा में खुरपा

---

**अर्थ**—सारे लोहे से बने हुए बाण को नाराच कहते हैं। इनमें पाँच मोटे पंख बाँधे जाते हैं। ये किसी-किसी के ही सिद्ध होते हैं॥ ७३॥

**नालीक**—नालीक (बन्दूक की गोली) छोटे बाण होते हैं, जो नलयन्त्र (भुशुण्डी, बन्दूक) से छोड़े जाते हैं। बहुत ऊँचे, दूर और दुर्ग-युद्धों में ये उचित रहते हैं॥ ७४॥

**युक्ति कल्पतरु में बाणों का लक्षण**—लघुता (हल्कापन), दृढ़ता और मुखाग्रभाग खर "पानी में बुझाया हुआ" इन गुणों से युक्त बाणों का संग्रह राजा को करना उचित है॥ ६९॥

उन बाणों का माप बुद्धिमानों को अङ्गुलियों से करना चाहिये। अङ्गुलिमान विषम (३-५-७-९ अङ्गुल) होने पर रणभूमि में विजय होता है और सम (२-४-६-८) होने पर पराजय॥ ७०॥

---

१. (क) **नालीका लघवो बाणा नलकाण्ड विनिर्मिताः॥ ४३॥**
**अत्युच्च दुर्गपातेषु धर्मयुद्धेषु ते मताः॥ ४४॥** —इति पाठः—(आकाशभैरवे तन्त्रे पटल १३५)
(ख) **नालीका लघवो बाणाः मन्त्रशक्त्या प्रचोदिताः।** —इति जामदग्नौ धनुर्वेदे, पृष्ठ ११८

२. आरा चर्मप्रभेदनी (वैज० ३। ९। ४३)।

जाता है, जिसे निकालना दुष्कर है।

**३. लिप्त**—विष में बुझा हुआ। इसका घाव भरता नहीं।

**४. बस्तिक**—इसके फल और सरकण्डे के सन्धि-स्थान में शिथिल या शीघ्र टूटनेवाला। इसे शरीर से निकालने पर दण्ड भाग ही टूटकर निकल जाता है और अग्र भाग शरीर में ही धंसा रह जाता है। कुछ के मत में यह सींग से बना हुआ होने से बस्तक कहलाता है। इसके नमूने भी मिलते हैं।

**५. सूची**—कर्णी के समान बहुत काँटों से युक्त काले लोहे से बना हुआ। कुछ के मत में बन्दर की हड्डी (दाँत) से बना हुआ। यह थोड़े से आघात से ही शरीर में बहुत अधिक घुस जाता है।

६. गौ या हाथी की हड्डी (दाँत) से बना हुआ। यह भी विष-लिप्त बाण के समान ही विघ्नकारक है।

**७. संश्लिष्ट**—यथा भल्ल बाण एक साथ दो स्थानों पर क्षत कारक होने से त्याज्य है।

**८. पूति**—जंग लगे हुए फलवाला। इससे आहत होने पर धनुर्वात व्याधि होती है।

**९. जिह्मगः**—टेढ़ा जानेवाला। इसे तिरछा करके छोड़ते थे, जैसे वत्सदन्त। अथवा कहीं अन्यत्र लक्ष्य का बहाना बनाकर दूसरे स्थान पर छोड़ना, जिससे प्रतिपक्षी योद्धा इसका निवारण नहीं कर सके।

**१०. कुण्ठ**—कुण्ठित (भोंथरा) शल्यवाला।

**११. अग्नि लगानेवाला**—आग्नेयास्त्र।

**१२. दारुशल्य**—लकड़ी के फलवाला।

धर्मयुद्ध में इन पूर्वोक्त बाणों का प्रयोग प्राय नहीं किया जाता था, परन्तु अमर्यादित या सङ्कुल (एक-दूसरे का गुत्थमगुत्था होना) युद्धों में यह नियम टूट जाता था।

**पायनम्[१]—**

**फलस्य पायनं वक्ष्ये दिव्यौषधिविलेपनैः। येन दुर्भेद्य वर्माणि भेदयेत् तरुपर्णवत्॥ ७०॥**
**पिप्पली सैन्धवं कुष्ठं गोमूत्रे तु सुपेषयेत्। अनेन लेपयेच्छस्त्रं लिप्तं चाग्नौ प्रतापयेत्॥ ७१॥**

---

अब बाणों के फलों की पायन (पानी चढ़ाना, आब देना) विधि को कहेंगे जोकि दिव्योषधियों के लेप द्वारा किया जाता है, जिससे युक्त होकर बाण कवचों को भी वृक्ष के पत्ते के सदृश काट देता है॥ ७०॥

**पीपल, सेन्धा नमक और कूठ ओषधि को गाय के मूत्र में पीसकर कल्क बनावें। इस कल्क को बाणों पर लेप करे और लेपसहित अग्नि में तपावे॥ ७१॥**

---

१. फलों की प्रहरण क्षमता बढ़ाने के लिये विविध ओषधियों का लेपन करके अग्नि में तपाकर विविध वस्तुओं के घोल में बुझाने की क्रिया को पायन कहते हैं। यह विधि आजकल पानी चढ़ाना या आब देना नाम से प्रसिद्ध है। इसी विधि से तलवारों पर पानी चढ़ाया जाता है। इसी भाँति बाण को विविध विषों से लिप्त करके विषयुक्त बनाने की प्रक्रिया वाशिष्ठधनुर्वेद और कौटिल्य अर्थशास्त्र में दी गई हैं। पानी चढ़ाने की प्रक्रिया को ग्रामीण लुहार आज भी भली-भाँति जानते हैं।

शिखी ग्रीवानुवर्णाभं तप्तपीतं तथौषधम्। ततस्तु विमलं तोयं पाययेच्छस्त्रमुत्तमम्॥ ७२॥

*—वा० ध०*

**जामदग्न्यधनुर्वेदे फलपायनम्—**

**पञ्चभिर्लवणैः पिष्टं मधुसिक्तैः ससर्षपैः। एभिः प्रलेपयेत् शस्त्रं लिप्तं चाग्नौ प्रतापयेत्॥**
**शिखिग्रीवानुवर्णाभं तप्तपीतं तथौधषम्। ततस्तु विमले तोये पाययेत् शस्त्रमुत्तमम्॥**[1]

*—राज० परशुराम, पृष्ठ ११७*

---

जब फल का वर्ण अग्नि में मोर की ग्रीवा के समान हो जावे और सारी लेप की हुई ओषधि को पी जावे तब उसे अग्नि से निकालकर साफ जल में बुझावे। इस विधि से शस्त्रों का उत्तम पायन हो जाता है॥ ७२॥

**जामदग्न्य धनुर्वेद में फलों पर पानी चढ़ाना**—मधु, सरसों एवं पाँचों नमक इनको पीस लेप बनाकर शस्त्र पर लेप करे एवं उसे अग्नि में तपाये। जब शस्त्र उष्ण होकर मोर की ग्रीवा के वर्ण-जैसा हो जाये एवं सभी ओषधियों को पी जाये तब उसे स्वच्छ जल में बुझा दे। इस प्रकार बुझाया हुआ शस्त्र उत्तम होता है।

---

१. शार्ङ्गधरे वाशिष्ठ संहिता जामदग्न्ययोरुद्धृतः समग्रः पाठः पठितः। तत्रायमधिकः—
अतिशीतमनाविद्धं पीतं च धृत औषधम्। ततो निर्लेपितैर्लौहं लिप्तं तत्र प्रशस्यते॥

शार्ङ्गधरधनुर्वेदपाण्डुलिपि सं० ७५०२
(भण्डारकर इन्स्टीट्यूट, पूना)

# चतुर्थ अध्याय

धनुष एवं शर की निर्माण-विधियों को 'पहले दो अध्यायों में कहने के पश्चात् इस अध्याय में शर को कैसे पकड़ा जाये' धनुष को पकड़ने की विधि, प्रत्यञ्चा के आकर्षण करने की पद्धति तथा लक्ष्य-सन्धान करते समय पैरों की क्या स्थिति होनी चाहिये, इनका वर्णन किया जायेगा।

शर के पृष्ठभाग को विविध अङ्गुलियों के संयोग से पकड़ने की विधि को गुणमुष्टि कहते हैं। इसके पताका, वज्रमुष्टि, सिंहकर्णी, मत्सरी, काकतुण्डी, त्रैयम्बक और एकलव्य—ये सात भेद हैं।

धनुष पकड़ने की विधि धनुर्मुष्टि कहलाती है। इसके तुङ्ग, उपतुङ्ग, परिमण्डल, समधृति, तलाश्रय एवं सममुष्टि छह भेद कहे हैं।

धनुष की प्रत्यञ्चा को कर्णादि प्रदेश तक खेंचने को व्याय कहा जाता है। कैशिक, सात्वत, वत्सकर्ण, भरत और स्कन्ध—ये पाँच प्रकार के व्याय होते हैं।

इसी भाँति लक्ष्यसन्धान करते समय पैरों की जो स्थिति होती है उसे स्थान (पैंतरा) कहते हैं। इसके भी अनेक भेद-प्रभेद कहे हैं। यथा—आलीढ़, प्रत्यालीढ़, विशाख, समपाद, असमपाद, दर्दुर-स्थान, गरुडक्रम, पद्मासन, मण्डल, जात, हंसपाद, स्वस्तिकदर्दुर और विकट।

प्रस्तुत अध्याय में विभिन्न शास्त्रों की साक्षी, मुद्रा, प्रस्तर प्रतिमा एवं भित्तिचित्रों की सहायता लेकर इनका सचित्र वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त इनकी व्यावहारिकता का परीक्षण प्रत्यक्ष धनुष-बाण का प्रयोग करके ही इनके वास्तविक स्वरूप का निर्धारण करने का प्रयास किया है।

**गुणमुष्टिः—**

**पताका वज्रमुष्टिश्च सिंहकर्णस्तथैव च। मत्सरी काकतुण्डी च योजनीया यथाक्रमम्॥ ८४॥**

*—वा० ध०*

### १. पताका—

**दीर्घा तु तर्जनी यत्र आश्रिताङ्गुष्ठमूलकम्। पताका सा च विज्ञेया [1]नालिका दूरमोक्षणे॥ ८५॥**

*—वा० ध०*

**सिहंकर्णिकमुष्टौ च तर्जनी चेत्प्रसारिता। पताको नाम मुष्टिः स्यान्नलिकास्थूलकाण्डके॥ ११७॥**

*—मानसोल्लास अ० १ वि० ४*

---

**गुणमुष्टिः**—तर्जनी, वज्रमुष्टि, सिंहकर्णी, मत्सरी और काकतुण्डी—ये पाँच मुष्टियाँ यथाक्रम शरसन्धान में प्रयुक्त करनी चाहियें॥ ८४॥

**पताका**—जहाँ पर तर्जनी अङ्गुली सीधी रहे और अंगूठे के मूल में मुड़े, उसे पताका कहते हैं। इसे बन्दूक की गोली चलाने में प्रयुक किया जाता है॥ ८५॥

सिंहकर्णमुष्टि में यदि तर्जनी फैली हुई हो तो उसे पताकामुष्टि कहते हैं, इससे नलिका नामक स्थूलकाण्ड छोड़ा जाता है॥ ११७॥

---

१. नालीकशरमोक्षणे इति आकाशभैरवे। —पटल १३५
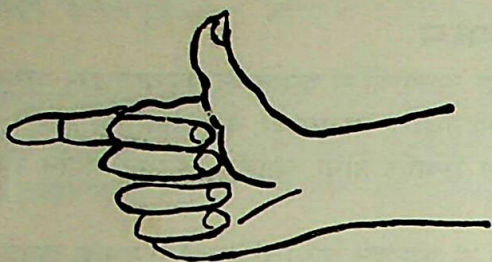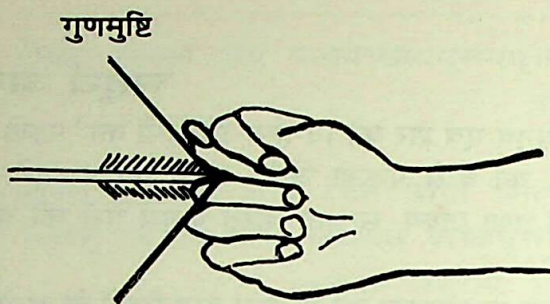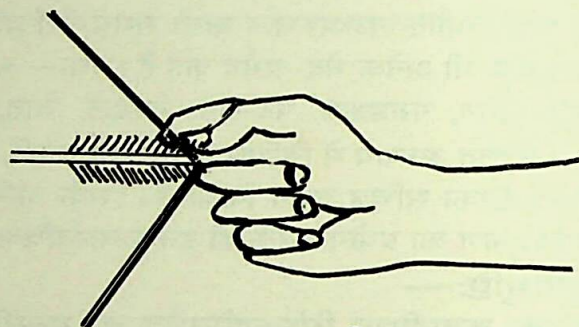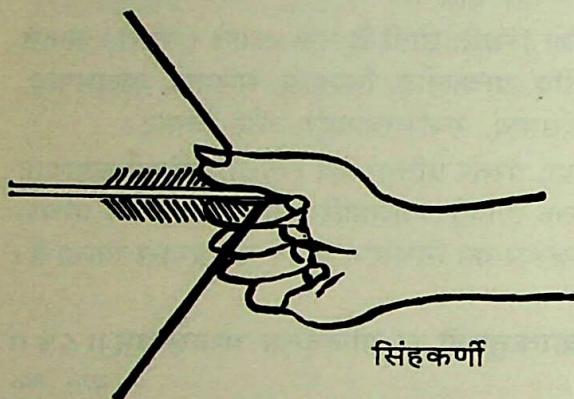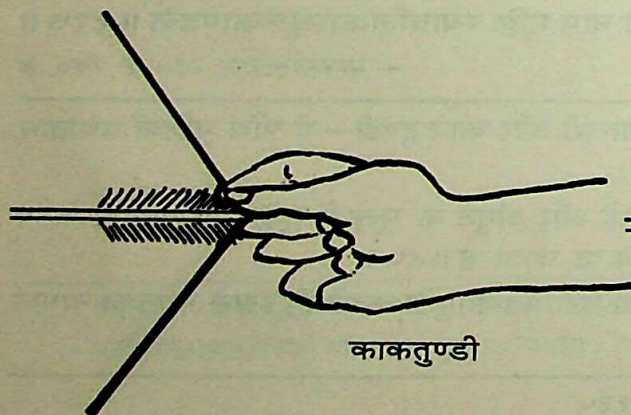
गुणमुष्टि
पताका
वज्रमुष्टि
सिंहकर्णी
मत्सरी
काकतुण्डी
एकलव्य

**२. वज्रमुष्टिः—**

**तर्जनीमध्यमामध्यमङ्गुष्ठो विशते यदि। वज्रमुष्टिश्च सा ज्ञेया स्थूलनाराचमोक्षणे॥ ८६॥**

*—वा० ध०*

**तर्जन्यावेष्टिताङ्गुष्ठः शेषाः पाणितलेस्थिताः। वज्रमुष्टिरियं ख्याता दृढकर्मणि कोविदैः॥ १२०॥**

*—मानसोल्लास अ० १ वि० ४*

**३. सिंहकर्णीः—**

**अङ्गुष्ठमध्यदेशं तु तर्जन्यग्रं सुसंस्थितम्। सिंहकर्णः स विज्ञेयो दृढ लक्ष्यस्य वेधने॥ ८७॥**

*—वा० ध०*

**अङ्गुष्ठपीडितं कुर्यात् तर्जनी नखरं तले। अङ्गुलीत्रितयं स्थाप्यं मुष्टिः स्यात् सिंहकर्णिकः॥ ११६॥**

*—मानसो० अ० १ वि० ४*

**अङ्गुष्ठनखमूले तु मध्यमाग्रं सुसंस्थितम्॥ २२॥**
**सिंहकर्णी तु विज्ञेया वत्सदन्तविमोक्षणे॥ २३॥** *—आकाशभैरव पटल १३६*

**४. मत्सरी—**

**अङ्गुष्ठनखमूले तु तर्जन्यग्रं सुसंस्थितम्। मत्सरी सा च विज्ञेया चित्रलक्ष्यस्य वेधने॥ ८८॥**

*—वा० ध०*

**[१]अङ्गुष्ठनखपृष्ठे च तर्जनी नखरो भवेत्। अधोवर्ती भवेन्मुष्टिः शेषाङ्गुल्योऽत्र पूर्ववत्॥ ११८॥**

*—मानसोल्लास अ० १ वि० ४*

---

**वज्रमुष्टिः**—जब तर्जनी और मध्यमा के मध्य में अङ्गुष्ठ लगाकर धनुष की प्रत्यञ्चा खेंची जाये तो उसे वज्रमुष्टि कहते हैं। इससे स्थूल नाराच-बाण छोड़ा जाता है॥ ८६॥

तर्जनी से अङ्गूठे को आवेष्टित (ढककर) करके अन्य अङ्गुलियाँ हथेली की ओर लगी हुई रहती हैं, इसे बुद्धिमानों ने वज्रमुष्टि कहा है। इससे दृढ़ लक्ष्य का भेदन किया जाता है॥ १२०॥

**सिंहकर्णीः**—अङ्गूठे के मध्य भाग और तर्जनी के अग्रभाग से प्रत्यञ्चा को पकड़ना सिंहकर्णमुष्टि कहलाता है। इसका प्रयोग दृढ़ लक्ष्य भेदन में किया जाता है॥ ८७॥

अङ्गूठे से तर्जनी के नख को दबाये, शेष तीन अङ्गुलियाँ हथेली की ओर मुड़कर स्थिर रहें। इसे सिंहकर्णमुष्टि कहते हैं॥ ११६॥

अङ्गूठे के नख का मूलभाग जब मध्यमा अङ्गुली के अग्रभाग पर स्थित हो तो वह सिंहकर्णमुष्टि जाननी चाहिये, इससे वत्सदन्त बाण छोड़ा जाता है॥

**मत्सरी**—अङ्गूठे के नख के मूलभाग में तर्जनी का अगला भाग स्थित करने पर मत्सरी मुष्टि जाननी चाहिये। यह चित्र (सूक्ष्म) लक्ष्य को भेदन करने में प्रयुक्त होती है।

अङ्गूठे के नख के पीछे तर्जनी का नख रहे, मुष्टि नीचे की ओर एवं शेष तीन अङ्गुलियाँ पूर्ववत् हथेली में लगी हुई हों तो इसे मत्सरी मुष्टि कहते हैं।

---

१. अस्मिन् श्लोके मुष्टिनाम न प्रदत्तम्। अस्माकं मतेरियं मत्सरी स्यात्।

**५. काकतुण्डी—**

**अङ्गुष्ठाग्रे तु तर्जन्याः मुखं यत्र निवेशितम्। काकतुण्डी तु सा ज्ञेया सूक्ष्मलक्ष्ये तु योजिता॥ ८६॥**

*—वा० ध०*

**[1]तर्जन्यङ्गुष्ठयोरग्रे श्लिष्टे चेत् पूर्ववत् पुरः। मुचुटी सूक्ष्मनाराच व्यधे मुष्टिः प्रशस्यते॥ ११९॥**

*—मानसो० अ० १ वि० ४*

**६. त्रैयम्बक—**

**पुङ्खस्योर्ध्वमधः स्याच्चेत्तर्जनीमध्यमा स्थिता। तथा पुङ्खमुखेऽङ्गुष्ठो मुष्टिस्त्रैयम्बको मतः॥ १२१॥**

**७. एकलव्य—**

**तर्जनीमध्यमामध्ये यत्र पुङ्खः प्रपीड्यते। अनामिका समायोगान्मुष्टिः स्यादेकलव्यकः॥ १२२॥**
**त्रैयम्बकैकलव्यौ द्वौ तिर्यक्कोदण्डमार्गणे।** *—मानसो० अ० १ वि० ४*

**आकाशभैरवतन्त्रेऽयमधिकः—**

**योज्याऽऽलीढे पताकाख्या प्रत्यालीढे तु पार्वति॥ २५॥**
**वज्रमुष्टिर्विधातव्या विशाखे सिंहकर्णिका। मत्सरी दर्दुरे योज्या गारुडे काकतुण्डिका॥ २६॥**

*—आ० भै० पटल १३६*

## धनुर्मुष्टिः[2]

**मानसोल्लासे—**

**धृतचापस्य हस्तस्य तर्जनी प्रोन्नता यदि। तुङ्गो मुष्टिः समाख्यातः सत्युत्ताने शरासने॥ १०९॥**

---

तर्जनी का मुख और अङ्गूठे का अग्रभाग मिलाकर काकतुण्डी मुष्टि जाननी चाहिये। इसे सूक्ष्म लक्ष्य नें प्रयुक्त करते हैं॥ ८६॥

तर्जनी और अङ्गूठे के अग्रभाग को मिलायें, इसे मुचुटी कहते हैं। यह सूक्ष्म लक्ष्य और नाराच बाणों में प्रशस्त है॥ ११९॥

जब बाण का पृष्ठभाग ऊपर से तर्जनी और नीचे से मध्यमा अङ्गुली द्वारा दबाया गया हो और पुंख के मुखप्रदेश (अन्तिम सिरे) पर अङ्गूठा रहे तो इसे त्रैयम्बक मुष्टि कहते हैं॥ १२१॥

जब तर्जनी और मध्यमा से पूर्ववत् बाण को पकड़ा जाता है, मध्यमा के साथ अनामिका लगी रहे तो इसे एकलव्य-मुष्टि कहते हैं॥ १२२॥

एकलव्य मुष्टि और त्रैयम्बक मुष्टि ये दोनों तिरछे शरसन्धान और कोदण्ड धनुष में प्रयुक्त होती है॥ १२३॥

आकाशभैरवतन्त्र में इतना अधिक है—हे पार्वती! आलीढ़ स्थान में पताका मुष्टि को, प्रत्यालीढ़ में वज्रमुष्टि, विशाख में सिंहकर्ण, दर्दुर में मत्सरी और गरुडक्रम में काकतुण्डी मुष्टि का प्रयोग करना चाहिये॥ २५-२६॥

**धनुर्मुष्टिः**—१. धनुष पकड़े हुए हाथ की यदि तर्जनी अङ्गुली सीधी रहे तो इसे तुङ्गमुष्टि

---

१. मुचुटी सिहंकर्णी च पताका चेति मुष्टयः। —वैजयन्ती कोषः ३।७।१९३
मुचुटी गुणसाम्यात् काकतुण्ड्येव स्यादित्यस्माकं मतम्।

२. [यया मुष्ट्या धनुर्गृह्यते सा धनुर्मुष्टिरुच्यते]

धनुर्मुष्टि
तुङ्ग
समधृत
उपतुङ्ग
तलाश्रय
परिमण्डल
सममुष्टि
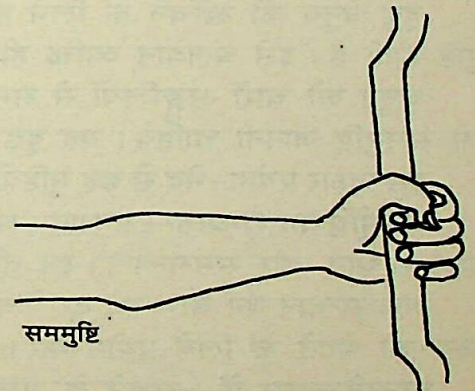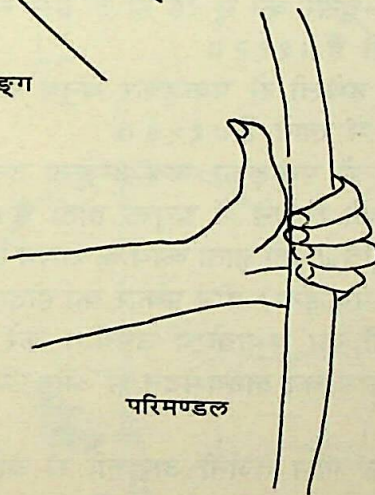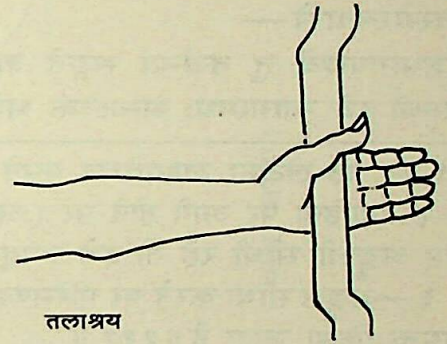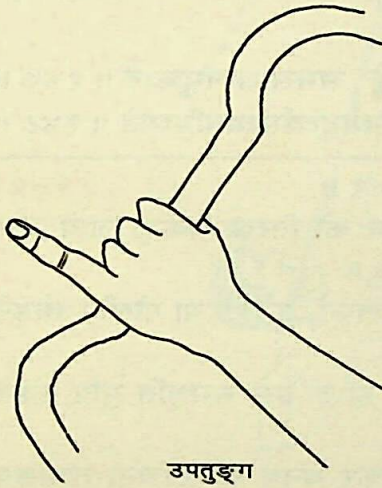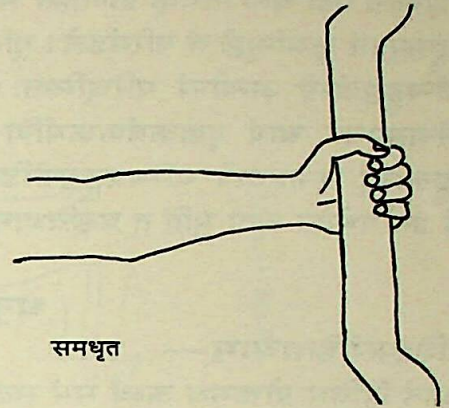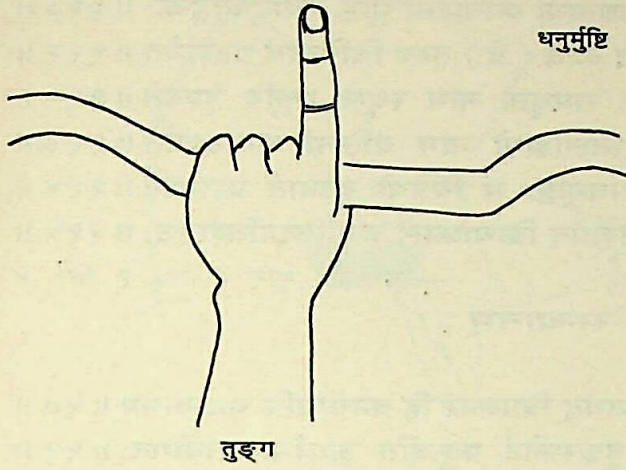
दक्षिणाग्रं यदा चापं तिर्यक् प्रणिहितं भवेत्। उन्नतायां कनिष्ठायां मुष्टिः स्यादुपतुङ्गकः ॥ ११० ॥
अङ्गुष्ठमुन्नतं कुर्यान्मुष्टौ तं परिमंडले। गुलिकादि व्यचे ( धे ) तस्य विनियोगं प्रदर्शयेत् ॥ १११ ॥
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरग्रे अन्योन्यं परिचुम्बितः। मुष्टिः समधृतो नाम स्थूले धनुषि दृश्यते ॥ ११२ ॥
तलेनाक्रम्यते चापं दृढाकर्षणकर्मणि। मुष्टिस्तलाश्रयो नाम बलिनां सम्प्रदर्श्यते ॥ ११३ ॥
अङ्गुल्यस्तु समाश्चापे यस्मिन्नङ्गुष्ठपीडिताः। सममुष्टिः स विज्ञेयो दृढघाते प्रशस्यते ॥ ११४ ॥
एवं प्रयोगभेदेन चापे मुष्टिं तु षड्विधाम्। प्रयोजयेत् क्रियाकाले चापविद्याविशारदः ॥ ११५ ॥

*—मानसो० भाग २ अ० १ वि० ४*

## धनुर्मुष्टि-सन्धानम्

**वाशिष्ठसंहितायाम्—**

सन्धानं त्रिविधं प्रोक्तमध ऊर्ध्वं समं सदा। योजयेत् त्रिप्रकारं हि कार्येष्वपि यथाक्रमम् ॥ ९० ॥
अधश्च दूरपातित्वे समे लक्ष्ये सुनिश्चिते। दृढास्फोटं प्रकुर्वीत ऊर्ध्वसन्धानयोगतः ॥ ९१ ॥

*—वा० ध०*

**मानसोल्लासे—**

अङ्गुष्ठभागपार्श्वे तु तर्जन्यां सङ्गते शरे। चापमुष्टौ समे पुङ्खे समसन्धानमुच्यते ॥ १४७ ॥
समसन्धौ रथे ज्यायामधः सन्धानकं भवेत्। तस्मादेवोर्ध्वतः सन्धादूर्ध्वसंधानमिष्यते ॥ १४८ ॥

---

कहते हैं। यह लेटकर लक्ष्यवेधन करने में प्रयुक्त होती है ॥ १०९ ॥

२—दाहिना पैर आगे होने पर (आलीढ़ स्थान) जब धनुष को तिरछा पकड़ा जाये और कनिष्ठ अङ्गुली सीधी रहे तो इसे उपतुङ्ग मुष्टि कहते हैं ॥ ११० ॥

३—अङ्गुष्ठ सीधा करने पर परिमण्डल मुष्टि होती है। इसे गुलिका (गुलेल या गोली) छोड़ने में प्रयुक्त किया जाता है ॥ १११ ॥

४—जब तर्जनी और अङ्गूठा परस्पर एक-दूसरे को छू रहे हों तो इसे समधृति मुष्टि कहते हैं। यह मोटे धनुष को पकड़ने में काम आती है ॥ ११२ ॥

दृढ़ धनुष को खींचने के लिये हाथ की हथेली से पकड़कर धनुष को खेंचना तलाश्रय मुष्टि होती है। इसे बलवान् व्यक्ति ही प्रयोग में लाते हैं ॥ ११३ ॥

धनुष को चारों अङ्गुलियों से समान रूप से पकड़कर जब अङ्गूठा उनपर रखा जाये तो इसे सममुष्टि जानना चाहिये। यह दृढ़ लक्ष्य को गिराने में प्रयुक्त होती है ॥ ११४ ॥

इस प्रकार प्रयोग-भेद से छह मुष्टियों को धनुर्विद्या का ज्ञाता कार्य के समय प्रयोग करे ॥ ११५ ॥

**धनुर्मुष्टि का सन्धान**—सन्धान (धनुष को पकड़ना) तीन प्रकार का होता है। अधः सन्धान, ऊर्ध्व सन्धान और समसन्धान। इन तीन कार्यों का यथायोग्य उपयोग करें ॥ ९० ॥

अधःसन्धान का बाण को दूर फेंकने में, सम का लक्ष्यभेदन में और ऊर्ध्वसन्धान का दृढ़ लक्ष्य को भेदने के लिये प्रयोग करे ॥ ९१ ॥

**मानसोल्लास में**—अङ्गुठे के मूलप्रदेश के पास तर्जनी अङ्गुली से बाण मिला होने पर तथा धनुषमुष्टि और गुणमुष्टि समान हो तो इसे समसन्धान कहते हैं ॥ १४७ ॥

समसन्धान का रथ में प्रयोग करे, भूमि पर स्थित लक्ष्य को वेधने के लिये अधःसन्धान
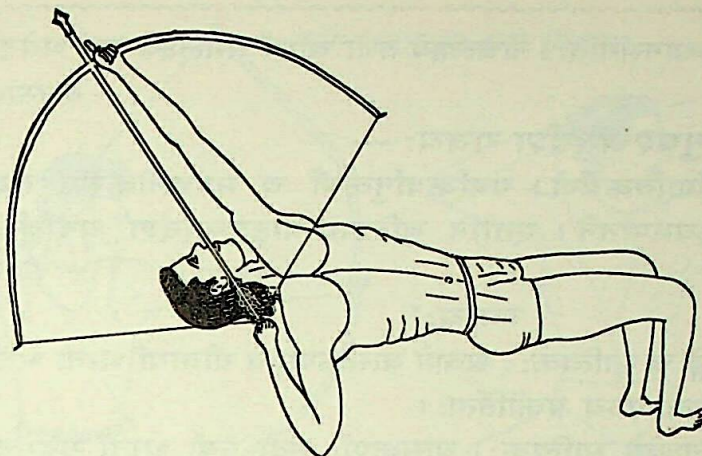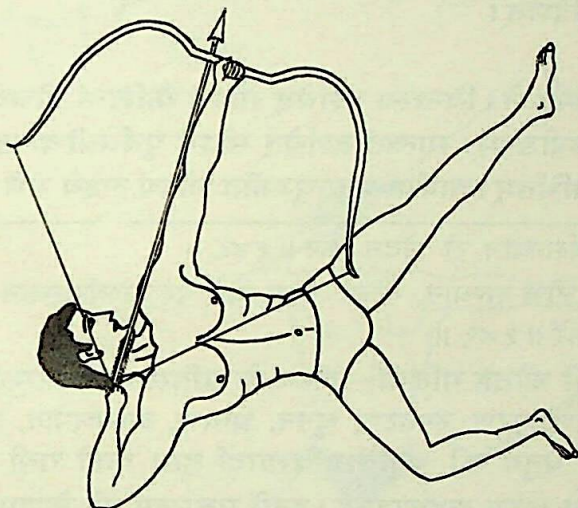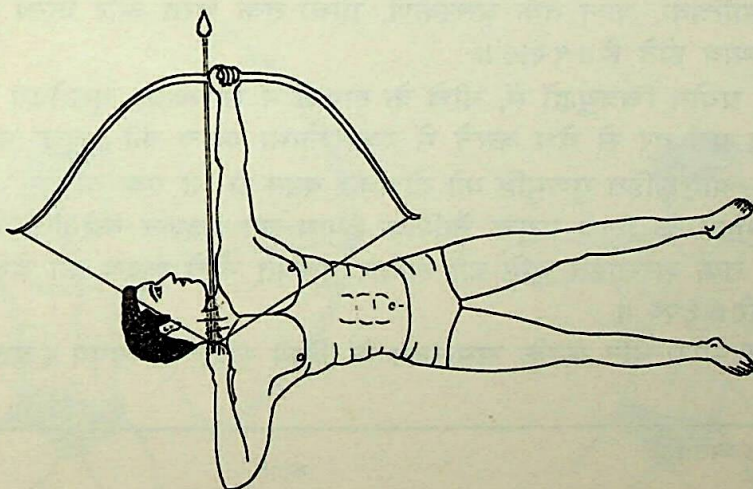
ऊर्ध्व सन्धान
अधः सन्धान
सम सन्धान

**ऊर्ध्वं दूरस्थिते लक्ष्ये नीचसन्धानसंगतिः। नीचलक्ष्ये तथा चोर्ध्वं समलक्ष्ये समं भवेत्॥ १४९॥**

*—मानसो० २/१/४*

**नीतिप्रकाशिकायां धनुषश्चतुर्दश गतयः—**

**लक्ष्यस्य प्रतिसन्धानमाकर्षणविकर्षणे। पर्याकर्षानुकर्षौ च मण्डलीकरणं तथा॥ १९॥**
**आसन्नदूरपातौ च पृष्टमध्यमपातने। एतानि वल्गितान्याहुश्चतुर्दश धनुर्विदः॥ २०॥**

*—नी०प्र०अ० २०*

**व्यायः[1]**

**कैशिकः केशमूले वै शरशृङ्गे च सात्विकः। श्रवणे वत्सकर्णश्च ग्रीवायां भरतो भवेत्॥ ९२॥**
**अंसके स्कन्धनामा च व्यायाः पञ्च प्रकीर्तिताः।**
**कैशिकश्चित्रयुद्धेषु ह्यधो लक्ष्येषु सात्विकः। वत्सकर्णः सदा ज्ञेयो भरतो गूढभेदने॥ ९३॥**
**दृढभेदे च दूरे च स्कन्धनामानमुद्दिशेत्।** *—वा० ध०*

**मानसोल्लासे—**

**आकृष्टसायकं मुष्टिं कर्णाग्रस्योर्ध्वमङ्गुले। विन्यस्य दर्शयेत् सोऽयं कैशिकं नीचवेधने॥ १२४॥**
**कर्णाग्रचुम्बितं मुष्टिं कृत्वा सायकपीडनम्। सात्वतं दर्शयेत् सोऽयं पूर्ववन्नीचलक्ष्यके॥ १२५॥**
**कर्णनाभिसमं मुष्टिं कृत्वा मार्गणगर्भितम्। वार्षगण्यं प्रत्युञ्जीत सोऽयं लक्ष्ये समे नृपः॥ १२६॥**

---

तथा ऊपर स्थित लक्ष्य का ऊर्ध्वसन्धान से भेदन करे॥ १४८॥

ऊँचा और दूर लक्ष्य होने पर नीच सन्धान, नीचा लक्ष्य होने पर ऊर्ध्वसन्धान और समलक्ष्य होने पर समसन्धान का प्रयोग करें॥ १४९॥

**नीतिप्रकाशिका में धनुष की चौदह गतियाँ**—लक्ष्य के प्रतिसन्धान, आकर्षण, विकर्षण, पर्याकर्षण, अनुकर्षण, मण्डलीकरण, पूरण, स्फारण, धूनन, भ्रामण, आसन्नपात, दूरपात, पृष्ठपात और मध्यपात—ये चौदह गतियाँ धनुष की धनुर्विद्याविशारदों द्वारा कही गयी हैं।

धनुष की प्रत्यञ्चा को खेंचना व्याय कहलाता है। इनमें प्रत्यञ्चा को केशमूल तक खेंचना कैशिक, शिखा तक सात्विक, कान तक वत्सकर्ण, ग्रीवा तक भरत और कन्धे तक खेंचना स्कन्धनामा, ये पाँच व्याय होते हैं॥ ९२½॥

कैशिक व्याय का प्रयोग चित्रयुद्धों में, नीचे के लक्ष्यों में सात्त्विक, गूढभेदन में वत्सकर्ण और भरत तथा दृढ़भेद एवं दूर से वेध करने में स्कन्धनामा व्याय को प्रयुक्त करे॥ ९३½॥

**मानसोल्लास में**—बाणसहित गुणमुष्टि को खेंचकर कान से भी एक अङ्गुल आगे रखकर राजा नीचे लक्ष्य को भेदने के लिये प्रयुक्त कैशिक व्याय का प्रदर्शन करे॥ १२४॥

कान के अग्रभाग तक शरसहित मुष्टि को लाकर पूर्ववत् नीचे लक्ष्य को वेधने के लिये सात्वत को प्रदर्शित करे॥ १२५॥

कान के छिद्र तक शरसन्धान करके समलक्ष्य के लिये राजा वार्षगण्य (वत्सकर्ण) का प्रयोग करे॥ १२६॥

---

१. प्रत्यञ्चाकर्षणं व्याय उच्यते।

व्याय (धनुष की डोरी खींचना)
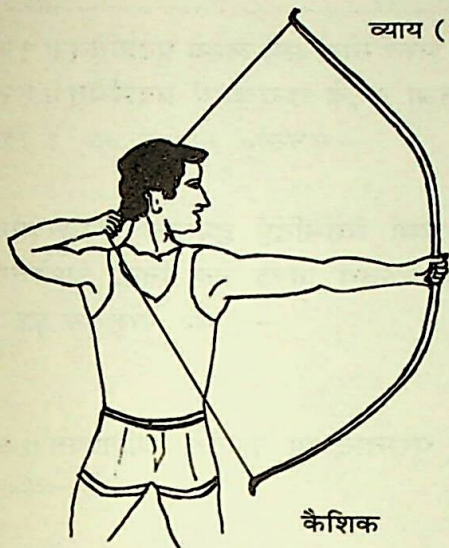
कैशिक
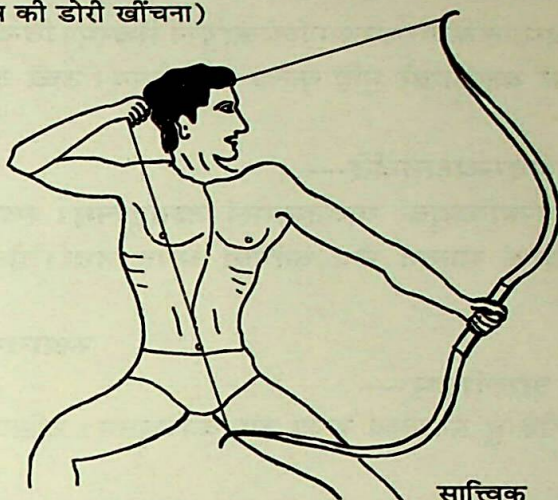
सात्त्विक
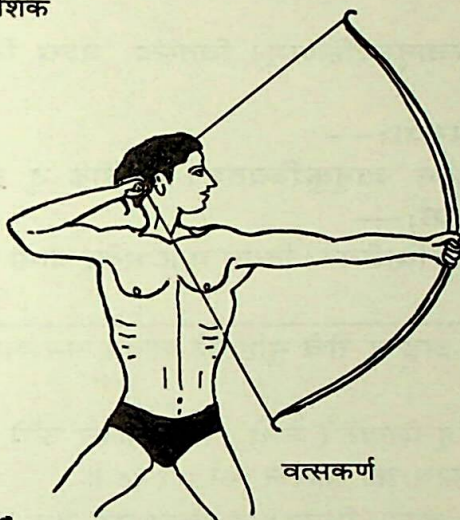
वत्सकर्ण
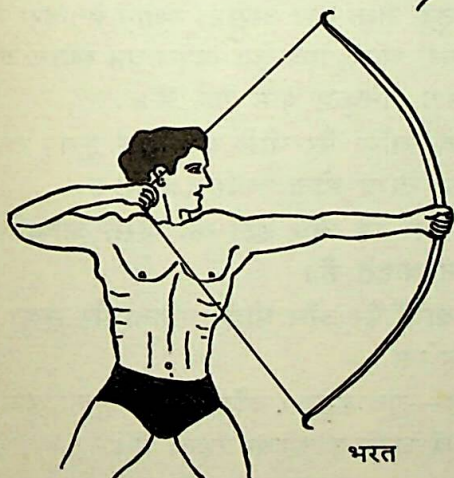
भरत
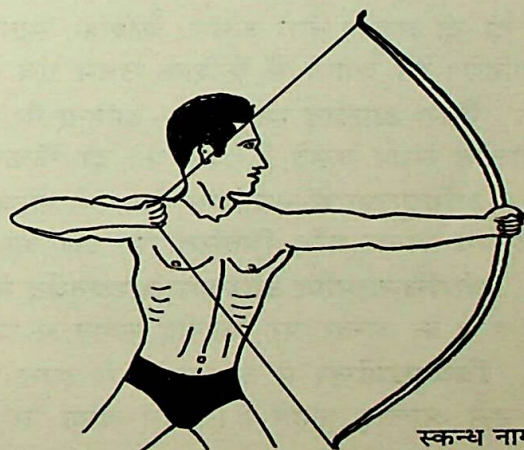
स्कन्ध नामा

**अधस्तात् कर्णरन्ध्रस्य मुष्टिमेकाङ्गुले स्थिरम्। विन्यस्य भरतं सोयं समे लक्ष्ये प्रदर्शयेत्॥ १२७॥**
**अपरे बाहुशिखरे मुष्टिं कृत्वा समार्गणम्। उच्च दूरे तथा लक्ष्ये छन्दव्यायं प्रदर्शयेत्॥ १२८॥**

*—मानसो० भा० २ अ० १ विं० ४*

**जामदग्न्यधनुर्वेदे—**

**केशान्ताच्चिबुकं यावदन्तरालं दशाङ्गुलम्। स्थानं चैषां विनिर्दिष्टं द्व्यङ्गुलं द्व्यङ्गुलमधः॥**
**कौशिकं सात्वतं चैव वार्षिघ्नं भारतं तथा। छेदं च पञ्चमं प्रोक्तं ज्ञेयं निन्द्यं यथोत्तरम्॥**

*—राज० परशुराम पृष्ठ ११९*

## स्थानम्

**१. आलीढम्—**

**आलीढे तु प्रकर्तव्यं सव्यं चानुकुञ्चितम्। दक्षिणन्तु पुरस्ताद् वा दूरपाते विशिष्यते॥ ७८॥**

*—वा० ध०*

**अग्निपुराणे—**

**हलाकृतिमयं यच्च स्तब्धजानूरुदक्षिणम्। वितस्त्यः पञ्च विस्तारे तदालीढं प्रकीर्तितम्॥**

*—अ० २४९*

**वीरचिन्तामणिशार्ङ्गधरयोः—**

**अग्रतो वामपादं च दक्षिणं जानुकुञ्चितम्। आलीढे तु प्रकर्तव्यं हस्तद्वयसुविस्तरम्॥**

**विष्णुधर्मोत्तरेऽयमधिकः—**

**नमिता पूर्वजङ्घा च सदालीढे विधीयते। तिर्यग् गतो भवेद् वामो दक्षिणोऽपि भवेद् ऋजुः॥ ५॥**

*—वि० ध० व० २ अ० १७९*

---

कान के छिद्र से एक अङ्गुल नीचे मुष्टि को लाकर सम लक्ष्य के लिये भरत नामक व्याय को दिखलाये॥ १२७॥

मुष्टि को शरसहित बाहू शिखर (कन्धे) तक लाकर ऊँचे और दूर स्थित लक्ष्य के लिये छन्दव्याय (स्कन्धनाम) व्याय का प्रदर्शन करे॥ १२८॥

**जामदग्न्यधनुर्वेद में**—केश (शिखा) से लेकर ठुड्डी तक दश अङ्गुल स्थान है। इस स्थान में दो-दो अङ्गुल नीचे क्रमशः कैशिक, सात्वत, वार्षिघ्न, भारत एवं छेद व्याय का स्थान जानना चाहिये। इन व्यायों में कैशिक उत्तम एवं अन्य क्रमशः निकृष्ट कहे गये हैं॥

**पैंतरा आलीढ़ स्थान में**—दाहिना पैर आगे करके बाँया पैर पीछे की ओर झुका रहे इसे आलीढ़ स्थान कहते हैं। शर को दूर फैंकने में इससे खड़ा होना चाहिये॥ ७८॥

**अग्निपुराण में**—दाहिना पैर आगे सीधा करके स्थिर रहे और हल की जैसी आकृति पैरों की एवं अन्तर पाँच वितस्ति रहे, इसे आलीढ़ स्थान कहते हैं।

**वीरचिन्तामणि और शार्ङ्गधरधनुर्वेद में**—आगे बायाँ पैर और पीछे दाहिना पैर झुका हुआ दो हाथ के अन्तर पर आलीढ़ स्थान में करना चाहिये॥

**विष्णुधर्मोत्तर में** अग्निपुराण से इतना अधिक है—पूर्वजङ्घा (बाँया पैर) झुका हुआ रहे तो इसे आलीढ़ कहते हैं। इसमें बाँया पैर तिरछा एवं दाहिना सीधा रहता है।

स्थान (पवित्रा)
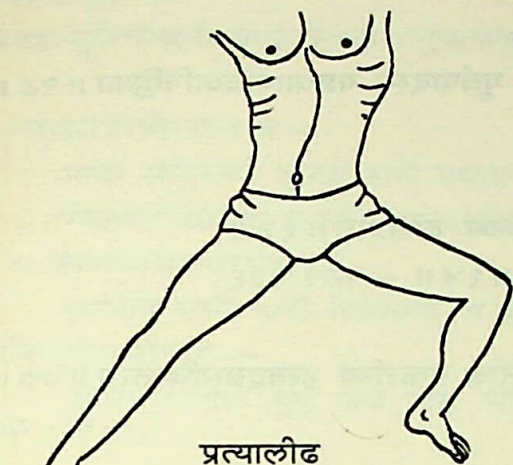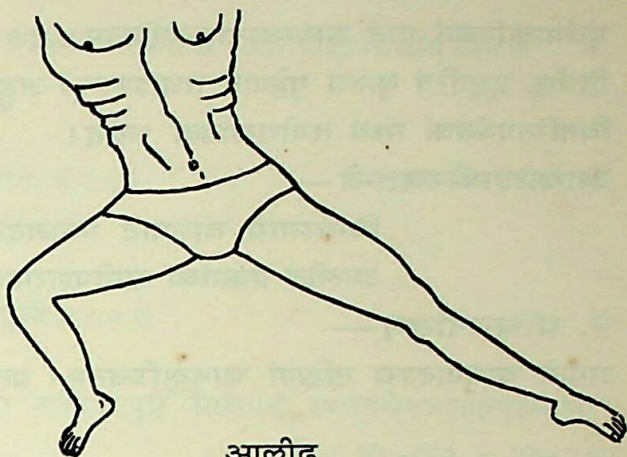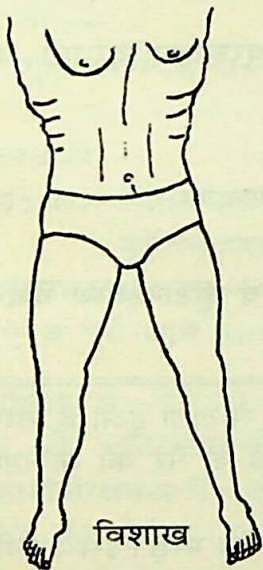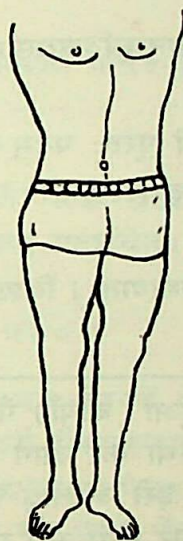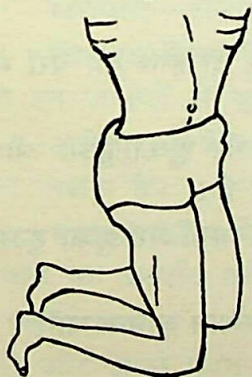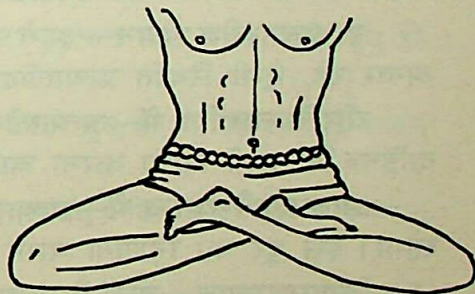
**मानसोल्लासे—**

पूर्वमाकुञ्चितं पादं चापस्थानाङ्गयोजितम्॥ ९७॥

तिर्यक् प्रसारितं कृत्वा पृष्ठेपादं तथाऽपरम्। अङ्गुष्ठः पूर्वपादस्य पश्चात्पादकनिष्ठिका॥ ९८॥

वितस्तिपञ्चकं मध्यं तयोरालीढकं भवेत्।

**आकाशभैरवतन्त्रे—**

विन्यस्याग्रे वामपादं पश्चादाकुञ्च्य दक्षिणम्॥ १३॥

आलीढं प्रकर्तव्यं समीपशरपातने॥ १४॥ *—पटल १३६*

**२. प्रत्यालीढम्—**

अग्रतो वामपादश्च दक्षिणं चानुकुञ्चितम्। प्रत्यालीढं प्रकर्त्तव्यं हस्तद्वयसविस्तरम्॥ ७७॥

*—वा० ध०*

**वीरचिन्तामणौ—**

प्रत्यालीढे तु कर्त्तव्यं सव्यं चैवानुकुञ्चितम्। दक्षिणं तु पुरस्तद्वद् दूरपाते प्रशस्यते॥

**आकाशभैरवतन्त्रे—**

प्रत्यालीढे प्रकर्त्तव्यं दक्षिणं पुरतः पदम्॥ १४॥

वामं त्वाकुञ्चितं कार्यं सुदूरशरपातने। *—आकाश भै० पटल १३६*

**३. विशाखस्थानम्—**

पादौ सविस्तरौ कार्यौ समौ हस्तप्रमाणतः। विशाखस्थानकं ज्ञेयं कूटलक्ष्यस्य वेधने॥ ७९॥

*—वा० ध०*

---

**मानसोल्लासे**—पहला मुड़ा हुआ (बायाँ) पैर जोकि धनुष से लगा हुआ है तिरछा (पीछे की ओर) करके दूसरे पैर को सीधा कर आगे के पैर से पीछे के पैर की कनिष्ठा अङ्गुली तक पाँच वितस्ति का अन्तर रहे, इसे आलीढ़ कहते हैं।

**आकाशभैरवतन्त्र में**—बायाँ पैर आगे और पीछे दाहिने पैर को मोड़ें। इसे आलीढ-स्थान कहते हैं। इसका उपयोग निकट लक्ष्य के लिये होता है।

**२. प्रत्यालीढ स्थान**—आगे बायाँ पैर और पीछे दाहिना पैर झुकाकर दो हाथ का पैरों में अन्तर रहे, ऐसी स्थिति प्रत्यालीढ कहलाती है॥ ७७॥

**वीरचिन्तामणि में**—प्रत्यालीढ स्थान में स्थित होने के लिये बायाँ पैर झुका हुआ और दाहिना पैर आगे सीधा करना चाहिये। इससे दूर लक्ष्य का वेधन करते हैं।

**आकाशभैरवतन्त्र में**—प्रत्यालीढ में दाहिना पैर आगे करना चाहिये। बायाँ पैर झुका हुआ रहेगा। इसे दूर का निशाना मारने में प्रयोग करना चाहिये॥ १४॥

**विशाखस्थान**—दोनों पैर एक हाथ के अन्तर पर सीधे रहें, इसे विशाखस्थान जानना चाहिये। इससे कूटलक्ष्य का वेधन किया जाता है॥ ७९॥

**अग्निपुराणे—**

**बाह्याङ्गुलिस्थितौ पादौ स्तब्धजानुबलावुभौ। त्रिवितस्त्यन्तरा स्थानमेतद्वैशाखमुच्यते॥**

*—अ० पु० अ०*

**आकाशभैरवतन्त्रे—**

**पादौ सविस्तरौ कृत्वा समौ हस्तप्रमाणतः॥१५॥** —आ० भै० प० १३६

**विशाखस्थानकं कार्यं कूटलक्ष्यविभेदने।**

**४. समपादस्थानम्—**

**समपादे समौ पादौ निष्कम्पौ च सुसङ्गतौ॥८०॥** *—वा० ध०*

**विष्णुधर्मोत्तरे—**

**पार्ष्णिपादतले पृष्ठं सर्वे स्युः संहिता यदि। दृष्टं सामपदं स्थानमेतल्लक्षणस्तथा॥**

*—वि० ध० ख० २ अ० १७९*

**अग्निपुराणे—**

**अङ्गुष्ठगुल्फपार्ष्ण्यङ्घ्रः शिलष्टाः स्युः सहिता यदि। दृष्टं समपदं स्थानमेतल्लक्षणस्तथा॥**

*—अ० २४९*

**मानसोल्लासे—**

**वितस्त्यन्तरमात्रौ तु समौ पादौ प्रयोजयेत्॥१००॥**
**पूर्ववत् पादसंस्थानं समपादं प्रदर्शयेत्।**

**५. असमपादस्थानम्—**

**असमे च पुरो वामे हस्तमात्रणतं वपुः॥८०॥** *—वा० ध०*

---

**अग्निपुराण में**—पैरों की अङ्गुलियाँ बाहर की ओर रहें, ऐसी स्थिति में दोनों पैर तीन वितस्ति (डेढ हाथ) के अन्तर पर सीधे खड़े रहें, इसे वैशाखस्थान कहते हैं।

**आकाशभैरवतन्त्र में**—दोनों पैर एक हाथ प्रमाण फैलाकर विशाखस्थान की स्थिति बनानी चाहिये। यह कूट (छिपा हुआ, गुप्त) लक्ष्य को भेदने में प्रयुक्त होता है।

**समपाद**—समपादस्थान में दोनों पैर मिले हुए बिना हिलाये रहते हैं॥८०॥

**विष्णुधर्मोत्तर में**—अङ्गूठे, पैरों के तलवे (पञ्जे) और पृष्ठभाग यदि सब मिले हुए हों तो इन लक्षणों से युक्त सामपद स्थान होता है।

**अग्निपुराण में**—अङ्गूठे, टखने, जंघायें यदि सब परस्पर मिले हुए हों तो यह समपद स्थान का लक्षण है।

**मानसोल्लास में**—एक वितस्ति अन्तर पर पूर्ववत् (वैशाखवत्) पैरों को रखकर समपाद स्थान का प्रदर्शन करे॥१००½॥

**असमपाद**—असमपाद में पैरों का अन्तर एक हाथ और बायाँ पैर आगे तथा शरीर आगे की ओर झुका हुआ रहता है॥८०॥

**६. दर्दुरक्रमस्थानम्—**

आकुञ्चितोरू द्वौ यत्र जानुभ्यां धरणीं गतौ। दर्दुरक्रममित्याहुः स्थानकं दृढभेदने॥ ८१॥

*—वा० ध०*

**मानसोल्लासे—**

बाह्ये तौ वलितौ पादौ जानुनी च भुवि स्थिते॥ १०४॥
आसनं दार्दुरं कृत्वा प्रौढिं प्रकटयेन्नृपः। *—मानसो० भा० २ अ० १ वि० ४*

**आकाशभैरवे—**

वपुराकुञ्च्यं चारु द्वौ जानुनी धरणीं गते। कृत्वा कार्यं दर्दुराख्यं स्थानं कण्टकभेदने॥ १७॥

*—पटल १३६*

**७. गरुडक्रमम्—**

सव्यं जानुगतं भूमौ दक्षिणं च सकुंचितम्। अग्रतो यत्र दातव्यं तं विद्याद्गरुडक्रमम्॥ ८२॥

*—वा० ध०*

**मानसोल्लासे—**

वामं जानु क्षितौ कृत्वा दक्षिणं पादमुत्कटम्।
गरुडस्यासने स्थित्वा गरुडान्सायकान्क्षिपेत्॥ १०६॥ *—मानसो० भा० २ अ० १ वि० ४*

**८. पद्मासनम्—**

पद्मासनं प्रसिद्धं तु ह्युपविश्य यथाक्रमम्। धन्विनां तत्तु विज्ञेयं स्थानकं शुभलक्षणम्॥ ८३॥

*—वा० ध०*

**मानसोल्लासे—**

अधः पादतले कृत्वा पद्मासनमथाचरेत्॥ १०५॥

---

**दर्दुरक्रमस्थान में**—दोनों उरु (जाँघ) मोड़कर दोनों घुटनों को भूमि पर टिकाकर बैठना दर्दुरक्रमस्थान कहलाता है। इससे दृढ़ लक्ष्य का भेदन किया जाता है॥ ८१॥

**मानसोल्लास में**—पैरों को बाहर की ओर मोड़कर दोनों घुटने भूमि पर टिकाकर दार्दुर आसन की स्थिति बनाकर राजा अपना नैपुण्य प्रकट करे।

**आकाशभैरवे**—शरीर को झुकाकर और जाँघों को मोड़कर दोनों घुटने भूमि पर टिकाये। इस दर्दुर नामक स्थान से स्थित होकर कण्टक (कूट) लक्ष्य का भेदन किया जाता है॥ १७॥

**गरुडक्रमम्**—बायें पैर का घुटना भूमि पर टिका हुआ और दाहिना पैर मुड़ा हुआ आगे रहेगा, इसे गरुडक्रमस्थान कहते हैं॥ ८२॥

**मानसोल्लास में**—बायें घुटने को भूमि पर टिकाकर दाहिने को उत्कट आसन की भाँति (आधा मोड़कर) करके गरुडासन में स्थित होकर गरुडसायकों (बाणविशेष) को फैंके॥ १०६॥

**पद्मासनम्**—बैठकर पैर के ऊपर पैर रखकर स्थित होना नामवाला पद्मासन तो प्रसिद्ध है ही। यह धनुषधारियों के लिये शुभ आसन है॥ ८३॥

**मानसोल्लास में**—नीचे पैरों को स्थित (एक दूसरे के ऊपर) करके पद्मासन करे॥ १०५॥

मण्डल
जात
हंसपाद
स्वस्तिक दर्दुर
संपुट
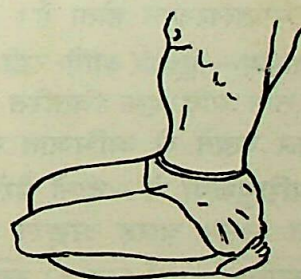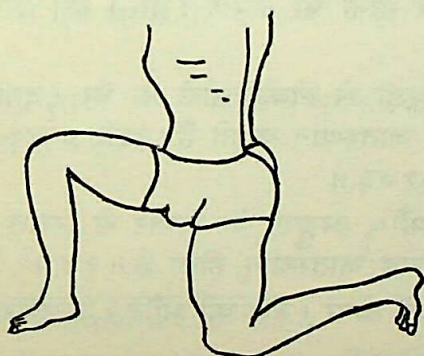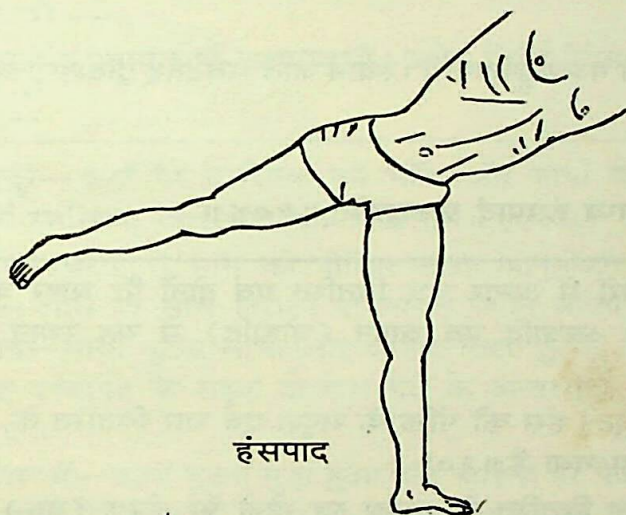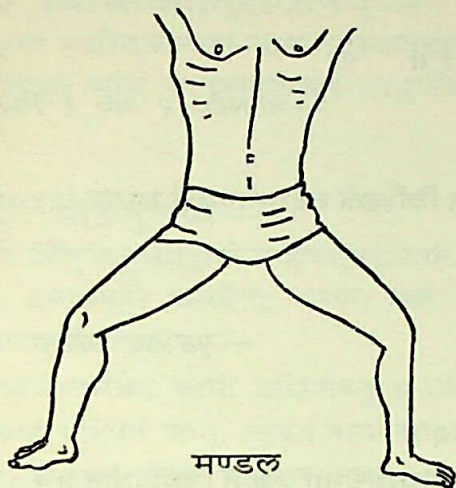
**९. मण्डलम्—**

**चतुर्वितस्तिकं मध्यं तिर्यक् पादावुभावपि॥ १०१॥**

**अस्त्रादिवाहने शस्तं मण्डलं स्थानकं विदुः।** *—मानसो० २ अ० १ वि० ४*

**अग्निपुराणे—**

**हंसपंक्त्याकृतिसमे दृष्येते यत्र जानुनी। चतुर्वितस्ति विच्छिन्ने तदेतन्मण्डलं स्मृतम्॥ १०१॥**

*—अ० २४९*

**वैजयन्तीकोशे—**

**त्रिवितस्त्यन्तरौ पादौ मण्डलं तोरणाकृतिः।** *—पृष्ठ ८६ क्षत्रियाध्यायः*

**१०. जातम्—**

**पूर्वाङ्‌घ्रिपार्ष्णेरारभ्य पाश्चात्याङ्गुष्ठकावधि॥ १०२॥**

**वितस्तिमात्रं मध्यं चेज्जातं स्थानं प्रदर्शयेत्। जातस्य वैपरीत्येनाभिजातं नियोजयेत्॥ १०३॥**

*—मानसो०*

**अग्निपुराणे—**

**गुल्फौ पार्ष्णिग्रहौ चैव स्थितौ पञ्चाङ्गुलान्तरौ। स्थानं जातं भवेदेतद् द्वादशाङ्गुलमायतम्॥ १४॥**

*—अग्नि० अ० २४९*

**११. हंसपादस्थानम्—**

**पाश्चात्याङ्‌घ्रि समुत्क्षिप्य हंसपादं प्रकाशयेत्॥ १०४॥** *—मानसो० पृष्ठ-१६३*

---

**मण्डलस्थान**—दोनों पैरों में अन्तर चार वितस्ति एवं दोनों पैर बाहर को तिरछे रहें तो इसे मण्डलस्थान कहते हैं। अस्त्रादि एवं वाहन (घोड़ादि) में यह स्थान उपयुक्त जानना चाहिये॥ १०१½॥

**अग्निपुराण में**—दोनों घुटने हंस की पंक्ति के सदृश एवं चार वितस्ति के अन्तर पर स्थित हों तो यह मण्डलस्थान कहा गया है॥ १०१॥

**वैजयन्तीकोश में**—तीन वितस्ति के अन्तर पर दोनों पैर तोरण (द्वार) की आकृति में हों तो मण्डलस्थान होता है।

**जातम्**—पूर्व (आगे रखे हुए, बायें) पैर की एड़ी से लेकर पीछे के पैर (दाहिने) के अङ्गूठे तक यदि एक वितस्ति का अन्तर हो तो उसे जातस्थान कहते हैं। इसी प्रकार पैरों को बदलकर रखने से अभिजात स्थान होता है॥ १०२-१०३॥

**अग्निपुराण में**—दोनों पैरों के टखने और एड़ियाँ ५ अङ्गुल के अन्तर से स्थित हों और पैरों का अन्तर बारह अङ्गुल (१ वितस्ति) हो तो यह जातस्थान होता है॥ १४॥

**हंसपाद**—पूर्व (जात) स्थान से ही पीछे के पैर को ऊपर (हंस की भाँति) उठाकर हंसपाद स्थान को दिखाये॥ १०४॥

**१२. स्वस्तिकदर्दुरस्थानम्—**

दक्षिणं स्वस्तिकाकारं वामं दर्दुरवत्पदम्। आसनं मृगया योग्यं कुर्यात्स्वस्तिकदर्दुरम्॥ १०७॥
आपीड्य भूमिं जानुभ्यामासनं जानुपीडनम्। अनुत्ताने‌ऽथवोत्ताने शयने शयनासनम्॥ १०८॥

*—मानसो० पृ० १६३*

## विकटम्

**१३. अग्निपुराणे—**

ऋजुजानुर्भवेद्वामो दक्षिणः सुप्रसारितः। अथवा दक्षिणं जानुं कुब्जं भवति निश्चितम्॥ १५॥
दण्डायतो भवेदेषः चरणः सह जानुना। एवं विकटमुद्दिष्टं द्विहस्तान्तरमायतम्॥ १६॥

**विष्णुधर्मोत्तरे—**

कुब्जजानुर्भवेद् वामो दक्षिणस्तु प्रसारितः॥ ७॥
अथवा दक्षिणं जानुः कुब्जं भवति निश्चलम्। भवेद्दण्डायतो वामश्चरणः सह जानुना॥ ८॥
एवं विकच्छमुद्दिष्टं[1] द्विहस्तान्तरमायतम्[2]। *—वि० ध० खण्ड २, अ० १७९*

## सम्पुटम्

**१४. अग्निपुराणे—**

जानुनी द्विगुणे स्यातामुत्तानौ चरणावुभौ। अनेन विधियोगेन सम्पुटं परिकीर्तितम्॥ १७॥

*—अग्नि पुराण, अ० २४९*

---

**स्वस्तिकदर्दुर**—दायाँ पैर स्वस्तिक की भाँति और बायाँ दर्दुर के समान करके शिकार के लिये उपयुक्त स्वस्तिक दर्दुरस्थान को दिखलाये॥ १०७॥

**जानुपीडनम्**—घुटनों से भूमि को पीड़ित करके जानुपीडन आसन को करे।

**शयनासन**—औंधे या सीधे लेटकर शयनासन स्थान बनता है।

**विकटस्थान**—बायाँ घुटना सीधा और दाहिना फैला हुआ, अथवा दाहिना पैर झुका हुआ स्थिर रहे तो यह दण्डायत के सदृश दो हाथ पैरों के अन्तरयुक्त विकट नामवाला स्थान कहा गया है॥ १५-१६॥

**विष्णुधर्मोत्तर में**—बायाँ घुटना मुड़ा हुआ और दाहिना पैर फैला हुआ अथवा दाहिना घुटना झुका हुआ एवं बायाँ पैर दण्ड के सदृश दो हाथ के अन्तर पर रहे तो इसे विकच्छस्थान कहते हैं।

**अग्निपुराण में**—सम्पुट—घुटनों को मोड़कर बज्रासन की भाँति बैठना सम्पुट-स्थान कहलाता है॥ १७॥

---

१. विष्णुधर्मोत्तरस्यैव स्पष्टः पाठः।
२. आलीढप्रत्यालीढयोरेव वर्णनमत्र प्रतिभाति।

## गुप्तकालीन स्वर्णमुद्राओं में प्रदर्शित स्थान ( पवित्रे )

आलीढ़

प्रत्यालीढ़

असमपाद मण्डल जात

# पञ्चम अध्याय

इस अध्याय में धनुष-बाण का अन्तिम उद्देश्य लक्ष्यसन्धान (निशाना मारना) के अनेक भेद-प्रभेदों का कथन किया है। चार प्रकार के लक्ष्य—चल, अचल, चलाचल और द्वयचल होते हैं। साठ धनुष की दूरी पर लक्ष्यसन्धान ज्येष्ठ, चालीस का मध्य और बीस का कनिष्ठ कहलाता है। लक्ष्य-भेदन के लिए पुरुष जितना ऊँचा सोलह अङ्गुल प्रमाण का गोलाकार लक्ष्य बनाना चाहिये। इसके मध्य में दो अङ्गुल का दूसरा गोला होता है। इसे सूक्ष्म लक्ष्य कहते हैं। शरों की उन्मुखी इत्यादि दश गतियाँ होती हैं। इसी प्रकार सूचीमुखी, मीनपुच्छा, भ्रमरी ये तीन हीन गतियाँ होती हैं। इनमें बाण सीधा न जाकर, ऊपर, नीचे, दाहिने, बायें या तिरछा जाता है। ऊर्ध्वसन्धान, अधः सन्धान एवं समसन्धान तीन भेद सन्धान के कहे हैं।

विभिन्न प्रकार के बाण एवं गुणमुष्टि, धनुर्मुष्टि, व्याय तथा स्थानों के प्रयोग से दृढ़ लक्ष्यवेध, चल लक्ष्यवेध, स्थिर लक्ष्यवेध, चित्र लक्ष्यवेध तथा शब्दवेध इत्यादि का वेधन करने की अनेक विधियों का दिग्दर्शन इस अध्याय में किया है।

सर्वप्रथम विष्णुधर्मोत्तर का पाठ पुरातन होने से उद्धृत किया है। अग्निपुराण का पाठ उससे मिलता है। नीचे फुटनोट में पाठ भेद भी दे दिया है। अन्य शास्त्रों में वर्णित विधियों को भी विषय के स्पष्टिकरण के लिये संकलित किया है।

## लक्ष्यसन्धानम्

### विष्णुधर्मोत्तरे—खण्ड २ अध्याय १७९ ( अग्निपुराणे अ० २४९ )

**कार्मुकं भृगुवामेन[१] वामं[२] दक्षिणकेन वा। वैशाखेप्यथ वा जाते स्थितो[३] वाप्यथवायते[४] ॥ १२ ॥**
**गुणाग्रं[५] तु ततः कृत्वा कार्मुके प्रियकार्मुकः। अधः कोटिं[६] तु धनुषः फलदेशे[७] च पत्रिणः ॥ १३ ॥**
**धरण्यां स्थापयित्वा तु लालयित्वा तथैव च। भुजाभ्यामत्र कुब्जाभ्यां प्रकोष्ठाभ्यामरिंदम ॥ १४ ॥**
**न्यस्य बाणं धनुः श्रेष्ठं पुङ्खदेशे च पत्रिणः। विन्यासो धनुषश्चैव द्वादशाङ्गुलमन्तरः ॥ १५ ॥**
**तयोर्भार्गव[८] कर्त्तव्यो नातो हीनो न चाधिकः। निवेश्य कार्मुकं कण्ठे[९] नितम्बे शरसङ्गरम् ॥ १६ ॥**
**उत्क्षिपेदस्थिरं[१०] हस्तमन्तरेणाक्षिकर्णयोः। पूर्वेण मुष्टिना ग्राह्यः स्तनाग्रं[११] दक्षिणः शरः ॥ १७ ॥**

---

**विष्णुधर्मोत्तर में**—हे ब्रह्मन्! योद्धा को चाहिये कि बायें हाथ में धनुष और दाहिने में बाण लेकर वैशाख या जात अथवा आयत स्थान में स्थिर होकर ॥ १२ ॥ धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर धनुष का नीचेवाला सिरा और बाण का फल भी भूमि पर टिकाकर उसे मुड़ी हुई भुजाओं और प्रकोष्ठ (पहुँचे) से ऊपर उठाकर बाण को धनुष पर चढ़ावे। धनुष एवं प्रत्यञ्चा का (चढ़ाने पर) अन्तर १२ अङ्गुल होना चाहिये। न इससे कम और न ही अधिक ॥ १३-१४-१५½ ॥

तथा उस अवस्था में बाण फेंके। धनुष को कण्ठ के समीप लाकर एवं पीठ पर तरकस

---

**अग्निपुराणे पाठभेदाः—**

१. गृह्य २. बाण ३. आयतौ ४. स्थितौ ५. गुणातन्तुं ६. कटिन्तु ७. फलदेशन्तु ८. ज्यया विशिष्टं ९. नाभ्यां १०. उत्थित ११. स्तनाग्रे दक्षिणे।

**हरणं तु ततः कृत्वा शीघ्रं पूर्वां[१] प्रसारयेत्। नात्यन्तरा नैव बाह्या नोर्ध्वगा नाऽधरास्तथा॥ १८॥**
**न च कुब्जा न चोत्ताना न चला नातिवेष्टिता। समा स्थैर्यगुणोपेता पूर्वे दण्डमिव स्थिता॥ १९॥**
**छादयित्वा ततो लक्ष्यं पूर्वेणानेन मुष्टिना। [२]तरसा तूत्थितो यत्नात्त्रिकोणविनतिस्थितः॥ २०॥**
**स्त्रस्तांशो निश्चलग्रीवो मयूरांचितमस्तकः। ललाटनासावक्त्रांसः [३]कूर्परश्च समं भवेत्॥ २१॥**
**अन्तरं [४]त्वङ्गुलं ज्ञेयं चिबुकस्यांसकस्य च। प्रथमे त्र्यङ्गुले विन्द्याद् द्वितीये द्व्याङ्गुलं स्मृतम्॥ २२॥**
**तृतीयेऽङ्गुलमुदिष्टं चायतं चिबुकांसयोः। गृहीत्वा सायकं तत्र[५] तर्जन्यङ्गुष्ठमेव च॥ २३॥**
**अनामया ततो गृह्य पुनर्मध्यमयापि च। तावदाकर्षयेद् योगाद् यावद् बाणः सुपूरितः॥ २४॥**
**एवं विधमुपक्रम्य मोक्तव्यो विधिवत् खगः। दृष्टि मुष्टिहतं लक्ष्यं भिन्द्याद् बाणेन भार्गव॥ २५॥**
**मुक्त्वा चापं[६] वाम हस्तं क्षिपेत् वेगेन पृच्छतः[७]। एतदुच्छेदमिच्छन्ति ज्ञातव्यं हि त्वया द्विज॥ २६॥**

---

बाँधकर दाहिने ऊपर उठे हुए हाथ को आँख एवं कान के मध्य में स्थिर करे। पहले बाण मुट्ठी में पकड़े और उसे दाहिने स्तन की सीध में कर ले। उसके पश्चात् बाण को प्रत्यञ्चा पर चढ़ाकर उसे खेंचे॥ १६–१७½॥

धनुष की डोरी न धनुष से बाहर गई हुई हो, न भीतर, न ऊपर, न नीचे, न तिरछी, न उत्तान, न हिलती हुई और न ही बहुत अधिक बटी हुई हो अपितु सभी स्थानों में सम, सुदृढ़, दण्ड के समान सीधी होनी चाहिये॥ १८–१९॥

प्रत्यञ्चा चढ़ाने के पश्चात् पूर्व कही हुई मुष्टि के अनुसार लक्ष्य को मुष्टि से ढककर यत्नपूर्वक अपनी छाती ऊपर की ओर उठाकर शरीर को तिरछी अवस्था में रखना चाहिये॥ २०॥

इस स्थिति में कन्धा ढीला, ग्रीवा निश्चल और मस्तक मोर के सदृश (सामने) रहेगा। ललाट, नाक, मुख, कन्धा और कोहनी सभी सम स्थिति में रहेंगे॥ २१॥ ठोड़ी और कन्धे का अन्तर तीन अङ्गुल रहेगा। पहली बार यह अन्तर ३ अङ्गुल दूसरी बार २ अङ्गुल और तीसरी बार ठुड्डी और कन्धे का अन्तर १ अङ्गुल रहता है॥ २२½॥

बाण को पंख की ओर से तर्जनी और अङ्गूठे से पकड़ें। उसके पश्चात् अनामिका और पश्चात् मध्यमा अङ्गुली से भी पकड़ें। बाण को तब तक खींचे जबतक पूरा धनुष पर न आ–जाये॥ २३–२४॥

इस विधि से धनुष पर बाण चढ़ाकर छोड़ना चाहिये॥ ½॥ हे भार्गव! जब लक्ष्य (निशाना) दृष्टि और मुष्टि से ढक लिया जाये तब लक्ष्य का भेदन करे॥ २५॥

बाण छोड़ने के पश्चात् तुरन्त ही बायें हाथ को धनुषसहित पीछे की ओर को बलपूर्वक फेंके, क्योंकि शत्रु इसी हाथ को काटना चाहते हैं। हे द्विज! यह बात तुम्हें अवश्य जान लेनी चाहिये॥ २६॥

---

१. पूर्वं।
२. उरसा तूत्थितो यन्ता त्रिकोणविनतस्थितः।
३. ललाटनासावक्त्रांशाः कर्पुरश्चसमं भवेत्।
४. त्र्यङ्गुलं ५. पुङ्खात्। ६. मुक्त्वा तु पश्चिमं हस्तं। ७. पृष्ठतः।

कर्पूरं[1] त्रिविधं कार्यमाकृष्टन्तु धनुष्मता। [2]तत्रापि मुक्तके कार्यमक्षश्लिष्टस्तु मध्यमम्॥ २७॥
[3]ज्येष्ठं प्रकृष्टं विज्ञेयं धनुःशास्त्रविशारदः। ज्येष्ठस्तु पावको[4] ज्ञेयो भवेद् द्वादशमुष्टयः॥ २८॥
एकादश तथा साध्यः कनीयान् दशमुष्टयः।

## विष्णुधर्मोत्तरे—खण्ड २ अध्याय १८०

[5]पूर्णायुधो भृतिं कृत्वा ततो मांसैर्गतायुषाम्। [6]वराहमृगमेषाणां महिषाद्यैस्तथा द्विज॥ १॥
[7]मुनिधौतं ततः कुर्याद् युग्यं भूपैर्विधानवित्। मृदुसंस्तरणोपेतं मृदु वल्गु च योजयेत्॥ २॥
ततो वाहं[8] समारुह्य दंशितः सुसमाहितः। [9]तूर्णमारुह्य बध्नीयाद् द्रढां कक्षां च दक्षिणाम्॥ ३॥
[10]वैकक्ष्यमपि तच्चापं धारयेद् यन्त्रसंस्थितम्। ततो समुद्धरेत बाणं[11] ऋणाद् दक्षिणपाणिना॥ ४॥
[12]तज्जवः सहितं सर्वं मध्ये संगृह्य धारयेत्। वामहस्तेन वैकक्ष्याद् धनुस्तस्मात् समुद्धरेत्॥ ५॥
[13]सुनिषण्णमणिर्भूत्वा गुणे पुङ्खं निवेशयेत्। संपीड्य सिंहकर्णेन पुंखेनापि समे दृढम्॥ ६॥
वामकर्णोपरिस्थं च फलं वामस्य धारणात्[14]। बलामध्यमया[15] तत्र वामाङ्गुल्या च धारयेत्॥ ७॥

---

धनुष खेंचते समय कोहनी को नीचे करले। बाण छोड़कर कोहनी को आँख से सटा लें। यह मध्यम श्रेणी का बचाव है और शत्रु के लक्ष्य से दूर रखना यह उत्तम है॥ २७½॥ उत्तम श्रेणी का बाण बारह मुष्टि (६० अङ्गुल) मध्यम बाण ग्यारह मुष्टि, (५५ अङ्गुल) और कनिष्ठ बाण दश मुष्टि (५० अङ्गुल) का होता है॥ २८½॥

**विष्णुधर्मोत्तर में**—पूर्ण आयुधों से युक्त होकर पूर्ण श्रम करके वराह, मृग, मेष, महिष आदि पशुओं के मांस से तर्पणादि क्रिया अन्य नृपों के साथ करें। (अग्निपुराण) ब्रह्मन्! द्विज को चाहिये पूरी लम्बाईवाले धनुष का निर्माण कराकर उसे अच्छी प्रकार धो-पोंछकर यज्ञभूमि में स्थापित करें तथा गदा आदि आयुधों को भली-भाँति साफ करे। तत्पश्चात् सुकोमल तीरों से भरा तरकस बाँधे। इसमें विलक्ष्य बाण भी सुरक्षित रहता है। तूणीर को पीठ की ओर दाहिनी काँख के पास दृढ़ता से बाँधे॥ १-२-३॥

उसके पश्चात् दाहिने हाथ से तूणीर से तीर निकाले और शीघ्रता से बायें हाथ से धनुष को मध्य में से पकड़कर उठाये। चित्त में विषाद न आने दे। उत्साहयुक्त होकर प्रत्यञ्चा पर बाण को चढ़ाकर सिंहकर्ण मुष्टि से पंखसहित डोरी को दबाकर समभाव से सन्धान करें॥ ६॥

यदि बायें हाथ से बाण को चलाना हो तो बायें हाथ में बाण ले और दाहिने हाथ से धनुष की मुट्ठी पकड़े। फिर प्रत्यञ्चा पर बाण को इस तरह रखे कि खींचने पर उसका फल या पुङ्ख बायें कान के समीप आ जाये उस समय बाण को बायें हाथ की (तर्जनी और अङ्गुष्ठ के अतिरिक्त) मध्यमा अङ्गुली से भी धारण किये रहे। बाण चलाने की विधि को जाननेवाला पुरुष उपर्युक्त मुष्टि के द्वारा धनुष को दृढ़तापूर्वक पकड़कर मन को दृष्टि के साथ ही लक्ष्यगत करके बाण को शरीर के दाहिने भाग की ओर रखते हुए लक्ष्य की ओर छोड़े।

---

१. कूर्परं तदधः कार्यमाकृष्टं तु धनुष्मता। २. ऊर्ध्वं विमुक्तके कार्यं लक्ष्य। ३. श्रेष्ठं। ४. सायको मध्य। ५. पूर्णायुधं द्विजः कृत्वा ततो मांसैर्गदायुधान्। ६-९. वराह.....इति विष्णुधर्मोतरेऽधिकम् सुनिर्धौतं धनुः कृत्वा यज्ञभूमौ विधापयेत्। मृदुसं स्तरोपेतमिति विष्णुधर्मोतरेऽधिकम् ततो बाणं समागृह्यं तूणमासाद्य। १०. विलक्ष्यमपि तत् बाणं तत्र चैव सुस्थितम्। ११. तूर्णाद्। १२. तेनैव। सर्वस्थाने शरीरमिति मध्यादनन्तरं पठितम्। १३. अविषण्ण। १४. धारयेत्। १५. वर्णान्।

मनोलक्ष्यगतं कृत्वा दृष्टिं[१] च सुविधानवित्। [२]दक्षिणे गात्रभागे तु बलामाशु विमोक्षयेत्॥ ८॥
ललाटपुटसंस्थानं दार्णी[३] लक्ष्ये निवेशयेत्॥ ९॥
आकृष्य ताड्येत्तत्र दण्डकं[४] षोडशाङ्गुलम्। मुक्त्वा बाणं ततः [५]पश्चाद्बलां शिक्षेत्तदा तदा॥ १०॥
विगृह्णीयात् मध्यमया ततोऽङ्गुल्या पुनः पुनः। अभिलक्ष्याक्षिपेत् [६]तूणांश्चतुरस्त्रं च दक्षिणम्॥ ११॥
चतुरस्त्रगतं [७]वैध्यमभ्यसेदादितः स्थितः। तस्मादनन्तरं तीक्ष्णं परावृत्तगतं[८] च यत्॥ १२॥
[९]निश्रमुन्नतवेद्यन्तमभ्यसेत् तुष्यकं ततः। वेध्यस्थानैष्वथैतेषु सन्यस्तपुटकं धनुः॥ १३॥
[१०]हस्तावापगतैः स्त्रस्तैर्जयेद् हस्तकैरपि। तस्मिन् वेध्यगते राम द्वे वेध्ये दृढसंज्ञिते॥ १४॥
द्वे वेध्ये पुष्करे[११] विद्धि द्वे तथा चित्रपुष्करे। [१२]चतुरस्त्रं स्थूलतीक्ष्णं च दृढवेध्ये प्रकीर्तिते॥ १५॥
[१३]चतुरस्त्रस्थूलतीक्ष्णं......( त्रुटितपाठः )......। निम्नं पुष्करमुद्दिष्टिं वेध्यमूर्ध्वगतं च यत्॥ १६॥
पुष्करेऽधमवेध्ये तु चित्रपुष्करसंज्ञके। एवं वेध्यगणं कृत्वा दक्षिणेनेतरेण च॥ १७॥
आरोहेत् प्रथमं धीरो जितलक्ष्यस्ततो नरः। एष एव विधिप्रोक्तस्तत्र दृष्टः प्रयोक्तृभिः॥ १८॥

---

धनुष का दण्ड इतना बड़ा हो कि भूमि पर खड़ा करने पर उसकी ऊँचाई ललाट तक आ जाये उसपर लक्ष्य वेध के लिये १६ अङ्गुल लम्बे चन्द्रक (चाँदमारी) पर सन्धान करे और उसे भली-भाँति खींचकर लक्ष्य पर प्रहार करे। इस तरह एक बाण का प्रहार करके फिर तत्काल ही तूणीर से अङ्गुष्ठ एवं तर्जनी अङ्गुली द्वारा बार-बार बाण निकाले। उसे मध्यमा अङ्गुली से भी दबाकर काबू में करे और शीघ्र ही दृष्टिगत लक्ष्य की ओर चलावे। चारों ओर तथा दक्षिण की ओर लक्ष्यवेध का क्रम जारी रखे। योद्धा पहले से ही चारों ओर बाण मारकर सब ओर के लक्ष्य को वेधने का प्रयास करे॥ ८-१०॥

तदनन्तर वह तीक्ष्ण, परावृत्त (घूमते हुए), निम्न, उन्नत तथा क्षिप्र वेध का अभ्यास बढ़ावे। वेध्य लक्ष्य के ये जो उपर्युक्त स्थान हैं, इनमें सत्त्व (बल एवं धैर्य) का पुट होते हुए विचित्र एवं दुस्तर रीति से सैकड़ों बार हाथों से बाणों के निकालने एवं छोड़ने की क्रिया द्वारा धनुष का तर्जन करे, उसपर टङ्कार दे॥ ११-१२॥

विप्रवर! उक्त वेध्य के अनेक भेद हैं। पहले जो दृढ़, दुष्कर तथा चित्रदुष्कर ये वेध्य के तीन भेद हैं। ये तीनों ही भेद दो-दो प्रकार के होते हैं। दुष्करवेध्य के भी निम्न और ऊर्ध्वगत ये दो भेद कहे गये हैं तथा चित्रदुष्कर वेध्य के मस्तक और मध्य ये दो भेद माने गये हैं॥ १३-१४॥

इस प्रकार इन वेध्यगणों को सिद्ध करके वीर पुरुष पहले दायें अथवा बायें पार्श्व से शत्रु-सेना पर चढ़ाई करे। इससे मनुष्य को अपने लक्ष्य पर विजय प्राप्त होती है। प्रयोक्ता पुरुषों ने वेध्य के विषय में यही विधी देखी और बताई है।

योद्धा के लिये उस वेध्य की अपेक्षा भ्रमण को अधिक उत्तम बताया गया है। वह लक्ष्य

---

१. मुष्टिना च विधानवित्। २. दक्षिणे गात्रभागे तु कृत्वा वर्णं विमोक्षयेत्। ३. दण्डं। ४. चन्द्रकं। ५. उलूका शिक्षस्तदा तथा। ६. क्षिपेत् तूणात्। ७. वेध्यं परावृत्तं गतं च यद्। ८. निम्नमुन्नतवेधञ्च अभ्यसेत् क्षिप्रकन्ततः। ९. वेध्यस्थानेष्वेतेषु सत्वस्य पुटकाद् धनुः। १०. हस्तावापशतैश्चित्रैस्तर्जयेद् दुस्तरैरपि। ११. दुष्करे। १२. न तु निम्नञ्च तीक्ष्णं च दृढवेध्यः प्रकीर्तितः। १३. चतुरस्त्रभिरित्यधिकं विष्णुधर्मोत्तरे। १४. दुष्करं। १५. मस्तका न मध्ये तु चित्रदुष्करं संज्ञके।

[1]आदिकं भ्रमणं तस्य तस्माद् विद्वन्प्रकीर्तितम्। [2]लक्ष्यं संयोजयेत्तत्र प्रति यन्त्रगतं दृढम्॥ १९॥
[3]भ्रान्तं प्रचलितं चैव स्थितं यच्च भवेदिति। समन्ताच्छादयेत् पश्चात् छेदयेच्छूलथयेदपि॥ २०॥
कर्मयोगविधानज्ञो ज्ञात्वेवं विधिमाचरेत्। मनसा चक्षुषा दृष्ट्या [4]योगे शिक्षन्यसंजयेत्॥ २१॥

दत्वा प्रयुक्तं सुकृतं प्रमाणान्न्यसेत् समन्तात् पुटकान्विचित्रान्।
अप्यङ्गुलीयप्रतिमां जपेच्च बालङ्गताः काष्ठगतं प्रलम्बम्॥ २२॥
सिद्धार्थकान्गुञ्जयवांश्च तस्मिन् न्यसेद् विधिज्ञो भ्रमरीरिकाञ्च।
मृत्पिण्डसंस्थान्फलं कांक्षितांश्च कबन्धनिष्पावकपेलवांश्च॥ २३॥
हंसान्मयूरान्कुररांस्तथा च कारण्डवांश्चैव शिलीमुखांश्च।
गृध्रानुलूकानथा वापि चाषान् कपोतगोधाशुकसारिकाश्च॥ २४॥
पलाशमूलोर्णवपूर्णदेहांश्चर्मावबद्धां मृदुचित्रगात्राम्।
वरत्रयन्त्रैर्विविधैः सुयुक्तां काष्ठावसक्तैर्बहुभिः प्रकारैः॥ २५॥
चलान् स्थिरांश्चाप्रगतांश्च विद्वान्न्यसेद् यथा व्यायामायोर्ध्वसंस्थान्।
व्याघ्रान्मृगेन्द्रान्पृषतान्रूरुंश्च मृगान् सगोकर्णवराहवक्रान्॥ २६॥
गोमायुमार्जारशशांस्तथान्यानृक्षान्मृगाश्चन्द्रमयेन्दुपूर्णान्।
अन्यान्समीपोपगतान्मृगांश्च विधानवित्तान्प्रतियन्त्रसंस्थान्॥ २७॥
जातांस्तथान्यांश्च बहुप्रकारानेकसंस्थानबिवद्धदेहान्।
नानाविधैस्तैर्विशिखभ्रमस्थः सन्धानयोगैस्त्रिविधैश्च हन्यात्॥ २८॥

—*वि० ध० पृष्ठ ३०४*

---

को अपने बाण के पुङ्ख भाग से आच्छादित करके उसकी ओर दृढ़तापूर्वक शर-सन्धान करे। जो लक्ष्य भ्रमणशील, अत्यन्त चञ्चल और सुस्थिर हो उसपर सब ओर से प्रहार करे। उसका भेदन और छेदन करें तथा उसे पीड़ा पहुँचायें॥ १७-१८॥

कर्मयोगविधान का ज्ञाता पुरुष इस प्रकार समझ-बूझकर उचित विधि का आचरण (अनुष्ठान) करे। जिसने मन, नेत्र और दृष्टि के द्वारा लक्ष्य के साथ एकता स्थापित करने की कला सीख ली है, वह योद्धा यमराज को भी जीत सकता है॥ १९॥

पत्ते, तृण और ऊन से बनाये हुए, चारों ओर चर्म लिपटे हुए चिकने और सुन्दर शरीरवाले मृगादि पशुओं के पुतले बनाकर उन्हें चमड़े की रस्सी से काष्ठ एवं यन्त्रों में अनेक प्रकार से बाँधे॥ २५॥ चलते हुए, स्थिर, दौड़ते हुए और ऊपर स्थित लक्ष्यों को यथास्थान यन्त्रों से संयुक्त करके रखे। इसमें व्याघ्र, सिंह, चितकबरा हरिण, रुरु (बड़ा काला हरिण) गोकर्ण (हरिण-विशेष) वक्र दाँतोंवाले, सूअर, गीदड़, बिल्ले, खरगोश, रीछ एवं अन्य भी बहुत प्रकार के चन्द्रमा के सदृश देदीप्यमान पशुओं की प्रतिकृति बनाकर उन्हें यन्त्रों पर व्यवस्थित हुए लक्ष्यों पर धनुर्धर घूमता हुआ तीनों सन्धानों से बाण चलाकर उनका वेधन करे॥ २६-२७-२८॥

---

१. अधिकं भ्रमणं तस्य तस्माद् वेध्यात् प्रकीर्तितम्।
२. लक्ष्यं संयोज्येत् तत्र पत्रि यत्र गतं दृढम्।
३. समन्तात्ताडयेद् भिन्द्याच्छेदयेत् व्यथयेदिति।
४. योगशिक्षुर्यमं जयेत्।

**चलेषु यन्त्र लक्ष्येषु बाणसिद्धिश्च जायते॥ २८॥**

*—(कामन्दकीय नीतिसार स० १५ प्र० २३) पृ० ३३३*

**वाशिष्ठधनुर्वेदसंहितायाम्—**

**कृतोपवासः शिष्यस्तु धृताजिनः परिग्रहः। बद्धाञ्जलिपुटस्तत्र याचयेद् गुरुतो धनुः॥ १८॥**
**शिष्याय मानुषं चापं धनुर्मन्त्राभिमन्त्रितम्। काण्डात्काण्डाभिमन्त्रेण दद्यात्वेदविधानतः॥ १९॥**
**प्रथमं पुष्पवेधं च फलहीनेन पत्रिणा। ततः फलयुतेनैव मत्स्यवेधं च कारयेत्॥ २०॥**
**मांसवेधं ततः कुर्यादेवं वेधो भवेत् त्रिधा। एतैर्विधैः कृतैः पुंसां शराः स्युः सर्वसाधकाः॥ २१॥**
**एवं वेधत्रयं कुर्याच्छंखदुंदुभिनिःस्वनैः। ततः प्रणम्य गुरवे धनुर्बाणान् निवेदयेत्॥ २२॥**

**वाशिष्ठधनुर्वेदसंहितायां लक्ष्यभेदाः—**

**लक्ष्यं चतुर्विधं ज्ञेयं स्थिरं चैव चलं तथा। चलाचलं द्वयचलं वेधनीयं क्रमेण तु॥ ९४॥**
**आत्मानं सुस्थिरं कृत्वा लक्ष्यं चैव स्थिरं बुधः। वेधयेत् त्रिप्रकारं तु स्थिरवेधी स उच्यते॥ ९५॥**
**चलं तु वेधयेद् यस्तु आत्मस्थानेषु संस्थितः। चलं लक्ष्यं तु तत्प्रोक्तमाचार्येण शिवेन वै॥ ९६॥**
**धन्वी तु चलते यत्र स्थिरलक्ष्ये समाहितः। चलाचलं भवेत् तच्च ह्यप्रमेयमचिन्तितम्॥ ९७॥**

---

**कामन्दकीय नीतिसार में**—यन्त्रों पर स्थित चलते हुए लक्ष्यों पर निशाना मारने से बाणों की सिद्धि हो जाती है॥ २८॥

**वाशिष्ठधनुर्वेदसंहिता में**—धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करने का इच्छुक शिष्य उपवास करके मृगचर्म को धारण करे और दोनों हाथ जोड़कर गुरु से धनुष माँगे॥ १८॥ गुरु योग्य शिष्य को मानुष चाप धनुष के मन्त्र (काण्डात्....) को बोल वेद की विधि के अनुसार देवे॥ १९॥

अभ्यास करते समय सबसे पहले फलरहित तीर से पुष्प को सामने रखकर उसका वेध करना चाहिये। इसमें सफलता मिल जाने पर फलसहित बाण से मछली पर निशाना मारने का अभ्यास करवावे॥ २०॥

इसके पश्चात् मांस पर निशाना मारे। इस प्रकार यह तीन प्रकार का वेध होता है। इस विधि से अभ्यास करने पर धनुर्धारी के बाण सब कार्यों के साधक हो जाते हैं॥ २१॥

यह तीन प्रकार का वेध शङ्ख, दुन्दुभि (ढोल-नगाड़े) आदि के शब्दसहित करे (ये वाद्य वेध करते समय प्रोत्साहित करने के लिये बजते रहें)। वेध का अभ्यास करने के पश्चात् गुरु को नमस्कार करे और धनुष-बाण उन्हें दे देवे॥ २२॥

**वाशिष्ठधनुर्वेद में लक्ष्य के भेद**—चार प्रकार का लक्ष्य होता है। स्थिर, चल, चलाचल और द्वयचल। इनका क्रम से वेध करना चाहिये॥ ९४॥

अपने-आपको स्थिर करके जो तीन प्रकार (ऊर्ध्व; अध, सम लक्ष्य) के स्थिर लक्ष्यों का वेधन करें, उसे स्थिरवेधी कहते हैं॥ ९५॥

स्वयं स्थित होकर जब चलते हुए लक्ष्य को बींधा जाये तो उसे धनुर्वेद के प्रवक्ता महादेवजी ने चल लक्ष्य कहा है॥ ९६॥

जहाँ धनुषधारी स्थिर लक्ष्य पर ध्यान देते हुए चले तो उसे चलाचल लक्ष्य कहते हैं। यह अप्रमेय (बिनाप्रमाण विशेष) और अचिन्तित (ध्यान में न आनेवाला) लक्ष्य है, अर्थात्

**उभावेव चलौ यत्र लक्ष्यं चापि धनुर्धरः। तद् विज्ञेयं द्वयचलं श्रमेण बहु साध्यते॥ ९८॥**

**श्रममहिमा—**

**श्रमेण चित्रयोधित्वं श्रमेण प्राप्यते जयः। तस्माद्गुरु समक्षं हि श्रमःकार्यो विजानतः॥ १००॥**
**प्रथमं वामहस्तेन यः श्रमं कुरुते नरः। तस्य चापक्रिया सिद्धिरचिरादेव जायते॥ १०१॥**
**वामहस्ते सुसंसिद्धे पश्चाद् दक्षिणमारभेत्। उभाभ्यां च श्रमं कुर्यान्नाराचैश्च शरैस्तथा॥ १०२॥**
**वामेनैव श्रमं कुर्यात् सुसिद्धे दक्षिणकरे। विशाखेनासमेनैव रथी व्याये च कैशिके॥ १०३॥**
**उदिते भास्करे लक्ष्यं पश्चिमायां निवेशयेत्। अपराह्ने च कर्त्तव्यं लक्ष्यं पूर्वदिगाश्रितम्॥ १०४॥**
**उत्तरेण सदा कार्यमवश्यमवरोधिकम्। संग्रामेण विना कार्यं न लक्ष्यं दक्षिणामुखम्॥ १०५॥**

*—वा० ध०*

**आकाशभैरवे—श्रमस्य परिभाषा—**

**पुरतो वर्त्तमानस्य लक्ष्यस्य बहुधा शितैः। शरैराकर्णमाकृष्टैर्भेदनं यत् तदद्रिजे॥ ४॥**
**श्रम इत्युच्यते पुम्भिर्धनुर्वेदविशारदैः। श्रम एव परं ज्ञेयः श्रम एव परं बलम्॥ ५॥**
**श्रम एव पराकीर्तिर्धानुष्कस्य विशेषतः। तस्मादवश्यं धानुष्को भवेच्छ्रमपरिश्रमः॥ ६॥**
**प्रत्यहं प्रयतः प्रातः सायञ्च वरवर्णिनि। य एकस्मिन्नपि दिने धन्वी न कुरुते श्रमम्॥ ७॥**

---

इसकी सिद्धि परिश्रम साध्य है॥ ९७॥

जब लक्ष्य और धनुर्धर दोनों ही चल रहे हों तो इसे द्वयचल जानना चाहिये। इसकी सिद्धि बहुत श्रम से होती है॥ ९८॥

**श्रममहिमा**—श्रम से ही चित्रयोधा बनता है। श्रम से ही विजयश्री मिलती है, अतः बुद्धिमान् व्यक्ति को गुरु के समक्ष ही धनुष-बाण का अभ्यास करना चाहिये॥ १००॥

जो योधा पहिले बायें हाथ से लक्ष्यवेध का अभ्यास करता है, उसे शीघ्र ही सफलता मिलती है॥ १०१॥

बायें हाथ से लक्ष्यवेधन में सफलता मिलने पर पुनः दाहिने हाथ से निशाना साधे और पश्चात् दोनों ही हाथों से नाराच (लोहे के बाण) और शरों का अभ्यास करे॥ १०२॥

दाहिने हाथ के सिद्ध हो जानें पर रथी विशाख अथवा असमपाद, पवित्रे और कैशिक व्याय से बायें हाथ से ही लक्ष्य साधन करे॥ १०३॥

सूर्योदय काल में पश्चिम दिशा में एवं दोपहर के पश्चात् पूर्व दिशा में अभ्यास करना उचित है॥ १०४॥

उत्तर दिशा में सदा ही लक्ष्यवेधन का अभ्यास कर सकते हैं, किन्तु संग्राम के बिना दक्षिण दिशा में मुख करना उचित नहीं, क्योंकि दक्षिण में सूर्य मुख के सम्मुख पड़ता है॥ १०५॥

**श्रम की परिभाषा**—हे पार्वती! सामने स्थित लक्ष्य को बहुत-से तीक्ष्ण तीरों से कान तक धनुष खेंचकर जो वेधन किया जाता है उसे धनुर्वेद के ज्ञाताओं ने "श्रम" कहा है॥ ४॥

श्रम ही उत्कृष्ट ज्ञान-बल और कीर्तिकारक है, इसलिये धनुर्धर को श्रम में अवश्य ही परिश्रम करना चाहिये॥ ५-६॥

हे सुरूपे! प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल धनुष चालन का अभ्यास करना उचित है। जो योद्धा एक दिन भी श्रम को छोड़ देता है तो हे उमे! उसकी मुष्टि और दृष्टि विचलित हो जाती है,

**तस्य दृष्टिश्च मुष्टिश्च नानाकारा चलत्युमे। तस्मात् कृतश्रमेणैव सङ्ग्रामे प्राप्यते जयः ॥ ८ ॥**
**चन्द्रहीना यथा रात्रिः पुष्पहीना यथा लता। तथैव श्रमहीनाऽपि धनुर्विद्या वरानने ॥ ११ ॥**

*—आकाशभैरवः १३६*

## वाशिष्ठधनुर्वेदे—

**शतैश्च काण्डानां यो हि लक्ष्यं विसर्जयेत्। सूर्योदये चास्तमाने स ज्येष्ठो धन्विनां भवेत् ॥ १०८ ॥**
**त्रिशतैर्मध्यमश्चैव द्विशताभ्यां कनिष्ठकः।**

## अथ श्रमक्रिया—

**क्रियाकलापान्वक्ष्यामि श्रमसाध्यान्शुचिस्मताम्। येषां विज्ञानमात्रेण सिद्धिर्भवति नान्यथा ॥ ११७ ॥**
**प्रथमं चापमारोप्य चूलिकां बन्धयेत् ततः। स्थानकं तु ततः कृत्वा बाणोपरि करं न्यसेत् ॥ ११८ ॥**
**तोलनं धनुषश्चैव कर्त्तव्यं वामपाणिना। आदानं च ततः कृत्वा सन्धानं च ततः परम् ॥ ११९ ॥**
**सकृदाकृष्टचापेन भूमिवेधं न[1] कारयेत्। नमस्कुर्याच्च मां विघ्नराजं गुरुंधनुः शरान् ॥ १२० ॥**
**याचितव्या गुरोराज्ञा बाणस्याकर्षणं प्रति। प्राणवायुं प्रयत्नेन प्राणेन सह पूरयेत् ॥ १२१ ॥**

*—वा० धनु०*

**कुम्भकेन स्थिरं कृत्वा हुङ्कारेण विसर्जयेत्। इत्यभ्यास क्रिया कार्या धन्विना सिद्धिमिच्छताम् ॥ १२२ ॥**
**षण्माषात्सिध्यते मुष्टिः शराः संवत्सरेण तु। नाराचास्तस्य सिध्यन्ति यस्य तुष्टो महेश्वरः ॥ १२३ ॥**

---

अतः श्रम का निरन्तर अभ्यास करने से ही संग्राम में विजय मिलती है, अन्यथा नहीं ॥ ७-८ ॥

हे सुमुखी ! जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि सुशोभित नहीं होती, जैसे पुष्प के बिना बेल अच्छी प्रतीत नहीं होती, वैसे ही श्रम के बिना धनुर्विद्या भी शोभा नहीं देती ॥ ११ ॥

**वाशिष्ठधनुर्वेद में**—सूर्योदय एवं अस्त के समय जो चार सौ बाणों को निशाने पर छोड़े, वह धनुषधारियों में श्रेष्ठ होता है। तीन सौ बाण छोड़नेवाला मध्यम और दो सौ बाण छोड़नेवाला कनिष्ठ योद्धा कहलाता है ॥ १०८½ ॥

**श्रम-क्रिया**—शुद्ध हृदयवालों के लिये धनुष की क्रिया इत्यादि का कथन करता हूँ, जिनके सम्यग्ज्ञान से ही सिद्धि मिलती है, अन्यथा नहीं ॥ ११७ ॥

प्रथम धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर चूलिका (दस्ताना) को बाँधे, पुनः स्थान (आलीढ़ादि) में स्थित होकर बाण के ऊपर हाथ रखे ॥ ११८ ॥

धनुष का उत्तोलन बायें हाथ से करना चाहिये। इस प्रकार पहली बार खींचे हुए धनुष से भूमि-वेध न करे। हे विश्वामित्र! महादेव, गणेश, गुरु और धनुष बाण को नमस्कार करे ॥ १२० ॥

पुनः गुरु से शरसन्धान की आज्ञा माँगनी चाहिये। प्राणवायु को प्रयत्नपूर्वक भीतर लेकर (पूरक क्रिया) कुम्भक से उसे स्थिर करे और पुनः हुङ्कारसहित रेचक करे। सिद्धि के इच्छुक धनुर्धरों को यह अभ्यास अवश्य करना चाहिये ॥ १२१-१२२ ॥

मुष्टि (पताका वज्रमुष्ट्यादि) छह मास में सिद्ध होती है। शर (बाण) एक वर्ष में सिद्ध

---

१. च कारयेदिति वीरमित्रोदये लक्षणप्रकाशे (पृष्ठ २८७)

**पुष्पवद् धारयेद्बाणं सर्पवत् पीड्येत् धनुः। धनवच्चिन्तयेल्लक्ष्यं यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः॥ १२४॥**
**क्रियामिच्छन्ति चाचार्या दूरमिच्छन्ति चेतरे॥ १२५॥**
**हीनेनापीषुणा तस्मात् प्रशस्तं लक्ष्यवेधनम्॥ १२६॥ —वा० ध०**

## लक्ष्यस्य दूरत्वम्

**[1]षष्ठी धन्वन्तरे लक्ष्यं ज्येष्ठं लक्ष्यं प्रकीर्तितम्। चत्वारिशन्मध्यमं च विंशतिश्च कनिष्ठकम्॥ १०६॥**
*—वा० ध०*

## मानसोल्लासे—

**उत्तमं द्विशतं प्रोक्तं शतं सार्धं तु मध्यमम्। विंशं शतं कनिष्ठं स्याद् दूरे धन्वन्तरे क्षितौ॥ १५३॥**
*—मानसो० पृष्ठ १६७*

## वीरमित्रोदये—

**षष्ठी धन्वन्तरे लक्ष्यं ज्येष्ठं लक्ष्यं प्रकीर्तितम्। चत्वारिंशन्मध्यमं च विंशतिश्च कनिष्ठकम्॥**
**शराणां कथितं ह्येतत् नाराचानामथोच्यते। [1]चत्वारिंशच्च त्रिंशच्च षोडशैव भवेत् ततः॥**
*—वीरमित्रोदये लक्षणप्रकरणे, पृष्ठ २८७*

---

होते हैं। (एक वर्ष में निशाना लगाना आता है) और नाराच बाण उसके ही सिद्ध होते हैं, जिसपर महादेवजी की कृपा हो। यह बहुत परिश्रम साध्य है॥ १२३॥

सफलता चाहनेवाला धनुर्धर पुष्प के समान (हल्का) बाण ले। सर्प के समान (लचकनेवाला) धनुष को झुकाये, खींचे और धन के समान (एकाग्रचित्त) लक्ष्य का चिन्तन करे॥ १२४॥

आचार्य (धनुर्विद्या के मर्मज्ञ) क्रिया (सन्धानादि क्रिया) को ठीक करना, भार्गव बाण दूर जाकर पड़े ऐसी, राजा दृढ़ वस्तु कट जाये ऐसी और अन्य लोग निशाना अच्छा लगे, इसकी इच्छा करते हैं॥ १२५॥

लोगों का चित्त निशाना लगाने में ही प्रसन्न होता है, अतः हीन बाण (नपुसंक) से भी लक्ष्य को बींधना अच्छा है॥ १२६॥

**लक्ष्यस्य दूरत्वम्**—साठ धनुष (२४० हाथ=१२० गज) की दूरी पर स्थित लक्ष्य को बींधना उत्तम, चालीस धनुष (८० गज) का मध्यम और बीस धनुष (४० गज) का निकृष्ट लक्ष्य कहा गया है॥ १०६॥

**मानसोल्लास में**—उत्तम लक्ष्य दो सौ धनुष (४०० गज), मध्यम डेढ़ सौ धनुष (३०० गज) और अधम एक सौ बीस धनुष (२४० गज) गज की दूरी पर लक्ष्यभेदन कनिष्ठ कहलाता है॥

**वीरमित्रोदय में**—साठ धनुष अन्तरवाला लक्ष्य ज्येष्ठ, चालीस का मध्यम और बीस का कनिष्ठ कहा जाता है।

यह लक्षण शरों का कहा है। अब नाराचों (लोहे के बाण) की दूरी कही जाती है। इनकी दूरी चालीस धनुष (८० गज) की उत्तम, तीस धनुष (६० गज) की मध्यम और सोलह धनुष (३२ गज) की अधम होती है।

---

१. अस्यार्थो वाशिष्ठ धनुर्वेद भाषाकारेण श्री हरदयालु स्वामिनान्यथैव कृतः।

**आकाशभैरवतन्त्रे—**

षष्ठी हस्तान्तरं लक्ष्यमुत्तमं परिकीर्तितम्॥ २९॥
चत्वारिंशत् करैर्मध्यमधमं स्यात्तदर्धतः॥ ३०॥ —*पटल १३६*

**चन्द्रकस्य मानम्—**

लक्ष्यं च पुरुषोन्मानं कुर्याच्चन्द्रकसंयुतम्॥ १०९॥
ऊर्ध्वभेदी भवेज्ज्येष्ठो नाभिभेदी च मध्यमः। पादभेदी तु लक्ष्यस्य स कनिष्ठो मतो भृगो॥ १११॥
—*वा० ध०*

**मानसोल्लासे—**

षोडशाङ्गुलवृत्तं तु स्थूलं लक्ष्यमुदाहृतम्। अङ्गुलद्वितयं सूक्ष्मं पञ्चगुंजाशिरोरुहम्॥ १५०॥
आकृष्य ताडयेत् तत्र चन्द्रकं षोडशाङ्गुलम्॥ ८॥ —*अग्नि पुराण अ० २५०*
उरःसमं समं लक्ष्यं मनुष्योत्सेधमानतः। तदूर्ध्वमुच्चं लक्ष्यं स्यात् तदधो नीचमुच्यते॥ १२९॥
—*मानसोल्लासे*

**अथ लक्ष्यास्खलनविधि—वाशिष्ठधनुर्वेदे—**

विशाखस्थानकं हित्वा[१] समसंधानमाचरेत्। गोपुच्छमुखबाणेन सिंहकर्णेन मुष्टिना॥ १२७॥
आकर्षेत्कौशिकव्यायेन न शिखाश्चालयेत्ततः। पूर्वापरौ समं कार्यौ समांसौ[२] निश्चलौ करौ॥ १२८॥
चक्षुषी स्पन्दयेन्नैव दृष्टिं लक्ष्ये वियोजयेत्। मुष्टिनाऽऽछादितं लक्ष्यं शरस्याग्रे वियोजयेत्॥ १२९॥
मनोदृष्टिगतं कृत्वा ततः काण्डं विसर्जयेत्। स्खलत्येव कदाचिन्न लक्ष्ये योधो जितश्रमः॥ १३०॥

---

**आकाशभैरवतन्त्र में**—साठ हाथ का लक्ष्य उत्तम, चालीस हाथ का मध्यम और बीस का अधम होता है॥ ३०॥

**चन्द्रकस्य मानम्**—पुरुष की लम्बाई जितना लक्ष्य चन्द्रक (चाँदमारी) से युक्त रखना चाहिये इस लक्ष्य के ऊर्ध्व भाग को वेधन करनेवाला ज्येष्ठ, नाभि भाग को वेधनेवाला मध्यम और पैरों को वेधनेवाला कनिष्ठ माना जाता है। यह भृगुजी का मत है॥ १०९-१११॥

**मानसोल्लास में**—सोलह अङ्गुल का लक्ष्य (चन्द्रविन्दु) स्थूल लक्ष्य माना जाता है और दो अङ्गुल का लक्ष्य सूक्ष्म लक्ष्य कहा जाता है।

**अग्निपुराण में**—धनुष पर बाण चढ़ाकर सोलह अङ्गुल परिमाणवाले चन्द्रक (चाँदमारी) का वेध करे॥ ८॥

**मानसोल्लास में**—मनुष्य की छाती के समान ऊँचे लक्ष्य का वेधन सम, उससे ऊँचे पर ऊर्ध्व और नीचे पर अधम लक्ष्य कहलाता है॥ १२९॥

**अचूक लक्ष्य साधन की विधि**—विशाखस्थान में स्थित होकर समसन्धान करे। गोपुच्छ बाण को सिंहकर्ण मुष्टि से पकड़कर कैशिक व्याय से खींचे और शिखा भी न चलावे। बायें और दाहिने दोनों कन्धे समान और स्थिर रहें। आँखें भी न झपककर दृष्टि को लक्ष्य पर स्थित करे। लक्ष्य को मुष्टि से आच्छादित (ढक) कर बाण को लक्ष्य की सीध में करे। मन और

---

१. स्थानके स्थित्वा इति वीरमित्रोदये लक्षणप्रकाशे, पृष्ठ २८८
२. समासौ—वीरमित्रोदये ल० २८८
३. अस्यार्थो हरदयालुस्वामिना हित्वा=त्यक्वा (छोड़कर) इति कृतः। तच्चाशुद्धः।

**अथ शीघ्रसंधानम्—**

**आदानं चैव तूणीरात् संधानं कर्षणं तथा। क्षेपणं च त्वरायुक्तो बाणस्य कुरुते तु यः॥ १३१॥**
**नित्याभ्यासवशात् तस्य शीघ्रसंधानता भवेत्। मुष्ट्यापताकया बाणं स्त्रीचिह्नं दूरपातनम्॥ १३२॥**

**वीरमित्रोदये—**

**प्रत्यालीढकृते स्थाने ह्यधः संघानमाचरेत्। मुष्ट्या पताकया बाणं स्त्रीचिह्नं दूरपातनम्॥**

**अथ दृढभेदिताः—**

**प्रत्यालीढे कृते स्थाने ह्यधः संधानमाचरेत्। दर्दुरस्थानमास्थाय ह्यूर्ध्वं धारणमाचरेत्॥ १३३॥**
**स्कन्धव्यायेन वज्रस्य मुष्ट्या पुंमार्गणेन च। अत्यन्तसौष्ठवाद् बाह्वोर्जायते दृढभेदिता॥ १३४॥**

**शराणां दशगतयः—भारतभावदीपे—**

**उन्मुख्यभिमुखीतिर्यङ्मन्दा गोमूत्रिका ध्रुवा। स्खलिता यमकाक्रान्ता क्रुष्टेतीषुगतीर्विदुः॥**

*—शिरो हृदयपार्श्वदेशस्पृशस्तिस्त्रः*

**मन्दा—ईषद् भिन्नत्वक्। गोमूत्रिका—कवचनिकृन्तनी, सव्यापसव्यगामिनी। ध्रुवा—नियमेन लक्ष्यभेदिनी। स्खलिता लक्ष्यच्युता। यमकाक्रान्ता—लक्ष्यं भित्वाऽसकृन्निर्गता।**

---

दृष्टि को भी लक्ष्य पर स्थित करके बाण को छोड़े। विधि से अभ्यास करनेवाले योद्धा का निशाना कभी नहीं चूकता, क्योंकि उसने श्रम को जीत लिया है॥ १२७-१३०॥

**शीघ्रसंधानम्**—तूणीर (तरकस) से बाण निकालना, धनुष पर चढ़ाना, कान तक खेंचना और फेंकना—इन सब कार्यों का जो शीघ्रतासहित नित्य अभ्यास करता है, उसकी शीघ्रसन्धान-सिद्धि हो जाती है॥ १३१½॥

**दूरपात**—पताका नामक मुष्टि से स्त्रीचिह्नयुक्त बाण दूर जाकर गिरता है॥ १३२॥

**वीरमित्रोदय में**—प्रत्यालीढ़ स्थान में स्थित होकर अधःसन्धान करे और पताकामुष्टि तथा स्त्रीचिह्न बाण का सन्धान करे तो यह दूर जाकर लक्ष्य को मारता है।

**दृढ़भेदिता**—प्रत्यालीढ स्थान में स्थित होकर अधः सन्धान करे। दर्दुरस्थान में स्थित होकर ऊर्ध्व सन्धान करे। स्कन्ध व्याय से धनुष खेंचकर वज्रमुष्टि से पुरुष बाण को फेंके। समुचित रूप से भुजाओं द्वारा फेंकने पर पूर्वोक्त प्रकार से दृढ़ लक्ष्य के भेदन की सिद्धि (सफलता) प्राप्त हो जाती है॥ १३३-१३४॥

## शरों की दश गतियाँ

**१. उन्मुखी०**—शिर का स्पर्श करनेवाली।

**२. अभिमुखी**—हृदय का वेधन करनेवाली।

**३. तिर्यक्**—शर को तिरछा छोड़ने पर पार्श्वभागों में प्रहार करनेवाली।

**४. मन्दा**—जिससे त्वचामात्र ही आहत हो।

**५. गोमूत्रिका**—जिस प्रकार बैल चलता हुआ मूत्र करे, उसकी आकृति भूमि पर जैसी बनती है, उस सदृश बाण की गति गोमूत्रिका कहलाती है। इससे कवच काटा जाता है। इसमें बाण दायें या बायें जाते हैं।

**क्रुष्टा**—लक्ष्यैकदेशस्य बाह्वादेर्हन्त्रीति नवगतयः। दशमी गतिस्तु शिरसा सह दूरपातिनी अतिक्रुष्टा नाम। —*महाव्कर्णपर्व २०।२२ (भारतभावदीप, पृष्ठ ३३)*

**अथ हीनगतयः—वाशिष्ठधनुर्वेदे—**

**सूचीमुखा मीनपुच्छा भ्रमरी च तृतीयका। शराणां गतयस्तिस्त्रोऽप्रशस्ताः कथिता बुधैः॥ १३५॥**
**सूचीमुखा गतिस्तस्य सायकस्य प्रजायते। पत्रं विलोपितं यस्य ह्यथवा हीनपत्रकम्॥ १३६॥**
**कर्करीतन्तु चापेन यैः कृष्टो हीनमुष्टिना। मत्स्यपुच्छा गतिस्तस्य सायकस्य प्रकीर्तिता॥ १३७॥**
**भ्रमरी कथिता ह्येषा शिवेन श्रमकर्मणि। ऋजुत्वेन विना याति क्षेप्यमाणस्तु सायकः॥ १३८॥**
—*वा ध०*

**अथ बाणानां लक्ष्यस्खलनगतयः—**

**वामगा दक्षिणा चैव ऊर्ध्वगाऽधोगमा तथा। चतस्त्रो गतयः प्रोक्ता बाणस्खलनहेतवः॥ १३९॥**
**कम्पते गुणमुष्टिस्तु मार्गणस्य तु पृष्ठतः। संमुखी स्याद् धनुर्मुष्टिस्तदा वामे गतिर्भवेत्॥ १४०॥**
**ग्रहणं शिथिलं यस्य ऋजुत्वेन विवर्जितम्। पार्श्वं तु दक्षिणं याति सायकस्य न संशयः॥ १४१॥**
**ऊर्ध्वं भवेच्चापमुष्टिर्गुणमुष्टिरधो भवेत्। स मुक्तो मार्गणो लक्ष्यादूर्ध्वं याति न शंसयः॥ १४२॥**

---

६. **ध्रुवा**—निश्चित रूप से लक्ष्य का भेदन करनेवाली।

७. **स्खलिता**—लक्ष्य से रहित गति।

८. **यमकाक्रान्ता**—जिसमें लक्ष्य को वेधन करके बाण आर-पार निकल जाये।

९. **क्रुष्टा**—लक्ष्य के एक देश बाहु आदि को काटनेवाली।

१०. **अतिक्रुष्टा**—जिसमें लक्ष्य के शिर को काटकर बाण शिरसहित दूर जाकर गिरे।

**हीनगति**—सूचीमुख, मीनपुच्छ और भ्रमरी ये धनुर्वेदविशारदों ने अप्रशस्त गतियाँ कही हैं॥ १३५॥

सूचीमुख (ऊपर-नीचे जाना) गति उस शर की हो जाती है, जिसके पंख ठीक न बँधे हुए हों, अथवा कम या छोटे हों॥ १३६॥

गाँठ की डोरीवाला धनुष हीन (हल्की) मुष्टि से खेंचने पर बाण की मत्स्यपुच्छ (मछली की पूँछ के सदृश पीछे का भाग दायें या बायें हो जाना) गति हो जाती हैं॥ १३७॥

भ्रमरीगति श्री महादेवजी ने उस शर की कही है, जो फेंकने पर सीधा न जाये अपितु भ्रमरों की भाँति चक्कर लगाता हुआ जाये॥ १३८॥

**बाणों का लक्ष्य पर न लगना**—वामगा (बाँयी ओर) दक्षिणा (दाहिनी ओर) ऊर्ध्वगा (ऊपर) एवं अधः (नीचे) ये चार गति निशाना चूकने की हेतु है॥ १३९॥

जब पीछे की गुणमुष्टि काँपती हो। (ढीली पकड़ी हुई हो) और धनुष की मुष्टि सामने रहे तो बाण की बायीं ओर गति हो जाती है, अर्थात् लक्ष्य के बायें ओर बाण जाकर लगता है॥ १४०॥

जिस शर को ढीला पकड़ा गया हो एवं जो सीधा भी न हो वह निश्चितरूप से लक्ष्य के दाहिने ओर जाता है॥ १४१॥

चापमुष्टि ऊँची एवं गुणमुष्टि नीचे रहने पर छोड़ा हुआ बाण लक्ष्य से ऊँचा जाता है॥ १४२॥

**मोक्षणे चैव बाणस्य चापे मुष्टिरधो भवेत्। गुणमुष्टिर्भवेदूर्ध्वं तदाधोगामिनी गतिः॥ १४३॥**

**अथ शुद्धगतयः—**

**लक्ष्यबाणाग्र दृष्टिनां संगतिस्तु यदा भवेत्। तदानीं मुञ्चितो बाणो लक्ष्यान्न स्खलति ध्रुवम्॥ १४४॥**
**निर्दोषः शब्दहीनश्च सममुष्टि द्वयोज्झितः। भिनत्ति दृढवेध्यानि सायको नास्ति शंसयः॥ १४५॥**
**स्वाकृष्टस्तेजितो यश्च सुशुद्धो गाढमुष्टितः। नरनागाश्वकायेषु न तिष्ठति स मार्गणः॥ १४६॥**
**यस्य तृणसमा बाणा यस्येन्धनसमं धनुः। यस्य प्राणसमा मौर्वी स धन्वी धन्विनां वरः॥ १४७॥**

**अथ दृढचतुष्कम्—**

**अयश्चर्म घटश्चैव मृत्पिण्डश्च चतुष्टयम्। यो भिनत्ति न तस्येषुर्वज्रेणापि विदार्यते॥ १४८॥**
**सार्द्धाङ्गुलप्रमाणेन लोहपत्राणि कारयेत्। तानिभित्वैकबाणेन दृढघाती भवेन्नरः॥ १४९॥**
**चतुर्विंशति चर्माणि योभिनत्तीषुणा नरः। तस्य बाणो गजेन्द्रस्य कायं निर्भिद्य गच्छति॥ १५०॥**
**भ्राम्य जले घटो वेध्यश्चक्रे मृत्पिण्डकं तथा। भ्रमन्तं वेधयेद् यो हि दृढभेदी स उच्यते॥ १५१॥**
**अयस्तु काकतुण्डेन चर्म चारामुखेन हि। मृत्पिण्डं च घटं चैव विध्येत्सूचीमुखेन वै॥ १५२॥**

—*वा० ध०*

---

इसी प्रकार बाण छोड़ते समय चापमुष्टि नीचे और गुणमुष्टि ऊपर होने पर बाण की अधोगामी गति हो जाती है॥ १४३॥

लक्ष्य, बाण की नोक और दृष्टि—ये तीनों जब एक सीध में सङ्गत हो जाते हैं, उस समय छोड़ा हुआ बाण निश्चितरूप से लक्ष्य पर जाकर लगता है॥ १४४॥

निर्दोष, शब्दहीन, दोनों मुष्टियों को सम—एक सीध में करके छोड़ा हुआ सायक बाण दृढ़ वेध्यों को बींध देता है, इसमें संशय नहीं है॥ १४५॥

भली प्रकार खेंचा हुआ, तीक्ष्ण, सीधा और उत्तम पंखयुक्त बाण (दृढ़मुष्टि से छोड़ा हुआ बाण) पुरुष, घोड़ा, हाथी के शरीर में भी नहीं ठहरता अर्थात् इनका भी छेदन करके पार हो जाता है॥ १४६॥

जिसके बाण तिनके के समान (हल्के) हों, धनुष ईंधन के सदृश (सूखे और उत्तम काष्ठयुक्त) एवं प्रत्यञ्चा प्राण के तुल्य सूक्ष्म हो, वह धनुर्धर धनुषधारियों में सर्वश्रेष्ठ होता है॥ १४७॥

**दृढ़ लक्ष्य**—लोहा, चर्म, घड़ा और मिट्टी का पिण्ड—इनका जो छेदन करे, उसका बाण वज्र से भी नहीं कटता॥ १४८॥

डेढ़ अङ्गुल मोटे लोहे के पत्रे बनवाकर, उन्हें जो एक बाण से छेदे, उसे दृढ़घाती कहते हैं॥ १४९॥

चौबीस चर्म एक साथ इकट्ठे करने पर जो उन्हें एक बाण से ही वेधता है, उसका बाण बड़े भारी हाथी को भी भेदकर पार निकल जाता है॥ १५०॥

इस प्रकार जल में घड़ा घुमाकर या एक कुम्हार के घूमते हुए चाक पर मिट्टी के पिण्ड का जो भेदन कर देता है, उसे दृढ़भेदी कहते हैं॥ १५१॥

लोहे का काकतुण्ड से, चर्म का आरामुख से, मिट्टी के पिण्ड एवं घड़े का सूचीमुख बाण से भेदन करे॥ १५२॥

**मानसोल्लासे—दृढलक्ष्यानां प्रमाणम्—**

**शुष्कचर्मशतं गव्यमहोरात्रं जले स्थितम्। षोडशाङ्गुलविस्तीर्णं दृढबद्धं च रज्जुभिः॥ १३०॥**
**इदं चर्म दृढं प्रोक्तं गजचर्मसमं बुधैः। एवं विंशतिरश्वश्च चर्माण्यष्टौ नरस्य तु॥ १३१॥**
**एवं सर्वदृढानां हि गजवाजिनृणां क्रमः। कथितः सोमभूपेन जामदग्न्यमतानुगः॥ १३२॥**
**षड्विंशदङ्गुलां भस्त्रां छागमांसेन पूरयेत्। एतन्मांसं दृढं विध्येद् गजकायप्रमाणकम्॥ १३३॥**
**गजराजाश्वखुरो धोतेः समन्तात् परिशोषितम्। दृढमश्वखुरं नाम मध्ये मातङ्गमानकम्॥ १३४॥**
**विषाणं सप्तवर्षस्य महिषस्य प्रगृह्य च। मूलाग्रवर्जितं मध्ये द्विपकायसमं दृढम्॥ १३५॥**
**सूत्रं पञ्चाङ्गुलोत्सेधं तिर्यगायामकल्पितम्। निबिडं चर्मणा बद्धं विध्येत् कारिसमं दृढम्॥ १३६॥**
**कूर्मपृष्ठकपालं तु हस्तविस्तारवर्तुलम्। विध्येदस्थि दृढनाम कुञ्जराङ्गप्रमाणकम्॥ १३७॥**
**षड्विंशदङ्गुलं स्थौल्याद्वाल्कजङ्गनपिण्डितम्। रज्जुभिर्वेष्टितं विध्येद् दन्तिदेहसमं नृपः॥ १३८॥**

---

**मानसोल्लास में दृढ़ लक्ष्यों का परिमाण**—गाय के सौ चमड़े एक दिन-रात जल में रखे हुए सोलह अङ्गुल मोटाईवाले रस्सियों से परस्पर सुदृढ़ बँधे होने पर, यह दृढ़ चर्म का प्रमाण हाथी के चर्म के सदृश माना गया है, अर्थात् पूर्वोक्त सौ चर्मों का एक बाण से भेदन करने पर धनुर्धर का तीर हाथी के शरीर से आर-पार निकल जाता है॥ १३०½॥

इसी प्रकार अश्व के शरीर का प्रमाण बीस चमड़ों के बराबर और मनुष्य का आठ चर्म के समान होता है॥ १३१॥

यह गज, अश्व और मनुष्यों के शरीर-सदृश दृढ़ लक्ष्यों का प्रमाण सोमेश्वर महाराज ने जमदग्नि के मतानुसार कहा है॥ १३२॥

छब्बीस (कुछ के मत में छत्तीस) अङ्गुल मोटी चमड़े की थैली में बकरे का मांस भर दे। इसको एक तीर से वेधना हाथी के शरीर के भेदन के सदृश होता है॥ १३३॥

संग्राम में हाथी एवं अश्वों द्वारा निःशेष किया हुआ घोड़े का खुर (सुम) हाथी के शरीर का मध्यमान है, अर्थात् उस खुर को जो भेदे उसका तीर हाथी के शरीर के मध्य भाग तक चला जायेगा॥ १३४॥

सात वर्ष के भैंसे का सींग मूल एवं सिरे को छोड़कर मध्यभाग हाथी के शरीर के सदृश दृढ़ प्रमाणवाला होता है॥ १३५॥

पाँच अङ्गुल मोटा रस्सा चारों ओर से चर्म से आवेष्टित तिरछा बँधा हुआ बींधने पर हाथी के शरीर सदृश ही दृढ़ लक्ष्य का वेधन माना गया है॥ १३६॥

कछुवे की खोपड़ी एक हाथ चौड़ी गोलाकार को भेदन करना हाथी के किसी अङ्ग के भेदन के सदृश ही होता है॥ १३७॥

छब्बीस अङ्गुल मोटे वल्कल (छाल) का पिण्ड बनाकर उसे रस्सी से लपेटे इसका प्रमाण हाथी के समान होता है॥ १३८॥

**भ्रमत्कुलालचक्रस्थं मृदः पिण्डं नवाङ्गुलम्। दृढं प्रवाहितं विध्येत्समं नागेन चर्मणा॥ १३९॥**
**विध्येत् सुदृढकाष्टं तु षोडशाङ्गुलमायतम्। अङ्गुलोत्सेधमानं यद् गजराजसमं भवेत्॥ १४०॥**
**कार्पासनिर्मितं पुञ्जमुत्सेधेन षडङ्गुलम्। चर्मनद्धं दृढं विध्येत् सिन्धुराङ्गसमं नृपः॥ १४१॥**
**करीषधान्यपांसूनां पृथक् पर्णं तु कर्कशम्। अष्टाङ्गुलं दृढं विध्येद् वारणाङ्गसमं नृपः॥ १४२॥**
**द्वयङ्गुलां मांसवर्णां च षोडशाङ्गुलविस्तृताम्। शिलां विध्येद् दृढं सम्यक्स्तम्बेरमसमं नृपः॥ १४३॥**
सोडशाङ्गुलविस्तीर्णमुत्सेधे सर्षपास्त्रयः। आयसं दृढमेतत् तु विध्येत् सगजसन्निभम्॥ १४४॥
दृढान्येतानि बध्नीयात् स्तम्भशाखा द्वयान्तरे। त्रिवारं प्रमितेनैव नरवक्षः समुन्नतौ॥ १४५॥
भित्वा तानि विर्निगत्य विभिद्याग्रेण भूतलम्। यथावत्तिष्ठते बाणस्तथा विध्येत् क्रियायुतः॥ १४६॥

*—मानसोल्लासः १० भाग २ अ० १ विं० ४*

**मानसोल्लासे चित्रवेधविधयः—**

**चित्रं कुतूहलकरं प्रेक्षकाणां मनोहरम्। दर्शयेत् तदपि प्रौढ्या विनोदाय महीपतिः॥ १५७॥**
**स्तम्भस्योपरि विन्यस्तचक्रयन्त्रे सुकीलितम्। वायुप्रेरितपत्रैस्तु भ्राम्यमाणं द्रुतं झषम्॥ १५८॥**
**पात्रमध्ये स्थिते तोये वीक्ष्य विध्यन् विलोचने। प्रत्यालीढस्थितो राजा राधावेधं प्रदर्शयेत्॥ १५९॥**

---

कुम्हार के चक्र पर घूमते हुए ९ अङ्गुल मिट्टी के पिण्ड को भेदना हस्ति के चर्म जितना होता है॥ १३९॥

सुदृढ़ काष्ठ सोलह अङ्गुल चौड़ा और एक अङ्गुल मोटा बींधने पर हाथी के शरीर जितना वेध होता है॥ १४०॥

कपास (रूई) से बनाया हुआ ६ अङ्गुल मोटा पिण्ड चमड़े से मंढा हुआ राजा बींधे। यह हाथी के अङ्ग-समान लक्ष्य होता है॥ १४१॥

सूखे गोबर, अन्न, मिट्टी एवं पत्ते आदि से बने हुए आठ अङ्गुल मोटे पिण्ड को राजा बींधे। यह हाथी के अङ्ग-सदृश होता है॥ १४२॥

दो अङ्गुल मोटी, मांस के समान वर्णवाली (लाल पत्थर) और सोलह अङ्गुल विस्तारवाली दृढ़ शिला को राजा हाथी-तुल्य लक्ष्य मानकर उसका भेदन करे॥ १४३॥

सोलह अङ्गुल विस्तृत और तीन सरसों के जितना मोटा लोहे का पत्र जोकि हाथी के समान ही दृढ़ होता है, इसका वेध करे॥ १४४॥

यह सब दृढ़ लक्ष्य दो खम्भों को गाड़कर उनकी शाखाओं (अन्तिम सिरों) में बाँधे अथवा मनुष्य की छाती जितनी ऊँचाई पर तीन पैरोंवाली (टिकटी या तिपाई) जिसपर अध्यापक काष्ठ फलक (ब्लैकबोर्ड) रखते हैं, पर रखे॥ १४५॥

इन लक्ष्यों को भेदकर आगे जाकर भूमि में बाण सीधा गड़ जावे, उस प्रकार से क्रिया-युक्त होकर राजा वेधन का अभ्यास करे॥ १४६॥

**मानसोल्लास में चित्रवेधविधियाँ**—दर्शकों में आश्चर्य पैदा करनेवाले चित्रलक्ष्यादि का प्रदर्शन भी राजा अपने हस्तलाघव (हाथ की सफाई) से विनोदार्थ करे॥ १५७॥

**१. राधावेधः**—स्तम्भ के ऊपर लगा हुआ यन्त्र जिसके पंखे वायु द्वारा घूम रहे हों, उसमें लगी हुई मछली की दोनों आँखों का प्रतिबिम्ब नीचे स्थित पानी के बड़े पात्र में देखकर प्रत्यालीढ़

खर्जूरी सदृशाकारं कृत्वा दारुमयं तरुम्। नाराचैः शतशो विध्येत् स्थाने कण्टकपत्रयोः ॥ १६० ॥
पत्राणि कण्टकाश्चैव सायकैरेव कल्पयेत्। खर्जूरीवेधनं चित्रं प्रेयसीनां प्रदर्शयेत् ॥ १६१ ॥
वृषलं सम्मुखं कृत्वा पत्रं वक्षसि विन्यसेत्। तदेव तिर्यग् मोक्षेण बाणपुङ्खेन धारयेत् ॥ १६२ ॥
पत्रच्छेदमिदं चित्रं चित्तभ्रान्तिकरं नृणाम्। रसं विस्मयमातन्वन् दर्शयेद् वेधमुत्तमम् ॥ १६३ ॥
एकसन्धानयुक्ताभ्यां बाणाभ्यां लक्ष्ययुग्मकम्। विध्यन् प्रदर्शयेच्चित्रं यमलार्जुनसंज्ञकम् ॥ १६४ ॥
अत ऊर्ध्वं स्थितं लक्ष्यमेकमोक्षेण बाणयोः। विकटार्जुनकं चित्रं नृपो विध्यन् विनोदयेत् ॥ १६५ ॥
अर्धचन्द्राकृती कृत्वा तर्जन्यङ्गुष्ठकौ ततः। तृणकाण्डं तयोरग्रे धारितं चतुरङ्गुलम् ॥ १६६ ॥
अङ्गुल्यनुपपातेन तद् विध्यन् पृथिवीपतिः। अर्धचन्द्राह्वयं चित्रं दर्शयेच्च सभासदाम् ॥ १६७ ॥
सन्धतः सायकस्त्वेको द्वितीयः सम्मुखः स्थितः। द्वावेतावेक मोक्षेण पुरः पश्चाच्च गच्छतः ॥ १६८ ॥
पूर्वापरस्थितं लक्ष्यं प्रविध्यन्नवनीपतिः। मालाविद्याधरं चित्रं दर्शयेच्चित्रवेष्टितम् ॥ १६९ ॥
चतुर्भिरधिकाशीतिश्चित्राणामवनीभुजा। इत्थं प्रदर्शनीयाः स्याद् द्वापञ्चाशत् तु दुष्कराः ॥ १७० ॥

---

विधि से स्थित होकर राजा उस मछली का वेध करे। इसे राधावेध कहते हैं ॥ १५८-५९ ॥

**२. खर्जूरी वेधः**—खजूर के समान काष्ठ का वृक्ष बनवाकर राजा सैकड़ों नाराच बाणों को इस प्रकार से मारे कि वे उस वृक्ष में जाकर खजूर के पत्ते एवं काँटों की भाँति गड़ जायें। इस प्रकार बाणों से ही खजूर के पत्रे एवं काँटो का बनाना खर्जूरी वेध होता है। इस चित्रवेध का प्रदर्शन राजा अपनी प्रियतमाओं के समक्ष करे ॥ १६०-१६१ ॥

**३. पत्रच्छेद**—किसी वृषल (शूद्र) को सामने खड़ा करके उसकी छाती पर एक पत्ता या काग़ज़ रखे। उसको तिरछा बाण छोड़के छेदन कर बाण के पंखों में धारण करे। यह पत्रच्छेद नामक वेध लोगों को चकित करनेवाला है। रस और विस्मय से युक्त इस उत्तम लक्ष्य का प्रदर्शन राजा करे ॥ १६२-१६३ ॥

**४. यमलार्जुन**—एक ही बार प्रत्यञ्चा पर चढ़ाये गये दो बाणों से एक साथ ही दो लक्ष्यों का वेधन राजा करे, इसे यमलार्जुन कहते हैं ॥ १६४ ॥

**५. विकटार्जुन**—इसी प्रकार एक बार में ही दो बाणों से नीचे और ऊपर स्थित दो लक्ष्यों को एक साथ वेधना विकटार्जुन कहा गया है। राजा इस वेध को प्रदर्शित करके दर्शकों का मनोरञ्जन करे ॥ १६५ ॥

**६. अर्धचन्द्राह्वय वेध**—तर्जनी और अङ्गुठे की अर्धचन्द्र जैसी आकृति करके उसमें चार अङ्गुल लम्बे तिनके को अग्रभाग से पकड़े। अङ्गुली को चोट नहीं लगे इस प्रकार ध्यान रखता हुआ राजा उसका वेधन सभासदों के समक्ष करे ॥ १६६-१६७ ॥

**७. मालाविद्याधर**—एक बाण धनुष पर चढ़ाकर दूसरा उसके सामने (आगे) लगाये। इन दोनों को एक ही बार छोड़े। इस प्रकार आगे-पीछे एक साथ जाते हुए दोनों निकट एवं दूर लक्ष्यों को वेधता हुआ राजा आश्चर्यजनक मालाविद्याधर लक्ष्यवेध का प्रदर्शन करे ॥ १६८-१६९ ॥

राजा को इसी प्रकार चौरासी चित्रवेध दिखाने चाहियें। इनमें बावन लक्ष्यवेध तो अतीव कठिन (परिश्रम साध्य) हैं ॥ १७० ॥

**वाशिष्ठधनुर्वेदे चित्रलक्ष्यवेधः—**

बाणभङ्गकरावर्तं काष्ठच्छेदनमेव च। बिन्दुकं गोलकं युगं यो वेत्ति स जयी भवेत्॥ १५२॥
लक्ष्यस्थाने धृतं काण्डंसम्मुखं छेदयेत्ततः। किञ्चिन्मुष्टिं विधाय स्वां तिर्यग्द्विफलकेषुणा॥ १५३॥
सम्मुखं बाणमायान्तं तिर्यग्बाणं न सञ्चरेत्[1]। प्राप्तं शरेण यच्छिंद्याद्बाणच्छेदी स उच्यते॥ १५४॥
काष्ठेऽश्वकेशं संयम्य तत्र बद्धां वराटिकाम्। हस्तेन भ्राम्यमाणञ्च यो हन्ति स धनुर्धरः॥ १५५॥

**अथ काष्ठच्छेदनम्—**

लक्ष्यस्थाने न्यसेत्काष्ठं सार्द्रं गोपुच्छसन्निभम्। यश्छिन्द्यात्क्षुरप्रेण काष्ठच्छेदी स जायते॥ १५६॥

**३. बिन्दुवेधः—**

लक्ष्ये बिन्दुं न्यसेच्छुभ्रं शुभ्रबन्धूकपुष्पवत्। हन्ति तं बिन्दुकं यस्तु चित्रयोधा स उच्यते॥ १५७॥

**४. गोलकवेधः—**

काष्ठगोलयुगं क्षिप्रं दूरमूर्ध्वं पुरा स्थितैः। असम्प्राप्तं शरं पृष्ठे[2] तद् गोपुच्छमुखेन हि॥ १५८॥
यो हन्ति शरयुग्मेन शीघ्रसन्धानयोगतः। स स्याद् धनुर्भृतां श्रेष्ठः पूजितः सर्वपार्थिवैः॥ १५९॥

---

**वाशिष्ठधनुर्वेद में चित्रलक्ष्यवेध**—हाथ को तिरछा करके बाण को काटना, काष्ठ का छेदन, बिन्दु का भेदन और दो गोलों को वेधना इन सबको जो जानता है, वह विजयी होता है॥ १५२॥

लक्ष्य के स्थान पर गड़े हुए शर को सामने से ही गुणमुष्टि को कुछ तिरछा करके दो फलकवाले बाण (द्विभल्ल या अर्धचन्द्र) से छेद दे॥ १५३॥

सामने से आते हुए बाण के छेदनार्थ अपने बाण को तिरछा न चलावे, किन्तु आप तिरछा होकर बाण को काट दे। बाण को बाण से काटने पर बाणच्छेदी कहलाता है॥ १५४॥

काष्ठ की डण्डी में घोड़े का एक बाल बाँधकर, उसमें एक कोड़ी को बाँधकर हाथ से घुमावे। इस घूमती हुई कोड़ी अथवा बाण को जो छेद दे, वह धनुर्धर कहलाता है॥ १५५॥

**काष्ठच्छेदन**—लक्ष्य के स्थान पर गीला, गोपुच्छ के सदृश काष्ठ लगाये। इसको क्षुरप्र बाण से जो काट दे वह काष्ठछेदी कहलाता है॥ १५६॥

**बिन्दुवेध**—लक्ष्य स्थान पर विजयसार के पुष्प के सदृश एक श्वेत बिन्दु स्थापित करे जो उस बिन्दु को निशाना बनावे, उसे चित्रयोद्धा कहा जाता है॥ १५७॥

**गोलकवेध**—सामने स्थित व्यक्ति के द्वारा आकाश में बहुत ऊँचे फेंके हुए दो काष्ठ के गोलों को जो भूमि पर गिरने से पहले ही सन्धानपूर्वक गोपुच्छ बाण से शीघ्र दो शरों से बींध दे, वह धनुर्धारियों में सर्वश्रेष्ठ है और सभी राजाओं द्वारा पूजित होता है॥ १५८-१५९॥

---

१. वीरमित्रोदयेऽयं पाठः।
सम्मुखं च समायान्तं तिर्यग्वायान्तमम्बरे। शरं शरेण यश्छिन्द्याद् बाणभेदी स उच्यते॥
२. असम्प्रातं धरापृष्ठे इति वीरमित्रोदये।

**अथ धावल्लक्ष्यम्—मानसोल्लासे—**

**चलं पञ्चविधं लक्ष्यं दर्शयेत् तस्य वेधनम्॥ १५१॥**

**तिर्यग्धावंस्तथा गच्छन् भ्राम्यंश्चैव तथोत्पतन्। आकाशे भूतले तोये तेषां स्थानमुदाहृतम्॥ १५२॥**

*—भाग २ पृष्ठ १६७*

**वाशिष्ठधनुर्वेदे—**

**वामादायाति यल्लक्ष्यं दक्षिणं हि प्रधावति। तच्छिंद्याच्चापमाकृष्य सव्येनैव पाणिना॥ १६१॥**

**तथैव दक्षिणायान्तु विध्येद् बाणाद् धनुर्धरः। आलीढक्रममारोप्य त्वरा हन्याच्च तं नरः॥ १६२॥**

**वायोरपि बलं दृष्ट्वा वामदक्षिणवाहतः। लक्ष्यं सः साधयेदेवं गाधिपुत्र नृपात्मज॥ १६३॥**

**वायुपृष्ठे दक्षिणे च वहन् सूचयते बलम्। सम्मुखीनश्च वामश्च भटानां भङ्गसूचकः॥ १६४॥**

**अथ शब्दवेधित्वम्—**

**लक्ष्यस्थाने न्यसेत् कांस्यपात्रं हस्तद्वयान्तरे। ताडयेच्छर्कराभिस्तच्छब्दः सञ्जायते तदा॥ १६५॥**

**यत्र चैवोद्यते शब्दस्तं सम्यक्तत्र चिन्तयेत्। कर्णेन्द्रियमनो योगाल्लक्ष्यं निश्चयतां नयेत्॥ १६६॥**

**पुनः शर्करया तच्च ताडयेच्छब्दहेतवे। पुनर्निश्चयतां नेयं शब्दस्थानानुसारतः॥ १६७॥**

---

**मानसोल्लास में दौड़ते हुए लक्ष्य का वेधन**—चल लक्ष्य पाँच प्रकार का होता है। राजा उनका वेधन करके दिखाये। ये पाँच लक्ष्य निम्न हैं—तिरछा चलता हुआ, दौड़ता हुआ, चलता हुआ, घूमता हुआ और उड़ता हुआ। इनका स्थान आकाश, भूमि और जल में कहा है॥ १५१-१५२॥

**वाशिष्ठधनुर्वेद में दौड़ते हुए लक्ष्य को मारना**—जो लक्ष्य बाईं ओर से दाहिनी ओर को दौड़ रहा हो, उसे बायें हाथ से ही धनुष खेंचकर मारे॥ १६१॥

इसी प्रकार दाहिनी ओर से आते हुए लक्ष्य को आलीढ़ स्थान में स्थिर हो, शीघ्र ही मार गिरावे॥ १६२॥

बायीं या दाहिनी ओर से चलते हुए वायु के वेग को देखकर ही हे विश्वामित्र! धनुर्धर लक्ष्य का साधन करे॥ १६३॥

(यदि वायु बायीं ओर से चलता हो तो धनुष को दाहिनी ओर तथा दाहिनी ओर से वायु चलने पर बायीं ओर झुका दे)।

पीठ पीछे का या दाहिनी ओर का वायु संग्राम में विजयकारक होता है, एवं सामने का तथा बाईं ओर का वायु पराजय देनेवाला होता है, क्योंकि इस स्थिति में लक्ष्य पर निशाना ठीक नहीं लगता॥ १६४॥

**शब्दवेध**—रात्रि के अन्धकार में लक्ष्य के स्थान पर दो हाथ के अन्तर पर कांसी का पात्र स्थापित करके उसपर मिट्टी का ढेला या कंकरी मारे, जिससे कि शब्द निकले॥ १६५॥

जहाँ शब्द उत्पन्न हो उस स्थान का भली प्रकार चिन्तन करे और मन के योग से स्थान और लक्ष्य का निर्धारण करे॥ १६६॥

फिर शब्द करने के लिये शर्करा से पात्र पर ताड़ना करे और शब्द के अनुसार स्थान एवं लक्ष्य का निर्धारण करे॥ १६७॥

**ततः किञ्चित्कृतं दूरं नित्यं नित्यं विधानतः। लक्ष्यं समभ्यसेद् ध्वान्ते शब्दवेधनहेतवे॥ १६८॥**
**ततो बाणेन हन्यात् तदवधानेन तीक्ष्णधीः। [1]एतच्चदुष्करं कर्म भाग्ये कस्यापि सिद्ध्यति॥ १६९॥**

### अथ प्रत्यागमनम्—

**खगं बाणं तु राजेन्द्र प्रक्षिपेद् वायुसम्मुखे। रञ्जकस्य च नालाभिरतो ह्यागमनं भवेत्॥ १७०॥**

### शरक्षेपण क्षमता—

चतुः शतैश्च काण्डानां यो हि लक्ष्यं विसर्जयेत्। सूर्योदये चास्तमाने स ज्येष्ठो धन्विनां भवेत्॥ १०८॥
त्रिंशतैर्मध्यमश्चैव द्विशताभ्यां कनिष्ठकः। —वा० ध०

### श्रमकालः—

**एवं श्रमविधिं कुर्याद् यावत् सिद्धिः प्रजायते। श्रमे सिद्धे च वर्षासु नैव ग्राह्यं धनुष्करे॥ १६३॥**
**पूर्वाभ्यासस्य शस्त्राणामविस्मरणहेतवे। मासद्वयं श्रमं कुर्यात् प्रतिवर्षे शरदृतौ॥ १६४॥**
—वा० ध०

---

उसके पश्चात् इसका अभ्यास हो जाने पर लक्ष्य को कुछ दूर करता हुआ प्रतिदिन अभ्यास को बढ़ावे। यह अभ्यास अन्धकार में करे॥ १६८॥

लक्ष्य के निश्चय में सफलता मिलने पर तीक्ष्ण बुद्धिवाला योद्धा सावधान होकर उसे बाण से निशाना बनावे। यह अत्यन्त दुष्कर कार्य किसी-किसी के ही भाग्य में सम्भव होता है॥ १६९॥

**बाण का वापस आना**—हे विश्वामित्र! खग नामक बाण जोकि रञ्जक (बारूद) की नलियों से युक्त होता है, वायु के सामने फेंकने से वह पुनः स्वस्थान पर आ जाता है॥ १७०॥

**शरक्षेपण क्षमता**—जितने समय में सूर्य उदय और अस्त होता है उतने काल में जो चार सौ बाणों को लक्ष्य पर छोड़े, वह धनुर्धरों में श्रेष्ठ होता है॥ १०८॥

इसी प्रकार तीन सौ बाण छोड़नेवाला मध्यम और दो सौ छोड़नेवाला अधम होता है।

**श्रमकाल**—इस प्रकार पूर्वोक्त चित्रादि लक्ष्यों में जब तक सिद्धि न हो तब तक धनुष बाण का सतत अभ्यास करे। सफलता मिलने पर वर्षा ऋतु में धनुष का ग्रहण न करे। पूर्व अभ्यास को बनाये रखने के लिये प्रतिवर्ष शरद् ऋतु में दो मास अभ्यास करते रहना चाहिये॥ १६३-१६४॥

---

१. शब्देनानुमिदं लक्ष्यं परापरमुदाहृतम् (मानसो० भाग २ पृ० १६७)
शब्दवेधित्वे दृढप्रहारित्वे.......बोधिसत्व एव विशिष्यते स्म।
(ललितविस्तर, शिल्पसंदर्शन, परिवर्त १२ पृष्ठ १०८)।

# षष्ठ अध्याय

## चक्र

वाशिष्ठ धनुर्वेद में परिगणित सात युद्धों में चक्र का स्थान दूसरा है। सर्वप्रथम ऋग्वेद में चक्र का प्रयोग मिलता है।[१] रामायण में भी अनेक बार चक्र की चर्चा हुई है।[२] महाभारत में श्रीकृष्णजी का सुदर्शनचक्र तो सुप्रसिद्ध है ही। जब शाल्वराज ने सौभविमान में बैठकर द्वारिका पर बमगोले बरसाने प्रारम्भ कर दिये तो श्रीकृष्णजी ने सुदर्शनचक्र को सौभविमान के संहारार्थ फेंका। इसने सौभविमान के दो टुकड़े कर दिये और अपना कार्य पूरा करके पुनः श्रीकृष्णजी के पास लौट आया।[३] इस चक्र की प्राप्ति खाण्डववन-दाह के समय हुई थी। पुराणों में भी इसकी महिमा गाई है।[४] इसी चक्र को पहले विष्णु ने धारण किया था।

विष्णुपुराण में सुदर्शनचक्र की उत्पत्ति में एक आख्यायिका दी है[५] जिसके अनुसार महर्षि विश्वकर्मा ने अपनी पुत्री सूर्या का विवाह सूर्य के साथ किया, परन्तु वह सूर्य के तेज को सहन न करके अपने स्थान पर दासी को नियुक्त करके जङ्गल में चली गई। जब यह वृत्तान्त महर्षि विश्वकर्मा को ज्ञात हुआ तो उसने सूर्य को अपना तेज कम करने के लिये प्रार्थना की। तदनुसार सूर्य को शाण पर चढ़ाकर उसके तेज का आठवाँ भाग पृथक् किया। इस पृथक् किये तेज से महर्षि विश्वकर्मा ने सुदर्शनचक्र की रचना की तथा अवशिष्ट तेज से रुद्र का त्रिशूल, कुबेर का पुष्पक विमान, कार्त्तिकेय की शक्ति और अन्य देवताओं के आयुधों का निर्माण किया। यही कथा मत्स्यपुराण में भी आई है। पद्मपुराण में यह कथा दूसरे ढङ्ग से दी है।[६] इसके अनुसार महादेवजी ने देवों (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु) का तेज संगृहीत करके सुदर्शनचक्र को बनाया और उसे विष्णु को दे दिया। यह चक्र अग्नि की ज्वालाओं से युक्त, मन के समान तीव्रगामी और सब आयुधों का संहारक था।

हरिवंशपुराण[७] में भी इस चक्र को आग्नेयास्त्र के रूप में स्वीकार किया है। इसकी अग्नि ज्वाला से पैदल सैनिक तथा घुड़सवार भस्मीभूत होकर भूमि पर गिर पड़े।

यद्यपि ये आख्यायिकाएँ अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। पृथिवी से लाखों गुना बड़ा सूर्य शाण पर चढ़ाया नहीं जा सकता। उसका आठवाँ भाग तेज भी पृथक् करना असम्भव है। यह सब

---

१. अनायुधासो असुरा अदेवांश्चक्रेण ता अप वप ऋजीषिन्। —ऋ० ८।९६।९

२. खड्गैश्चक्रैर्गदाभिश्च। —रामा० युद्ध० ५३।९ और भी (युद्ध०—१०९।१७, ८६।२१, ९६।२६)

३. (महा० वन० २१।२)

४. पद्मपुराण उत्तरखण्ड अ० १४५

५. विष्णुपुराण अंश ३ अ० २ श्लोक ८-१२, मत्स्यपुराण ११।२७-३०

६. अथ विष्णुमुखा देवाः स्वतेजांसि ददुस्तथा। तेनाकरोन्महादेवः....
चक्रसुदर्शनं नाम ज्वालामालातिभीषणम्॥ —पद्म० पु० उत्तरखण्ड अ० १४५

७. ततः सुधारं ज्वलितं सूर्यमण्डलसंनिभम्। ....
सध्वजः सायुधः साश्वो दग्धोऽर्ककिरणप्रभः। —हरि० भवि० ५५।२१-२२

आलङ्कारिक वर्णन है। सम्भवतः सूर्यकिरणों से ऊर्जा प्राप्त करने की अनुसन्धानशाला के अभियन्ता=इञ्जीनियर को ही सूर्य नाम से पुकारा गया हो। इतना तो निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि सुदर्शनचक्र सौर किरणों से सञ्चालित था और जैसे आजकल लेजर बीम या गाइडेड मिसाइल से शत्रु के विमान, राकेट या उपग्रहों को नष्ट करते हैं वैसे ही यह भी सम्भवतः इसी सिद्धान्त पर कार्य करता था।

'नीतिप्रकाशिका' में चक्र की गणना मुक्तायुधों में की गई है।[1] इसके अतिरिक्त दण्डचक्र, धर्मचक्रादि को मुक्तामुक्त आयुधों में गिनाया गया है। इसका भी यही अभिप्राय है कि इसे दिव्यशक्ति के योग से युक्त करके फेंकने से यह लक्ष्य को गिराकर पुनः प्रयोक्ता के पास आ जाता था।

विष्णु की प्रतिमा में सर्वत्र चक्र देखने को मिलता है। जिसके मध्य में नाभि और नाभि में अरे लगे हुये हैं। नाभि के मध्य में छिद्र है और उसमें रस्सी ओतप्रोत है। यहाँ रस्सी से क्या अभिप्राय है यह विचारणीय है। हमारे विचार में रस्सी का प्रयोग चक्र को फेंकने के लिये किया जाता है। जैसे बच्चे घुमानेवाले लट्टू के चारों ओर रस्सी लपेटकर उसे छोड़ देते हैं इसी प्रकार चक्र की नाभि के चारों ओर रस्सी लपेटकर झटके से छोड़ने पर चक्र घूमता हुआ दूर तक जा सकता है।

'मानसोल्लास' में चक्रप्रक्षेपण करने के लिये तर्जनी अङ्गुली से सिंहकर्णमुष्टि की भाँति पकड़कर दाहिने-बायें घुमाकर छोड़ने का निर्देश किया है।[2]

औशनस धनुर्वेद में चक्र का विस्तार से वर्णन किया है इसके अनुसार चार, छह या आठ अरोंवाला चक्र उपयुक्त होता है। विष्णु का चक्र बारह अरों से युक्त था।

यहाँ पर 'अर' शब्द से क्या अभिप्राय है यह विचारणीय है। औशनस धनुर्वेद के सङ्कलनकर्त्ता श्री राजाराम शास्त्री ने इसका अर्थकोण किया है। छह कोणोंवाले चक्र को षडर, आठवाले को अष्टार कहते हैं। ऐसा अर्थ भी गृहीत हो सकता है। ऐसे चक्र पुरातत्त्व-संग्रहालयों में देखने को कहीं-कहीं मिलते भी हैं, परन्तु इसका अर्थ अर (अरा) करना भी समुचित प्रतीत होता है। जैसे गाड़ी के चक्र के मध्य में नाभि होती है और उसमें अरे लगे हुए होते हैं इसी भाँति चक्र की रचना होती है। शुक्रनीति में भी चक्र को कुण्डल की आकृति जैसा बतलाया है। सिखमत के अनुयायी (अकाली) अपनी पगड़ी में चक्र जैसा गोलाकार लोहे का चक्र धारण करते हैं। इसके बाह्य किनारे तीक्ष्ण होते हैं, परन्तु इसमें नाभि नहीं रहती।

यहाँ औशनस धनुर्वेद के प्रमाणानुसार चक्र का स्वरूप, भार, सञ्चालन विधियों का वर्णन किया जाएगा। यद्यपि वर्त्तमान समय में इसका उपयोग देखने को नहीं मिलता, परन्तु यह प्राचीन समय का सशक्त आयुध रहा है, इसमें सन्देह नहीं है।

---

१. नीतिप्रकाशिका, पृष्ठ २१

२. ततोऽष्टारं समादाय चक्रं षडरमेव वा। मुष्टिभिः सिंहकर्णाद्यैर्लक्ष्यं हन्याद् पृथिवीपतिः॥
ईषत् कुञ्चित् तर्जन्यां भ्रामयेद् वामदक्षिणम्। उत्क्षिप्योत्क्षिप्य वेगेन पञ्चसप्तप्रधारयेत्॥
—मानसो० २।१।४।१७२-७४

**औशनसधनुर्वेदे—**

**जमदग्निं प्रति शुक्र उवाच। वत्स! यथाप्रश्नमुपदिश्यमानं निबोध—**

**तत्रोत्तममध्यमाधमभेदेन चक्रं त्रिविधं भवति। संयुक्तमष्टभिरारैरुत्तमं, षडारं मध्यमं, चतुर्भिरारैः सम्पन्नमधमं भवति। तत्र श्लोकः—**

**अष्टारमुत्तमं चक्रं षडारं मध्यमं भवेत्। जघन्यं चतुरारं स्यादिति चक्रं भवेत् त्रिधा॥**

**द्वादशपलमुत्तममेकादशपलं मध्यमं, दशपलमधमञ्चेति बालानां चक्रम्। अबालानान्तु पञ्चाशत् पलमुत्तमं, चत्वारिंशत् पलं मध्यमं, त्रिंशत्पलं कनिष्ठमिति। तथाष्टाङ्गुलमुत्तमं, सप्ताङ्गुलमध्यममधमन्तु षडङ्गुलं भवति बालानाम्। अबालानां तु षोडषाङ्गुलमुत्तमं चतुर्दशाङ्गुलं मध्यममधमं द्वादशाङ्गुलं भवति। तत्र श्लोकौ—**

**द्वादशैकादशदशपलानि क्रमशः शिशोः। त्रिंशच्च चत्वारिंशच्च पञ्चाशत् प्रतिलोमतः॥**

**बालानां त्रिविधं चक्रमष्टसप्तषडङ्गुलम्। अबालस्य द्विरष्टौ स्युर्द्विः सप्त द्वादशापि च॥**

*—वीर० मि० ल० पृष्ठ ३१०*

**त्रिविधं च नेमिप्रमाणं श्रेष्ठं मध्यं कनिष्ठं चेति। तत्र त्र्यङ्गुला प्रथमा नेमिः। सार्द्धद्व्यङ्गुला**

---

जमदग्नि से शुक्र बोले—वत्स! जैसा तुमने प्रश्न किया है तदनुसार उत्तर देते हैं, सुनो—

उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन भेद चक्र के होते हैं। आठ अरोंवाला चक्र उत्तम, छह का मध्यम और चार अरों का चक्र अधम होता है। इसपर श्लोक है—

आठ अरों का चक्र उत्तम, छह का मध्यम और चार का चक्र अधम होता है। इस प्रकार तीन भेद चक्र के होते हैं।

बालकों का चक्र बारह पल का उत्तम, ग्यारह पल का मध्यम और दश पल का अधम होता है। बड़ों द्वारा प्रयुक्त चक्र पचास पल का उत्तम, चालीस का मध्यम और तीस पल का अधम होता है। इस प्रकार बालकों का चक्र आठ अङ्गुल का उत्तम, सात का मध्यम और छह अङ्गुल का अधम होता है। बड़ों का चक्र सोलह अङ्गुल का उत्तम, चौदह का मध्यम और बारह का अधम होता है। इसपर दो श्लोक हैं—

बच्चों के लिये क्रमशः बारह, ग्यारह और दश पल के चक्र उत्तम, मध्यम और अधम हैं। बड़ों के लिये चक्र का भार तीस, चालीस और पचास पल क्रमशः अधम, मध्यम और उत्तम होता है।

इसी प्रकार बच्चों का चक्र आठ, सात, छह और बड़ों का सोलह, चौदह और बारह अङ्गुल प्रमाण का होता है।

चक्र के नेमि (मध्यम भाग) का प्रमाण श्रेष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ तीन प्रकार का होता है। तीन अङ्गुल की नेमि उत्तम, ढाई अङ्गुल की मध्यम और दो अङ्गुल की कनिष्ठ होती है। इनमें जो नेमि गोल मणि-रत्नों से अलङ्कृत और स्थूल मूलवाली हो वह चक्र में अच्छी मानी गई है।

शिल्पियों को चक्र विचित्र, अनेक प्रकार की रचना युक्त मनोहर, उत्तम धारवाला और

मध्यमा नेमिः। द्व्यङ्गुला तु कनिष्ठा नेमिः। नेम्यूत्तममध्यमकनीयसां मध्ये परि मण्डला नेमिः स्यूतमणिरत्नालङ्कृता स्थूलमूला च या नेमिः सा चक्रे पूजिता भवति। तत्र शिल्पिभिर्विचित्रमनेकविधसंस्थानमतिमनोहरं सुधारमव्रणं च चक्रं कर्त्तव्यमिति।

**शुक्रनीतौ—**

**चक्रं षड्ढस्तं परिधिः क्षुरप्रान्तं सुनाभियुक्।** *—अ० ४, श्लोक १०४९*

**अग्निपुराणे—**

**छेदनं भेदनं पातो भ्रमणं शयनं तथा। विकर्त्तनं कर्त्तनञ्च चक्रकर्मेदमेव च॥**

*—अग्नि० २५२-८*

**नीतिप्रकाशिकायाम्—**

**चक्रं तु कुण्डलाकारमन्तः स्वक्षसमन्वितम्। नीलीसलिलवर्णं तत्प्रादेशद्वयमण्डलम्॥ ४७॥**
**ग्रन्थनं भ्रामणञ्चैव क्षेपणं परिकर्त्तनम्। दलनञ्चेति पञ्चैव गतयश्चक्रसंश्रिताः॥ ४८॥**

*—नी० प्र० अ० ४*

**मानसोल्लासे—**

**ततोऽष्टारं समादाय चक्रं षडरमेव वा। मुष्टिभिः सिंहकर्णाद्यैर्लक्ष्यं हन्याद् पृथिवीपतिः॥**
**ईषत्कुञ्चिततर्जन्यां भ्रामयेद् वामदक्षिणम्। उत्क्षिप्योत्क्षिप्य वेगेन पञ्च सप्तप्रधारयेत्॥**
**एवं प्रदर्शयेच्चित्रं चक्रचारविचक्षणः॥**

*—मानसो०, खण्ड २, अ० १, वि० ४ श्लोक १७२-१७३-१७४*

---

व्रणशून्य बनाना चाहिये।

**शुक्रनीति में चक्र का लक्षण**—छह हाथ परिधियुक्त किनारों पर उस्तरे के समान तीक्ष्ण और सुन्दर नाभियुक्त चक्र होता है।

**अग्निपुराण में चक्र के कर्म**—छेदन, भेदन, पात (गिराना), भ्रमण (घूमना), शयन (लक्ष्य को गिराना), विशेषरूप से काटना और काटना ये सात कार्य चक्र के कहे हैं॥ ८॥

**नीतिप्रकाशिका में**—चक्र का आकार कुण्डल के समान, मध्य में सुन्दर नाभि, नीला वर्ण, १ प्रादेश (२ वितस्ति=१ हाथ) की परिधिवाला होता है॥ ४७॥

इसके पांच कार्य ग्रन्थन (अङ्गुली में डालना), भ्रामण (घुमाना), क्षेपण (फेंकना), परिकर्त्तन (काटना) और दलन करना होते हैं॥ ४८॥

**मानसोल्लास में**—इसके पश्चात् राजा आठ अरों अथवा छह अरों से युक्त चक्र को लेकर सिंहकर्ण मुष्टि से पकड़कर लक्ष्य को गिरावे॥ १७२॥

तर्जनी अङ्गुली को कुछ मोड़कर दायें और बायें घुमावे इस प्रकार वेग से पाँच-सात बार घुमाकर उसे धारण करे (लक्ष्य पर छोड़े अथवा वापस ले)॥ १७३॥

इस प्रकार चित्र-विचित्र चक्र चलाने में दक्ष राजा चक्र का प्रदर्शन करे॥ १७४॥

## कुन्त

कुन्त की गणना मुक्तामुक्त आयुधों में की गई है। वैश्य (अल्पबल) प्रकृति के योद्धा को कुन्त से युद्ध करने का विधान वाशिष्ठ धनुर्वेद में किया है। कुन्त के अग्रभाग सतौना (सप्तपर्ण), शाक (सागवान) खजूर, बेंत, कनेर, बाँस, ताल और केतकी के पत्र के सदृश बनाये जाते हैं। इसका दण्ड बाँस इत्यादि उत्तम काष्ठों का तथा लोहादि धातुओं से निर्मित होता है। कुन्त का निचला भाग हरीतकी इत्यादि के समान आकृति से युक्त होता है। इस प्रकरण में कुन्त का फल, आकृति, फलका भार, दण्ड का प्रमाण, निचले भाग की आकृति इत्यादि का परिमाण देकर शक्ति, प्रास, शूल, कुन्त आदि का स्वरूप निर्धारण भी किया है। अन्त में कुन्त सञ्चालन के विज्ञान भी दिये हैं।

कुन्त, प्रास द्वारा किया युद्ध धनुष के पश्चात् दूसरे स्थान पर आता है।[१] महाभारत में लिखा है कि शकुनि (गन्धार देश) की सेना कुन्त, भाला, प्रासादि से युद्ध करने में प्रवीण थी। कुछ इतिहासकारों का मत है कि राजा पुरु की सेना के हाथी सिकन्दर के घुड़सवारों के नेजों की मार खाकर भयभीत होकर अपनी ही सेना को रौंदते हुए भाग निकले। इस तथ्य से इसकी उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है।

**औशनसधनुर्वेदे कुन्तलक्षणम्—**

**वेणुवेत्रतालचन्दनशिंशपासनखदिरदेवदारुश्चेति कुन्तस्य दण्डद्रव्याणि। तत्र दण्डः सप्त-हस्तप्रमाणः श्रेष्ठः षड्भिर्हस्तैर्मध्यमः पञ्चहस्तस्य निकृष्टो भवति। लौहस्याकरौ द्वौ भवतः। एकं पुष्कलावर्तं द्वितीयं वीनोत्थितञ्चेति। तत्र वीनोत्थितं यल्लोहं तत्तीक्ष्णम्। यत्तु पुष्कलावर्तकं तल्लोहं मृदु। तयोस्त्वियं परीक्षा यत्ताडितं नदति तत्तीक्ष्णम्, यन्नमति तत्पुष्कलावर्तं मृदु भवेत्। कुन्तस्य च फलं मृदुना लोहेन कर्त्तव्यं, तीक्ष्णेन लोहेन धारा कार्या। तयोरलाभे शेषाणि लोहानि शोधयित्वा कुन्तफलं तैः कारयेत्। तच्चा सप्तपर्णशाकखर्जूरीवेत्रकरवीरवेणु तालानाम्। केतक्यास्तु[२] पत्राकारं कुशाग्रसंनिभं तथा कर्णसंस्थानं वा कर्त्तव्यम्। तच्च निर्व्रणं मनोहरं दृष्टिहरं तीक्ष्णं शुभञ्च श्रेष्ठञ्च षोडशाङ्गुलायामं, मध्यमं चतुर्दशाङ्गुलायाममधमं द्वादशाङ्गुलायामं भवति। त्र्यङ्गुलविस्तारं द्व्यङ्गुलविस्तारं च**

---

**अर्थ**—बाँस, बेंत, ताल, चन्दन, शीशम, पीतशाल, खैर और देवदारु इन काष्ठों से कुन्त का दण्ड बनता है। कुन्त का दण्ड सात हाथ लम्बा उत्तम, छह हाथ का मध्यम और पाँच हाथ का निकृष्ट होता है। लोहे की खानें दो स्थानों पर मिलती हैं। पहली पुष्कलावर्त में और दूसरी बीना में। इनमें बीना का लोहा तीक्ष्ण (फौलाद) और पुष्कलावर्त का लोहा मृदु होता है। इनकी पहचान यह है कि ताड़ना करने पर जिससे ध्वनि निकलती है वह तीक्ष्ण (पक्का) और जिससे आवाज़ नहीं निकलती वह मृदु (कच्चा) लोहा होता है या जो फेंकने से टूट जाये

---

१. धनुश्रेष्ठानि युद्धानि प्रासमध्यानि तानि च। तानि खड्गजघन्यानि बाहुप्रत्यवराणि च॥

*—अग्नि० पु० २४९/७*

२. कुन्तैः कैतकपत्रपद्धतिधरैः.... ॥४३७॥ (यशस्तिलकचम्पू, आ० ३ पृष्ठ ३८३)

कुन्तफल
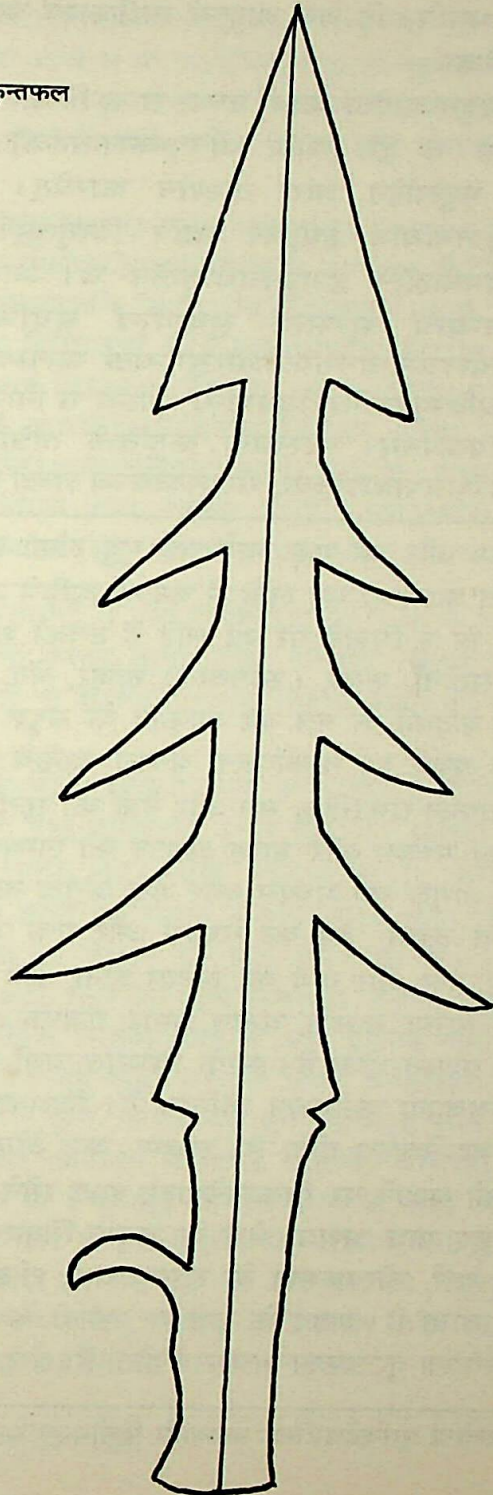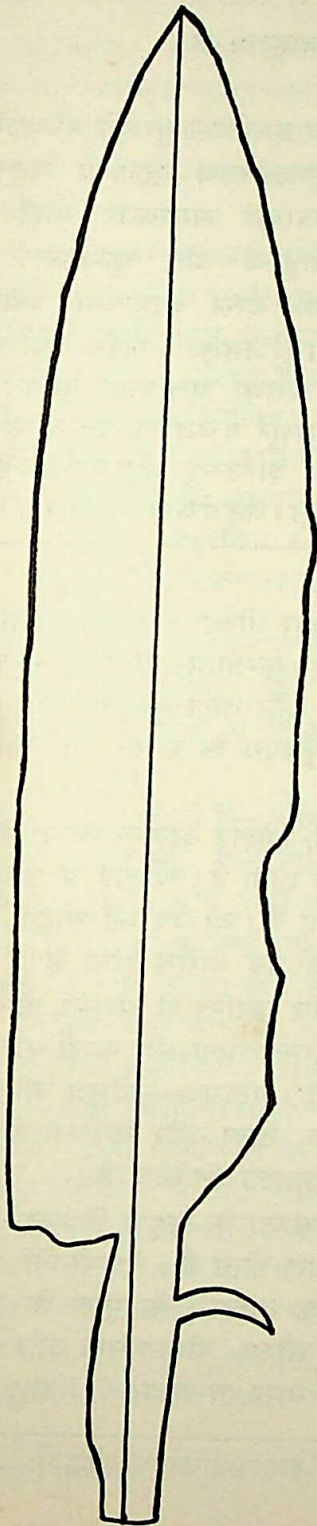
**क्रमात् भवति। द्वि यव बाहुल्यं सार्धैकयव बाहुल्यमेकयवबाहुल्यं च।**

**तत्र श्लोकाः—**

**[1]वेण्वादिद्रुमजातीनां कार्यो दण्डः स च त्रिधा। सप्त षड् पञ्च हस्तोऽसावुत्तमो मध्यमोऽधमः॥ तस्याकरौ च द्वौ स्यातां वीनपुष्कलावर्तकौ। तत्रैकस्तीक्ष्णलोहस्य द्वितीयो मृदुनस्तथा॥ तत्फलं मृदुलोहेन धारां तीक्ष्णेन कारयेत्। सप्तपर्णादिपत्राणां समाकारं फलं भवेत्॥ षोडशाङ्गुलमायामं द्व्यङ्गुलं चापि विस्तृतम्। यवद्वितयबाहुल्यं श्रेष्ठं कुन्तफलं भवेत्॥ मध्यमाधमयोर्हानि द्व्याङ्गुलार्धाङ्गुलेन च। आयामो विस्तृतो वत्स बाहुल्येन यथाक्रमम्॥**

**सुगन्धत्वं सुरसत्वं सुवर्णत्वं सुपूजितत्वं छायापूजितत्वं चेति फलगुणाः। चम्पकोत्पलचन्दनागरुपत्रोशीरसुगन्धदा फलस्य गन्धसम्पत्। तया युक्तफलं पूजितं भवति। वसागन्धिविन्मूत्रगन्धिगोमूत्रगन्धि दुर्गन्धि च निन्दितं भवति। मधुरं यच्चाम्लं यत् कषायं भवति तल्लक्ष्मीप्रवर्धनम्। यल्लवणं कटुतिक्तं तन्निन्दितं भवति। शब्दस्तु हिरण्यस्थालीशब्दवत् प्रशस्तः। भिन्नपात्रशब्दवद् भेरीशब्दवच्च शब्दो निन्दितो भवति। वैदूर्यचन्द्रसमानवर्णं कुन्तफलं**

---

वह तीक्ष्ण और जो मुड़ जाये वह मृदु लोहा होता है।

कुन्त का फल मृदु लोहे से बनाना चाहिये और उसकी धार तीक्ष्ण लोहे से बनानी चाहिये। इन दोनों के न मिलने पर जो लोहे हैं उनको शोध कर उनसे कुन्तफल बनाये। कुन्तफल की आकृति सतौना, शाक, (सागवान) खजूर, बेंत, कनेर, बाँस और ताल वृक्ष के पत्तों के समान होती है। केतकी के पत्र की आकृति के सदृश कुन्तफल, कुशाग्र के समान तीक्ष्ण और कर्ण के सदृश झुकी हुई नोकोंवाला बनाना चाहिये।

कुन्तफल व्रणरहित, मन और नेत्रों को सुन्दर लगनेवाला, सोलह अङ्गुल लम्बा श्रेष्ठ, चौदह अङ्गुल का मध्यम और बारह अङ्गुल की लम्बाई का अधम होता है। चौड़ाई में ३ अंगुल का उत्तम, २ अंगुल का मध्यम और डेढ़ अंगुल का अधम होता है। दो जौ की मोटाई के समान मोटा कुन्त उत्तम, डेढ़ का मध्यम और एक जौ की मोटाई का अधम होता है।

गन्ध, रस और वर्ण का अच्छा होना, व्रण से उत्तम और कान्ति से प्रशस्त होना ये फल के गुण हैं। चम्पा, कमल, चन्दन, अगर, तेजपत्र और खस की गन्धवाला और फलों की गन्धवाला कुन्तफल प्रशस्त होता है। इसके विपरीत चर्बी की गन्ध युक्त, मलमूत्र—गोमूत्र की गन्धवाला और दुर्गन्धवाला कुन्तफल निन्दित है। जिसका स्वाद मीठा, खट्टा और कसैला होता है वह यश का बढ़ानेवाला होता है। लवण, कटु और तिक्त स्वादवाला निन्दित है।

इसको बजाने पर निकलनेवाला शब्द सोने की थाली, घण्टा के सदृश निकलने पर उत्तम और टूटे हुए पात्र अथवा भेरी के सदृश निकलने पर निन्दित होता है। वैदूर्यमणि या चन्द्रमा के सदृश वर्ण, नीलकमल के समान वर्ण, नीले आकाश वा अलसी के फूल के सदृश वर्ण लक्ष्मीप्रद होता है। शहद के छत्ते या स्याही के समान रङ्ग, सीसा, नीलकमल और मक्खी के सदृश वर्णवाला कुन्तफल अप्रशस्त होता है। हंस, तोता, मुर्गा, भ्रमर, नन्द्यावर्त ( ? शङ्ख), कछुआ

---

१. अर्थस्त्वेषां पूर्ववदेवास्ति। कस्यापि द्वितीयस्य ग्रन्थस्य श्लोकाः स्वपक्षपोषणाया त्रोद्धृताः।

श्रियं भर्तुर्ददाति। मधुकोशमषीसमानवर्णसीसनीलोत्पलमक्षिकावर्णञ्च निन्दितं भवति। हंसशुकम-यूरताम्रचूडषट्पदनन्द्यावर्तकूर्ममत्स्या अन्ये च मंगलशंसिनः पदार्थाः कुन्तव्रणेषु यदि दृश्यन्ते तदा ते धर्मकामार्थसाधका निर्दिष्टाः। पाण्डुकोलूकवायसश्वगृध्रजम्बूकशृगालकृकलाशा अन्ये च निन्दिताः पदार्थाः दृश्यन्ते व्रणेषु ते दृष्टाः श्रियमपहरन्ति। वत्स! इति व्रण लक्षणम्। छाया वक्ष्यते[1]—

ध्वजपताकाचामरछत्रतोरणशिबिकावेश्माङ्कुशवर्धमानभृङ्गारगजतुरङ्गाः स कुन्तः प्रशस्तः। तमपुण्यकृतो न लभन्ते। वानरकुररकुलर्क्षवृकसूकरमहिषवायसोलूका अन्ये च निन्दिता यदि कुन्ते स्युर्धौते व्यक्तास्तदा स कुन्तः श्रियं भुज्यमानमपि विनाशयेत्। यस्तादृशं कुन्तं बिभृयात् स वधं सद्यो लभेत्। महिषी वृकव्याघ्रनखस्य शुक्तिचूर्णं चेति समभागानि कारयेत्। चूर्णितं कृत्वा तेन चूर्णेन फलं घर्षयेत्। घर्षितं कुन्तफलं निर्मलं भवति। दुगर्न्धं न भवेत्। तथा मलेन न लिप्यते। तच्च चर्मकोशसमन्वितं समाहितं कारयेत्। नालिका निर्व्रणा सुदृढा पत्रायामेन अनुबन्धैश्च सुश्लिष्टैर्दृढैः सुवर्णरजतमयैर्वा मणिरत्नालङ्कृतैर्नालिका कर्त्तव्या। तथा चोत्थकं कुन्तस्य कर्त्तव्यम्। नालिका सहजा वा नालिका चात्र शिलष्टा कार्या। हरीतकीसदृशं तले बिल्वफलाकारं कपित्थफलसदृशं वा वृत्तमष्टास्त्रं वा कलशमामलकाकारं चोत्थकसम्भवे

---

और मछली तथा अन्य मङ्गलसूचक पदार्थ कुन्तवर्णों में यदि दिखलाई देते हैं तो वे धर्म, अर्थ, काम के साधक बतलाये हैं। यदि पाण्डुक, उल्लू, कव्वा, कुत्ता, गिद्ध, लोमड़ी, गीदड़, छिपकली तथा निन्दित पदार्थ व्रणों में दिखलाई पड़ते हों तो वे निन्दित एवं लक्ष्मी का नाश करनेवाले हैं।

अब छाया को कहते हैं—जिस कुन्तफल के धोने, पालिश करने पर उसकी छवि के अन्तर्गत झण्डा, झण्डी, हाथी और घोड़े दिखलाई पड़ते हैं, वह कुन्तफल उत्तम होता है। उसको भाग्यहीन पुरुष नहीं पा सकते। यदि धोये हुये कुन्त पर वानर, कुरर, रीछ, भेड़िया, सूअर, कौआ, उल्लू तथा अन्य निन्दित आकृतियाँ प्रकट हों तो उस कुन्त को धारण न करे। ऐसा कुन्त भोगी जाती हुई श्री को भी नष्ट करता है। वह पुरुष शीघ्र ही बन्धन को प्राप्त हो जाता है।

भैंस, भेड़िये और बाघ के नख का चूर्ण और सीप का चूर्ण समभाग बनावे, चूर्ण बनाकर उस चूर्ण से फल को घिसे। घिसा हुआ कुन्तफल निर्मल होता है और दुर्गन्ध नहीं देता तथा मल से लिप्त नहीं होता। उसको चर्मकोश से ढककर रखे। उसकी नाली व्रणरहित और सुदृढ़ होनी चाहिये। नाली कुन्तफल के विस्तार के अनुकूल, अच्छे घड़े हुए और दृढ़ सोने एवं चाँदी के अनुबन्ध (कड़ों) से और मणिरत्नों से भूषित नालिका बनवानी चाहिये। वैसा ही कुन्त का चोत्थक (पृष्ठ भाग) बनवाये। नाली कुन्तफल से जड़ी हुई अथवा फल के लोहे से बनी हुई चिकनी और साफ बनवाये। हरड़ के सदृश, तले में बिल्वफल के आकार का वा कैथ के फल सदृश गोल अथवा आठ कोनोंवाला कलश वा आंवलों के आकार का चोत्थक हो तो सारे साधनों से युक्त कुन्त आयुध हो। साठ पल का श्रेष्ठ, पचास का मध्यम और चालीस पल का निकृष्ट होता है। इस प्रकार प्रबल शत्रु के मारनेवाला कुन्त बनवाये।

---

१. कुन्तफलं मार्जनानन्तरमुत्पद्यमाना छविरत्र छायात्वेनोपलक्ष्यते।

चोत्थक

हरीतकी फलाकार

बिल्व फलाकार

कपित्थ फलाकार

कलिकाकार

कलशाकार
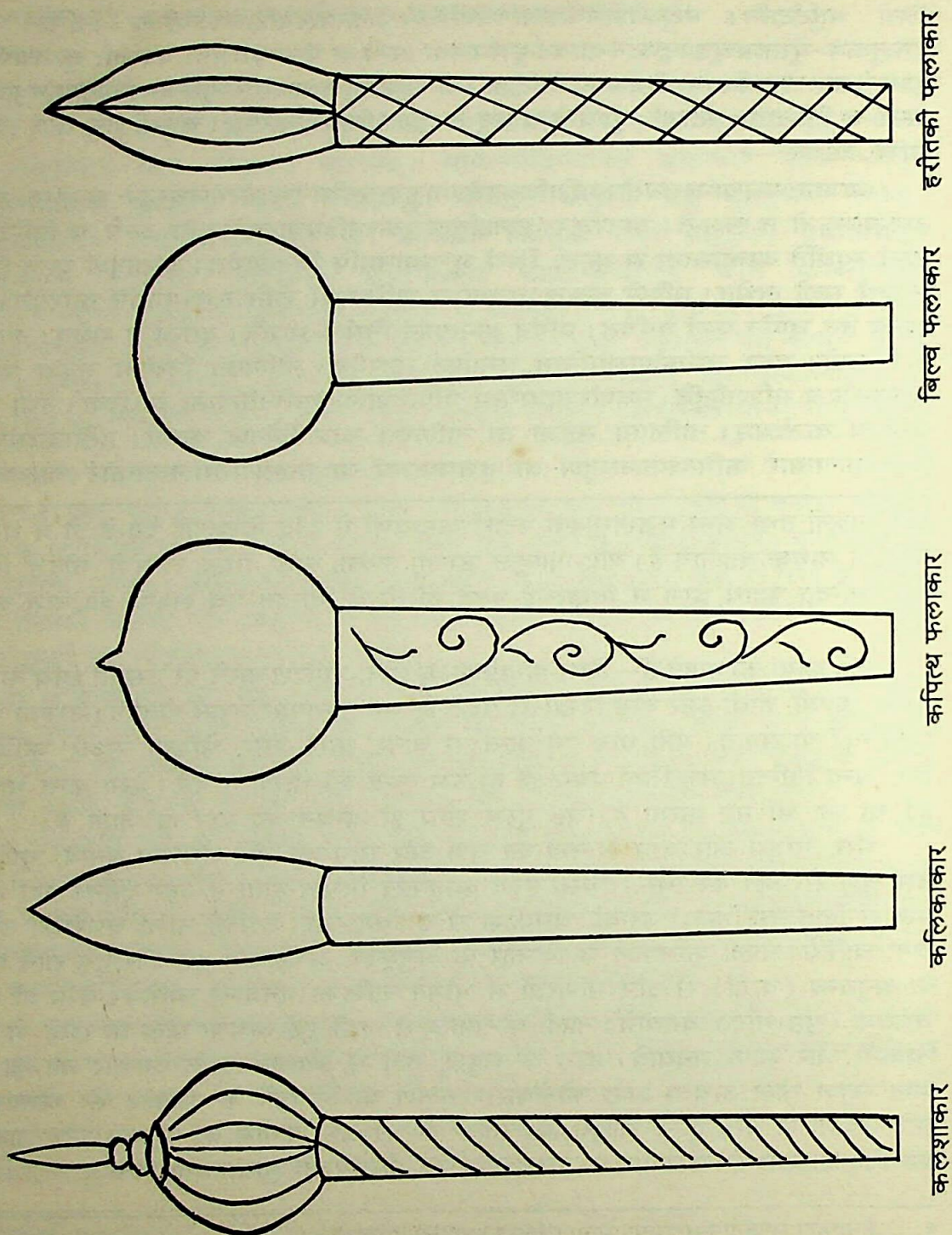
सर्वोपस्करान्वितं कुन्तायुधं षष्टिपलं श्रेष्ठं पञ्चाशत् पलं मध्यमं चत्वारिंशत् पलं निकृष्टं प्रबलरिपुविनाशकं च कारयेत्। न तु स्वप्रमाणाधिक गौरवम्। यो हि स्वस्य बलमविदित्वा कुन्तमायुधमावहेत् सादी तस्याजीर्णमजानतः पुरुषस्य वातिभुक्तमशनं कुन्तायुधं विषी भवति।

*—वीरमि० ल० पृष्ठ ३१६-१८*

**नीतिप्रकाशिकायाम्—**

कुन्तस्त्वयोमयदण्डः स्यात्तीक्ष्णशृङ्गः षडश्रिमान्। पञ्चहस्तसमुत्सेधो वृत्तपादो भयङ्करः॥ २२॥
उड्डीनमवडीनञ्च निडीनं भूमिलीनकम्। तिर्यग्लीनं निखातञ्च षड् मर्माः कुन्तमाश्रिताः॥ २३॥

*—नी० प्र० अ० ५, धनुर्वेद पं० जयदेवकृत पृष्ठ ५६*

**शुक्रनीतौ—**

दशहस्तमितः कुन्तः फलाग्रशङ्कुबुध्नकः॥ *—शुक्र० अ० ४।१०४८*

**राजविजये—**

एकादशकरः कुन्तो नवहस्तस्तु शर्बलः। सप्त हस्तो भवेद् भल्लः क्षेपणी पञ्च हस्तिकी॥

*(वीरमित्रो० लक्षणप्रकाशे आयुधलक्षणप्रकरणे कुन्तलक्षणम्)*

**कौटिल्यार्थशास्त्रे—**

शक्तिप्रासकुन्तहाटकभिण्डिपालशूलतोमरवराहकर्णकणयकर्पणत्रासिकादीनि हलमुखानि।

*—कौटि० अधि० २, अ० १८*

**तत्र गणपतिशास्त्रिकृता श्रीमूलाख्यव्याख्या—पृष्ठ० २५२**

**आयुधान्याह—शक्ति प्रासेत्यादि—शक्तिः सर्वलोहमयं करवीरपत्राकृतिलोहमुखम्। अधस्ताद्**

---

अपने परिमाण से अधिक भारवाला कुन्त उपयुक्त नहीं है। जो अश्वारोही अपने बल को न जानकर कुन्तायुध को उठाता है उसके लिये कुन्तायुध उलटा विष बन जाता है। जैसे अपने अजीर्ण को न जानते हुये पुरुष के लिये भूख से कहीं बढ़कर किया हुआ भोजन।

*—औशनसधनुर्वेद, अनु० पं० राजारामशास्त्री*

**नीतिप्रकाशिका में—**कुन्त का सारा शरीर लोह का बना हुआ होता है। इसका सींग तीखा और तेज छह धारवाला, पाँच हाथ लम्बा, टेढ़े पैरवाला बहुत भयङ्कर होता है। उड्डीन, अवडीन, निडीन, भूमिलीनक, तिर्यग् लीन और निखात ये कुन्त की छह गतियाँ हैं।

**शुक्रनीति में—**कुन्त दश हाथ लम्बा और अग्रभाग (फाल) कील से जड़ा हुआ होता है।

**राजविजय में—**ग्यारह हाथ लम्बा कुन्त, नौ हाथ लम्बा शर्बल, सात हाथ का भाला और पाँच हाथ परिमाणवाली क्षेपणी होती है।

**कौटिल्य अर्थशास्त्र में—**शक्ति, प्रास, कुन्त, हाटक, भिण्डिपाल, शूल, तोमर, वराहकर्ण कणय, कर्पण और त्रासिका इनके मुख हल के फाल के समान तीक्ष्ण होते हैं।

अब आयुधों का लक्षण कहते हैं—शक्ति सम्पूर्ण लोहे की बनी हुई और कनेर के पत्ते के समान मुखाग्रयुक्त होती है। नीचे से गाय के स्तन सदृश आकृति और लम्बाई में यह चार

गोस्तनाकारं चतुर्हस्त दीर्घमायुधम्। प्रासश्चतुर्विंशत्यङ्गुलो द्विपीठः सर्वलोहमयः काष्ठगर्भश्च। कुन्तः हस्तैः सप्तोत्तमः कुन्तः षड्हस्तैश्चैव मध्यमः। कनिष्ठः पञ्च हस्तैस्तु कुन्तमानं प्रकीर्तितम्॥ इत्युक्त लक्षणः हाटकं त्रिकण्टकं कुन्ततुल्यप्रमाणकम्।

भिण्डिपालः कुन्त एव पृथुफलः। शूलमेकमुखमनियतहस्तप्रमाणम्। तोमरः शराकृतिशिखः। वराहकर्णप्रास एव वराहकर्णाकृतिमुखः। कणयः सर्वलोहमय उभयतस्त्रिकण्टकाकारमुखो मध्यमुष्टिः।

कनिष्ठो विंशतिः स्यात् तदङ्गुलानां प्रमाणतः। द्वाविंशतिर्मध्यमः स्याच्चतुर्विंशतिरुत्तमः॥

इत्युक्तप्रकारत्रयः। कर्पणः तोमरतुल्यमानो हस्तक्षेप्यः पक्षयुक्तः शरः।

कनीयः सप्तकर्षं तु द्विपलं मध्यमं भवेत्। उत्तम नवकर्षं तु कर्पणस्य पलं भवेत्॥

इत्युक्त त्रिप्रकारपलप्रमाणः। त्रासिका सर्वलोहमयी प्रासप्रमाणाचूडोपेता, इत्येवं जातीयानि आयुधानि हलमुखानि तीक्ष्णाग्रत्वात्।

**मानसोल्लासे—**

ततः कुन्तं समादाय तदुत्कर्षं प्रदर्शयेत्॥ १७४॥

सप्तारत्निर्भवेद् भूमौ षडरत्निस्तु वाजिनि। वारणे च नवारत्निः कुन्तदण्डास्त्रयः स्मृताः॥ १७५॥

त्रिशूली जर्जरो जीर्णो व्रणकोशसमन्वितः। स्थूलग्रन्थिकृशग्रन्थिर्दूरपर्वभिरायतः॥ १७६॥

---

हाथ होती है। प्रास चौबीस अङ्गुल लम्बा, दो धारवाला, सारा लोहे का जिसके अन्दर काष्ठ लगा हो, होता है।

सात हाथ का कुन्त उत्तम, छह का मध्यम और पाँच का कनिष्ठ मानवाला कुन्त होता है। हाटक तीन काँटों (त्रिशूल) से युक्त कुन्त जितने प्रमाणवाला होता है। भिण्डिपाल मोटे फलवाला कुन्त ही होता है। शूल (नेजा) एक मुख एवं अनिश्चित प्रमाण का होता है। तोमर की आकृति शर (बाण) जैसी होती है। वराहकर्ण सूअर के कान सदृश आकृति होने से कहलाता है। वस्तुतः यह प्रास के जैसा ही है। कणय सारा लोहे का बना हुआ दोनों ओर तीन तीन काँटोंवाला और मध्य में पकड़ने के लिये मुष्टि युक्त होता है। बीस अङ्गुल का निकृष्ट, बाईस का मध्यम और चौबीस का उत्तम कहा गया है। कर्पण तोमर के समान ही पङ्खों से युक्त हाथ से फेंका जानेवाला शर होता है जिसका भार सात पल (कनिष्ठ), आठ पल (मध्यम) और नौ पल (उत्तम)—तीन प्रकार का होता है। त्रासिका सारी लोहे से बनी हुई प्रास के प्रमाण-जैसी शिखायुक्त होती है। इस प्रकार के समस्त आयुध अग्रभाग में तीक्ष्ण होने से हलमुख कहलाते हैं।

**मानसोल्लास में**—उसके पश्चात् कुन्त (भाला) लेकर उसका चातुर्य प्रदर्शित करे। कुन्त का मान पदाति (पैदल सैनिक) के लिये सात अरत्नि (हाथ), घुड़सवार के लिये छह और हाथी के लिए नौ अरत्नि का दण्ड होता है॥ १७५॥

त्रिशूली (जिसके पर्वों में अन्य शाखाएँ निकल रही हों, जर्जर (पोला) जीर्ण (पुराना) व्रण (घुन आदि से खाया हुआ) कोश (कीड़ों से युक्त) स्थूलग्रन्थि (मोटी गाठोंवाला) एवं
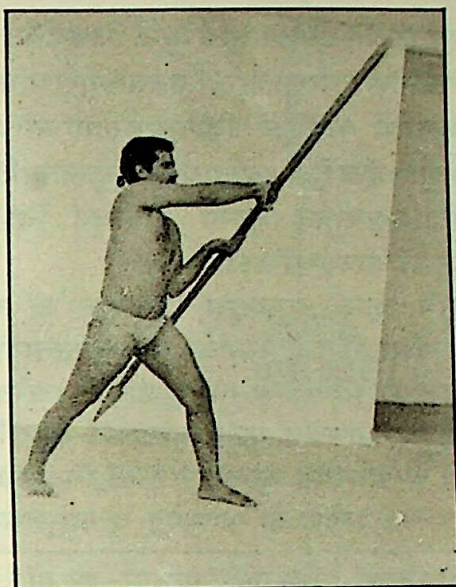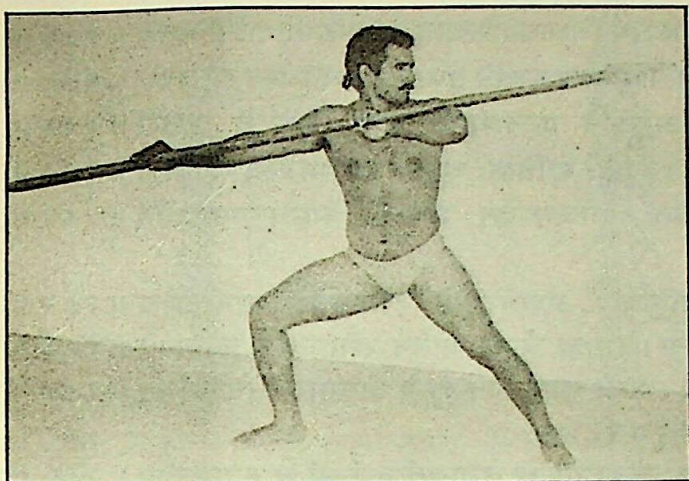
वेध
पृष्ठावर्त्त
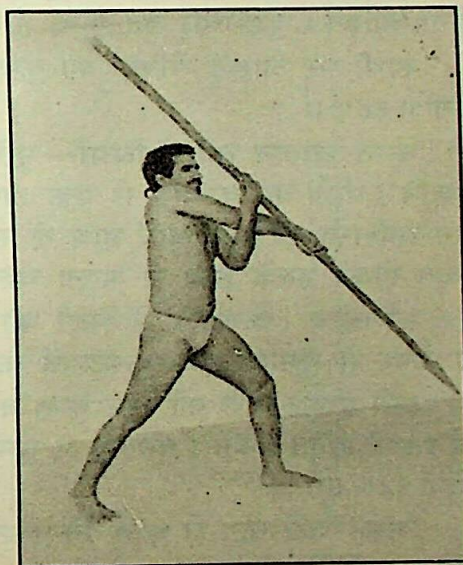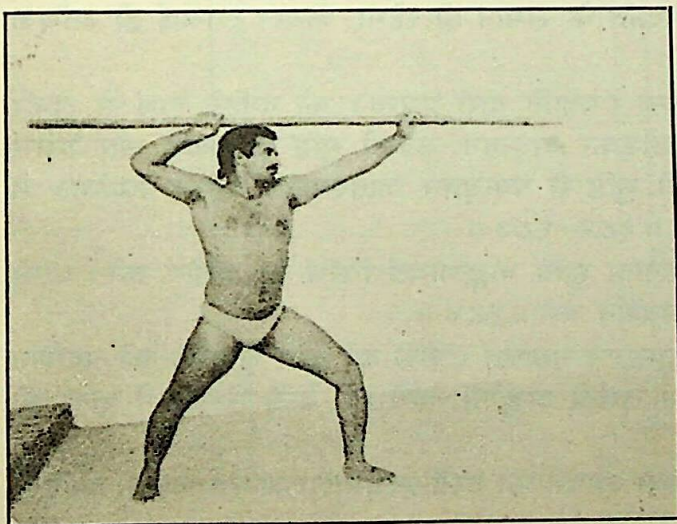
**एवं विधेन दण्डेन युक्तं कुन्तं विवर्जयेत्। सदोषं विघ्नकारित्वात् कुन्तकर्मणि निन्दितम्॥ १७७॥**
**निष्कोशः सरलः शुद्धः पक्ववेणुसुभूमिजः। कुन्ते प्रशस्यते दण्डः सर्वकार्यस्य साधकः॥ १७८॥**
**फलमग्रे भवेदेकं विंशत्यङ्गुलमानतः। अङ्कुशेन फलस्याधो युक्तः पृष्ठे च कर्तरी॥ १७९॥**
**अशनिर्मूल देशे स्यादायसो मुकुलाकृतिः। ईदृक्षः पातिकः कुन्तः फलमात्रस्तु वाजिनि॥ १८०॥**
**पदातिकुन्तवत् कुन्तो दीर्घत्वेन विशेषतः। गजारूढेन संधार्यः समराङ्गणमूर्धनि॥ १८१॥**

**कुन्तचालनविधयः—**

**भूमि कुन्तं समादाय दक्षिणेन च पाणिना। अशनेरग्रतो हस्तमात्रेऽनुत्तानमुष्टिना॥ १८२॥**
**वितस्ति त्रितयं त्यक्त्वा वामेनोत्तानमुष्टिना। संगृह्य कुन्तं जातेन स्थानकेन चरेल्लघु॥ १८३॥**
**चालयन् मणिबन्धेन कङ्कणावर्तमाचरेत्। स्कन्धे चावर्तयन् कुन्तं कण्ठावर्तं निदर्शयेत्॥ १८४॥**
**पृष्ठे च भ्रामयेत् कुन्तं पृष्ठावर्तं निदर्शयेत्॥ १८४॥**
**पृष्ठे च भ्रामयेत् कुन्तं पृष्ठावर्तं निदर्शयेत्। कक्षायां च तथावर्तं तर्जन्यां तु तदान्वयम्॥ १८५॥**
**यत्र यत्र प्रदेशे तु भ्रामयेत् कुन्तमुत्तमम्। तत्तन्नाम्ना तमावर्तं दर्शयेत् कुन्तकोविदः॥ १८६॥**

---

बड़े पोरवों (जिसकी गाठें दूर-दूर हों) इन दोषों से युक्त दण्ड कुन्त के लिये वर्जित है, क्योंकि यह दोषयुक्त और विघ्नकारक है॥ १७६-१७७॥

कीड़ों एवं जालादि से रहित, सीधा, शुद्ध, पके हुए बाँस का और अच्छी भूमि में उत्पन्न वृक्ष का दण्ड सर्वकार्यों का साधक होने से प्रशस्त माना गया है॥ १७८॥

कुन्त का फल इक्कीस अङ्गुल लम्बा होना चाहिये। फल का पिछला भाग अङ्कुश से युक्त एवं उसके पीछे कर्तरी (आरा के सदृश दाँतों) की बनावट हो॥ १७९॥

कुन्त का पृष्ठ भाग (अशनि), जोकि बिना खिले हुए पुष्प की आकृति-जैसी हो और लोहे की बनी हुई हो, से जड़ा हुआ होना चाहिये। ऐसा कुन्त पातिक (पैदल सैनिक) का होना चाहिये। घुड़सवार का कुन्त पीछे फल-(अशनि)-रहित ही होता है॥ १८०॥

हाथी पर आरूढ़ सैनिक का कुन्त पदाति के समान ही रहेगा, केवल लम्बाई ही अधिक होगी॥ १८१॥

**कुन्त चालन की विधियाँ**—भूमिकुन्त (पदाति द्वारा प्रयुक्त) को दाहिने हाथ से लेकर अशनि (पीछे का कुन्दा) से एक हाथ छोड़कर अनुत्तान, उलटी मुष्टि से पकड़े और उससे तीन बालिस्त छोड़कर बायें हाथ से सीधी मुष्टि से पकड़कर जातस्थान (पवित्रा विशेष) से स्थित होकर हल्के हाथ से भाला चलावे॥ १८२-१८३॥

मणिबन्ध (कलाई) से भाले को चलाता हुआ कङ्कणावर्त विधि का प्रयोग करे। कन्धे के ऊपर से घुमाता हुआ कण्ठावर्त का प्रदर्शन करे॥ १८४॥

इसी प्रकार पीछे की ओर कुन्त को घुमाकर पृष्ठावर्त (पीछे की ओर घूमना) को प्रदर्शित करे। इसी भाँति कक्षा (बग़ल) में घुमाकर तर्जनी अङ्गुली आगे रहे, ऐसी स्थिति में कुन्त को रखे॥ १८५॥

जिस-जिस भाग से कुन्त को घुमाये उस आवर्त को उसी अङ्गवाला आवर्त जानना चाहिये, ऐसा कुन्तविशेषज्ञों का मत है॥ १८६॥
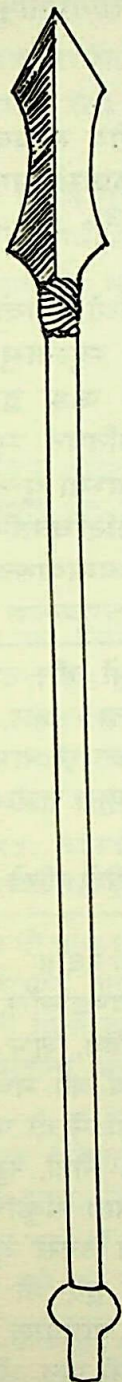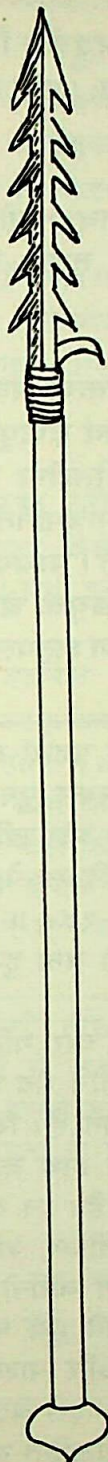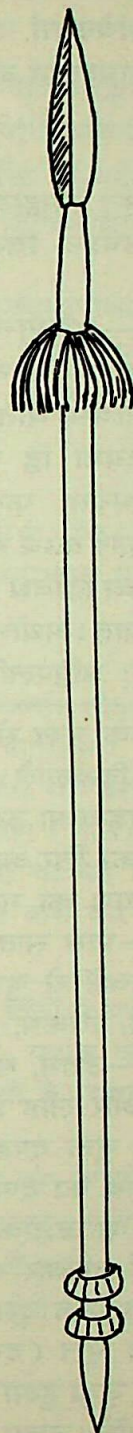
शक्ति
कुन्त
प्रास

**फलेन दर्शयेदाशां परवेधात्मिकां नृपः। अङ्कुशेन विकर्षांशां कर्तर्या धारणात्मिकाम्॥ १८७॥**
**विनाशाशामशन्यां च दर्शयेत् कुन्तकोविदः। इति कुन्त विनोदेन रञ्जयेत् समागतान्॥ १८८॥**

*—मानसो०, भाग २, अ० १, विं० ४*

**प्रासः—**

**प्रासस्तु सप्तहस्तस्स्यादौनत्येन तु वैणवः। लोहशीर्षस्तीक्ष्णपादः कौशेय स्तबकाञ्चितः॥**
**आकर्षश्च विकर्षश्च धूननं वेधनं तथा। चतस्र एता गतयो रक्तप्रासं समाश्रिताः॥**

*—नी० प्र० ५।२५-२६*

**शक्तिः—औशनसधनुर्वेदे—**

**उत्तमा मध्यमा कनिष्ठा चेति तिस्रः शक्तयो भवन्ति। तासां दण्डश्चतुर्विधो वैणवो दारुमयो दन्तमय आयसश्चेति। सुस्निग्धत्वं निर्व्रणत्वं व्रणपूजितत्वं चेति दण्डगुणाः स्युस्तासु पञ्चहस्ता उत्तमा मध्यमा द्वि वितस्तिहीना त्रिवितस्तिहीना त्वधमा भवन्ति। तासां कक्ष द्वयोपघटि-तलक्षणमुभयतः फलद्वयं भवति। हस्तमात्रमतितीक्ष्णं कायभेदनसमर्थमतिघनं सुदृढं तच्च निस्त्रिंशाकारं कार्यं संक्षिप्तमध्यभागं भवति। मध्यफलमितराभ्यां कक्षाफलाभ्यां युक्तं श्रितं वा भवति। तच्च द्विविधं मूलयुक्तं मूलाश्रितमुखयुक्तं चेति। तच्च दण्डे पत्र भङ्गादिचित्रान्वितं नाग-बन्धैर्बध्नीयात्। अथोत्तमायाः शक्तेः फलाग्रेण शतपलवर्धितं गौरवं भवति। मध्यमायास्त्वशीतिपलं कनिष्ठायाः षष्टिपलमिति शक्तिलक्षणम्।** *—वीरमि० लक्षणप्रकाश पृष्ठ ३१३*

---

कुन्त के फल से दूसरे को बेधनेवाले प्रहारों को राजा विभिन्न दिशाओं और उपदिशाओं में मारकर दिखलावे। अङ्कुश से प्रहार मारकर पुनः उसका संहार (समेटना) और कर्तरी से शत्रु को फाड़ना या उसमें उलझाकर अपनी ओर खींचना तथा अशनिकुन्त का पृष्ठभाग से वनन (प्रहार मारकर शिर आदि का फाड़ना) इत्यादि दावपेचों को कुन्त चलाने में निपुण राजा दिखलावे और दर्शकगण का मनोरञ्जन करे॥ १८७-१८८॥

**प्रास—**प्रास सात हाथ लम्बा बाँस का बना हुआ लोहे के फल एवं पीछे तीखे पैरोंवाला रेशम के गुच्छों से युक्त होता है॥ २५॥

आकर्ष, विकर्ष, धूनन और वेधन ये चार गतियाँ प्रास की होती हैं॥ २६॥

**शक्ति—**उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन भेद शक्ति के होते हैं। इनके दण्ड बाँस, देवदारु, हाथी दाँत और लौह इन चार द्रव्यों के बनते हैं। स्निग्ध (चिकना), व्रणरहित, शुभ चिह्नयुक्त इन गुणों से युक्त दण्ड होना चाहिये। पाँच हाथ का दण्ड उत्तम, चार हाथ का मध्यम और साढ़े तीन हाथ का दण्ड अधम माना जाता है। इन दण्डों के दोनों पार्श्वभागों में दो फाले लगे हुए होते हैं। शक्ति एक हाथ लम्बी, बहुत तीक्ष्ण, शरीर को छेदने में समर्थ, मोटी, सुदृढ़ लोहे की बनी हुई तलवार की आकृति के समान बनानी चाहिये। इसका मध्यभाग संकुचित होता है। मध्य का फल दूसरे दोनों पार्श्वों में लगे हुये फालों से मिला हुआ या उनसे जुड़ा हुआ होता है। यह मूल (दण्ड) से जुड़ा हुआ और पार्श्वभागों में दण्ड से जुड़े हुए जो दो फाल होते हैं उनसे जुड़ा हुआ दो प्रकार का होता है। इसे बेलबूटों से चित्रित दण्ड में नागपाश (Clove hitch) से बाँधे। उत्तम शक्ति का भार फलाग्रसहित सौ पल, मध्यम का अस्सी पल और अधम का साठ पल होता है।

**नीतिप्रकाशिकायाम्—**

**शक्तिहस्तद्वयोत्सेधा तिर्यग् गतिरनाकुला। तीक्ष्णजिह्वोग्रनखरा घण्टानादभयङ्करी॥ ३२॥**
**बृहत् त्सरुर्दूरगमा पर्वतेन्द्रविदारिणी। भुजद्वयप्रेरणीया युद्धे जयविधायिनी॥ ३३॥**
**तोलनं भ्रामणं चैव वल्गनं नामनं तथा। मोचनं भेदनं चेति षण्मार्गाः शक्ति संश्रिताः॥ ३४॥**

*—नीतिप्रकाशिका अ० ४*

**पिनाकः ( त्रिशूलः )—नीतिप्रकाशिकायाम्—**

पिनाकस्तु त्रिशीर्षः स्यात् सिताग्रः क्रूरलोचनः। कांस्यकायो लोहशीर्षश्चतुर्हस्तप्रमाणवान्॥ २७॥
ऋक्षरोमस्तबको भल्लीवलयग्रीववान्। धूननं त्रोटनं चेति त्रिशूले द्वे श्रिते गती॥ २८॥

*—नी० प्र० अ० ५*

## शक्ति, कुन्त, प्रास और शूल में भेद

कौटिल्य अर्थशास्त्र में इन सबकी हलमुख-जैसे आयुधों में गणना की है। फिर भी इनकी रचना में कुछ भेद निश्चितरूप से होता है। यहाँ इसे स्पष्ट करने का यथासम्भव प्रयत्न किया जायेगा।

### शक्ति

शक्ति को निस्त्रिंश (तलवार) जैसी आकृतिवाला, जिसके दोनों किनारे तीक्ष्ण होते हैं, बतलाया गया है। इसका मध्यभाग पतला होता है। मथुरा संग्रहालय में कार्तिकेय के हाथ में ऐसी ही शक्ति विद्यमान है। कहीं पर इसके साथ घण्टियाँ भी बाँध दी जाती थी जैसाकि कुबेर की प्रतिमा में देखने को मिलता है।[१] इसके फल को दण्ड के साथ नागबल (गाँठ) की भाँति रस्सी से बाँधा जाता है। घण्टियों को किस प्रयोजन के लिये बाँधा जाता था यह विचारणीय है। सम्भवतः अपनी सेना का उत्साह बढ़ाने एवं शत्रु-सैन्य का मनोबल कम करने के लिये ऐसा किया जाता हो[२]।

---

शक्ति दो हाथ ऊँची, टेढ़ी चालवाली, सीधी, तीखी धारवाली, भयानक दाँतों से युक्त, भयङ्कर, घण्टे के समान नाद करनेवाली, बड़ी मुट्ठी से जड़ी हुई, दूर जानेवाली, पहाड़ को भी तोड़ डालनेवाली दोनों हाथों से चलाई जाती है। इससे युद्ध में अवश्य जय होती है। इसकी तोलना, घुमाना, चलाना, झुकाना, छोड़ना और फाड़ना ये छह गतियाँ हैं।

*—धनुर्वेद पं० जयदेव पृष्ठ ४७*

पिनाक (त्रिशूल) के तीन शिर (शूल) अग्रभाग श्वेत, देखने में भयङ्कर, कांस्य धातु से बना हुआ दण्ड, शिर लोहे का बना हुआ, यह चार हाथ लम्बा होता है॥ २७॥

इसके गले में रीछ के बालों का गुच्छा एवं कड़े (वलय) पड़े हुए होते हैं। धूनन, तोड़ना ये त्रिशूल की दो गतियाँ होती हैं॥ २८॥

---

१. द्र०—पञ्चिका कुबेरप्रतिमा चित्रफलक.....
२. इत्येवमुक्त्वा तां शक्तिमष्टघण्टां महास्वनाम्। —रामा० युद्ध० १०१। ३०

# शक्ति

१. कार्तिकेय शक्ति लिये हुये

३. शक्ति का निचला भाग

२. कुबेर शक्ति का अग्रभाग, नागबेल गांठ और घण्टा

कुन्तफल
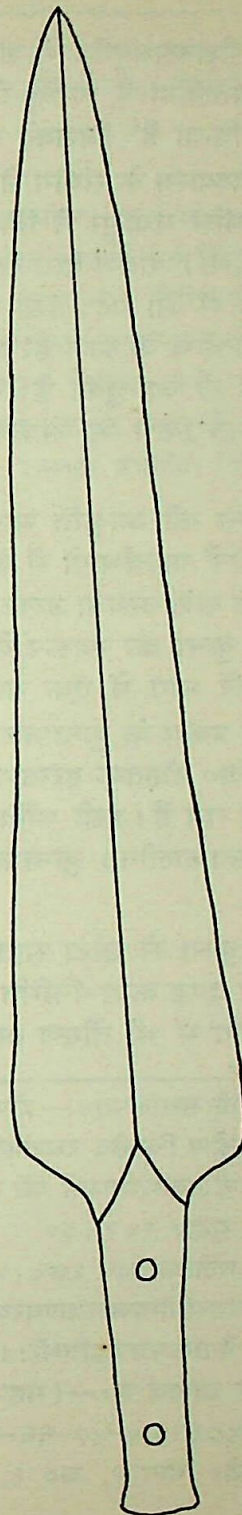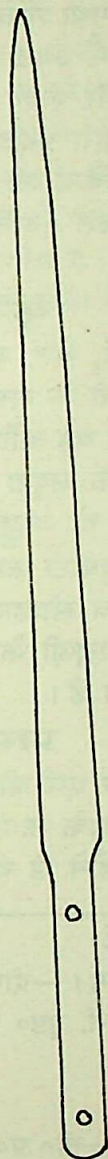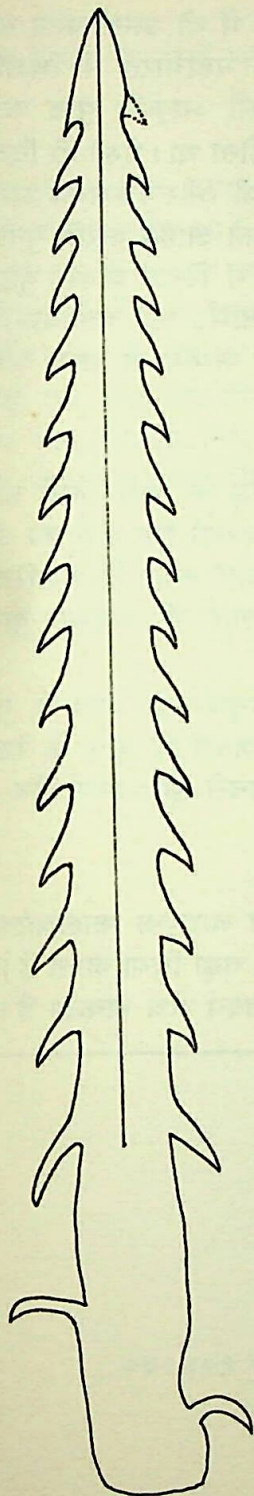
औशनसधनुर्वेद में शक्ति का स्वरूप मध्यफल के पार्श्वभागों में दो अन्य फल लगी हुई ऐसा बतलाया है, परन्तु ऐसा स्वरूप तो त्रिशूल का ही हो गया। महाभारत में रथशक्ति का वर्णन किया है[१] जिसको नीलकण्ठ शास्त्री ने केतकी के पत्र-जैसी आकृति युक्त कहा है।[२]

दिव्यास्त्र के संयोग से युक्त किया गया शक्ति का प्रहार अमोघ होता था। ऐसी ही दिव्यशक्ति का निर्माण मयासुर ने किया था जिसमें आठ घण्टियाँ लगी हुई थी और जिसका स्वर अति भयङ्कर था।[३] रावण द्वारा लक्ष्मण के ऊपर फेंकी गई शक्ति लक्ष्मण को आहत करके पुनः रावण के हाथ में आ गई। इसी भाँति इन्द्र द्वारा प्रदत्त शक्ति ने आकाश में स्थित होकर युद्ध करते हुए घटोत्कच के प्राण हर लिये[४]। कार्तिकेय की शक्ति सूर्यतेज से निर्मित थी, यह चक्र प्रकरण में कहा ही जा चुका है। मन्त्र एवं दैवत (अग्नि, वायु आदि) के संयोग से शस्त्र भी अस्त्र में परिणत किये जा सकते हैं।[५]

## कुन्त

कुन्त की आकृति सागवान, खजूर, बेंत, कनेर, बाँस और ताड़ के पत्तों-जैसी होती है। इसके दोनों पार्श्वभागों में केतकी के पत्ते के समान काँटे होते हैं, जिससे कि शत्रु का उत्पाटन किया जा सके अथवा उलटे काँटे होने से यह आँतों को भी बाहर निकाल लाता है। यशस्तिलक-चम्पू में कुन्त का स्वरूप केतकी पत्र के सदृश कहा है।[६] मानसोल्लास के अनुसार कुन्तफल के निचले भाग में एक या दोनों ओर दो अङ्कुश होते हैं।[७]

इस प्रकार के कुन्तफल जिन्हें सिन्धुघाटी कालीन सभ्यता के आयुध कहा जाता है, गुरुकुल झज्जर, जि० रोहतक हरयाणा के पुरातत्त्व संग्रहालय में पर्याप्त हैं। जिनमें से कुछ के रेखाचित्र यहाँ दिये गये हैं। इसी भाँति गुरुकुल काङ्गड़ी के संग्रहालय में भी इनसे कुछ अर्वाचीन (तराई की सभ्यताकालीन) कुन्तफल विद्यमान हैं।

## प्रास

यह कुन्त से छोटा सात हाथ लम्बा एवं बीस अङ्गुल लम्बे दो धारयुक्त फालवाला होता है। इसका दण्ड काष्ठ-निर्मित होता है जिसके ऊपर लोहे का आवरण चढ़ा दिया जाता है। इसके निचले भाग में भी तीक्ष्ण अङ्कुश लगा होने से यह दोनों सिरों से लक्ष्य वेध सकता है। फाल

---

१. रथशक्तिं समक्षिपत्। —द्रोण० १२७।५८
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद रथशक्त्या च सारथिम्। —द्रोण ११७।२३
२. द्र०—नीलकण्ठशास्त्री की टीका० द्रोणपर्व, पृष्ठ० १७२
३. रामा० युद्ध० १०१।३०
४. महा० घटोत्कचवध १७९।५७
५. मन्त्रदैवतसंयोगाच्छस्त्राण्यस्त्रत्वमाप्नुवन्। —नी० प्र० १।४६
६. कुन्तैः कैतकपत्रपद्धतिधरैः। —यश० च० ३।४३७
अधिक ज्ञानार्थ द्र०—(महा० आदि ३०।४९, वन० २८९।२३, भीष्म० १०४।३० द्रोण० १८१।५५-५७-६६-६७)
७. (मानसो० भाग २, अ० १, वि० ४, श्लोक १७९)

के नीचे रेशम के सूत्रों का गुच्छा लगा होता है। सामान्यतः घुड़सवार इसका प्रयोग करते थे।

## शूल

इसकी आकृति शब्दानुसार शूल-(कण्टक)-जैसी होती थी। सम्भवतः शूल शब्द त्रिशूल के लिये प्रयुक्त होता था। रामायण, महाभारत में इसका प्रयोग अनेक स्थानों पर मिलता है। कुम्भकर्ण का शूल एक सहस्त्रभार युक्त और काले लोहे का बना हुआ था। नीतिप्रकाशिका, में त्रिशूल को पिनाक नाम से सम्बोधित किया है, जिसका दण्ड कांस्य एवं फल लोहधातु से निर्मित कहा है। इसकी ग्रीवा में रीछ के बालों का गुच्छा एवं धातु-निर्मित कड़े पड़े रहते थे। कड़ों की क्या उपयोगिता थी, यह विचारणीय है। सिन्धुघाटी सम्यता के आयुधों में कुन्त के साथ धातु-निर्मित कड़े (वलय) भी विपुल मात्रा में मिलते हैं। उनका उपयोग किस रूप में होता था, यह विचारणीय है।

# सप्तम अध्याय

## खड्ग

मुक्त अस्त्र—धनुष, चक्र और मुक्तामुक्त शक्ति, कुन्त, प्रास इत्यादि के पश्चात् अमुक्त शस्त्रों में सर्वप्रथम स्थान खड्ग का ही है। असि, विशसन, खड्ग, तीक्ष्णधर्मा, दुरासद, श्री, गर्भ और धर्मपाल ये आठ नाम खड्ग के नीतिप्रकाशिका में कहे हैं। यद्यपि युद्ध क्रम में खड्ग का चौथा स्थान है, परन्तु इससे उसका महत्त्व कम नहीं होता। औशनसधनुर्वेद में इसकी बहुत प्रशंसा की गई है। धनुष तो बाण छोड़ने पर ही शत्रु को मारता है, घुड़सवारों का दस्ता वेग से शत्रु का नाश करता है, परन्तु अच्छे योद्धा के हाथ में आया खड्ग प्रहारमात्र से शत्रु सेना को शान्त कर देता है। नीतिप्रकाशिका और अग्निपुराण में खड्गोत्पत्ति का आलङ्कारिक वर्णन किया है।

औशनसधनुर्वेद के अनुसार उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ तीन प्रकार के खड्ग होते हैं। इनके ५-५ भेद हैं। इनकी आकृति के चार भेद, अग्रपृथु (आगे से चौड़ाई का अधिक होना), मूलपृथु (खड्ग का मूल भाग अधिक चौड़ा), संक्षिप्त मध्य (मध्य में चौड़ाई कम होना) और समकाय (सर्वत्र समान चौड़ाई), किये हैं। इनका निर्माण पिण्डित (न मुड़नेवाले) और पत्र (मुड़नेवाले) तीक्ष्ण लौह (फ़ौलाद) से किया जाता है। एक धार और दोनों ओर धारें होती हैं। खड्ग के अगले भाग (मुख) शूलाग्र आदि १२ आकृतियाँ होती हैं। उत्तम खड्ग की लम्बाई ५० अङ्गुल चौड़ाई ६ अङ्गुल और भार १३२ पल, मध्यम की लम्बाई ४० अङ्गुल, चौड़ाई ४ अङ्गुल और भार ९२ पल तथा कनिष्ठ की लम्बाई २२ अङ्गुल, चौड़ाई २ अङ्गुल और भार २० पल होता है। उत्तम खड्ग का भार ८ किलो के आसपास सम्भवतः मूठ समेत ही प्रतीत होता है। इतने भारी खड्ग आजकल देखने में नहीं आते।

खड्ग की गुणवत्ता का मूल्याङ्कन करने के लिये युक्तिकल्पतरु में सर्वाधिक प्रामाणिक आंकड़े दिये हैं। इसके अनुसार अङ्ग, रूप, जाति, नेत्र, अरिष्ट, भूमि, ध्वनि और मान—खड्ग ज्ञान के लिये ये आवश्यक परीक्षण करने चाहियें।[1] लोहार्णव में निरङ्ग और साङ्ग लोहे के दो भेद बतलाये हैं। निरङ्ग लोहे से भस्मादि और साङ्ग लोहे से खड्ग, कुन्त इत्यादि का निर्माण करना चाहिये।[2] जिसे युक्तिकल्पतरु ने अङ्ग कहा है उसे मानसोल्लास में पोगर माना है।[3] रसरत्न-समुच्चय में अङ्गच्छाया, वङ्ग (सफेदी) और पोगर (बालों के समान छोटी छोटी कुटिल रेखाएँ) ये तीन अर्थ पोगर के किये हैं। खड्ग पर जहाँ कहीं भी कोई आकृति प्रतीत हो, खड्ग को तोड़कर पुनः बनाने पर भी वैसी ही आकृति दिखाई दे, उसे अङ्ग कहते हैं।[4] इसकी पहचान

---

१. अङ्गं रूपं तथा जातिर्नैत्रारिष्टेति भूमिका। ध्वनिर्मानमिति प्रोक्तं खड्गज्ञानाष्टकं शुभम्॥ -यु०क०खड्गाध्यायः

२. वीरमित्रोदय लक्षणप्रकाश पृ० २९६

३. मानसोल्लास भाग २, अ० १ वि० ४ श्लोक ५६-७२

४. अङ्गच्छाया च वङ्गं च पोगरस्याभिधा त्रयम्। चिकुरं भङ्गुरं लोहात् पोगरं तत् परं मतम्॥

*—रसरत्नसमुच्चय ५/७७*

के लिये आमला और हीरा कसीस का लेप खड्ग पर करने से उसपर पर्वतशृङ्ग जैसी आकृति उभरे या अन्य तत्सदृश आकृति उभरे तो यह अङ्ग का लक्षण है[१] और वह लोहा भी तीक्ष्णलोहा (इस्पात, फ़ौलाद) है जोकि खड्ग-निर्माण के लिये उत्तम है। युक्तिकल्पतरु में इसके १०० प्रकार दिये हैं। नीला, पीला, भूरा और धूम्र ये चार खड्ग के रूप कहे हैं। नीला, पीला, रक्त, श्वेत इत्यादि जैसा खड्ग प्रतीत होता हो वह उसकी जाति होती है। इसके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और मिश्रित अनेक भेद-प्रभेद कहे हैं। अङ्ग के अतिरिक्त खड्ग के ऊपर महत्ता सूचक चक्र-पद्मादि के रेखाचित्र बने हों तो उन्हें नेत्र कहते हैं। कुल ३० नेत्र कहें हैं। इसी भाँति कव्वे के पैर इत्यादि के ३० चिह्न अरिष्ट (अशुभ) कहलाते हैं। जिस स्थान से लोह निकाला जाता है उसे भूमि कहते हैं। देवों द्वारा प्रयुक्त हलके, सुदृढ़, सुन्दर चमकवाले, सुनेत्र, मधुर ध्वनिवाले दिव्य खड्ग होते हैं और वाराणसी, मगध, लङ्का, नेपाल, अङ्गदेश सौराष्ट्र और अन्य स्थानों की खानों सें निकाले हुए लोहे से निर्मित भौम कहलाते हैं। खड्गों को नख या दण्ड से आहत करने पर निकलनेवाले शब्द को ध्वनि कहते हैं। इसके ८ भेद हैं। हंस, कांस्य, मेघ और झांझ के समान ध्वनियाँ शुभ और कव्वा, गर्दभ, लघु तथा पत्थर-जैसी ध्वनि अशुभ मानी जाती है। आज लोक में लोहा कच्चा या पक्का है इसकी परीक्षा बजाकर की जाती है। उत्तम और अधम ये दो प्रकार के मान होते हैं।

खड्ग परीक्षा में अङ्ग, रूप, जाति, नेत्र और अरिष्ट ये पाँच खड्ग बनानेवाले कृत्रिम रूप से भी बना देते हैं, परन्तु अन्तिम ध्वनि और मान कृत्रिमरूप में उत्पन्न नहीं किये जा सकते इसलिये खड्ग परीक्षण करते समय ध्वनि और मान को ही प्रामाणिक मानना चाहिये।

नीतिप्रकाशिका में खड्ग चालन की ३२ विधि—भ्रान्त, उद्भ्रान्त इत्यादि बतलाई हैं। इसी भाँति महाभारत में भ्रान्त इत्यादि १३ विज्ञानों का नामपूर्वक उल्लेख किया है, जिनपर भारतभावदीपटीका ने अच्छा प्रकाश डाला है। मानसोल्लास के खड्ग विनोद-प्रकरण में शिखरक आदि ५ रक्षा करने के विज्ञान या पैंतरे तथा खड्ग आदि पाँच प्रहार करने की विधियों का नामोल्लेख किया है।

औशनस धनुर्वेद, बृहद् संहिता, नीतिप्रकाशिका, अग्निपुराण, वीरमित्रोदय, युक्तिकल्पतरु, मानसोल्लास और महाभारत में खड्ग का विस्तृत वर्णन किया है। इन सभी से आवश्यक सामग्री लेकर विषय का ग्रन्थन किया जायेगा। साथ ही दावपेंच के चित्रों से भी खड्ग सञ्चालन विज्ञान को समझने का प्रयास किया गया है।

---

१. (क) यत्राङ्गं दृश्यते लोहे तीक्ष्णं लोहं तदुत्तमम्। कासीसामलकल्काक्ते लोहेऽङ्गं दृश्यते सुखम्॥

*—बृहद् योगतरङ्गिणी ४१।६३*

(ख) उज्ज्वलं लोहफलकं धात्री कासीसलेपनम्। गिरि शृङ्गाङ्कितं यत् स्यात् तीक्ष्णलोहं तदुच्यते॥

*—रसतरङ्गिणी २०।८*

# खड्गः

**औशनसधनुर्वेदे खड्गप्रशंसनम्—**

**असिरेव परं शस्त्रं स्वहस्ते नित्यशोऽक्षयम्। अमोघाकारसदृशं सर्वशस्तु क्षयप्रदम्॥ ७॥**
**उत्ताने वाथ कुब्जे वा बलेसाचीगतेऽपि वा। संविष्टे चोपविष्टे च खड्ग एव परायणम्॥ ८॥**

**संकटे च विषमे गिरिदुर्गे निम्नगर्तसिकतास्थिते वा।**
**कण्टकद्रुमवृत्तेऽपि च देशे खड्ग एव शरणं जमदग्ने॥ ९॥**
**स्थितौ रथे वाजिनि कुञ्जरे वा गृहे द्रुमे नागरके प्रमादे।**
**सर्वत्र सर्वस्य च भार्गवेन्द्र परायणं स्यादसिरेव नित्यम्॥ १०॥**
**धनुरिह शरपातादेव वै हन्ति शत्रून्, दहति रिपुसमूहं वाजिवह्निर्जवेन।**
**सुभटकरगतस्तु क्षिप्रमभ्यासमात्रे, शमयति रिपुसेनां पातयोगेन खड्गः॥ ११॥**

*—वीरमि० ल० पृष्ठ २१३*

**मतङ्गजस्थो रथवाजिगो वा शरक्षये शस्त्रगणक्षये च।**
**समस्थितो वा विषमस्थितो वा नरोऽसिना मर्दयतीह सर्वान्॥ १२॥**

**स्वच्छन्दे चापभङ्गे च विरथस्य विवाजिनः। शत्रुमध्यावतीर्णस्य नान्यत्खड्गात्परायणम्॥ १३॥**

---

**औसनस धनुर्वेद में खड्ग की प्रशंसा**—तलवार ही सबसे उत्तम शस्त्र है, जो सदा अपने हाथ में नाशरहित रहता है। वह यदि बरछी के आकार सदृश द्विधारयुक्त हो तो सब ओर से शत्रुओं की क्षयकारक होती है। यह तलवार ही है जोकि शत्रुसेना सीधी खड़ी हो या टेढ़ी हो या लेटी या बैठी हो, सर्वत्र काम देती है॥ ७-८॥

हे जमदग्ने! सङ्कट में (शत्रुओं से घिर जाने की स्थिति में), विषम पर्वतदुर्ग में, बालू से ढके निम्न गढ़े में, काँटेदार वृक्षों द्वारा घिरे हुए देश में तलवार ही मनुष्य की रक्षक है॥ ९॥

हे भार्गवेन्द्र! भूमि पर, घोड़े पर वा रथ पर, घर में, वृक्ष के नीचे अथवा नगरवासियों के प्रमाद में—सर्वत्र तलवार ही सबके काम आती है॥ १०॥

रणभूमि में धनुष बाणों के गिराने से ही शत्रुओं को मारता है। घोड़ेरूप अग्निवेग से शत्रुसमूह को भस्म कर डालता है, परन्तु अच्छे योद्धा के हाथ में आई हुई तलवार किञ्चित् प्रयास से ही चलाने पर शत्रुसेना को समाप्त कर देती है॥ ११॥

**हाथी पर चढ़ा हुआ, रथारूढ़ या अश्वारूढ़ होने पर जब बाण समाप्त हो जाएँ या अन्य शस्त्र समाप्त हो जायें तब अनुकूल स्थिति या प्रतिकूल स्थिति, सभी में तलवार का धनी योद्धा सर्व शत्रुगण का मर्दन कर सकता है॥ १२॥**

स्व रुचि के अनुसार अथवा धनुष या रथ-भङ्ग हो जाने पर घोड़ों से रहित होने पर भी शत्रुओं के मध्य में स्थित शूरवीर के लिये तलवार के अतिरिक्त कुछ काम नहीं आता॥ १३॥

**नकुलेनाप्युक्तम्—**

**खड्गाल्लक्ष्मीस्तथा राज्यं यशः खड्गादवाप्यत। खड्गाद् वैरिविनाशञ्च यत्नात् तमभिदध्महे॥**

*—वीरमित्रोदये लक्षणप्रकाशे, पृष्ठ २९४*

**नीतिप्रकाशिकायां खड्गोत्पत्तिकथनम्—**

**लोकनाथ नमस्तेऽस्तु सर्वाश्रयाश्रय प्रभो। उत्पादितो मया खड्गः पूर्वमित्युदितं त्वया॥ १॥**
**खड्गः कदा हि जनितस्त्वया केनेह हेतुना। कस्त्वत्सकाशात् प्रथममग्रहीदसिमुत्तमम्॥ २॥**
**परम्परा तु का तस्य भूलोकप्रापणी विभो। पूर्वाचार्यञ्च खड्गस्य मम ब्रूहि पितामह॥ ३॥**
**स तद् वचः समाकर्ण्य प्रोवाचेदं पितामहः। यत्र येन निमित्तेन यथासौ जनितः पुरा॥ ४॥**
**वेनपुत्र प्रवक्ष्यामि खड्गसम्भवमुत्तमम्। सावधानमनाः श्रुत्वा सर्वत्र जयमाप्यसि॥ ५॥**
**विशीर्णे कार्मुके राजन् प्रक्षीणेषु च वाजिषु। खड्गेन शक्यते युद्धे साध्वात्मा परिरक्षितुम्॥ ६॥**
**शरासनधरांश्चैव गदाशक्तिधरांस्तथा। एकः खड्गधरो वीरः समर्थः प्रतिबाधितुम्॥ ७॥**
**आयुधेभ्यो वरः खड्गः तस्माल्लोकेषु विश्रुतः। मया सृष्टः पुरा राजन्कस्मिंश्चित्कारणान्तरे॥ ८॥**

---

**नकुल ने भी कहा है**—खड्ग से ही लक्ष्मी, राज्य और यश की प्राप्ति होती है। खड्ग से ही शत्रु का नाश किया जाता है। उस खड्ग को हम यत्नपूर्वक धारण करें।

**नीतिप्रकाशिका के अनुसार खड्ग की उत्पत्ति—**

वेन के पुत्र पृथु ने ब्रह्मा से कहा—

हे लोकों के स्वामी, सब लोकों के निर्माता प्रभो! आपने यह कहा था कि मैंने सबसे पहले खड्ग की उत्पत्ति की है॥ १॥

सो यह खड्ग आपने कब और किस कारण से रचा एवं आपसे सर्वप्रथम किसने इसे ग्रहण किया॥ २॥

हे प्रभो! संसार में इसे प्राप्त करने की क्या परम्परा रही और इसका आचार्य कौन था यह सब बतलाने की कृपा कीजिये॥ ३॥

पृथु के वचन को सुनकर जिस कारण से खड्ग की उत्पत्ति हुई उसे ब्रह्माजी कहने लगे॥ ४॥

हे वेनपुत्र! मैं खड्ग की उत्पत्ति को कहता हूँ, जिसको तुम सावधान होकर सुनोगे तो तुम्हें सर्वत्र जयलाभ होगा॥ ५॥

**खड्ग प्रशंसा**—हे राजन् धनुष के टूट जाने पर एवं घोड़ों के नष्ट हो जाने पर खड्ग द्वारा ही युद्ध में अपनी आत्मरक्षा की जा सकती है॥ ६॥

धनुष धारण करनेवालों एवं गदा तथा शक्ति से युक्त योद्धाओं को एक खड्गधारी सैनिक ही रोकने में समर्थ है॥ ७॥

सभी आयुधों में खड्ग सर्वश्रेष्ठ होने के कारण लोक में प्रसिद्ध है। हे राजन्! किसी कारणवश ही सबसे पहले इसकी उत्पत्ति की थी॥ ८॥

**हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षो विरोचनः। शम्बरो विप्रचित्तिश्च प्रह्लादो नमुचिर्बलिः ॥ ९ ॥**
**एते चान्ये च बहवस्सगणा दैत्यदानवाः। धर्मसेतुमतिक्रम्य देवैर्योद्धुमुपाक्रमन् ॥ १० ॥**
**तदा हिमवतशृङ्गे नानाधातुविराजिते। शतयोजनविस्तारे पुष्पितद्रुमकानने ॥ ११ ॥**
**यज्ञं ह्यकुरवंस्तत्र सर्वलोकार्थसिद्धये। ततो वर्षसहस्रान्ते त्वद्भुतं समजायत ॥ १२ ॥**
**नभोऽग्नि ज्वालयोद्भास्यं द्योतयञ्जगतीतलम्। विकीर्याग्निं तथाभूतमुत्थितञ्चाग्निकुण्डतः ॥ १३ ॥**
**नीलोत्पलसवर्णन्तत् तीक्ष्णदंष्ट्रं कृशोदरम्। सुप्रांशु दुर्धर्षतरं ज्वालामालसमाकुलम् ॥ १४ ॥**
**रक्ताक्षं क्रूरनिर्ह्लादं सर्वप्राणिभयङ्करम्। स्वतेजसातिरौद्रेण द्रष्टुर्दृष्टिविलोपकम् ॥ १५ ॥**
**तस्मिनुत्पतमाने च प्रचचाल वसुन्धरा। महोर्मिकलिलावर्तश्चुक्षुभे स महोनिधिः ॥ १६ ॥**
**पेतुरुल्का दिवो घोराः शाखाश्च मुमुचुर्द्रुमाः। तद् दृष्ट्वा सर्वभूतानि प्राव्यथन्त मुहुर्मुहुः ॥ १७ ॥**
**महर्षिसुरगन्धर्वानब्रवं भयविह्वलान्। मयैव चिन्तितं भूतमसिर्नामैष वीर्यवान् ॥ १८ ॥**
**रक्षणार्थाय लोकस्य वधाय च सुरद्विषाम्। ततस्तद्रूपमुत्सृज्य बभौ निस्त्रिंश एव सन् ॥ १९ ॥**
**विमलस्तीक्ष्णधारश्च कालान्तक इवोद्यतः। पञ्चाशदङ्गुल्युत्सेधश्चतुरङ्गुलिविस्तृतः ॥ २० ॥**

---

जब हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, विरोचन, शम्बर, विप्रचित्ति, प्रह्लाद, नमुचि, बलि और अन्य बहुत-से दैत्य दानवों ने धर्म-मर्यादा का उल्लङ्घन करके देवताओं (धार्मिक विद्वान् पुरुष) के साथ युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ९-१० ॥

तब नाना धातुओं से सुशोभित, सैकड़ों योजन विस्तृत और पुष्पों, फलों, वृक्षों से युक्त हिमालयपर्वत के शिखर पर सब लोकों का कल्याण करने के लिये मैंने यज्ञ प्रारम्भ किया ॥ ११ ॥

सहस्रों वर्षों में उस यज्ञ की समाप्ति पर एक आश्चर्यकारक घटना हुई ॥ १२ ॥

आकाश, अग्निज्वाला और पृथिवी को अपनी दीप्ति से प्रकाशित करता हुआ अग्निकुण्ड से एक भूत उठ खड़ा हुआ ॥ १३ ॥

उसका रङ्ग नीलकमल के समान, दाढ़ें तीक्ष्ण, उदर कृश और लम्बा शरीर एवं दीखने में अदम्य था। वह ज्वाला के समूह की भाँति प्रदीप्त हो रहा था ॥ १४ ॥

वह भूत लाल आँखें किये हुए क्रूर अट्टहास कर रहा था, जो सब प्राणियों को भयकारक दिखलाई पड़ता था। उसके भयङ्कर तेज से आँखें बन्द हो जाती थीं ॥ १५ ॥

उसके चलने पर भूमि काँपने लगी, समुद्र के क्षुभित होने पर उसमें लहरें उठने लगीं और आकाश से उल्काएँ गिरने लगीं तथा वृक्षों की शाखाएँ टूटकर पड़ने लग गईं उसको देखकर सभी प्राणी भयभीत हो गये ॥ १६-१७ ॥

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे राजन्! ऋषि, देव और गन्धर्वों को व्याकुल देखकर मैंने उनसे कहा कि इस असि नामक भूत की रचना मैंने ही की है जो बहुत बलवान् है ॥ १८ ॥

यह लोगों की रक्षा एवं असुरों के नाश के लिये प्रादुर्भूत हुआ है। उसी समय वह भूत अपना रूप छोड़कर खड्ग में परिवर्तित हो गया ॥ १९ ॥

वह शुद्ध, तीक्ष्णधार, यमराज के समान भयङ्कर, पचास अङ्गुल लम्बा और चार अङ्गुल चौड़ा था ॥ २० ॥

**ततस्त्वृषभकेतोः स हस्ते दत्तो मया ह्यसिः। राक्षसान्तकरस्तीक्ष्णस्तदाधर्मनिवारकः॥ २१॥**
**तमुद्धृत्य महादेवः सर्वशत्रुभयङ्करम्। त्रिकूटं चर्मचोद्यम्य सविद्युत्तमिवाम्बुदम्॥ २२॥**
**चचार विविधान्मार्गान्महाबलपराक्रमः। छिन्दन्भिन्दन्रुजन्कृन्तन्दारयन्पोथयन्नरीन्॥ २३॥**
**द्वात्रिंशत् करणानि स्युर्यानि खड्गप्रयोधने। चित्रशीघ्रपदं तानि दैत्यसङ्घे व्यदर्शयत्॥ २४॥**
**ततस्तु भगवान् रुद्रो विष्णुं दृष्ट्वा समीपगम्। सत्कृत्य धर्मगोप्तारमसिं तस्मै ददौ मुदा॥ २९॥**
**विष्णुर्मरीचये प्रादान् मरीचिर्भगवानपि। महर्षिभ्यो ददौ खड्गमृषयो वासवाय च॥ ३०॥**
**महेन्द्रो लोकपालेभ्यो लोकपाला ददुश्च तम्। मनवे सूर्यपुत्राय ततस्ते तमथाब्रुवन्॥ ३१॥**
**धर्मसेतुमतिक्रान्तान् लोकधर्मार्थकारणात्। असिना धर्मगर्भेण शिक्षयस्व प्रजापते॥ ३२॥**
**स तथेति प्रतिश्रुत्य गृहीत्वा खड्गमुत्तमम्। लोके प्रवर्तयामास राजधारामुखेन वै॥ ३३॥**
**त्वमप्येतामसिं मत्तो गृहाण नृप सत्तम। पालयस्व च धर्मेण प्रजाः पुत्रानिवौरसान्॥ ३४॥**
**कृतिकास्तस्य नक्षत्रमसेरग्निश्च देवता। रोहिणी गोत्रमप्यस्य रुद्रस्तस्याधिदैवतम्॥ ३५॥**
**असेरष्टौ हि नामानि रहस्यानि निबोध मे। असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधर्मा दुरासदः॥ ३६॥**
**श्रीगर्भोविजयश्चैव धर्मपालस्तथैव च। अग्र्यः प्रहरणानाञ्च रुद्रेणैवं समीरितः॥ ३७॥**

---

तब मैने राक्षसों का अन्त करनेवाले एवं अधर्म को दूर करनेवाले खड्ग को श्री महादेवजी को दे दिया॥ २१॥

महादेवजी सब शत्रुओं को भयदायक खड्ग एवं तिकोनी मेघ के समान श्यामवर्ण की ढाल को लेकर विविध पैंतरों से चलते हुए असुरों का छेदन, भेदन, पीडा, काटना, उत्पाटन, मारना इत्यादि विविध क्रियाओं को करने लगे॥ २२-२३॥

खड्ग चालन की जो बत्तीस विधियाँ हैं उन्हें एवं विचित्र पैंतरों का प्रदर्शन दैत्यसमूह के सामने किया॥ २४॥

उसके पश्चात् भगवान् शिवजी ने अपने समीप में खड़े हुए श्री विष्णु का स्वागत करके धर्म की रक्षा करनेवाले खड्ग को सहर्ष उन्हें दे दिया॥ २९॥

विष्णु ने मरीचि को, मरीचि ने महर्षिगण को ऋषियों ने इन्द्र को, इन्द्र ने लोकपालों को और लोकपालों ने सूर्य-पुत्र मनु को खड्ग प्रदान किया और उसे यह कहने लगे॥ ३०-३१॥

हे मनु महाराज! धर्म और अर्थ की रक्षा के लिये धर्ममर्यादा का उल्लङ्घन करनेवाले जनों को धर्म की रक्षा करनेवाले इस खड्ग से अनुशासित कीजिये॥ ३२॥

महाराज मनु ने लोकपालों की बात को स्वीकार करके उस खड्ग को ले लिया। इस प्रकार मनु के पश्चात् राज परम्परा से यह खड्ग लोक में प्रचलित हो गया॥ ३३॥

हे नृपश्रेष्ठ (पृथु)! आप भी इस खड्ग को मुझसे लीजिये और अपने पुत्रों के समान प्रजा का पालन कीजिये॥ ३४॥

इस खड्ग का कृतिका नक्षत्र, अग्नि देवता, रोहिणी गोत्र और रुद्र अधिदेवता है॥ ३५॥

खड्ग के आठ नाम हैं जिनके रहस्य सुनिये—असि, विशसन, खड्ग, तीक्ष्णधर्मा, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्मपाल। इसप्रकार महादेवजी ने इसे सब शस्त्रों में अग्रणी कहा है॥ ३६-३७॥

**असेश्च पूजा कर्तव्या सदा युद्धविशारदैः। जयं कीर्तिं लभन्ते ते येऽसिं सम्पूजयन्ति वै॥ ३८॥**
**कथेयं कथिता तुभ्यं खड्गमाहात्म्य संयुता। न कस्यचिन्मया प्रोक्ता किं भूयश्श्रोतुमिच्छसि॥ ३९॥**
**जिगीषवोऽरीन् राजानस्त्वभिषेणेन कौतुकाः। ये पठेयुर्रिपुञ्जय्यं जयं युद्धे लभन्ति ते॥ ४०॥**

*—नीतिप्रकाशिका सर्ग ३*

**अग्निपुराणे खड्गोत्पत्तिः—**

**ब्रह्मा वै मेरुशिखरे स्वर्गगंगातटेऽयजत्॥ १४॥**
**लोहदैत्यं स दृशे विघ्नं यज्ञे तु चिन्तयन्। तस्य चिन्तयतो वह्नेः पुरुषोऽभूद् बली महान्॥ १५॥**
**ववन्देऽजं तं देवाः अभ्यनन्दन्त हर्षिताः। तस्मात् स नन्दकः खड्गो देवोक्तो हरिरग्रहीत्॥ १६॥**
**तं जग्राह शनैर्देवो विकोषः सोभ्यपद्यत। 'खड्गो नीलो रत्नमुष्टिस्ततोऽभूच्छतबाहुकः॥ १७॥**
**दैत्यः स गदया देवान् द्रावयामास वै रणे। विष्णुना खड्गछिन्नानि दैत्यगात्राणि भूतले॥ १८॥**
**पतितानि तु संस्पर्शान्नन्दकस्य च तानि हि। लोहभूतानि सर्वाणि हत्वा तस्मै हरिर्वरम्॥ १९॥**
**ददौ पवित्रमङ्गं ते आयुधाय भवेद् भुवि।**

**औशनसधनुर्वेदे खड्गभेदाः—**

**अतः परं खड्गनाम वक्ष्यते। क्रिया मरको मारो मार्गस्थोऽथ चित्रतालित इति पञ्चैव सन्नाह्याः**

---

युद्ध में निपुण योद्धाओं को सदा असि की पूजा करनी चाहिये। जो इसकी पूजा करते हैं उन्हें जय और कीर्ति प्राप्त होती है॥ ३८॥

तुम्हें खड्ग के माहात्म्ययुक्त यह सारी कथा सुना दी है जिसे पहले किसी को नहीं सुनाया गया। आप और क्या सुनना चाहते हैं। जो राजा शत्रु को जीतने की इच्छा करते हैं वे इस कथा को सुनें तो उन्हें जय की प्राप्ति होती है॥ ३९-४०॥

**अग्निपुराण में खड्ग की उत्पत्ति**—ब्रह्मा ने मेरु पर्वत के शिखर पर आकाशगङ्गा के तट पर यज्ञ प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् अपने सामने लोहरूपी दैत्य को देखकर उसे यज्ञ में विघ्नकारक समझकर उन्हें चिन्ता हुई। जब ब्रह्मा जी चिन्तामग्न थे तभी यज्ञाग्नि से एक बलवान् पुरुष प्रकट हुआ॥ १४-१५॥

देवताओं ने हर्षित होकर ब्रह्मा को नमस्कार किया और उस पुरुष की पूजा की। उस यज्ञपुरुष से हरि ने नन्दक खड्ग को ग्रहण किया। देवों को आनन्दित करने से उस खड्ग का नाम नन्दक पड़ा॥ १६॥

देवाधिदेव ने उस खड्ग को धीरे से पकड़ा। वह स्वयं ही म्यानरहित हो गया। रत्नों से जड़ी हुई मूठवाला नीलवर्ण खड्ग सैकड़ों भुजाओं की शक्तिवाला हो गया॥ १७॥

उस दैत्य ने गदा-प्रहार से सभी देवों को भयभीत किया। इसपर विष्णु ने उसके सभी गात्र काटकर भूमि पर फेंक दिये॥ १८॥

नन्दक खड्ग के स्पर्श से दैत्य के अङ्ग कटकर गिरने पर उसका वध करके हरि ने उसे वर दिया॥ १९॥ कि तुम्हारे ये अङ्ग भूमि पर आयुधरूप में प्रकट होवें॥ १९½॥

**औशनसधनुर्वेद में खड्ग के भेद**—अब खड्ग के नामों को कहते हैं।

**खड्गाः कनियांसो वेदितव्याः। सुखसञ्चार-सुखसन्नाह्यो मध्यमोतिमध्यमोत्तमश्चेति पञ्चमध्यमाः खड्गा भवन्ति। दुर्धर्षो विजयः सुनन्दो नन्दनः श्रेष्ठाः पञ्चोत्तमाः खड्गा भवन्ति। तेषां मध्ये द्वाविंशत्यङ्गुलः प्रथमो खड्गो भवति। ततः परेषां द्व्यङ्गुलादिवृद्धिरुत्तरोत्तरा भवति। तथा विंशतिपालिक आद्यः शेषाणामष्ट पला विवृद्धिः। पलानामयुग्मं वाङ्गुलानां न प्रशस्तं भवति।**

**अग्रपृथुर्मूलपृथुः संक्षिप्तमध्यः समकायश्चेति खड्गाश्चतुर्विधाः वेदितव्याः।**

**पिण्डितः पत्र इति तेषां द्विविधः कायो भवति। एकधारो द्विधारश्च।**

**मुखानि तु द्वादश भवन्ति। शूलाग्रः शिखराग्रः समाग्रो मण्डलाग्रो गोजिह्वाग्रः पार्श्वग्रोऽथ**

---

क्रिया, मरक, मार, मार्गस्थ और चित्रतालित ये पाँच लघु खड्ग कहलाते हैं।

सुखसञ्चार, सुखसन्नाह्य, मध्यम, अति मध्यम और उत्तम ये पाँच मध्यम खड्ग होते हैं।

दुर्धर्ष, विजय, सुनन्द, नन्दन और श्रेष्ठ ये पाँच उत्तम खड्ग कहे गये हैं।

इनमें प्रथम खड्ग (क्रिया) की लम्बाई बाइस अङ्गुल होती है। शेषों की क्रमशः दो-दो अङ्गुल बढ़ती जाती है। प्रथम खड्ग का भार बीस छंटाक होता है शेषों के भार में आठ छटांक प्रति खड्ग वृद्धि होती जाती है।

तलवारों के भार एवं लम्बाई में विषमसंख्या से युक्त भार एवं लम्बाई होने पर उन्हें प्रशस्त नहीं माना जाता है।

आकृति के विचार से खड्गों के चार भेद होते हैं—

१. अग्रपृथु—आगे से स्थूल आकृतिवाले।

२. मूलपृथु—जिसका मूल भाग मोटा हो।

३. संक्षिप्तमध्य—जिसका मध्यभाग पतला हो।

४. समकाय—जो सर्वत्र एकसा हो।

इनका निर्माण पिण्डित (न मुड़नेवाले लोहे से) एवं पत्र (पत्ते) के सदृश हल्के एवं मुड़नेवाले इस्पात से किया जाता है।

ये तलवारें एकधार एवं दोनों ओर धारवाली होती हैं। (दोनों ओर धारवाली को दुधारा कहते हैं)।

इनके मुखों की बनावट १२ प्रकार की होती है—

१. शूलाग्र—शूल कण्टकवत् या भाले के सदृश जिसका मुख हो।

२. शिखराग्र—पर्वत के समान अग्रभागवाली।

३. समाग्र—जिसका अग्रभाग एक-जैसा हो।

४. मण्डलाग्र—अग्रभाग गोलाई युक्त हो।

५. गोजिह्वाग्र—गाय की जीभ के समान अग्रभागवाली।

६. पार्श्वाग्र—परशु के सदृश अग्रभागयुक्त।

७. कुटिलाग्र—अग्रभाग कुटिल (टेढ़ा) हो ऐसी
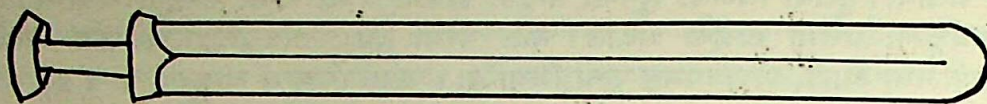
समकाय
संक्षिप्त मध्य
मूलपृथु
— अग्र पृथु —

१ शूलाग्र
२ शिखराग्र
३ समाग्र
४ मण्डलाग्र
५ गोजिह्वाग्र
६ पार्श्वाग्र
७ कुटिलाग्र
८ सहकार पत्राग्र
९ मण्डलाग्र
१० कुमुदाग्र
११ पद्मोत्पलाग्र
१२ अहिमुखाग्र
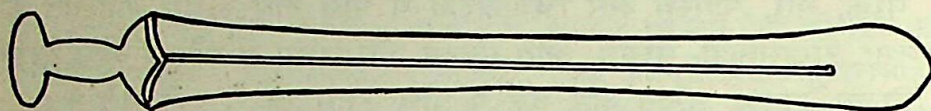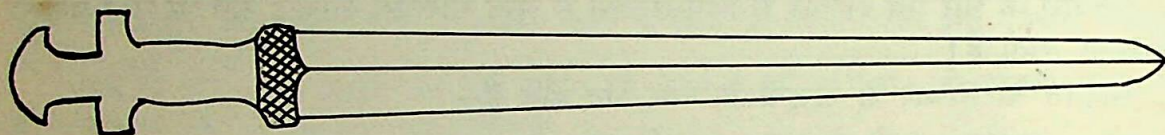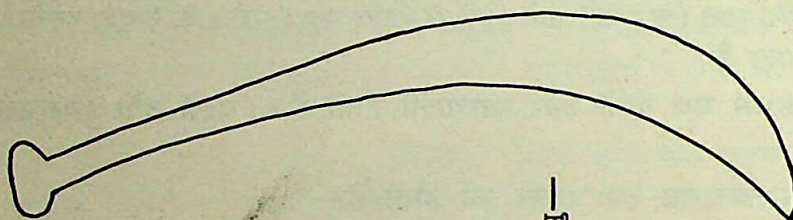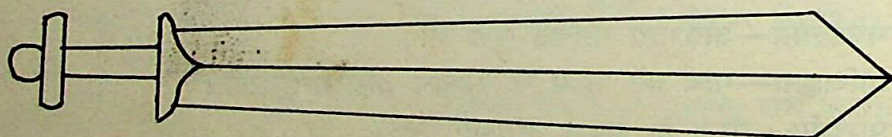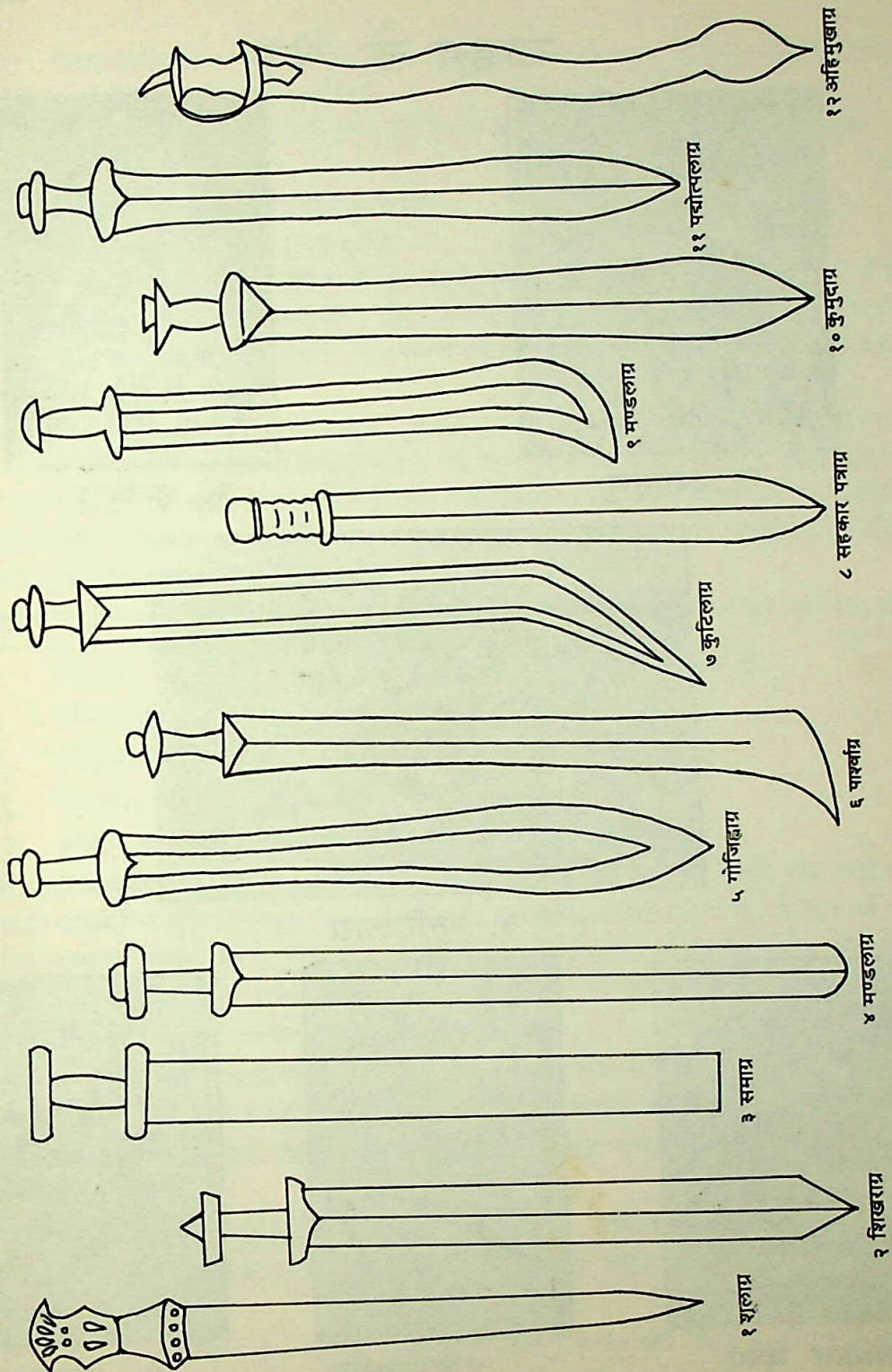
# खड्ग के भेद
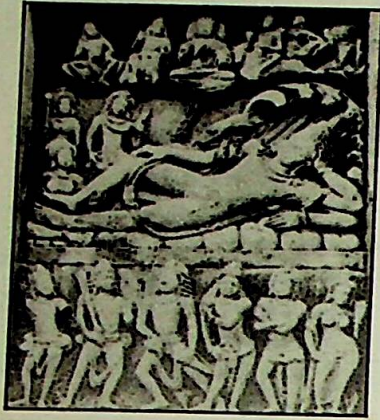
१. अग्रपृथु
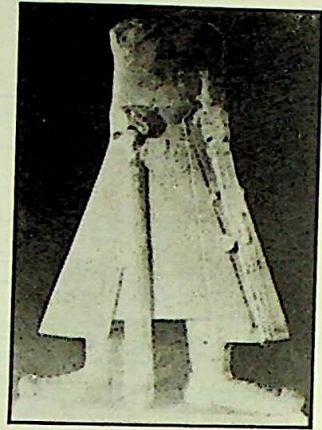
२. मूलपृथु
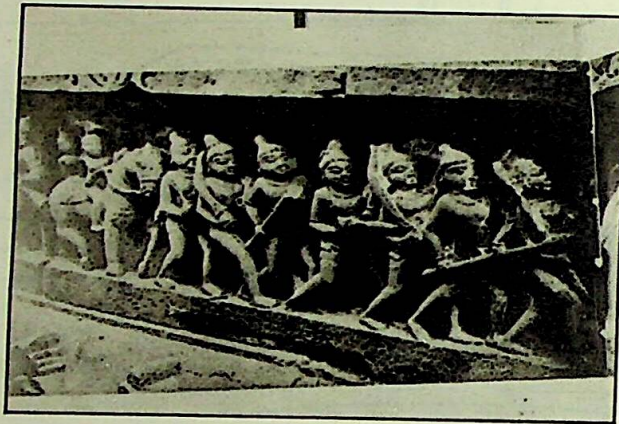
३. कुटिलाग्र
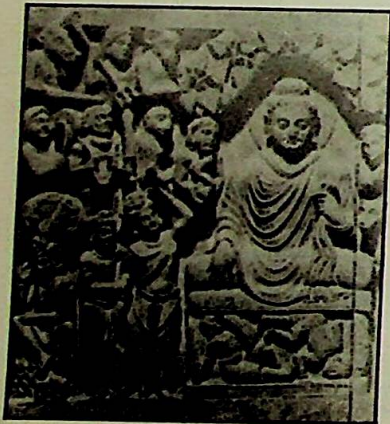
४. संक्षित मध्य
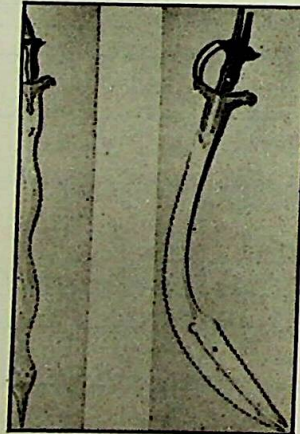
५. अहिमुखाग्र

६. समकाय

**कुटिलाग्रः सहकारपत्राग्रो मण्डलाग्रोऽथ कुमुदाग्रः पद्मोत्पलपुष्पफलोपमुखोऽहिमुखाग्रो मुखान्येवमस्य खड्गस्य द्वादश भवन्ति।**

**द्व्यङ्गुलोऽधमस्य विस्तारो मध्यमस्य चतुरङ्गुलो विस्तार उत्तमस्य षडङ्गुलो विस्तारो भवति।**

*—वीर मि० ल०, पृष्ठ ३०९*

## औशनसे धनुर्वेदे खड्गवर्णलक्षणम्—

## जमदग्निं प्रति शुक्रो भगवानुवाच—

**अथ प्रशस्तान् वर्णान् वक्ष्यामि निबोध। मुक्ताफलस्फटिकवर्णसदृशस्तरुणादित्यकिरण-सप्रभो वैदूर्योत्पलवर्णः समुद्रसन्निभो नीलनीरदाभोऽभिनवेन्द्रनीलसच्छायो मयूरग्रीवावर्णो विमलाकाशसङ्काशः कांस्यनीलवर्णः सुवर्णरजतवर्णसम्वादी महानीलमणिवर्णानुकारी चेति खड्गानां वर्णः प्रशस्तो भवेत्।**

**श्वेतवर्णानुवर्णः खड्गो ब्राह्मणस्य पूजितः। स हि पुत्रवंशकरः सर्वसम्पत्करश्च तस्य स्यात्। रक्तवर्णानुवर्णः क्षत्रियस्याभिपूजितः। स हि स्थानवंशकरः सर्वकामार्थकरस्तु स्यात्। हेमवर्णानुवर्णो वैश्यस्य पूजितो भवति। स हि धनधान्यकरः सौभाग्यकरश्च तस्य स्यात्। नील-जलधरवर्णोऽपि शूद्रस्य भवति। स हि स्थानायुर्वृद्धिकरः शुभकरश्च स्यान्नीलवर्णानुवर्णश्च तस्य सर्वकामार्थसाधको भवति।**

**वैदूर्योत्पलवर्णो नृपस्य विजयावहो निर्दिष्टो यस्तु श्वेतवर्णः पीतो रक्तो वा तद् वर्णं शूद्रो**

---

८. सहकार पत्राग्र—जिसका अग्रभाग आम के पत्ते के सदृश हो।

९. मण्डलाग्र—दूसरी ओर गोलाईवाली।

१०. कुमुदाग्र—कमलिनी की पंखुड़ी-सदृश अग्रभागवाली।

११. पद्मोत्पलाग्र—कमल के पुष्प-सदृश

१२. अहिमुखाग्र—सर्पाकार या साँप के सदृश मुखवाली।

**औशनसधनुर्वेद में खड्गवर्णलक्षण**—अब खड्गों के प्रशस्त वर्णों को कहूँगा। उनको आप जानें। जमदग्नि को भगवान् शुक्र कहने लगे—मोती, स्फटिक मणि, दोपहर के सूर्यसदृश, वैदूर्यमणि, कमल, समुद्र के समान, नीले मेघ, नवीन इन्द्रनील की छाया-जैसा, मोर की ग्रीवा-जैसा वर्ण, नीले आकाश के समान, कांस्य के सदृश वर्ण, सोना, चाँदी के समान और नीलमणि के सदृश खड्गों का वर्ण उत्तम होता है।

श्वेतवर्णयुक्त खड्ग ब्राह्मण के लिये उत्तम माना गया है, लालवर्ण का क्षत्रिय के लिये उपयुक्त होता है। वह स्थान और वंश की वृद्धि और सभी कामनाओं को पूरी करता है।

सोने के रङ्ग-जैसा वर्ण वैश्य के लिये समुचित कहा गया है। यह धन-धान्य की वृद्धि और सौभाग्यकारक है।

नीले मेघ के समान खड्ग का वर्ण शूद्र के लिये उचित है। यह स्थान और आयु की वृद्धि करता है और शुभकारक है। नीलवर्ण और उसके सदृश अन्य वर्ण शूद्र के सब कार्यों का साधक होता है।

वैदूर्यमणि और कमल के समान वर्णवाला खड्ग राजा की विजय करानेवाला कहा गया

**न धारयेत्। तेषामन्यतमं वर्णं धारयतो वैश्यस्य व्यापादो भवति। राज्ञस्तु समुद्रसलिलवर्णं खड्गं धारयतश्चक्रं प्रवर्तते। वैश्यस्य च नीलजीमूतसदृशवर्णः कुलवर्धनो भवति। तं खड्गं प्राप्य महीपतिः स्वराडनुवृद्धिमाप्नुयात्। एवं च यदि वैश्य आवहेत तदा तस्य धनधान्यसमृद्धिस्तुमुला स्यात्। शूद्रोऽपि यदि दैवयोगादेनं लभेत्ततो महदैश्वर्यं प्राप्नुयात्। इन्द्रनीलात्खड्गान्मेदिनीपतिः सार्वभौमो भवति। मयूरग्रीवावर्णः खड्गो विधारितः परराष्ट्रं पीडयति ऊर्ध्वं स्वं स्वं राष्ट्रं च कुलं च वर्धयति। यद्यन्योऽपि कश्चित्तं लभेत् तदा सोऽपि महतीं श्रियमाप्नुयात्। तथा निर्मलनभस्तलवर्णः कांस्यनीलसप्रभः सुवर्णरजतप्रख्यश्च खड्गो विधृतो भूमिलाभं विपुलां श्रियं च दद्यात् महानीलवर्णोऽपि धनरत्नप्रदो भवति। नृपस्य च विजयं सुवृष्टिं च तेन निर्दिशेत्। द्विजः कृष्णं न धारयेत्। सच्छूद्रोऽपि श्वेतं न धारयेद् वैश्यस्तु रक्तं न धारयेन्नरपतिश्च पीतं न धारयेदित्येते सफला वर्णैरभिहिताः। इति प्रशस्ता वर्णा उक्ताः।**

**निन्दिता वर्णा वक्ष्यन्ते। केशवर्णो मषीमलिनः सीससन्निभः समानश्च लोहवर्णेन मक्षिकापक्षधूमसन्निभवर्णो गृहधूमसवर्णो रूक्षः कल्माषो निष्प्रभश्चेति वर्णाः समासतो विगर्हिताः। तत्र केशवर्णाभः खड्गः क्लेशकरो भवति। मषीवर्णो भयप्रदो भवति। सीसवर्णो भर्तुर्विनाशाय कुलविनाशाय च लोहवर्णो मातुलस्य कुक्षिव्याधिकरो मक्षिकापक्षसवर्णो**

---

है। जो श्वेत वर्ण, पीले या लाल वर्ण का खड्ग हो उसे शूद्र धारण नहीं करे। इसी प्रकार पीले वर्ण के अतिरिक्त अन्य वर्ण को धारण करने पर वैश्य की प्राणहानि होती है।

समुद्र के जल-सदृश वर्ण का खड्ग धारण करने पर राजा के राज्य की वृद्धि होती है। नीले मेघ के समान खड्ग वैश्य के कुल की वृद्धि करता है। ऐसे खड्ग को प्राप्त करके राजा अपने राज्य की वृद्धि करता है। यदि इसे वैश्य रखे तो धन-धान्य की बहुत वृद्धि होती है। शूद्र भी यदि दैवयोग से इसे प्राप्त कर ले तो उसे ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

इन्द्रनील खड्ग से राजा चक्रवर्ती सम्राट् होता है। मोर की ग्रीवा सदृश वर्ण का खड्ग दूसरे के राज्य को पीड़ित करता है और अपने राष्ट्र एवं कुल की निरन्तर वृद्धि करता है। यदि इसे और भी कोई प्राप्त करे तो उसकी सम्पत्ति बढ़ती है। इसी प्रकार स्वच्छ आकाश के वर्ण-सदृश खड्ग, कांस्य के समान वर्णवाला और स्वर्ण, चाँदी के समान वर्णवाला खड्ग धारण करने पर भूमि और विपुल धन को देनेवाला होता है।

इसी प्रकार महानील वर्ण का खड्ग भी धन-सम्पतिकारक होता है। इससे राजा की विजय और उसके राज्य में सुभिक्ष रहता है।

द्विज कालेवर्ण के खड्ग को धारण न करे और उत्तम गुणोंवाला शूद्र भी श्वेत वर्ण के खड्ग को एवं वैश्य रक्तवर्ण खड्ग तथा राजा पीले खड्ग को धारण न करे।

ये प्रशस्त वर्ण कहे गये हैं।

अब निन्दित वर्णों को कहते हैं। केश-जैसा, स्याही-सदृश काला, सीसे के समान, मक्खी के पङ्ख-जैसा, घर के धूँये-जैसा, रूक्ष, कल्माष और चमकरहित ये वर्ण निन्दित हैं। इनमें बालों-जैसा वर्णवाला खड्ग क्लेशकारक और स्याही के जैसा भयकारक होता है। सीसे के जैसा स्वामी और कुल का नाशक, लोहवर्ण मामा के गुर्दों में रोगकारक, मक्खी के वर्णवाला भयङ्कर और

भयङ्करस्तस्य च भोगविनाशाय धूम्रसवर्णो वह्निभयं दद्यात्। गृहधूमसवर्णः कुलक्षयं करोति। कल्माषो रूक्षो निष्प्रभश्च दौर्भाग्यायार्थविनाशाय च कल्पते खड्ग इति। वर्णाः शुभाशुभाः कथिताः। —वीरमि० ल० पृष्ठ ३१६-३०८

## खड्गलोहलक्षणम्

**लोहार्णवे—**

लोहानां लक्षणं वक्ष्ये यथोक्तं मुनिपुङ्गवैः। निरङ्गसाङ्गभेदेन ते लोहा द्विविधा मताः॥
निरङ्गाः काञ्चिपांड्यादि भेदाद् बहुविधा मताः। रसकर्मसु ते शस्ता नाना व्याधिविनाशनाः॥
शस्यन्ते प्रायशो यस्मात् साङ्गाः खड्गादिकर्मसु। नामभेदेन चिह्नानि लोहानामभिदध्महे॥
क्षुद्राङ्गं सुदृढं यस्य नीलमीषत् प्रतीयते। रौहिणं तद् विजानीयात् तत् क्षते बहुवेदना॥
नीलपिण्डं समाङ्गञ्च नीलपिण्डं विदुर्बुधाः। मयूरकण्ठसंस्थानमङ्गं यस्य प्रतीयते॥
मयूरग्रीवकं लोहं तत् विदुर्मुनिपुङ्गवाः॥
नागकेसरपुष्पाभमङ्गं यस्य प्रतीयते। मयूरवज्रकं प्राहुर्लोहशास्त्रविदो जनाः॥
यस्मिन् तित्तिरिपक्षाभमङ्गं लोहे प्रतीयते। दुर्लभं तन्महामूल्यं तित्तिराङ्गं सुपाकजम्॥
सुवर्णसदृशाकारास्त्वङ्गभूमिः प्रतीयते। सुवर्णवज्रकं विद्याद् बहुमूल्यं महागुणम्॥

---

भोगों का विनाशक होता है। इसी प्रकार धूम्र वर्णवाला अग्निभयदायक गृहधूमवर्ण युक्त कुलक्षय, कल्माष रूक्ष और निष्प्रभ ये सब दुर्भाग्य लानेवाले और धन के नाश करनेवाले हैं।

ये सभी शुभ और अशुभ वर्ण कह दिये हैं।

## खड्गलोह के लक्षण

**लोहार्णव में**—पूर्वोक्त मुनिश्रेष्ठों द्वारा कहे हुए लोह-द्रव्य का लक्षण कहता हूँ। अङ्गरहित और अङ्गवाला—ये दो भेद लोहे के माने गये हैं॥

काञ्चि और पाण्ड्य आदि स्थानों पर मिलनेवाले निरङ्ग लोह के अनेक भेद हैं। ये रस (औषध) कर्म में उपयुक्त होने से अनेक रोगों को दूर करते हैं॥

क्योंकि प्रायः खड्ग के लिये साङ्ग लोह ही प्रशस्त माना गया है, अतः नाम इत्यादि के भेद से उसके चिह्नों का निरूपण करते हैं॥

क्षुद्र अङ्ग, सुदृढ़ और कुछ नीले वर्ण के लोहे को रौहिण जानना चाहिये। इसके घाव में बहुत पीड़ा होती है॥

नीले पिण्ड और समान अङ्गवाले लोह को बुद्धिमानों ने नीलपिण्ड कहा है॥

जिसका अङ्ग मोर की ग्रीवा के वर्णसदृश हो, उसे मुनिश्रेष्ठों ने मयूर-ग्रीवक लोह कहा है॥

नागकेशर के पुष्प-सदृश अङ्गवाले लोह को लोहशास्त्र के जाननेवालों ने मयूर-वज्रक कहा है॥

जिस लोहे में तीतर पक्षी के पङ्ख जैसी आभा प्रतीत हो ऐसा लोह बहुत ही दुर्लभ और मूल्यवान् होता है। इससे बने शस्त्र के द्वारा आहत होने पर पाक (शोथ) होता है॥

जिसकी अङ्गभूमि सोने के समान आकारयुक्त हो उसे सुवर्णवज्र जानना चाहिये। यह बहुमूल्य और महागुणवान् होता है॥

मृणालनालप्रतिमं विवरैरग्रसंश्रितैः। कङ्कोलवज्रकं प्राहुः स्वर्णाङ्गं वज्रचिन्तकाः॥
अङ्गं प्रतीयते यत्र बहुग्रन्थिसमन्वितम्। दुर्लभं तन्महामूल्यं ग्रन्थिवज्रकमुच्यते॥

—*वी० मि० लक्षणप्रकाशे, पृ० २९६*

**देवीपुराणे—**

**खड्गस्य लक्षणं वक्ष्ये त्रिशिखस्य तु सुन्दरि। नान्यशस्त्रोद्भवं कार्यं मृदुलोहमयं तथा॥**
**स्फुटितं खण्डितं ह्रस्वं सव्रणं सन्धितं तथा। मृदुलोहो अपूज्यस्तु सन्धिते मरणं भवेत्॥**
**सवर्णे चापि हृद्रोगः स्फुटिते पातकी भवेत्। भार्या माता तथा पुत्रो म्रियते खण्डितेन तु॥**
**ह्रस्वेन लाघवं लोके दीर्घं वाऽपि ह्यसिद्धिदम्। अन्यशस्त्रोद्भवेनापि सम्भवेन्मरणं ध्रुवम्॥**

—*वी० मि० ल० पृ० २९९*

**बृहत्संहितायां खड्गलक्षणम्—पञ्चाशत्तमोऽध्यायः**

**अङ्गुलशतार्द्धमुत्तम ऊनः स्यात्पञ्चविंशतिः खड्गः।**
**अङ्गुलमानाज्ज्ञेयो व्रणोऽशुभो विषमपर्वस्थः॥ ११॥**
**स्फुटितो ह्रस्वः कुण्ठो वंशच्छिनोनदृङ् मनोनुगतः।**
**अस्वन इति चानिष्टः प्रोक्तविपर्यस्त इष्टफलः॥ १२॥**

---

कमलिनी के नाल के सदृश छिद्र (रन्ध्र) युक्त और स्वर्ण अङ्गवाले लोहे को खड्गशास्त्र के जाननेवालों ने कङ्कोलवज्र कहा है॥

जिसका अङ्ग भाग बहुत गाँठों–जैसा दिखाई दे उसे ग्रन्थिवज्र कहते हैं। यह बहुत ही दुर्लभ और मूल्यवान् होता है।

**देवीपुराण में**—हे सुन्दरि! त्रिशिख खड्ग के लक्षणों को कहता हूँ। यह खड्ग अन्य शस्त्र जिससे बनते हों, और मृदु लोहे (कच्चे लोहे) से नहीं बनाना चाहिये॥

फूटा हुआ, कटा–फटा, दुर्बल, व्रणयुक्त, जुड़ा हुआ मृदुलोह खड्ग के लिये उपयुक्त नहीं है। सन्धित (जुड़े हुए) लोह से खड्ग बनाने पर मृत्यु होती है॥

व्रणयुक्त से हृदय के रोग, फूटे हुए से पापी और खण्डित लोहे से युक्त खड्गवाले की पत्नी, माता और पुत्र की मृत्यु होती है॥

ह्रस्व लोहे से लोक में अपयश और अधिक [दीर्घ] से कार्य में असफलता तथा दूसरे शस्त्र के लोहे से खड्ग बनवाने पर निश्चितरूप से मृत्यु होती है।

**बृहत् संहिता में खड्ग–लक्षण**—पचास अङ्गुल लम्बा खड्ग उत्तम होता है और पच्चीस अङ्गुल लम्बा खड्ग छोटा होता है। इन दोनों के मध्यमानवाला मध्यम होता है। उस खड्ग की लम्बाई में विषम अङ्गुल अर्थात् पहिला तीसरा पाँचवा आदि पर जो व्रण (खड्ग पर निशान) हो तो अशुभ होता है और सम अङ्गुलमान में शुभकारक होता है॥ ११॥

फूटा हुआ, छोटा, कुण्ठित (जिसकी धार तीखी न हो), वंशप्रदेश (मूल) में टूटा हुआ, दृष्टि और मन को अप्रिय लगनेवाला, अस्वन (ताड़न करने पर जिससे ध्वनि न निकले) ऐसा खड्ग निन्दनीय होता है। इन दुर्गुणों से रहित खड्ग उत्तम होता है॥ १२॥

गोजिह्वा संस्थानो नीलोत्पलवंशपत्रसदृशश्च। करवीरपत्रशूलाग्रमण्डलाग्राः प्रशस्ताः स्युः॥ ७॥
करवीरोत्पलगजमदघृतकुंकुमकुन्दचम्पकसगन्धः शुभदोऽनिष्टो गोमूत्रपङ्कमेदः सदृशगन्धः॥ २१॥
क्षारोपमश्च भयदुःखदो भवति गन्धः॥ वैदूर्यकनकविद्युत् प्रभो जयारोग्यवृद्धिकरः॥ २२॥

**खड्गपानकरणम्—**

इदमौशनसञ्च[१]—शस्त्रपानं रुधिरेणश्रियमिच्छतः प्रदीप्ताम् ।
हविषा गुणवत् सुताभिलिप्सोः सलिलेनाक्षयमिच्छतश्च वित्तम् ॥ २३॥
वडवौष्ट्रकरेणु दुग्धपानं यदि पापेन समीहतेऽर्थसिद्धिम् ।
झषपित्तमृगाश्ववस्तुदुग्धैः करिहलछिदये स तालगर्भैः ॥ २४॥
आर्कं पयो हुडुविषाणमषीसमेतं पारावताखुशकृता च युक्तं प्रलेपः।
शस्त्रस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानं पश्चाच्छितस्य न शिलासु भवेद् हि घातः॥ २५॥
क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते दिनोषिते पायितमायसं यत् ।
सम्यक् छितं चाश्मनि नेति भङ्गं न चान्यलोहेष्वपि तस्य कौण्ठ्यम्॥ २६॥

*—बृहत्संहिता अ० ५०*

---

गौ की जीभ-सदृश आकारवाला, नीले कमल के सदृश, बाँस के पत्ते के समान, कनेर के पत्ते-जैसा जिसका अग्रभाग हो या गोल हो, ऐसे खड्ग उत्तम होते हैं॥ ७॥

कनेर का पुष्प, नीलकमल, हाथी का मद, घृत, केसर, कुन्दपुष्प और चम्पे का पुष्प, इनके गन्ध के समान जिस खड्ग में गन्ध हो वह शुभ होता है। गोमूत्र, कर्दम (कीचड़), वसा, रुधिर और क्षार के सदृश गन्धवाला अशुभ होता है। कछुवा, चर्बी, रुधिर सदृश गन्धवाला खड्ग भय एवं दुःखप्रद होता है। वैदूर्य, सुवर्ण और बिजली के सदृश छविवाला खड्ग जय और आरोग्य की वृद्धि करता है॥ २१-२२॥

**खड्गपानकरण**—शुक्राचार्य ने खड्ग पान करना (पानी चढ़ाना) इस प्रकार कहा है— यश की प्राप्ति के लिये रुधिर का पान दे, अर्थात् शस्त्र को अग्नि में तपाकर रुधिर में बुझावे। गुणवान् पुत्र की इच्छावाला घृत का पान देवे। अक्षय धन को चाहनेवाला जल का पान दे। जो पाप से (दूसरे को मारकर) स्वार्थसाधन करना चाहता हो तो घोड़ी और ऊँटनी के दुग्ध का पान दे। जो खड्ग से हाथी का सूँड काटना चाहता हो वह उस खड्ग को मच्छी का पित्ता, हरिणी, घोड़ी और बकरी का दूध—इन सब में हरताल अथवा तालवृक्ष का गोंद मिलाकर पान देवे॥ २३,२४॥

शस्त्र को तिलों के तेल से चुपड़कर आक का दुग्ध, मेष के सींग को जलाकर उसकी स्याही, कबूतर की बींट, चूहे की मेंगनी इन सबको पीस उसे शस्त्र पर लेप करे। फिर उसको पूर्वोक्त पान देवे और शाण पर उसकी धार लगावे। इस प्रकार तैयार शस्त्र को पत्थर पर मारने से भी उसकी धार नहीं टूटती है॥ २५॥

केले के क्षार में मथन किया हुआ दही मिलाकर एक दिन-रात रख छोड़े। पीछे उसमें

---

१. एवमेवेदं शस्त्रपानमौशनसे धनुर्वेदे खड्गपानप्रकरणे त्रयोदशे पृष्ठे वर्णितम्।

*—वीरमित्रोदये लक्षणप्रकाशे, ३०४ पृष्ठे च*

**मानसोल्लासे खड्गमानादिकम्—**

**ततः खड्ग विनोदेन रञ्जयेत् प्रेक्षकान् भृशम्। क्षुरिकोक्तप्रमाणेन गणयेत् खड्गमुत्तमम्॥ ५४॥**
**पञ्चाशताङ्गुलैः श्रेष्ठः पञ्चत्रिं ( विं ) शतिकोऽवरः। अनयोर्मध्यमानेन मध्यमः परिकीर्त्यते॥ ५५॥**
**अव्रणः पोगलो ( रो ) पेतस्तिर्यग्भेदविवर्जितः। व्रणयुक्तोऽपि निस्त्रिंशो बिल्वकुञ्जरकुण्डलैः॥ ५६॥**
**वर्धमानध्वजछत्रस्वस्तिकैश्च व्रणैः शुभैः। मानहीनो विभिन्नश्च कुण्ठितो ध्वनिवर्जितः॥ ५६॥**
**नेत्रचित्तविरोधी च वर्जनीयो दुरासदः। असिर्मरकतश्यामपोगलैः ( रैः ) परिवर्जितः॥ ५८॥**
**बाणबाहुवनच्छेदी बाणाय शार्ङ्गिणा धृतः। कृपाणः शाद्वलश्यामस्तनुवद्दीर्घपोगरः॥ ५९॥**
**अच्छेद्यो रोहिणीवाहः पौलस्त्येन धृतः पुरा। कुटिलैः पोगरैर्युक्तो वरस्क ( रः के ) सरसन्निभैः॥ ६०॥**
**मत्कुणः करवालोऽयं लोहवर्णो न वर्ण्यते। गोजिह्वा पल्लवप्रख्यः पोगरो यत्र दृश्यते॥ ६१॥**
**असिर्निरवहो नाम द्विषच्छेदकरः शुभः। तरुणीकेशसङ्काशः सूक्ष्मपाण्डुरपोगरः॥ ६२॥**
**भद्राङ्गः करवालोऽयं भद्रकालीकरः स्थितः। राजजम्बूफलश्यामो वक्रपाण्डुरपोगरः॥ ६३॥**

---

जिस लोहे को पान दे शाण पर उसकी भली-भाँति धार चढ़ा ले। ऐसा शस्त्र पत्थर पर मारने से भी नहीं टूटता और दूसरे लोहे पर मारने से भी उसकी धार कुण्ठित नहीं होती॥ २६॥

**मानसोल्लास में खड्ग के मानादि**—छुरिका-विनोद के पश्चात् राजा खड्ग-सञ्चालन के विनोद से दर्शकों का मनोरञ्जन करे। छुरिका के प्रमाण के सदृश ही खड्ग की अङ्गुलमान से गणना करे॥ ५४॥

श्रेष्ठ खड्ग पचास अङ्गुल का, अधम पच्चीस और इनके मध्य का मध्यम होता है॥ ५५॥

व्रणरहित, पोगर (आकृति) से युक्त, तिर्यक् (तिरछापन) आदि के दोष से वर्जित अथवा व्रणवाला होने पर भी बिल्व, हाथी, कुण्डल, ध्वज, छत्र और स्वस्तिक आदि शुभ व्रण-(चिह्न)-वाला खड्ग शुभकारक होता है॥ ५६॥

मान (पूर्वोक्त उत्तम, मध्यम, अधम) से रहित, टूटा हुआ कुण्ठित, ध्वनि से रहित (जिसे बजाने पर स्वर न निकले), नेत्र और चित्त को अरुचिकारक निकृष्ट खड्ग त्याज्य है॥ ५६॥

मरकत मणि के सदृश और श्याम आभायुक्त, पोगर से रहित खड्ग बाणासुर की भुजाओं को काटने के लिये शिवजी महाराज ने धारण किया था॥ ५८॥

शाद्वल उद्यान की हरित आभा के सदृश श्यामवर्ण और दीर्घ पोगर से युक्त, रोहिणी का वहन करनेवाला एवं अछेद्य खड्ग पहले रावण ने धारण किया है॥ ५९॥

कुटिल केशर के वर्ण-सदृश पोगरोंवाला, मत्कुण (खट्मल के सदृश तीक्ष्ण दाहकारक) खड्ग होता है। इसमें लोहे के वर्ण की गणना नहीं की जाती॥ ६०॥

गाय की जीभ या गोभी के पत्ते सदृश जिसकी आकृति हो उस खड्ग को निरवह नामवाला कहते हैं। यह शत्रुओं का संहारक और शुभकारक है॥ ६१॥

तरुणी के केश-सदृश कृष्णवर्णवाला, सूक्ष्म और पाण्डुर (कुछ पीला) पोगर से युक्त, सुन्दर अङ्गवाला, भद्राङ्ग करवाल कहलाता है जो भद्रकाली के हाथ में स्थित रहता है॥ ६२॥

जामुन के फल-सदृश श्यामवर्णवाला, तिरछा, पाण्डुर पोगरयुक्त, चिकना, जिसमें प्रतिबिम्ब

स्निग्धच्छायवपुः खड्गः करवालोऽभिधीयते। असिः प्रत्यग्रजीमूतशकलश्यामलच्छविः॥ ६४॥
पाठीनत्वक्समाकारः पोगरोऽयं सुबाणकः। केलिचन्द्रकसंकाशैः पोगरैर्निबिडैः स्थितः॥ ६५॥
कच्छेलक इति ख्यातः खड्गः खड्गभृतां वरः। तमालव्यालरोलम्बनिकुरम्बसमच्छवि॥ ६६॥
कौक्षेयकः समाख्यातः पुरुषाकारपोगरः। एरण्डबीजसङ्काशः पोगरस्तारपट्टकः॥ ६७॥
रामारोमावलिश्यामो न नमेन्नामितोप्यसिः। नववारिधरश्यामः पिङ्गाकुञ्चितपोगरः॥ ६८॥
खड्गः षढालको नाम विषवज्र भयावहः। स्वर्णचूर्णनिभैः सूक्ष्मैः पोगरैः स्वर्णपञ्जरः॥ ६९॥
मुक्ताचूर्णसमाकारैः ख्यातस्तित्तिरिवज्रकः। पोगरैः कज्जलप्रख्यैः खड्गः स्यात्कालवज्रकः॥ ७०॥
वियत् श्यामवपुः सारः स्वल्पपाण्डुर पोगरः। सरोजिनीच्छदच्छायः कोड्गि खड्गोऽभिधीयते॥ ७१॥
कदलीशृङ्खला वापि यस्मिन् दृश्यान्तरान्तरा। वर्णपोगरभेदेन खड्गजातिर्निरूपिता॥ ७२॥
सोमेश्वरनरेन्द्रेण शस्त्रशास्त्र कला विदा। *—मानसो० भाग २, अ० १, विं० ४*

**युक्तिकल्पतरौ—अथ खड्गपरीक्षा—**

**अङ्गं रूपं तथा जातिर्नेत्रारिष्टेति भूमिका। ध्वनिर्मानमिति प्रोक्तं खड्गज्ञानाष्टकं शुभम्॥ ३८॥**

---

दीखे, ऐसा खड्ग करवाल नाम से पुकारा जाता है॥ ६२-६३½॥

नवीन (वृष्टिकारक) मेघ के समान वर्णवाली असि कहलाती है॥ ६४॥

पाठीन (पाठा) के सदृश स्वरूपवाला सुबाणक खड्ग होता है॥

केला और चन्द्रमा के समान आकृतिवाला खड्गों में श्रेष्ठ खड्ग कच्छेलक कहा जाता है॥ ६५½॥

तमाल, कृष्णसर्प और भ्रमरसमूह के समान छवि एवं पुरुषाकार पोगर से युक्त खड्ग कौक्षेयक कहलाता है॥ ६६½॥

अरण्ड के बीज सदृश पोगर एवं जिसपर तत् सदृश ही रेखायें हों, सुन्दर केशों के समान कालेवर्ण का, जो झुकानेपर भी नहीं झुके, तारपट्टक खड्ग होता है॥ ६७॥

नवीन मेघ के समान श्यामवर्ण, कुछ पीली एवं झुकी हुई आकृतिवाला खड्ग षढालक कहलाता है। यह विषवज्र के सदृश भयङ्कर होता है॥ ६८॥

सोने के चूर्ण-समान आकृतिवाला, जिसका स्वरूप मोतियों के चूर्ण-जैसा दीखे उसे तित्तिरि वज्र कहते हैं॥ ६९॥

काजल के समान पोगरों से युक्त खड्ग कालवज्र कहलाता है॥ ७०॥

आकाश के जैसे वर्णवाला, कुछ भूरे पोगरयुक्त, कमलिनी की पङ्खुड़ियों-सी आभायुक्त कोड्गि खड्ग कहलाता है। इसमें कदली दल-सदृश शृङ्खला कुछ अन्तर से होती है॥ ७१॥

शस्त्र एवं शास्त्र में निपुण सोमेश्वर महाराज ने वर्ण एवं पोगरसहित खड्ग की जातियों का कथन कर दिया है॥ ७२॥

**युक्तिकल्पतरु में खड्ग परीक्षा**—अब खड्ग परीक्षा (जिन-जिन लक्षणों से खड्ग का परीक्षण किया जाता है) को कहते हैं।

**अभिन्ने दृश्यते यादृक् विभिद्य घटिते तथा। यदेव दृश्यते चिह्नं तदङ्गं संप्रचक्षते॥ ३९॥**
**नीलकृष्णादिकं खड्गे रूपमित्यभिधीयते। तेनैव यत्प्रतीतं स्यात्तज्जातिरिति गद्यते॥ ४०॥**
**अङ्गातिरिक्तं यज्जातिस्तन् माहात्म्योपसूचकम्। तन्नेत्रमिति जानीयात् खड्गे खड्गविशारदाः॥ ४१॥**
**अङ्गातिरिक्तं खड्गादियच्छुद्धत्वापसूचकम्। तदरिष्टमिति प्राहुर्भूमिरङ्गादिधारणम्॥ ४२॥**
**यः खड्गे जायते शब्दो नखदण्डादिना हते। स ध्वनिस्तुलना मानं ज्ञानमष्टविधन्त्विदम्॥ ४३॥**
**पञ्चाद्या निपुणैः खड्गे सम्भाव्यन्तेऽपि कृत्रिमाः। अन्त्यावकृत्रिमौ ज्ञेयौ तावेव सहजाविति॥ ४४॥**
**शतमङ्गानि चत्वारि रूपाणि जातयस्तथा। त्रिंशन्नेत्राणि जानीयात् अरिष्टानि तथैव च॥ ४५॥**
**भूमिश्च द्विविधा ज्ञेया ध्वनिरष्टविधो मतः। मानन्तु द्विविधं प्रोक्तमित्येषां संग्रहो मतः॥ ४६॥**

**अस्त्रयुक्तिः—अथ खड्गस्य शताङ्गगणना—लौहार्णवे—**

**रूप्यस्वर्णगजो रुवुकदमनस्थूलाङ्गकृष्णारुकः श्वेताम्भोजगदातिलानलकणा ग्रन्थिस्थिरातैत्तिलाः। मालाजीरकषट्पदोर्ध्वमरिचव्यालाश्वबर्हाञ्जनः क्षेत्र (क्षोद्र) क्षुद्रकमक्षिका तुषयवः व्रीहिक्षुमा सर्षपाः॥ ४७॥**

---

अङ्ग, रूप, जाति, नेत्र, अरिष्ट, भूमि, ध्वनि, मान—ये आठ खड्ग के ज्ञानार्थ उपयोगी हैं॥ ३८॥

पूर्ण खड्ग (तलवार) का जैसा चिह्नस्वरूप (द्रव्यरूप) दिखलाई पड़ता है, खड्ग के तोड़ने पर भी वैसा ही दिखलाई दे, उसे अङ्ग कहते हैं। नीला, कालादि खड्ग का रूप होता है, उससे जैसा खड्ग प्रतीत हो, उसे खड्ग की जाति कहते हैं॥ ३९-४०॥

अङ्ग के अतिरिक्त खड्ग की महत्ता को दिखानेवाले जाति आदि लक्षण हैं, उन्हें खड्ग परीक्षक नेत्र कहते हैं॥ ४१॥

अङ्गादि से अतिरिक्त खड्ग के शुभ या अशुभसूचक लक्षण (चिह्नादि) हैं, उन्हें अरिष्ट कहते हैं। अङ्गादि को धारण करनेवाली खड्ग की भूमि कही है॥ ४२॥

नख (चुटकी आदि) अथवा डण्डे से खड्ग को बजाने से जो शब्द होता है उसे ध्वनि कहते हैं। खड्ग की लम्बाई-चौड़ाई, मुटाई, भार आदि की तुलना करना मान कहलाता है॥ ४३॥ इन आठ परीक्षणों से खड्ग की परीक्षा (गुण-दोषादि) की जाती है।

प्रारम्भ के पाँच गुण (अङ्ग, रूप, जाति, नेत्र, अरिष्ट) आदि खड्ग में कृत्रिम (बनावटी) भी हो सकते हैं। अन्तिम दो गुण (ध्वनि और मान) बनावटी उत्पन्न नहीं होते, अतः परीक्षण में ये दो गुण ही अधिक विश्वस्त हैं॥ ४४॥

खड्ग के सौ अङ्ग, चार प्रकार के रूप, चार जाति, तीस नेत्र, तीस अरिष्ट, दो प्रकार की भूमि, आठ प्रकार की ध्वनि और दो प्रकार के मान होते हैं॥ ४५-४६॥

**लौहार्णव में**—अब खड्ग के सौ अङ्गों की गणना करते हैं। लौहार्णव में जैसा कहा है—१ चाँदी, २ सोना, ३ हाथी, ४ एरण्ड, ५ दमन, ६ स्थूल, ७ अङ्ग, ८ कृष्ण, ९ अरुण, १० श्वेत, ११ कमल, १२ गदा, १३ तिल, १४ अग्नि, १५ पिप्पली, १६ ग्रन्थि, १७ स्थिर, १८ तीतर, १९ माला, २० जीरक, २१ भ्रमर, २२ ऊर्ध्व, २३ मिर्च, २४ सर्प, २५ घोड़ा, २६ मोर, २७ कज्जल, २८ मधु, २९ क्षुद्रक, ३० मक्खी, ३१ तुष, ३२ जौ, ३३ चावल, ३४ अलसी,

सिंहीतण्डुलगोशिरः ( गोशिरा ) शिवनखग्राहाक्षिकेशोपलः द्रोणीकाककपालपत्रतुवरी बिम्बीफली सर्षपाः । नीलीरक्तवचा रसोनसुमना जिङ्गा ( ङ्गी ) स ( श ) मीरोहितः प्रोष्ठी मारिष मार्कवाथुर ( मार्कवा-खुर ) तडिन्मेषाद्रिगुञ्जा शिवाः ॥ ४८ ॥

दूर्वा बिल्वमसूरटुण्टुकशटी मार्जारिका केतकी मूर्वावज्रकलायचम्पकवना ( ला ) न्यग्रोधवंशासनाः । ज्येष्ठीजालपिपीलिकानलरजः कुष्माण्डरोमस्पृही कर्कन्धुर्बकुलारसालमहिष स्वच्छर्त्तु वक्रा इति ॥ ४९ ॥

प्रोक्ता लौहविशारदेन मुनिना खड्गस्य भेदाः क्रमात् ॥ ५० ॥

## अथ तस्य चत्वारि रूपाणि—

नीलः कृष्णःपिषङ्गश्च धूम्रश्चेति चतुर्विधः । वर्णप्रकर्षः खड्गानां कथितो मुनिपुङ्गवैः ॥ ५१ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चेति चतुर्विधः । जातिभेदो विनिर्दिष्टः खड्गानां मुनिपुङ्गवैः ॥ ५२ ॥

## अथ त्रिंशन्नेत्रानि—

चक्रं पद्मं तथा ( गदा ) खड्गो ( शङ्खो ) डमरूर्धनुरङ्कुशः । छत्रं पताका वीणा च मत्स्यलिङ्गध्वजेन्दवः ॥ ५३ ॥

कुम्भः शूलश्च शार्दूलः सिंहः सिंहासनं गजः । हंसो मयूरजिह्वा च दशनः खड्ग एव च ॥ ५४ ॥

पुत्रिकाः चामरः शैलः पुष्पमाला भुजङ्गमम् । त्रिंशदेतानि नेत्राणि खड्गानां कथितानि वै ॥ ५५ ॥

## अथ त्रिंशदरिष्टानि—

छिद्रं काकपदं रेखा भेको मूषिक एव च । विडालः शर्करा नीली मशको भृङ्गसूचके ॥ ५६ ॥

---

३५ सरसों, ३६ सिंह, ३७ तण्डुल, ३८ गौ, ३९ शिरा, ४० शिवलिङ्ग ४१ नख, ४२ मगरमच्छ, ४३ आँख, ४४ केश, ४५ उपल (पत्थर), ४६ द्रोणी, ४७ काक, ४८ कपाल, ४९ पङ्ख, ५० तुवरी, ५१ बिम्बी, ५२ फल, ५३ सरसों के फूल, ५४ नील, ५५ रक्त (मंजीठ), ५६ बच, ५७ लहसुन, ५८ सुमना, ५९ जिंगी, ६० शमी, ६१ रोहित (रोहेड़ा वृक्ष), ६२ प्रोष्ठी, ६३ मारिष, ६४ मार्कवा (हंसराज के फूल) ६५ खुर, ६६ बिजली, ६७ मेष, ६८ अद्रि, ६९ गुञ्जा, ७० मार्जारिका, ७७ केतकी, ७८ मूर्वा, ७९ वज्र, ८० कलाय (मटर), ८१ चम्पक, ८२ बला, ८३ वट, ८४ बाँस, ८५ शालवृक्ष, ८६ ज्येष्ठी, ८७ जाल, ८८ पिपीलिका, ८९ बल (नड), ९० रज, ९१ कुष्माण्ड, ९२ रोम, ९३ स्पृही, ९४ कर्कन्धु, ९५ बकुल, ९६ रसाल, ९७ महिष, ९८ स्वच्छांग, ९९ ऋतु, १०० चक्र—ये सौ भेद लौहार्णव के जाननेवाले मुनि ने खड्ग के कहे हैं॥ ४७-४९ ॥

नीला, काला, भूरा और धूम्र के सदृश ये चार वर्ण खड्गों के खड्गशास्त्रविशारदों ने कहे हैं॥ ५१ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार खड्ग की जातियाँ कही हैं॥ ५२ ॥

**अब खड्ग के तीस नेत्र कहते हैं**—चक्र, पद्म, गदा, शङ्ख, डमरू, धनुष, अङ्कुश, छत्र, पताका, वीणा, मछली, लिङ्ग, ध्वज, चन्द्रमा, घड़ा, त्रिशूल, शार्दूल, सिंह, सिंहासन, गज, हंस, मयूर, जिह्वा, दन्त, खड्ग, पुत्रिका, (पुतली)। चामर, शैल (पर्वत) पुष्पमाला और सर्प ये तीस खड्गों के नेत्र कहे हैं॥ ५३-५५ ॥

**तीस अरिष्ट**—छिद्र, काकपद (कव्वे के पैर-सदृश चिह्न) मेंढक, मूषिक (चूहा), बिल्ली, शर्करा, नीली, मशक (मच्छर), भृङ्ग, सूई, तीन बिन्दु, कालिका, दारी, कपोत (कबूतर), कव्वा,

**त्रिविन्दुः कालिका दारी कपोतः काक एव च। खर्परः शकली क्रोडी कुशपुत्रक जालिके॥ ५७॥**
**करालकङ्कखर्जूरशृङ्गपुच्छ-खनित्रकम्। लाङ्गलं शूर्पबडिशो मुनिना तत्त्ववेदिना॥ ५८॥**
**प्रोक्तान्येतान्यरिष्टानि खड्गानां त्रिंशदेव हि। दिव्यभौमविभागेन भूमिस्तु द्विविधा भवेत्॥ ५९॥**
**हंसकांस्याभ्रढक्कानां काकतन्त्रीखराश्मनाम्। ध्वनयोऽष्टविधाः प्रोक्ता नागार्जुनमुनेर्मताः॥ ६०॥**
**उत्तमाधमभेदेन मानन्तद् द्विविधं भवेत्। इति प्रोक्तानि सूत्राणि खड्गानां ज्ञानहेतवे॥ ६१॥**
**एतानि तत्त्वतो ज्ञात्वा भवेन्नृपतिः पूजितः। तत्र प्रथमतोऽङ्गानां लक्षणानि निबोधत॥ ६२॥**
**लौहद्वीपे—**
**रोप्यपत्रसमाभूमिरङ्गं श्वेतं प्रतीयते। ऊर्ध्वं तत्तु महामूल्यं रूप्यवज्रमुशन्ति तम्॥ ६३॥**
**एष खड्गवरो दद्याल्लक्ष्मीमायुर्यशो बलम्। स्वर्गरेखावली तन्वी यद् भूमी निकषोपमा॥ ६४॥**
**स्वर्गवज्रमिति प्राहुरायुर्लक्ष्मीर्जयप्रदम्। गजशुण्डाकृतिर्भूमौ कृष्णायामङ्गसम्भवः॥ ६५॥**
**गजवज्रमिति प्राहुः रक्तस्पर्शे तु तद् विशेत्। ज्वरादिव्याधिगमनं प्रक्षालितेनाम्भसा॥ ६६॥**

---

खर्पर (ठीकरा), शकली, क्रोडी—कुश (डाभ), पुत्रक, जालिक, कराल, कङ्क (दन्तों से युक्त कंघी) खजूर, सींग, पुच्छ, कुदालादि, हल, शूर्प (छाज) और बडिश (मछली) पकड़ने का काँटा—ये तीस अरिष्ट (अशुभसूचकचिह्न) मुनियों ने कहे हैं॥ ५६-५८॥

**भूमि**—दिव्य और भौम ये दो भेद खड्ग-भूमि के होते हैं॥ ५९॥

**ध्वनि**—हंस, कांस्य, विद्युत्, ढक्का (झाँझ), काक के सदृश, वीणासदृश, गर्दभस्वर और पत्थर के सदृश ये आठ प्रकारकी ध्वनियाँ नागार्जुनमुनि के मतानुसार कही हैं॥ ६०॥

**मान**—उत्तम और अधम ये दो मान खड्ग के होते हैं॥ ६१॥

खड्ग के ज्ञान के लिए पूर्वोक्त आठ सूत्र कहे हैं। इनका पूर्णरूपेण ज्ञान करके राजा सम्मानित होता है॥ ६२॥

**लौहद्वीप में**—खड्ग के ज्ञानार्थ अष्टलक्षणों में सर्वप्रथम अङ्ग के लक्षण कहते हैं।

चाँदी के पत्र-सदृश भूमि, श्वेत अङ्ग (आकृति) हो, ऊँचा और बहुत कीमतवाला खड्ग रूप्य (१) खड्ग कहलाता है॥ ६३॥

यह श्रेष्ठ खड्ग लक्ष्मी (धन), आयु, यश और बलदायक है। जिस खड्ग में सोने की हल्की रेखायें चित्रित हों, भूमि कसौटी के पत्थर-सदृश हो उसे स्वर्णवज्र (२) कहते हैं। यह आयु, लक्ष्मी, और जय प्रदान करानेवाला होता है॥ ६४॥

गज के सूँड की आकृति युक्त और कृष्णभूमि-(कालावर्ण)-युक्त खड्ग को गजवज्र (३) कहते हैं॥ ६५॥

रक्त के स्पर्शमात्र (हल्के आघात) से ही यह अन्दर प्रविष्ठ हो जाता है। इसको धोकर उस पानी के पिलाने से ज्वरादि दूर होते हैं॥ ६६॥

---

१. अत्र वज्रेणाभिप्रायो यत्तेन निर्मितः खड्गः। वज्रशब्दस्यार्थश्च तीक्ष्णलोहं (इस्पादिति भाषायां) वर्तते। तस्यैवेमे भेदाः।

अपि क्षीणोऽपि भूपालस्तद् वीर्यात् साधयेन्महीम्। एरण्डबीजप्रतिममङ्गं भूमिः सितेतरा॥ ६७॥
रुवुवज्रमिदं नाम्ना शत्रुदर्पक्षयङ्करः। एतस्य स्पर्शमात्रेण नरः सम्यग्विमुच्यते॥ ६८॥
महिषाख्यमिदं वज्रं केचिदाहुर्मनीषिणः। अङ्गं दमद (न) पत्राभं खड्गे यस्मिन् प्रतीयते॥ ६९॥
विद्याद्दमनवज्रञ्च तज्ज्ञेयं द्विविधं बुधैः। नीलाशुभ्रा भवेद् भूमिस्तत्र नीला गरीयसी॥ ७०॥
तस्मिन् पर्युषितं तोयं गन्धे दमनकोपमम्। तत्प्रभावान्महीपालः कृत्स्नां पृथ्वीं हि साधयेत्॥ ७१॥

**शार्ङ्गधरस्य—**

एकास्थूलासितारेखा भूमिर्नीला दृढा यदि। स्थूलाङ्गमङ्गवज्रं तद् विद्याल्लक्ष्मी यशःप्रदम्॥ ७२॥
एतत्क्षते भवेच्छोथः स्थूलश्चिरतरस्थितिः। एतं महान्तमपरे वदन्ति खड्गकोविदाः॥ ७३॥
घृष्टायां दृश्यते भूमौ अङ्गञ्च प्रतिबिम्बितम्। अङ्गवज्रं भवेत् तस्य द्विधा भूमिः सितासिता॥ ७४॥

**लौहप्रदीपेऽपि—**

निरङ्गंरूप्यपत्राभमीषन्मणीनिभञ्चयत्। दुर्लभं तन्महामूल्यं कान्तलौहं प्रचक्षते॥ ७५॥
कृष्णाभूमिर्भवेत् स्वच्छा पीता वज्राङ्गसङ्गता। कृष्णवज्रमिति प्राहुस्तत् क्षते मोह उच्यते॥ ७६॥

---

इसको धारण करनेवाला दुर्बल राजा भी इसके प्रताप से पृथ्वी का राज्य करता है।

एरण्ड बीज के सदृश अङ्ग, कृष्णभूमियुक्त खड्ग को रुवुवज्र (४) कहते हैं। यह शत्रु के अभिमान का नाश करनेवाला है। इसके स्पर्शमात्र (हल्के आघात) से ही प्राणान्त हो जाता है। (या अङ्गच्छेद हो जाता है)॥ ६७-६८॥

इसको कुछ तत्त्वज्ञ महिषवज्र भी कहते हैं। दमन के पत्ते के सदृश आकृति जिस खड्ग में हो उसे दमनवज्र (५) कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है, नीली भूमि और श्वेत भूमिवाला, इनमें नीली भूमि-(रङ्ग)-वाला श्रेष्ठ माना गया है॥ ७०॥

इस खड्ग को पानी में एक दिन रखने पर पानी की गन्ध दमन (केतकी) के सदृश हो जाती है। इसके प्रभाव से राजा समस्त पृथ्वी को वश में कर सकता है॥ ७१॥

**शार्ङ्गधर के अनुसार**—एक स्थूल श्वेताकार रेखा और शेष भूमि नीली एवं दृढ़ हो तो उसे स्थूलाङ्गवज्र (६) कहते हैं। यह धन और यशप्रद होता है॥ ७२॥

इसके प्रहार से घाव होने पर शोथ (सूजन) होता है। यह विस्तृत और अधिक समय तक रहता है। इस खड्ग को दूसरे खड्गविद् महान्त नाम से भी कहते हैं॥ ७३॥

घिसने से जिस खड्ग की भूमि में अपना अङ्ग प्रतिबिम्बित (परछाई) हो, उसे अङ्गवज्र (७) कहते हैं। इसकी भूमि श्वेत और काली दो प्रकार की होती है॥ ७४॥

**लौहप्रदीप के अनुसार**—अङ्गरहित, चाँदी के पत्रे के सदृश, कुछ मणि के स्वरूपवाला दुर्लभ, बहुमूल्य युक्त कान्तलौह वज्र होता है॥ ७५॥

जिसकी भूमि काली, स्वच्छ और वज्र (विद्युत्) के सदृश कुछ पीली हो, उसे कृष्णवज्र (८) कहते हैं। इसके घाव से मूर्च्छा होती है॥ ७६॥

**प्रदीपेऽपि—**

**कृष्णाभूमिः सुवर्णाभमीषच्छुक्लाङ्गसङ्गतम्। डाहुलीवज्रकं विद्यात् कालसंज्ञमथापरे॥ ७७॥**
**अरुणं सूक्ष्ममूर्धञ्चेदङ्गं भूमिः सितेतरा। अरुणाख्यमिदं वज्रं शत्रुदर्पनिषूदनम्॥ ७८॥**
**सूर्यांशुस्पर्शमात्रेण वह्निरूपां वमेच्छिखाम्। तस्य स्पर्शमात्रेण पद्मकोषः स्फुटेन्निशि॥ ७९॥**
**दुर्लभं तन्मनुष्याणां भाग्यैः कुत्रापि लभ्यते। तद् योजनसहस्रस्य रिष्टं नाशयति ध्रुवम्॥ ८०॥**
**श्वेतास्तिस्त्रो यदा रेखा आमूलादुपलक्ष्यते। श्वेताङ्गमिति तद् विद्याद्यशोलक्ष्मीबलप्रदम्॥ ८१॥**
**अम्भोजदलसङ्काशं अङ्गं भूमिः सितेतरा। अम्भोजवज्रं तज्ज्ञेयं कथितं मुनिपुङ्गवैः॥ ८२॥**
**अङ्गं यस्य गदाकारं भूमिश्चैव सितेतरा। गदावज्रमिदं ब्रूयात् तत् क्षतेशूलसम्भवः॥ ८३॥**
**अङ्गं कृष्णतिलाकारं भूमिश्चैव सिताऽसिता। तिलवज्रमिदं ज्ञेयं लक्ष्मीबलयशः प्रदम्॥ ८४॥**
**तत् क्षते तिलतैलाभा वसा प्रच्यवतेऽ धिकम्॥ ८५॥**
**धूम्रवर्णा भवेद् भूमिरङ्गं वह्निशिखोपमम्। अग्निवज्रमिदं ज्ञेयं शत्रूणां दाहकारकम्॥ ८६॥**
**अत्र शीतोदकं न्यस्तं तप्तं भवति च क्षणात्। शाणे वह्निं वमेद् यस्तु तथासूर्यांशुसङ्गमात्॥ ८७॥**
**तत् क्षते बलवान् दाहो दग्धवच्च व्रणो भवेत्। एतत् परमभाग्येन लभ्यते धरणीतले॥ ८८॥**

---

**प्रदीप में भी कहा है**—कृष्णभूमि, स्वर्ण-जैसी झलक, कुछ सफेदीयुक्त खड्ग को डाहुली वज्र कहते हैं। कुछ इसे काल नाम से पुकारते हैं॥ ७७॥

अरुण (लाल सूर्य का) वर्ण, पतली, ऊँची आकृतिवाले कृष्णभूमियुक्त वज्र को अरुणवज्र (९) कहते हैं। यह शत्रुओं का संहारक है। यह खड्ग सूर्य की किरणों के स्पर्श करते ही अग्नि के सदृश लपट छोड़ता है (चमकता है)। रात्रि में इसके छू देनेमात्र से ही कमल का फूल खिल जाता है॥ ७९॥

यह दुर्लभ है और सौभाग्य से ही प्राप्त होता है, यह सहस्रों योजन के (बड़े-बड़े) सङ्कटों को भी दूर करता है॥ ८०॥

मूल (मूठ) से ही तीन सफेद रेखायें जिसमें हों, उसे श्वेतवज्र (१०) कहते हैं, यह यश, बल और धन का देनेवाला है॥ ८१॥

कमल के सदृश अङ्ग और कृष्णभूमिवाला अम्भोजवज्र (११) होता है। ऐसा मुनिपुङ्गवों (श्रेष्ठों) ने कहा है॥ ८२॥

जिसका स्वरूप गदा जैसा और भूमि कृष्ण हो उसे गदावज्र (१२) कहते हैं, इसके घाव में शूल (पीड़ा) होती है॥ ८३॥

काले तिल के सदृश आकृतिवाला, श्वेत और काली भूमि से युक्त तिलवज्र (१३) जानना चाहिये। यह धन, बल और यश प्रदान करनेवाला है॥ ८४॥ इसके द्वारा होनेवाले घाव से तिल के तेल जैसी वसा (चर्बी) अधिक मात्रा में निकलती है॥ ८५॥

अग्नि की शिखा के सदृश अङ्ग और धूम्रवर्ण भूमिवाला अग्निवज्र (१४) जानना चाहिये। जोकि शत्रुओं के सदृश दाहकारक (पीड़ा देनेवाला) होता है॥ ८६॥

इसके ऊपर रखा हुआ ठण्डा जल (सूर्य की किरणों के संसर्ग से) उष्ण हो जाता है। इसे शाण पर चढ़ाने से अग्नि निकलती है। इसका घाव जलने के सदृश होता है, जिसमें बहुत जलन होती है। यह सौभाग्य से ही प्राप्त होता है॥ ८८॥

**भूमिः सिता तिला वापि अङ्गञ्चेत्पिप्पली-प्रदम्। कणावज्रमिदं ज्ञेयमन्तर्दाहस्तु तत् क्षते॥ ८९॥**
**कृष्णाभूमियदैवाङ्गे दृश्यते ग्रन्थिसञ्चयः। ग्रन्थिवज्रमिदं ज्ञेयं वैरिपक्षविनाशनम्॥ ९०॥**
**तत् क्षते बलवान् दाहस्तृषा च ज्वर एव च। शालपर्णीदलाकारमङ्गं कृष्णासिपुत्रिका॥ ९१॥**
**स्थिरावज्रमिदं प्राहुस्तत् क्षते वेपथुर्भवेत्। यदा तित्तिरिपक्षाभमङ्गं भूमिः सितेतरा॥ ९२॥**
**एतत् तित्तिरिवज्रं स्यात् तत् क्षते बहुधेनवः। वनमालासमा यस्मिन् माला खड्गे प्रदृश्यते॥ ९३॥**
**मालाङ्गमिति तद्विद्यात्तत्तोयं गन्धवद्भवेत्। अत्र तप्तोदकं न्यस्तं शीतं भवति तत्क्षणात्॥ ९४॥**
**एष दाहपरीतानामृते पित्तहतात्मनाम्। भवेत् परमभैषज्यं भाग्येनैतद् हि लभ्यते॥ ९५॥**
**यदाजीरकसंकाशमङ्गं भूमिः सितासिता। एतज्जीरकवज्रं स्यात् तत् क्षते तत् क्षणाज्ज्वरः॥ ९६॥**
**भूमिः सितासितक्षेत्रा अङ्गं भृङ्गाभमिष्यते। तत्र चेन्मध्यमं न्यस्तं शेषमाप्नोति केवलम्॥ ९७॥**
**एतद् भ्रमरवज्रं स्यात्तत्क्षते स्यात्विशूचिका। ऊर्ध्वगं कपिलाभासमङ्गं यस्मिन्प्रतीयते।**
**ऊर्ध्ववज्रमिदं प्राहुर्विषवेगनिषूदनम्॥ ९८॥**

**लौहप्रदीपेऽपि—**

**ऊर्ध्वगं कपिलाभासमङ्गं यस्मिन्प्रतीयते। लाङ्गलाङ्गन्तु तद्विद्यात्स्पर्शे तस्याहिनाशनम्॥ ९९॥**

---

भूमि श्वेत या तिलवर्ण-जैसा और पिप्पली (पीपल) जैसे अङ्गवाला कणावज्र (१५) होता है, इसके घाव में दाह होता है॥ ८९॥

कृष्णभूमि और ग्रन्थि-(गाँठ)-युक्त अङ्गवाला ग्रन्थिवज्र (१६) जानना चाहिये। यह शत्रुओं का नाश करनेवाला है॥ ९०॥ इसके घाव में अत्यन्त दाह, तृषा (प्यास) और ज्वर होता है।

शालपर्णी के पत्र सदृश अङ्ग और कृष्ण भूमिवाली छुरिका को स्थिरावज्र (१७) कहते हैं। इसके द्वारा आहत होने पर कम्पन होता है॥ ९१॥

जब तीतर के पङ्ख जैसा वर्ण और कृष्णभूमि हो तो उसे तित्तिरिवज्र (१८) कहते हैं। इससे आहत होने पर बहुत कम्पन होता है॥ ९२॥

वनमाला (जङ्गली फूलों की माला) अथवा (वन में वृक्षों की पंक्तियाँ) सदृश जिसकी आकृति हो उसे मालावज्र (१९) जानना चाहिये। इसका प्रक्षालित जल गन्धवाला होता है। इसके सम्पर्क से उष्ण जल शीघ्र ही ठण्डा हो जाता है॥ ९३-९४॥

यह जल पित्तदाह के अतिरिक्त अन्य दाह में अमृतसदृश है। इस खड्ग की प्राप्ति भाग्य से होती है॥ ९५॥

जब जीरे के आकारवाला अङ्ग और भूमि श्वेत तथा कृष्ण हो तो उसे जीरकवज्र (२०) कहते हैं, इससे आहत होने पर शीघ्र ज्वर होता है। श्वेत और कृष्णभूमि और भ्रमर की आकृतिवाला जिसका मध्यभाग सूक्ष्म होता है, भ्रमरवज्र (२१) होता है। इसके घाव में विशूचिका (सूई चुभने सदृश-पीड़ा) होती है॥ ९७॥

उठी हुई आकृतिवाला, कपिल-(भूरे)-वर्णवाला अङ्ग जिसमें हो, उसे ऊर्ध्ववज्र (२२) कहते हैं। यह वज्र विष के वेग को समाप्त करनेवाला होता है॥ ९८॥

**लौहप्रदीप में भी कहा है**—ऊपर को गया हुआ, कपिलाकार अङ्ग जिसमें हो, उसे

**अङ्गं मरीचसंकाशं भवेद् भूमिः सितेतरा। मरीचाङ्गमिदं वज्रं तत् क्षते कटुरक्तता॥ १००॥**
**तत् प्रक्षालनतोयेन नश्यति पीनसादयः। यदा सर्पफणाकारमङ्गं भूमिस्तु निर्मला॥ १०१॥**
**भुजङ्गवज्रं तद्विद्यात्तत् क्षते विषवद् रुजा। तस्य स्पर्शनमात्रेण भेकः प्राणैर्विमुच्यते॥ १०२॥**
**एकस्यास्य प्रसादेन कृत्स्नां शास्ति महीं नृपः। यदाश्वखुरसङ्काशं अङ्गं भूमिस्तु निर्मला॥ १०३॥**
**अश्वाङ्गमिति तं विद्यात् खड्गं परमदुर्लभम्। तस्य संयोगमात्रेण वाजी मन्दोऽपि धावति॥ १०४॥**
**तस्य क्षालनतोयेन हयानां रोगनाशनम्। एतत् क्षते भृशं मूर्च्छा दाहश्च भ्रम एव च॥ १०५॥**
**मयूरपिच्छसदृशं अङ्गं भूमिः सितेतरा। बर्हाङ्गमिति तं विद्यात् तत क्षते वान्तिरिष्यते॥ १०६॥**
**सर्पाणामिह सर्वेषामस्य स्पर्शाऽसहिष्णुता। एतदेव नृपतिभिर्भाग्यैः कुत्रापि लभ्यते॥ १०७॥**
**भूमिरञ्जनसंकाशा धारा चास्य शिता भवेत्। अञ्जनाख्यमिदं प्रायः सर्वदैवोपलभ्यते॥ १०८॥**
**धाराशुभ्रा भवेद्यस्य भूमिः कज्जलसन्निभा। कृष्णरङ्गैश्चितं वापि विद्यात् कज्जलवज्रकम्॥ १०९॥**
**मधुवर्णसमाभूमिरङ्गं वा मधुविन्दुवत्। क्षोद्राख्यमिति जानीयात् जयलक्ष्मी यशः प्रदम्॥ ११०॥**

---

लाङ्गंलाकृति (वत्सनाभ) कलिहारीवज्र कहते हैं। इसके स्पर्शमात्र से ही सर्प मर जाता है॥ ९९॥ (जङ्गमविष का स्थावरविष औषध है)।

मिर्च के समान अङ्ग, कृष्णभूमिवाला मरीचवज्र (२३) होता है, इसके घाव से कटु रक्त बहता है॥ १००॥ इसके प्रक्षालित जल से पीनस (नजला) आदि नष्ट होता है।

सर्प के फण-सदृश आकृति और निर्मल (शुद्ध) भूमिवाला भुजङ्गवज्र (२४) जानना चाहिये। इसके घाव में विषवेग के समान पीड़ा होती है। इसके स्पर्शमात्र से ही मेंढक मर जाता है॥ १०१-१०२॥

केवल इस अकेले खड्ग के द्वारा समस्त पृथ्वी का शासन किया जा सकता है। घोड़े के खुर-सदृश अङ्ग और निर्मल भूमिवाला अश्ववज्र (२५) कहलाता है। यह बहुत दुर्लभ है। इसके स्पर्शमात्र से ही मन्द दौड़नेवाला घोड़ा भी तेज दौड़ने लगता है॥ १०३-१०४॥

इसके प्रक्षालित जल से घोड़ों के रोग नष्ट होते हैं। इसके घाव से शीघ्र ही मूर्च्छा, दाह और भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं॥ १०५॥

मोर की पूँछ-जैसी आकृतिवाला और कृष्णभूमिवाला बर्हिवज्र (२६) जानना चाहिये। इसके द्वारा आहत होने पर वमन होती है॥ १०६॥

इसका स्पर्श सर्पों के लिए असहनीय है। यह राजाओं को जैसे-तैसे सौभाग्य से ही मिलता है॥ १०७॥

अञ्जन=काजल के समान भूमि और सफेद धारवाला अञ्जनवज्र (२७) होता है, यह प्रायः सर्वत्र प्राप्य होता है॥ १०८॥

जिसकी धार श्वेतवर्ण और भूमि काजल के जैसी हो अथवा काले वर्णों से युक्त हो, उसे कज्जलवज्र कहते हैं॥ १०९॥

मधु (शहद) के वर्ण-(रङ्ग)-जैसी भूमि और शहद के बिन्दु जैसी आकृतिवाला क्षौद्रवज्र (२८) जानना चाहिये। यह जय, धन और यशप्रद होता है॥ ११०॥

**शार्ङ्गधरेऽपि—**

**निम्नकक्षो भवेद् यत्र रात्रिन्दिवविलेपितः। मधुरो मधुवर्णाभः स खड्गो देववल्लभः॥ १११॥**
**विशेषाच्चाऽत्र रज्यन्ति सततं मक्षिकादयः। आसीमकोणिका यस्य क्षुद्राङ्गं कुण्डलीकृतम्॥ ११२॥**
**क्षुद्रवज्रकनामानं प्राह नागार्जुनो मुनिः। इदं कुण्डवज्रञ्च प्राह लौहार्णवे मुनिः॥ ११३॥**
**अस्य क्षतेषु बलवान् दाहो मम विलोकितः। यदङ्गं मक्षिकाकारं भूमिश्चैव सितासिता॥ ११४॥**
**स्नेहः शुष्यति चैवात्र मक्षिकाङ्गं तमादिशेत्। अङ्गं यदा तुषाकारं या च भूमिः सितासिता॥ ११५॥**
**तुषवज्रमिदं ख्यातं प्राह नार्गाजुनो मुनिः। अङ्गं यवफलाकारं भूमिः कृष्णासिता तथा॥ ११६॥**
**यवाङ्गमिति तं विद्यात्तत् स्पर्शे कण्डूसंभवः। एष खड्गाधमस्त्याज्यो यदीच्छेद् भूतिरात्मनः॥ ११७॥**
**अङ्गं व्रीहिप्रसूनाभं भूमिर्धूम्रा क्षतेऽतिरुक्। तद् व्रीहिवज्रं जानीयाच्छत्रूणां भयवर्धनम्॥ ११८॥**
**अतसीफलसङ्काशमङ्गं भूमिः सितासिता। अतसीवज्रमाहुस्तं तत् क्षते शिरसो रुजा॥ ११९॥**
**यदासर्षपबीजाभमङ्गं भूमिः सितासिता। खरधारः खरस्पर्शः सर्षपाङ्गः स दुर्लभः॥ १२०॥**
**सिंह्याकारं भवेद्यस्य अङ्गभूमिः सितासिता। सिंहीवज्रन्तु तद्विद्यात्तत्क्षते प्रलपेन्नरः॥ १२१॥**
**एतद् धावनतोयेन कासरोगोपनाशकम्। अङ्गं तण्डुलसंकाशं भूमिर्धूम्रा सितासिता॥ १२२॥**

---

**इसका लक्षण शार्ङ्गधर में भी कहा है**—निम्न कक्षावाला कृष्ण और श्वेतवर्णवाला मधु के समान खड्ग मधुर कहलाता है। यह देवों का प्रिय है॥ १११॥

विशेषकरके इस खड्ग पर मक्खियाँ बहुत आती है। आसीम (अन्तिम अवधि) तक जिसकी कोणिका (मुड़ाव) हो, क्षुद्र आकृतिवाला गोलाकार क्षुद्रवज्र (२९) कहलाता है। यह नागार्जुन मुनि का मत है। इसको मुनि ने लौहार्णव नामक शास्त्र में कुण्डलवज्र भी कहा है॥ ११२-११३॥ इसके घाव में बहुत दाह होता है, ऐसा मैंने देखा है।

जब मक्खी के सदृश अङ्ग, श्वेत-कृष्णभूमि हो॥ ११४॥ और स्नेह (चिकने पदार्थ) का शोषण करले, उसे मक्षिवज्र (३०) कहते हैं।

तुषाकार अङ्ग और श्वेत-कृष्णभूमिवाला तुषवज्र (३१) कहलाता है, ऐसा नागार्जुन मुनि ने कहा है॥ ११५॥

जौ के सदृश अङ्ग, काली और श्वेत भूमिवाला यवव्रज्र (३२) जानना चाहिये। इसके छूने से खुजली होती है। अपना अस्तित्व रखने के लिए इस अधम खड्ग को त्यागना उचित है॥ ११६-११७॥

चावल के पुष्प-सदृश अङ्ग, धूम्रवर्ण भूमिवाला, प्रहार में अति पीड़ादायक व्रीहिवज्र (३३) होता है। यह शत्रुओं के हृदय में भयदायक है॥ ११८॥ अलसी के फल-सदृश अङ्ग और श्वेत-कृष्णभूमिवाला अतसीवज्र (३४) होता है। इसके घाव से शिर में पीड़ा होती है॥ ११९॥ जब सरसों के बीज-सदृश अङ्ग, श्वेतकृष्णभूमि, खर (मोटी) धार और खरस्पर्श (छूने में मोटा प्रतीत होना) इन लक्षणों से युक्त खड्ग सर्षपवज्र (३५) होता है। यह दुर्लभ (कठिनता से प्राप्य) है॥ १२०॥ जिस खड्ग का सिंही-(काकड़ासिंगी)-सदृश आकार, श्वेतकृष्णभूमि हो, उसे सिंहीवज्र (३६) कहते हैं। इससे आहत होने पर व्यक्ति प्रलाप करता है॥ १२१॥ इसका प्रक्षालित जल कासरोग नाशक होता है। तण्डुल (चावल) के सदृश अङ्ग, धूम्र, श्वेत और

**तण्डुलाङ्गमिमं विद्यात् यशः श्रीबलवर्धनम्। एतत् पर्युषितं तोयं तण्डुलोदकसन्निभम्॥ १२३॥**
**अस्य प्रभावान्मनुजो भ्रष्टां हि लभते श्रियम्। अङ्गञ्चेद् गोक्षुराकारं भूमिराघातनिग्रहा॥ १२४॥**
**खड्गाधममिदं विद्याद्गोवज्रं नाम नामतः। स्थूला दीर्घाः शिरा कृष्णा भूमिश्चैवसितासिता॥ १२५॥**
**शिराङ्गमिति तं ब्रूयादेनं खड्गाधमं बुधाः। शिवलिङ्गाकृतिश्चाङ्गे धारा चैव सिताथवा॥ १२६॥**
**शिवलिङ्गमिति तं ब्रूयाच्छत्रुपक्षनिषूदनम्। यदा व्याघ्रनखाकारमङ्गं भूमिस्तु पिंगला॥ १२७॥**
**नखवज्रमिदं ब्रूयात् तत्क्षते श्वयथुर्भवेत्। एतदामिषसंस्पर्शात् प्रविशेत् स्वयमेवच॥ १२८॥**
**ग्राहपुच्छोपमन्त्वङ्गं भूमिर्धूम्रा खराकृतिः। ग्राहाङ्गमिति जानीयाच्छकृद्वंशोपनाशनम्॥ १२९॥**
**अस्य स्पर्शमात्रेण जीवन्मत्स्यो जहत्यसून्। यदा मनुजनेत्राभमङ्गं भूमिः सितासिता॥ १३०॥**
**नेत्राङ्गमिति जानीयात् संग्रामे विजयप्रदम्। एतद् धावनतोयेन नूनमन्धोऽपि पश्यति॥ १३१॥**
**अङ्गं केशसमं यस्य भूमिर्धूम्रा सितासिता। केशाङ्गमिति जानीयात् क्लेशदुःखभयापहम्॥ १३२॥**
**निरङ्गस्थूलप्रकृतिमुपलाङ्गं विदुर्बुधाः। एतद् हि प्रायशो लोके दृश्यते द्विजसत्तम॥ १३३॥**

**पद्मपुराणस्य—**

**निरङ्गा निशिता धारा शाणे वह्निं वमत्यपि। द्रोणीवज्रमिदं ज्ञेयं पृथिव्यां नातिदुर्लभम्॥ १३४॥**

---

काली भूमिवाला तण्डुलवज्र होता है। यह धन और बलवर्धक है। इसके प्रभाव से मनुष्य गये हुए धन सम्पति को प्राप्त करता है। इसका एकदिन रखा हुआ जल तण्डुलोदक के समान गुणकारक है॥ १२३॥ गौ के खुर सदृश आकार, आघात सहने में असमर्थ भूमिवाला गोवज्र (३८) होता है अधम होने से यह त्याज्य हैं। स्थूल दीर्घ कृष्ण शिराओंवाला और श्वेत कृष्ण भूमिवाला शिरावज्र (३९) होता है। यह खड्गों में अधम है॥ १२५॥

शिवलिङ्ग की आकृतियुक्त अङ्ग और श्वेत या तत्सदृश धारावाला शिववज्र (४०) होता है। यह शत्रुपक्ष का संहारक है॥ १२६॥

जब व्याघ्र के नख-सदृश अङ्ग और पिङ्गल भूमि हो उसे नखवज्र (४१) कहते हैं। इसके घाव में वमन होता है। यह मांस के स्पर्शमात्र से ही स्वयं उसमें घुस जाता है॥ १२७-१२८॥

मगरमच्छ की पूँछ के सदृश अङ्ग, धूम्रभूमि और कठोर आकृतिवाला ग्राहवज्र (४२) कहलाता है जो देवों का भी संहारक है॥ १२९॥ इसके स्पर्शमात्र से ही मछली जीवित होती हुई भी प्राणों को छोड़ देती है। जब मनुष्य के नेत्र सदृश अङ्ग और श्वेतकृष्णभूमि हो तो उसे नेत्रवज्र (४३) जानना चाहिये। यह संग्राम में विजय दिलानेवाला होता है॥ १३०॥ इसके प्रक्षालित (धोये हुये) जल से अन्धा भी निश्चितरूप से देखने लग जाता है॥ १३१॥ केश (बाल) के समान अङ्ग, धूम्र, श्वेत और काली भूमिवाला केशवज्र (४४) होता है। यह क्लेश भय और दुःखनाशक है॥ १३२॥

बिना विशेष अङ्ग (आकृति) और मोटा उपलवज्र (४५) होता है। यह खड्ग प्रायःलोक में सर्वत्र देखा जाता है॥ १३३॥

**पद्मपुराण के अनुसार**—बिना अङ्गविशेष के आकृति, तीक्ष्णधार, शाणपर चढ़ाने से अग्नि-स्फुलिङ्गों का छोड़ना, इन गुणोंवाला द्रोणीवज्र (४६) जानना चाहिये, यह सर्वत्र सुलभ है॥ १३४॥

अङ्गं काकपदाकारं भूमिराघातनिःसहा। एष खड्गाधमस्त्याज्यः काकाङ्गो भूतिमिच्छता॥ १३५॥
यदा कपालमङ्गेषु दृश्यते स्पर्शतः खरम्। एतद् हि दुःखजनकं कपालाङ्गं बुधस्त्यजेत्॥ १३६॥
तन्वीपत्रा बलाङ्का या सुवर्णाङ्गासि पुत्रिका। पत्रवज्रकमाहुस्तं आयुर्वेदविदो जनाः॥ १३७॥

**लौहार्णवेऽपि—**

सुप (व) र्णसन्निभाभूमिरङ्गं कालं प्रतीयते। तत्पत्रवज्रं काकस्य सुप (व) र्णमुपजायते॥ १३८॥
तुवरीदलसङ्काशं अङ्गं यस्मिन् प्रतीयते। तुवरीवज्रमाहुस्तं तत् क्षते शिरसो भ्रमः॥ १३९॥
एष खड्गाधमस्त्याज्यो यदीच्छेज्जीवनं निजम्। बिम्बीदलसमा भूमिरङ्गंबिम्बीफलोपमम्॥ १४०॥
बिम्बीवज्रन्तु तद्विद्ययात्तज्जलं तिक्तमुच्यते। पित्तश्लेष्मविकाराणां प्रशमाय प्रयुज्यते॥ १४१॥
प्रियङ्गुसदृशन्त्वङ्गं भूमिश्च कपिलाकृतिः। फलवज्रमिदं प्रोक्तं शाणे धूमं वमत्यपि॥ १४२॥
अङ्गं सर्षपपुष्पाभं भूमिश्चैव सितासिता। एतत् सर्षपवज्रं स्यात् शाणे वह्निं वमत्यपि॥ १४३॥
अपि कुण्डलिकां याति एतदत्यन्तकोमलम्। एतत्प्रसादात्क्षितिपः कृत्स्नां साधयते महीम्॥ १४४॥
नीलीरससमाभूमिरङ्गं नीलीतरङ्गवत्। नीलीवज्रमिदं दृष्टं शाणे वह्निशिखां वमेत्॥ १४५॥

---

कव्वे के पैर के आकारवाला, भूमि (धार) आघात सहने के अयोग्य काकवज्र (४७) होता है। ऐश्वर्य की कामना करनेवाले को यह अधम खड्ग त्याज्य है॥ १३५॥

कपाल-(ठीकरा)-सदृश अङ्ग और खरस्पर्श (कुण्ठित धार) वाला कपालवज्र (४८) होता है। दुःखदायी होने से बुद्धिमान् इसे छोड़ दे।। १३६॥ बलापत्र के सदृश आकृति और सुवर्णाकार असिपुत्रिका (छुरी) पत्रवज्र (४८) कहलाती है। यह आयुर्वेदविदों का मत है॥ १३७॥

**लौहार्णव में** भी सुवर्ण-सदृश भूमि, काला अङ्ग, कव्वे के पङ्ख सदृश आकृतिवाला पत्रवज्र होता है॥ १३८॥

तुवरी के पुष्प सदृश अङ्गवाला (तुवरीवज्र) (५०) कहलाता है, इसके प्रहार से शिर में चक्कर आते हैं॥ १३९॥ अपने जीवन को सुरक्षित रखनेवाले को इस अधम खड्ग को त्याग देना चाहिये॥ १४०॥

बिम्बी के पुष्प सदृश भूमि (कुछ नीली-श्वेत) बिम्बी (सेम) की फली के समान आकृतिवाला बिम्बीवज्र (५१) होता है। इसका जल तिक्तगुण होने से पित्त और कफ के शमनार्थ प्रयोग होता है॥ १४१॥ प्रियङ्गु-सदृश अङ्ग और कपिला भूमिवाला फलवज्र (५२) कहा है। इसे शाण पर चढ़ाने से धूँआ निकलता है॥ १४२॥

सरसों के पुष्प सदृश अङ्ग, श्वेत और कृष्णभूमिवाला सर्षपवज्र (५३) होता है। इसे शाण पर रखने से अग्नि निकलती है॥ १४३॥

इसे लपेटकर गोलाकार बनाया जा सकता है। यह बहुत ही सुकोमल होता है। इससे राजा समस्त पृथ्वी को वश में कर लेता है॥ १४४॥

नीलीरस (नीले रङ्ग) के सदृश भूमि, नीली तरङ्ग के सदृश अङ्गवाला नीलीवज्र (५४) होता है। यह शाण पर आग की लपटें छोड़ता है॥ १४५॥

**एष खड्गवरो नृणामरिष्टभयनाशनः। रक्तास्तिस्त्रो महारेखा भूमिश्चैव सितासिता॥ १४६॥**
**रक्ताङ्गमिति जानीयाद्वैरिपक्षविनाशनम्। शाणेन यस्तु रक्तां वा नीलां वा वमते शिखाम्॥ १४७॥**
**रक्तस्पर्शनमात्रेण स्वयमेव निकृन्तति। क्षतेऽस्य रक्तश्वयथुस्तृषादाहश्च जायते॥ १४८॥**
**अङ्गं वचादलसमं भूमिश्चैव सितासिता। वचावज्रमिदं ज्ञेयं तत् क्षताद् विषनाशनम्॥ १४९॥**
**एष खड्गवरो राज्ञा साधनीयः प्रयत्नतः। रसोनादुत्तमं ह्यङ्गं भूमिस्तस्य दलोपमा॥ १५०॥**
**रसोनवज्रं जानीयात् शाणे वह्निं वमत्यपि। अस्य धावनतोयेन आमवातविनाशनम्॥ १५१॥**
**निरङ्का निर्मला भूमिर्धारा तीक्ष्णा खरः स्वयम्। सुमनावज्रमेतत् स्याद् भुवि नात्यन्तदुर्लभम्॥ १५२॥**
**मञ्जिष्ठा सदृशा दीर्घास्तन्व्यो रेखाः सुविस्तराः। जिङ्गवज्रमिदं नाम सर्वकामार्थसाधनम्॥ १५३॥**
**अङ्गं शमीपत्रसमं भूमिर्धूम्रा सितासिता। शमीवज्रमिदं ज्ञेयं शनैश्चरमुदावहम्।**
**शाणेषु वमते वह्निं सहते वह्निपीडनम्॥ १५४॥**
**रोहितवल्कलसदृशमङ्गं भूमिः सितासिता वापि।**
**धूम्रागम्भीरस्वरयुक्तं धारातीक्ष्णा सिता भवेद् रेखा॥ १५५॥**
**रोहिताख्यमिदं वज्रं सर्वारिष्टविनाशनम्। वह्निसंस्पर्शमात्रेण किञ्चिच्चिमचिमायते॥ १५६॥**
**इत्ययं दुर्लभो खड्गो देवानामपि कथ्यते। शफरीवल्कलाकारमङ्गं भूमिः सितासिता॥ १५७॥**

---

यह खड्गों में श्रेष्ठ, राजाओं के अशुभ और भय का नाशक है। तीन लाल रेखाओंवाला, श्वेत और कृष्ण भूमि॥ १४६॥ वाला रक्तवज्र (५५) जानना चाहिये। यह शत्रुपक्ष का नाश करनेवाला है। यह शाण पर रक्त और नीली शिखा को निकालता है। रक्त के स्पर्शमात्र (हल्के आघात) से ही काट देता है। इसके द्वारा आहत होने पर रक्तवमन, तृषा और दाह होता है॥ १४७-१४८॥

वच के सदृश अङ्ग, श्वेत और कृष्णभूमिवाला वचावज्र (५६) जानना चाहिये। इसके द्वारा आहत होने पर विष के सदृश नाश होता है। अथवा विष के सदृश प्रभाव होता है। राजा को प्रयत्नपूर्वक इस खड्ग की प्राप्ति (साधना, निर्माणादि) करनी चाहिये॥ १४९॥

लहसुन के सदृश अङ्ग और उसी के समान भूमिवाला रसोनवज्र (५७) जानना चाहिये॥ १५०॥ यह शाण पर अग्निशिखा छोड़ता है। इसके प्रक्षालित जल से आमवात दूर होता है॥ १५१॥ निरङ्का (धब्बेरहित), निर्मल भूमि, तीक्ष्ण धार और खराकृतिवाला सुमनावज्र (५८) होता है। यह सुलभ है॥ १५२॥

मजीठ के सदृश दीर्घ और हल्की विस्तृत रेखाओंवाला जिङ्गवज्र (५९) होता है। यह सब कार्यों की सिद्धि करनेवाला है॥ १५३॥

शमी (जंडवृक्ष) पत्र के समान अङ्ग, धूम्र, श्वेत और कृष्णभूमिवाला शमीवज्र (६०) जानना चाहिये। यह शनैश्चरों द्वारा धारण किया जाता है। शाण पर अग्नि स्फुलिङ्ग छोड़ता है। अग्निसङ्कट को सहने में समर्थ है॥ १५४॥

रोहित (रोहेड़ा) की छाल के समान अङ्ग, श्वेत, कृष्ण अथवा धूम्रवर्णभूमि, गम्भीर स्वरयुक्त, तीक्ष्णधार और श्वेत रेखावाला रोहितवज्र (६१) होता है। यह सब सङ्कटों का नाशक है। अग्नि

**प्रोष्ठी वज्रमिदं प्रोक्तं न्यस्तं तरति वारिणी। एष खड्गोत्तमो राज्ञां विपक्षकुलनाशकः ॥ १५८ ॥**
**कदाचिल्लभ्यते भाग्यैर्लभ्यते लभ्यते मही। अङ्गं मारिषपत्राभं भूमिः स्याद्विषमच्छविः ॥ १५९ ॥**
**इत्ययं मारिषाङ्गः स्यात् पृथिव्यां नातिदुर्लभः। भृङ्गराजस्य पुष्पाभमङ्गं भूमिर्दलप्रभा ॥ १६० ॥**
**आघातं सह तेनैव एष खड्गाधमो मतः। धारातीक्ष्णा खुराकारा भूमिरङ्गविवर्जिता ॥ १६१ ॥**
**आघातं सहते घोरं शाणे वह्निं वमत्यपि। खुराङ्गमिति जानीयात् पृथिव्यां नातिदुर्लभम् ॥ १६२ ॥**
**निर्मला समला भूमिर्भवेच्चैव कदा कदा। मन्दा तीव्रा भवेद्धारा तडिद्वज्रस्य लक्षणम् ॥ १६३ ॥**
**नीलाञ्जनसमाभूमिरङ्गं जलतरङ्गवत्। मेघाङ्गमिति जानीयाच्छाणे शीतं भवत्यपि ॥ १६४ ॥**
**एष खड्गाधमस्त्याज्यो यदीच्छेद्भूतिमात्मनः। भर्त्तुः प्रतापं शमयेद्रविबिम्बं यथाघनः ॥ १६५ ॥**
**मन्दा धारा भृशं गाढा भूमिरङ्गविवर्जिता। पर्वताङ्गमिदं नाम सर्वत्रैवोपलभ्यते ॥ १६६ ॥**
**अङ्गं गुञ्जाफलसमं भूमिर्मीनदलोपमा। गुञ्जावज्रमिदं पृष्टं तप्तं भवति घर्षणे ॥ १६७ ॥**
**शाणे सिन्दूरसङ्काशं रजो वमति चासकृत्। एष खड्गवरो राज्ञा भाग्यादेवोपजायते ॥ १६८ ॥**
**अस्य प्रभावात् तन्नास्ति यन्न साधयेत् नृपः। अङ्गं तनुशराकारं भूमिश्चैव सितासिता ॥ १६९ ॥**
**धारा तीक्ष्णा वमति च शाणे वह्निसमाः शिखाः। शरवज्रमिदं ज्ञेयं राज्ञां वांच्छितसिद्धये ॥ १७० ॥**

---

के स्पर्शमात्र से ही चमचमाहट करने लगता है॥ १५५-१५६ ॥ यह देवों को भी दुर्लभ है। शफरी मछली की त्वचा के सदृश अङ्ग, श्वेत और कृष्णभूमिवाला, पानी में डालने पर भी ऊपर तैरनेवाला प्रोष्ठीवज्र (६२) कहा है, यह उत्तम खड्ग राजाओं के शत्रुओं का नाशक है। इसकी प्राप्ति भाग्य से ही होती है। प्राप्त होने पर यह समस्त पृथ्वी की प्राप्ति में सहायक है॥ १५७-१५८ ॥

मारिष-(शुक, तोता)-पङ्ख के समान अङ्ग, विषम छवियुक्त भूमि, सर्वसुलभ मारिषवज्र (६३) होता है॥ १५९ ॥

भृङ्गराज के फूल के सदृश अङ्ग, उसके सदृश वर्णवाली भूमिवाला, आघात सहने में असमर्थ, अधम, (६४) मार्कवा नामवाला खड्ग होता है॥ १६० ॥

**तीक्ष्णधार**—खुर के सदृश आकृतिवाली भूमि, अङ्ग से रहित, घोर आघात को सहनेवाला, शाण पर अग्नि छोड़नेवाला, सर्वसुलभ खुरवज्र (६५) कहलाता है॥ १६१-१६२ ॥

कभी निर्मल और कभी मलयुक्त भूमिवाला, इसी प्रकार कभी मन्द कभी तीव्रधारवाला होना, यह तडित् वज्र (६६) का लक्षण है॥ १६३ ॥ नीले अञ्जन के सदृश भूमि और जल की तरङ्ग के समान अङ्गवाला मेघवज्र (६७) होता है। यह शाण पर भी ठण्डा ही रहता है (अग्नि नहीं निकलती) ॥ १६४ ॥ धनैश्वर्य के रक्षार्थ इस अधम खड्ग का त्याग ही उत्तम है॥ सूर्य को ढकनेवाले मेघ के सदृश यह स्वामी के बल-प्रताप को तिरोहित कर देता है॥ १६५ ॥

मन्दधार, गाढ भूमि, अङ्गरहित सर्वसुलभ पर्वतवज्र (६८) होता है॥ १६६ ॥ गुञ्जा के सदृश अङ्ग, मछली के सदृश भूमिवाला गुञ्जावज्र (६९) होता है। यह घर्षण करने पर उष्ण हो जाता है। शाण पर चढ़ाने से सिन्दूर के सदृश अग्निकण बार-बार छोड़ता है। इसकी प्राप्ति राजा को भाग्य से ही होती है॥ १६७-१६८ ॥ इसके प्रभाव से राजाओं को कुछ असाध्य नहीं होता। हल्के सरकण्डे के सदृश अङ्ग, श्वेत और कृष्णभूमिवाला, तीक्ष्णधारवाला शाण पर अग्नि सदृश

**दूर्वादलनिभाभूमिर्धारा तीक्ष्णा खरः स्वरः। शाणेन वमते वह्निं दूर्वावज्रं सुदुर्लभम्॥ १७१ ॥**
**अङ्गं बिल्वदलाकारं भूमिश्चैव सितासिता। बिल्ववज्रमिदं शाणे नीलपीते वमेच्छिखे॥ १७२ ॥**
**एष खड्गवरः प्रोक्तः शत्रूणां कुलनाशनः। मसूरदल-सङ्काशा भूमिरङ्गं मसूरवत्॥ १७३ ॥**
**मसूराङ्गमिदं शाणे रजो वमति चारुणम्। शोणपुष्पनिभा रेखा दीर्घाभूमिः सितेतरा॥ १७४ ॥**
**शोणाङ्गमिति जानीयात् खड्गं परमदुर्लभम्। शठीदल समाभूमिरङ्गं तत् कुसुमोपमम्।**
**शठीवज्रमिदं प्रायो लभ्यते गुणवत्तरम्॥ १७५ ॥**
**मार्जाररोमसदृशमङ्गं भूमिः सितेतरा। मार्जाराङ्गमिदं नाम्ना रोगशोकभयावहम्॥ १७६ ॥**
**एष खड्गाधमस्त्याज्यो यदीच्छेद् भूतिरात्मनः। केतकी पत्रसदृशमङ्गं यस्मिन् प्रतीयते॥ १७७ ॥**
**विद्यात् केतकवज्रं तद् वाराणसी समुद्भवम्।**

**लौहप्रदीपे—**

**अङ्गं मूर्वातन्तुनिभं भूमिर्मूर्व्वादलच्छविः॥ १७८ ॥**
**शाणेन वमते शुक्लां शिखां मौर्व्वी भवेत्ततः। मौर्व्वाङ्गमिदमुत्कृष्टं यशः कीर्त्तिबलावहम्॥ १७९ ॥**
**लिङ्गं तीक्ष्णं खरं गाढं शाणे वह्नेर्वमेत्कणम्। छिनत्यन्यविधं लौहं वज्राङ्गमिति तद्वदेत्॥ १८० ॥**

---

लपट छोड़नेवाला, राजाओं की अभीष्ट-सिद्धि करनेवाला शरवज्र (७०) होता है॥ १६९-१७० ॥

दूर्वा (दूब) के पत्र-सदृश भूमि, तीक्ष्णधार, खरस्वरवाला, शाण पर अग्नि निकालनेवाला दूर्वावज्र (७१) होता है, यह बहुत दुर्लभ है॥ १७१ ॥

बिल्वदल-(बेलपत्र)-सदृश अङ्ग, श्वेत और काली भूमिवाला बिल्ववज्र (७२) होता है। यह शाण पर नीली और पीली शिखायें छोड़ता है। यह उत्तम खड्ग शत्रुओं का नाश करनेवाला है॥ १७२ ॥

मसूर के पुष्प-सदृश भूमि, मसूर के सदृश अङ्गवाला मसूरवज्र (७३) होता है। यह शाण पर चढ़ाने से अरुण अग्नि-स्फुलिङ्ग छोड़ता है॥ १७३ ॥

शोण-पुष्प के सदृश रेखावाला, दीर्घ, कृष्णभूमिवाला शोणवज्र (७४) जानना चाहिये। यह बहुत ही दुर्लभ है॥ १७४ ॥

शठीपत्र-(बालछड़)-सदृश भूमि और उसके पुष्प सदृश अङ्गवाला शठीवज्र (७५) होता है। इस गुणवाला खड्ग प्राय मिल जाता है॥ १७५ ॥

मार्जार (बिल्ली) के रोम-सदृश अङ्ग, कृष्णभूमिवाला मार्जारवज्र (७६) नाम से प्रसिद्ध है। यह रोग, शोक और भयकारक है॥ १७६ ॥ अपने ऐश्वर्य की स्थिरता की कामना करनेवाले को इस अधम खड्ग का त्याग करना ही उचित है॥ १७७ ॥ जिसकी आकृति केतकी (केवड़ा) के सदृश हो, उसे केतकीवज्र (७७) कहते हैं। यह वाराणसी में बनता है॥ १७८ ॥

**लोहप्रदीप में**—मूर्वा (बालछड़) के रेशों के सदृश अङ्ग, मूर्वापत्र सदृशभूमि, शाण पर श्वेत शिखा को निकालनेवाला, मूर्वावज्र (७८) होता है। यह श्रेष्ठ खड्ग है और यश, कीर्ति तथा बल की प्राप्ति करानेवाला है॥ १७९ ॥

तीक्ष्ण लोहे (इस्पात) से निर्मित खरप्रकृतिवाला, गाढ (सुदृढ़), शाण पर अग्नि की चिनगारियाँ छोड़नेवाला, अन्य सभी लौहशस्त्रों को काटनेवाला वज्र (७९) नाम से प्रसिद्ध है।

**कलायपुष्प सदृशमङ्गं भूमिः सितासिता। कलायवज्रं जानीयात् तत् क्षते पाक इष्यते॥ १८१॥**
**अङ्गं चम्पकपुष्पाभं भूमिः कृष्णा तथा सिता। शिखां शाणे वमेच्छीतां तिक्तं तस्य जलं भवेत्॥**
**इदं चम्पकवज्रं स्यात् सर्वत्र विजयप्रदम्॥ १८२॥**
**अङ्गं बलादलसमं भूमिः शुक्ला तथेतरा। बलावज्रमिदं ज्ञेयं नानाभावं भवेद् द्रुतम्।**
**इत्ययं वातरोगाणां नाशने परमौषधम्॥ १८३॥**
**अङ्गं वटारोहसमं भूमिर्वटदलच्छविः। वटवज्रमिदं ज्ञेयं खरं खड्गाधमं बुधैः।**
**एतस्य स्पर्शमात्रेण नरो मुच्येत सम्पदाम्॥ १८४॥**
**वंशनीलीसमा भूमिः खरधारासिताकृतिः। वंशाङ्गमिति जानीयात् वंशवृद्धिकरः परः॥ १८५॥**
**भूमिः शालदलाकारा अङ्गं लघु सितासितम्। शालाङ्ग एषः खड्गः स्यात् पूज्यः सर्वार्थदायकः।**
**अयं शाणे वमेद् वह्निं धारा चाप्यथवा भवेत्॥ १८६॥**
**भूमिः सितासिता वापि अङ्गं ज्येष्ठीसमं लघु। ज्येष्ठीवज्रमिदं निन्द्यं न स्पृश्यं वा हितेच्छुभिः॥ १८७॥**
**पुराणजालसदृशमङ्गं भूमिः सितासिता। जालवज्रमिदं पूज्यं शत्रुसम्पत्तिनाशनम्॥ १८८॥**
**यदि शाणे वमेन्नीलां शिखां वह्निवमेच्च वा। तदैष दुर्लभः खड्गो नान्यथा भयहेतुकः॥ १८९॥**

---

मटर के सदृश अङ्ग, श्वेत और कृष्णभूमिवाला कलायवज्र (८०) जानना चाहिये। इसके द्वारा आहत होने पर पाक (पीप-शोथादि) होता है॥ १८०-१८१॥

चम्पक (चमेली) के पुष्प-सदृश अङ्ग और कृष्ण तथा श्वेत भूमिवाला, शाण पर शीतल लपट उगलनेवाला, चम्पकवज्र (८१) होता है। इसका जल तिक्त होता है। यह सर्वत्र विजय दिलवानेवाला होता है॥ १८२॥

बला के पत्र-सदृश (कंगूरेदार) श्वेत और कृष्णभूमिवाला, बलावज्र (८२) जानना चाहिये। यह बहुत शीघ्र ही अनेक आकृतियोंवाला बन जाता है या इससे अनेक कार्य लिये जा सकते हैं। यह वात रोगों के दूर करने में परमौषध सदृश कार्य करता है॥ १८३॥

बड़ वृक्ष के सदृश अङ्ग और उसके पत्तों के सदृश आभायुक्त भूमिवाला, खरगुणयुक्त वटवज्र (८३) होता है। यह अधम खड्ग है। इसके स्पर्शमात्र से मनुष्य सम्पतिरहित हो जाता है। (शोभा नहीं देता)॥ १८४॥

वंश (बाँस) और नीली (नील) के सदृश भूमि, खरधार और श्वेत आकृतिवाला वंशवज्र (८४) होता है। यह वंश (कुल) की वृद्धि करनेवाला है॥ १८५॥

शाल वृक्ष के पत्र के आकारवाली भूमि, हल्के श्वेत कृष्ण अङ्गवाला शालवज्र (८५) होता है। यह पूज्य और सर्व कार्यों की सिद्धि करानेवाला है। यह शाण पर अग्नि निकालता है॥ १८६॥

श्वेत और कृष्णभूमि, ज्येष्ठी के सदृश लघु अङ्गवाला ज्येष्ठीवज्र (८६) होता है। यह निन्दनीय और हित चाहनेवालों के लिए न छूने योग्य है॥ १८७॥

पुरातनजाल के सदृश अङ्ग, श्वेत और कृष्णभूमिवाला जालवज्र (८७) होता है। यह पूज्य और शत्रुनाशक है। यदि शाण पर नीली शिखा को उगले और अग्नि प्रकट करे तो ऐसा खड्ग दुर्लभ है और किसी प्रकार का भी विघ्न नहीं करता॥ १८९॥

**अङ्गं पिपीलिकाकारं भूमिर्धूम्रा तथासिता। पिपीलिकाङ्ग इत्येष तत् क्षते कण्डूसम्भवः। स्वयं यदि भवेद् धूम्रः शाणे पूज्यते यस्तदा॥ १९०॥**
**नलपत्रसमाभूमिरङ्गं तत् कुसुमोपमम्। नलाङ्गमिति जानीयाद् भर्तुः सर्वार्थसाधकः॥ १९१॥**
**निरङ्का निर्मला भूमिर्घृष्टं घृष्टं वमेद्रजः। दृढा धारा भृशंस्थूला आघातं सहते न च। रजोवज्रमिदं निन्द्यं शत्रूणां विजयावहम्॥ १९२॥**
**कुष्माण्डबीजसदृशमङ्गं भूमिः सितासिता। कुष्मांडवज्रं जानीयात्तत् क्षते वेगनिग्रहः॥ १९३॥**
**अङ्गं नृरोमसदृशं भूमिर्धूम्रा सितासिता। रोमाङ्गमिति जानीयात्तत् क्षते पिडकोद्गमः॥ १९४॥**
**भूमिस्नुही दलसमा अङ्गं तत्कण्टकोपमम्। धारा तीक्ष्णा खरस्तीक्ष्णो लघुमानं खरस्पृशः॥ १९५॥**
**सुधाङ्गः खड्ग इत्येष तत्क्षते दाहतृड् भ्रमाः। मुखाक्षिकर्णनासानां दाहः पाकश्च जायते॥ १९६॥**
**अयं यदि च सर्पाणां फणासूपरि विश्यते। फणाविदारमाप्नोति सर्पो लोटयते शिरः। अस्य धावनतोयेन कुष्ठरोगविनाशनम्॥ १९७॥**
**कर्कन्धुदलपृष्ठाभा भूमिरङ्गं तु तत् समम्। कर्कन्धुवज्रं जानीयात्तत् क्षते दाहनाशनम्॥ १९८॥**
**एष खड्गाधमस्त्याज्यो जेतव्या यदि विद्विषः। अङ्गं बकुलपुष्पाभं भूमिस्तत् फलसन्निभा॥ १९९॥**

---

पिपीलिका (चींटी) के सदृश अङ्ग (मध्य में लघु) धूम्र और कृष्णभूमिवाला पिपीलिकावज्र (८८) होता है। इसके द्वारा घायल होने पर खुजली होती है। यदि शाण पर स्वयं ही धूम्राकार हो जाये तो बहुत प्रशस्त है॥ १९०॥

नल-पत्र के सदृश भूमि, उसके फूल के समान अङ्गवाला नलवज्र (८९) होता है। यह धारण करनेवाले के सब कार्यों का साधक है॥ १९१॥

धब्बोंरहित और निर्मल भूमिवाला, बार-बार घिसने पर रजकणों को छोड़नेवाला, दृढ़ और मोटीधारवाला, आघात को न सहनेवाला, शत्रुओं को विजय देनेवाला (अपनी पराजय करनेवाला) रजोवज्र (९०) होता है॥ १९२॥

कुष्माण्ड (पेठे) के बीज-सदृश अङ्ग, श्वेत और कृष्णभूमिवाला कुष्माण्डवज्र (९१) जानना चाहिये। इससे आहत होने पर चेष्टाओं आदि का निरोध हो जाता है (अङ्ग अकड़ जाते हैं)॥ १९३॥

मनुष्य के रोम-सदृश अङ्ग, धूम्रवर्ण, श्वेत और कृष्णभूमिवाला रोमवज्र (९२) होता है। इससे घायल होने पर घाव के आसपास फुंसियाँ हो जाती हैं॥ १९४॥

स्नुही (थूहर) के सदृशभूमि और इसके काँटों के सदृश अङ्ग, तीक्ष्णधार, खर, तीक्ष्ण, छोटी आकृति और खर स्पर्शवाला सुधावज्र (९३) होता है। इसके घाव में जलन होती है और मुख, आँख, कान आदि पक जाता है॥ १९५-१९६॥

इसको यदि साँपों के फणों (शिर) पर रख दें तो फण फट जाता है और साँप शिर पटकता है। इसके प्रक्षालित जल से कुष्ठरोग का निवारण होता है॥ १९७॥

कर्कन्धु दल की आभायुक्त भूमि और उस सदृश ही अङ्गवाला कर्कन्धुवज्र (९४) होता है। इसके घाव में दाह नहीं होती है। शत्रुओं को जीतनेवाले को इस अधम खड्ग का परित्याग ही उचित है॥ १९८-१९९॥

बकुलाङ्गमिदं पूज्यं शाणे सुरभिगन्धवत्। तन्नास्ति जगतीमध्ये यदनेन न साध्यते॥ २००॥
अङ्गं मिश्रितं यस्मिन्न किंचिद् व्यक्तमीक्षते। सर्वेषां दर्शनं वापि तीक्ष्णधारः खरः स्वरः॥ २०१॥
एष काञ्जिकवज्रः स्याद्यत्नादेवोपलभ्यते। नैनं प्राप्यापि वर्द्धन्ते शेषाश्चित्रादयोऽपि च॥ २०२॥
भूमिः कृष्णानिरङ्गा चेद्धारातीक्ष्णा दृढापि च। आघातं सहते घोरं रक्तं स्पर्शेन यो विशेत्॥ २०३॥
शाणेन वह्निं वमति ध्रुवं वाप्यति घर्षणात्। महिषाङ्गः स वै खड्गः पृथिव्यां नातिदुर्लभः॥ २०४॥
अत्यन्तनिर्मला भूमिः शरीरं प्रतिबिम्बितम्। धारा तीक्ष्णा स्वरस्तीक्ष्णः स्वच्छश्चाङ्गं तद्विनिर्दिशेत्॥ २०५॥
तस्मिन्यदा भवेद्रेखा ऊर्ध्वा ऋत्वाख्यकं तदा। अस्मिन्नपि भवेद्वक्रा रेखा वक्राभिधन्तु तत्॥ २०६॥
एतत् त्रितयमुद्दिष्टं खड्गानां प्रवरं बुधैः। प्रायशो लभ्यते लोके यदि सर्वगुणावहम्॥ २०७॥
इतीदं निखिलं प्रोक्तं वज्राणां लक्षणं मया। प्रयत्नैर्लिखितं व्यक्तं सर्वेषां हितकाम्यया॥ २०८॥
इतः परन्तु लौहानां लक्षणं यत्र लक्ष्यते। तस्य दासो भवाम्येव प्रतिज्ञेति कृता मया॥ २०९॥
द्विलिङ्गमिश्रमालोक्य मिश्राङ्गमिति निर्दिशेत्। सर्वेषामङ्गमालोक्य सर्वाङ्गमिति निर्दिशेत्॥ २१०॥

**खड्गस्य रूपाणि—**

नीली कलाय-कुसुमच्छविगृञ्जनाभा, या चन्द्रनीलमणि-काचमणिप्रभा च।
भूमिश्च या मरकत-प्रतिभावभासा, खड्गस्य नीलरूपमिदं वदन्ति॥ २११॥

---

बकुल (मौलसरी) के पुष्प-सदृश अङ्ग, उसके फल-जैसी भूमिवाला बकुलवज्र (९५) होता है। शाण पर चढ़ाने से इससे सुरभि=गन्ध निकलती है। संसार में इसके द्वारा सभी कुछ प्राप्त होने योग्य है॥ २००॥

मिश्रित अङ्ग-(मिलीजुली आकृति)-वाला, जिसमें सब खड्गों की आकृति दिखलाई पड़ती है, तीक्ष्णधार, खर स्वरवाला काञ्जिकवज्र (९६) होता है। यह यत्न से ही प्राप्त होता है। इसको प्राप्त करने पर उसे देवता भी नहीं जीत सकते॥ २०१-२०२॥

जिसकी भूमि कृष्णवर्णवाली और अङ्गरहित हो, जिसकी धार तीक्ष्ण और दृढ़ हो, जो घोर आघात को भी सहन कर सकता हो, रक्त स्पर्शमात्र से ही जो भीतर प्रविष्ट हो जाता हो, शाण और अतिघर्षण से जिसमें अग्नि निकलती हो, उसे महिषवज्र (९७) कहते हैं। यह दुर्लभ नहीं है। सर्वत्र मिल जाता है॥ २०३-२०४॥

जिसकी भूमि निर्मल हो, जिसमें प्रतिबिम्ब (परछाई) दिखलाई दे, तीक्ष्णधार, तीक्ष्णस्वर, स्वच्छ अङ्गवाला स्वच्छवज्र (९८) कहलाता है॥ २०५॥

जब इसी में रेखा हो तो इसे ऋतुवज्र (९९) कहते हैं। इसमें ही जब तिरछी रेखा हो तो उसे वक्रवज्र (१००) नाम से पुकारते हैं॥ २०६॥

यह खड्गों के तीन भेद (उत्तम, मध्यम, अधम) सभी कह दिये गये हैं। मैंने (ग्रन्थकार) सभी के हित की कामना से प्रयत्नपूर्वक स्पष्ट लिख दिया है॥ २०७॥

लोहप्रदीप में कहे लक्षणों से अतिरिक्त यदि किसी ने खड्गादि के लक्षण विशेष बतलायें हों तो मैं उनका अनुचर बनना स्वीकार करता हूँ। यह मेरी प्रतिज्ञा है।॥ २०८-२०९॥

दो अङ्गों का मेल जिस खड्ग में हो उसे मिश्राङ्गवज्र कहे और सब अङ्गों के मेल को देखकर सर्वाङ्ग (सर्वगुणोपेत) खड्ग होता है। ऐसा निर्देश करे॥ २१०॥

**अब खड्गों के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—**नील के पौधे और मटर के पुष्प

तत्र चेन्निन्दितान्यङ्गान्यरिष्टानि बहून्यपि। दृश्यन्ते बहुदोषाणि तथापि गुणवत्तरम् ॥ २१२ ॥
या कालकाम्बुदमसीरसकालसर्पशङ्कान्धकारकचभारसमाविभाति ।
भूमिश्च या भ्रमरबन्धुसमावभासा खड्गस्य कृष्णमिति रूपमिदं वदन्ति ॥ २१३ ॥
अत्र नेत्राणि सम्पत्यै अरिष्टान्यशुभानि च। साधारणमिदं रूपं प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥ २१४ ॥
या प्रावृषेण्यनवभेकसमानवर्णा गोमेदरत्नसदृशापि च यस्य भूमिः।
खड्गस्य पिङ्गमिति रूपमिदं वदन्ति भर्तुर्यशोबलधनक्षय कारणाय ॥ २१५ ॥
या मन्दधूम सदृशा च शिरीषपुष्पतुल्या विभाति मलिनापि च खड्गभूमिः।
नागार्जुनो वदति धूम्रमिदं हि रूपं भर्तुयशोबलधनावलिवर्धनाय ॥ २१६ ॥
द्विरूपं मिश्रितं कृत्वा सङ्करं प्रवदेद् बुधः। त्रिभी रूपैः समेतन्तु खड्गं त्रिपुरसंज्ञितम्।
रूपैश्चतुर्भिः संयुक्तं चतुरं खड्गमुत्तमम् ॥ २१७ ॥
जातिश्चतुर्विधा प्रोक्ता खड्गानां या पुरा मया। सम्प्रत्यपि प्रयत्नेन तासां लक्षणमुच्यते ॥ २१८ ॥

**ब्राह्मणखड्गजातिः—**

शुद्धाङ्गः शुद्धवर्णश्च सुनेत्रसुस्वरश्च यः। मृदुस्पर्श सुसन्धेयस्तीक्ष्णधारो महागुणः ॥ २१९ ॥

---

के समान छवि, गाजर के समान आभा, चन्द्रनीलमणि और काचमणि के सदृश चमकनेवाला, जिसकी भूमि मरकतमणि के सदृश हो, ऐसे खड्ग के स्वरूप को नीलरूप कहते हैं ॥ २११ ॥

इस खड्ग के भी बहुत निन्दित अङ्ग, अरिष्ट और बहुत-से अन्य दोष कहे हैं तब भी यह खड्ग अपेक्षाकृत् अन्य खड्गों से श्रेष्ठ है ॥ २१२ ॥

जो तलवार काले वर्णवाली, बरसनेवाले मेघ के सदृश, काली स्याही के समान, काले सर्प जैसी, अन्धकार या काले बालों जैसे स्वरूपवाली, भारी हो, जिसकी भूमि भ्रमर सदृश हो, ऐसे खड्ग को कृष्णरूपवाला कहते हैं ॥ २१३ ॥

इसमें भी नेत्रादि एवं अरिष्टादि अशुभलक्षण होने से इस खड्ग को साधारण (न अधिक अच्छा न बुरा) नागार्जुन मुनि ने कहा है ॥ २१४ ॥

जो खड्ग वर्षाऋतु के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए मण्डूक (पीले वर्णवाला) के समान वर्णवाला हो, जिसकी भूमि गोमेद मणि के सदृश हो, ऐसे खड्ग को पिङ्गरूप (पीले वर्णवाला) कहते हैं। यह धारण करनेवाले के बल, धन और कीर्ति का नाशक है ॥ २१५ ॥

जो हल्के धूयें के समान, शिरीष (सिरस) के फूल-समान वर्णवाली जिसकी भूमि इसी वर्णवाली हो, मलिन भी हो, नागार्जुन मुनि ने इस खड्ग को धूम्रवर्णवाला खड्ग कहा है। यह धारण करनेवाले का यश, बल और धन का वर्धक है ॥ २१६ ॥

जब खड्गों में दो रूप हों, तब उसे मतिमान सङ्कर खड्ग जाने, इसी प्रकार तीन वर्णों से युक्त को त्रिपुर और चारों वर्णों से युक्त खड्ग चतुरखड्ग होता है, यह उत्तम है ॥ २१७ ॥

जो चार प्रकार की खड्गों की जाति मैंने पहले कही है, अब मैं उनके लक्षणों को कहता हूँ ॥ २१८ ॥

**( १ ) ब्राह्मण जातिवाला खड्ग**—शुद्ध अङ्ग, शुद्ध वर्ण, अच्छे नेत्र, अच्छी ध्वनिवाला,

खड्गं ब्राह्मणजातिं तं प्राह नागार्जुनो मुनिः। अस्य क्षते भवेच्छोथो घोरः सर्वाङ्गगोचरः॥ २२०॥
मूर्च्छा पिपासा दाहश्च ज्वरो मृत्युश्च जायते। अघृष्टं त्रिफलाकल्कमर्द्धरात्रिन्दिवोषितम्॥ २२१॥
मलिनत्वं न सन्धत्ते निर्मलं कुरुते परम्। तरुणादित्यकिरणस्पर्शादेव तृणे स्थितः॥ २२२॥
दहेत् सर्वं न तु करं पुरुषस्य हि धारिणः। गायत्र्युच्चारणमात्रेण खरतां व्रजति स्फुटम्॥ २२३॥
एष खड्गवरः सर्वमरिष्टं नाशयेद् ध्रुवम्। अस्य प्रसादात् पुरुषस्त्रिलोकमपि साधयेत्॥ २२४॥
तस्मादेव मनुष्याणां सुलभो न हि भूतले। दृश्यन्ते प्रायशः स्वर्गे कुशद्वीपे हिमालये॥ २२५॥
इति ब्राह्मणखड्गजातिः।

**क्षत्रियजातिखड्गः—**

धूम्रवर्णं महासारं तीक्ष्णधारं खरस्वरम्। सर्वाघातसहं सर्वनेत्रवर्णस्वराकरम्॥ २२६॥
खड्गक्षत्रियजातिं तं जानीयात्खड्गकोविदः। अस्य क्षते भवेद्दाहस्तृषानाहो ज्वरो भ्रमः॥ २२७॥
मृत्युश्च जायते शाणे वमेद्वह्निकणान् बहून्। संस्कारे चाप्यसंस्कारे नैर्मल्यं तस्य लक्ष्यते॥ २२८॥
शाणेऽप्यशाणे खरतामूर्ध्नि (युद्धे) चात्यन्त तीक्ष्णता। रक्तस्पर्शनमात्रेण विशेदन्तरमन्तरम्॥ २२९॥
अयं खड्गवरः पूज्यो मनुष्यैरपि लभ्यते॥ २३०॥

**वैश्यजातिः—**

नीलवर्णः कृष्णवर्णः संस्कारे निर्मलो भवेत्। शाणेन खरता चास्य घाततुल्यं निकृन्तति॥ २३१॥

---

छूने में मृदु (कोमल), चलाने में उत्तम, तीक्ष्ण धार, उत्तम गुणोंवाला॥ २१९॥ खड्ग नागार्जुन मुनि ने ब्राह्मणजातिवाला कहा है। इसके द्वारा आहत होने पर सभी अङ्गों में अत्यन्त शोथ (सूजन) होता है। मूर्च्छा, प्यास, ज्वर होकर मृत्यु भी हो जाती है॥ २२०॥ बिना घिसे (पीसे) हुए त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला) के कल्क में आधी रात्रि और पूरे दिन रखने से भी इस पर मैल (जङ्ग) नहीं लगता अपितु और चमकता है। इसे तिनके पर रखने से सूर्य की किरणों के स्पर्शमात्र से ही जला देता है, परन्तु धारण करनेवाले पुरुष के हाथ को नहीं जलाता। यह गायत्रीमन्त्र के उच्चारणमात्र से ही पर्याप्त कठोर हो जाता है। यह श्रेष्ठ खड्ग है, सभी सङ्कटों का निश्चितरूप से निवारण करता है। इसकी कृपा से मनुष्य तीनों लोकों को भी विजय कर सकता है॥ २२१-२२४॥ इसीलिये यह पृथ्वी पर मनुष्यों को सुलभ नहीं है। यह स्वर्ग (त्रिविष्टप-तिब्बत) कुशद्वीप और हिमालयस्थ देशों में ही देखा जाता है॥ २२५॥

**(२) क्षत्रिय जातिवाला खड्ग**—धूम्रवर्णवाला, विस्तृत, तेजधार, खर स्वर, सभी आघातों को सहनेवाला, नेत्र, वर्ण और स्वरादि सभी सुलक्षणों से युक्त खड्ग को खड्गज्ञाता क्षत्रियजाति का खड्ग कहते हैं॥ २२६॥ इसके घाव में जलन होती है। तृषा, आनाह (अफारा), ज्वर, भ्रम, मूर्च्छा या प्रलाप होता है॥ २२७॥ और मृत्यु भी हो जाती है। इसे शाण पर चढ़ाने से अग्नि की चिनगारियाँ बहुत निकलती हैं। संस्कार (पानी चढ़ाना) या बिना संस्कार के भी यह शुद्ध (मलरहित) ही रहता है॥ २२८॥

यह शाण पर चढ़ाया हुआ या बिना चढ़ाया हुआ भी सदैव तीक्ष्ण रहता है। रक्तस्पर्श (हल्के आघात) मात्र से ही अन्दर प्रविष्ट हो जाता है। यह श्रेष्ठ खड्ग मनुष्यों को भी प्राप्त है॥ २२९-२३०॥

**(३) वैश्यजातिवाला खड्ग**—नीले और काले वर्णवाला, संस्कार द्वारा निर्मल होनेवाला,

**वैश्यजातिरयं खड्गः क्षते त्वङ्मात्रदर्शनम्। नात्युत्कृष्टो नातिहीनः सर्वत्रैवोपलभ्यते॥ २३२॥**

**शूद्रजातिः—**

**सजलाम्भोदसङ्काशः स्थूलधारो मृदुस्वरः। संस्कारे चैव मलिनः शाणे चापि खरेतरः॥ २३३॥**
**शूद्रजातिरयं खड्गः क्षते नाल्पापि वेदना। दूरादेषोऽधमस्त्याज्यो यदीच्छेद् हितमात्मनः॥ २३४॥**
**प्रायशः सर्वलोकेषु स्वयमेवोपदृश्यते। द्वयोर्लक्षणमालोक्य जारजं खड्गमादिशेत्॥ २३५॥**
**त्रयाणां लक्षणेनैव त्रिजातिं खड्गमादिशेत्। चतुर्णां लक्षणेनैव जातिसङ्करमुच्यते॥ २३६॥**

**अथ त्रिंशन्नेत्राणां लक्षणानि—**

**अङ्गं स्यात् सर्वतो वापि नेत्रमेकत्रसंस्थितम्। अतः परं तु नेत्राणां लक्षणं संप्रवक्ष्यते॥ २३७॥**
**नेत्रेणैकेन हस्तेन निन्दितोऽपि प्रशस्यते। यथा जातिविहीनोऽपि गुणवान् पूज्यते नरः॥ २३८॥**
**खड्गः सदङ्गो न च नेत्रहीनो न पूज्यते नाम्बुकरः स एव।**
**यथा मनुष्यः खलु सुन्दराङ्गो न कर्मयोग्यो भुवि नेत्रहीनः॥ २३९॥**
**चक्रपद्मे गदाशंखौ भयवर्धन्नवाङ्कुशः। छत्रं पताका वीणा च मत्स्यन्तु शिवलिङ्गकः॥ २४०॥**
**ध्वजार्धचन्द्रकलसाः शूलं शार्दूलनेत्रकम्। सिंहसिंहासनञ्चैव गजहंसमयूरकाः॥ २४१॥**
**जिह्वादन्ताश्च खड्गश्च मनुष्यश्चामरस्तथा। शैलश्चैव तथा पुष्पमाला सर्षप एव च॥ २४२॥**

---

शाण पर चढ़ाने से तीक्ष्ण होनेवाला, आघात के समान ही काटनेवाला खड्ग वैश्यजाति का होता है। इसके द्वारा आहत होने पर त्वक्-(चमड़ी)-मात्र का दर्शन होता है। यह न बहुत श्रेष्ठ है और न बहुत निकृष्ट। यह सर्वत्र प्राप्त है॥ २३१-२३२॥

**(४) शूद्र जातिवाला खड्ग**—बरसनेवाले मेघ के सदृश वर्णवाला, मोटी धार, मृदु (हल्का) स्वर, संस्कार होने पर भी मलिन रहनेवाला, शाण पर चढ़ाने से भी कुण्ठित रहनेवाला शूद्रजाति का खड्ग होता है। इससे आहत होने पर थोड़ी-सी भी पीड़ा नहीं होती। अपना हित चाहनेवाले को इसका परित्याग कर देना चाहिये॥ २३३-२३४॥ यह सब स्थानों में सहज ही प्राप्त हो जाता है। दो लक्षणों से युक्त खड्ग को जारज, तीन लक्षणोंवाले को त्रिजाति और चार लक्षणों से युक्त खड्ग को सङ्कर कहते हैं॥ २३५-२३६॥

**तीस नेत्रों का प्रारम्भ किया जाता है**—अङ्ग तो समष्टिरूप से सर्वत्र लक्षित होता है, परन्तु नेत्र (खड्ग पर प्रशस्त चिह्न) एक स्थान पर ही होता है। इससे आगे नेत्रों के लक्षण कहते हैं॥ २३७॥ एकहस्त (खड्ग में एक हाथ दूर होनेवाले) नेत्र से निन्दित खड्ग भी प्रशस्त होता है। जैसे उत्तम कुल आदि में उत्पन्न न होने पर भी गुणवान् व्यक्ति पूजित होता है॥ २३८॥

अच्छे अङ्गादि से युक्त खड्ग भी बिना नेत्र के प्रशंसनीय नहीं है, यह कार्य योग्य नहीं होता, जैसे सुन्दर अङ्गोंवाला मनुष्य भी नेत्र के बिना काम करने में असमर्थ रहता है॥ २३९॥

चक्र, पद्म, गदा, शङ्ख, भयदायक नवीन अङ्कुश, छत्र, पताका, वीणा, मत्स्य, शिवलिङ्ग, ध्वजा, अर्धचन्द्र, कलस, शूल, शार्दूल, सिंह, सिंहासन, गज, हंस, मयूर, जिह्वा, दन्त, खड्ग (गेंडे का सींग) मनुष्य, चामर, शैल, पुष्प, माला और सर्षप—ये खड्ग के नेत्र कहे हैं। (पहले भी इनका वर्णन किया जा चुका है। यहाँ यह वर्णन अप्रासंगिक है, अथवा अन्य पुस्तक का प्रकरण उद्धृत किया गया है)॥ २४०-२४२॥

**चक्राकारं यदा नेत्रं खड्गस्याङ्गे प्रदृश्यते। तं चक्रनेत्रं जानीयात् भर्तुः सर्वार्थसाधनम्॥ २४३॥**
**अनेनैकेन खड्गेन कृत्स्नां साधयते महीम्। प्रफुल्लपद्मसङ्काशं नेत्रं पद्मदलोपमम्॥ २४४॥**
**यदि वा दृश्यते खड्गे पद्मनेत्रं समादिशेत्। अयं खड्गवरो यत्र तत्रैव कमलालया॥ २४५॥**
**ऊर्ध्वा स्थूला यदा रेखा गदाकारा प्रतीयते। गदानेत्रमिदं विद्धि सर्वशत्रुनिषूदनम्॥ २४६॥**
**शङ्खाकारं यदा नेत्रं खड्गमध्येऽभिदृश्यते। शङ्खनेत्रमिदं सर्वं देवानामपि दुर्लभम्॥ २४७॥**
**डमरुप्रतिमं नेत्रं यस्य भूमौ प्रतीयते। सर्वार्थसाधकं खड्गं तं विद्याद् विजयप्रदम्॥ २४८॥**
**धनुः स्वरूपं यन्नेत्रं धनुर्नेत्रमुशन्ति तम्। तस्य स्पर्शनमात्रेण मन्दोऽपि प्रमुखायते॥ २४९॥**
**अयं निशीथे विजने खड्गो झनझनायते। यन्नेत्रमङ्कुशाकारं तं विद्याद् गुणवत्तरम्॥ २५०॥**
**खड्गमङ्कुशनेत्राख्यं भर्तुः सर्वार्थसाधकम्। अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं कृत्याग्रहनिवारणम्॥ २५१॥**
**छत्राकारं यदा नेत्रं छत्रनेत्रं वदन्ति तम्। अस्य प्रभावात् क्षीणोऽपि सार्वभौमो भवेन्नृपः॥ २५२॥**
**दीनोऽपि च सुखी भूयात् सुखी भूयान्महेश्वरः। महेश्वरोऽपि सचिवः सचिवो मण्डलेश्वरः।**
**मण्डलेशश्चक्रवर्त्ति भवेदत्र न संशयः॥ २५३॥**

---

जब चक्र के आकार का नेत्र अङ्ग में दिखलाई दे तो इसे चक्रनेत्र (१) कहते हैं। यह धारण करनेवाले की सभी कामनाओं को पूर्ण करता है॥ २४३॥ इस अकेले खड्ग से समस्त पृथ्वी को वश में किया जा सकता है।

खिले हुए कमल के सदृश अथवा कमल की पङ्खुड़ी के समान पद्मनेत्र (२) होता है। इस गुण से युक्त खड्ग जिसके पास होता है, वहीं लक्ष्मी निवास करती है। (लक्ष्मी का निवास भी कमल में होता है)॥ २४४-२४५॥

जिस खड्ग में गदा की आकृति-जैसी ऊँची और स्थला (स्थूल) रेखा प्रतीत हो, उसे गदानेत्र (३) जानना चाहिये। यह खड्ग सब शत्रुओं का संहारक होता है॥ २४६॥

जब खड्ग के मध्य में शङ्ख के आकारवाला नेत्र दीखे, तो इसे शङ्खनेत्र-(४)-वाला खड्ग कहते हैं। यह देवों को भी दुर्लभ है॥ २४७॥

जिसकी भूमि पर डमरु-सदृश नेत्र (५) प्रतीत हो, उस खड्ग को सब कार्यों का साधक और विजयप्रद जानना चाहिये॥ २४८॥

धनुष के समान नेत्रवाला धनुनेत्र (६) होता है। इसके स्पर्शमात्र (हाथ में लेते ही) मन्दपुरुष भी शूरवीर हो जाता है॥ २४९॥ यह खड्ग रात्रि में और एकान्त में (झन्-झन) की ध्वनि करता है।

जो नेत्र अङ्कुश की आकृतिवाला हो उसे गुणवान् जाने। इससे युक्त खड्ग को अङ्कुशनेत्र (७) कहते हैं। यह धारण करनेवाले की सब मनः कामनाओं को पूरी करता है। दारिद्र्य, पाप, राक्षस, (रोग-शोक), कृत्या (दूसरे द्वारा किया गया गुप्त प्रयोग), ग्रह आदि सभी सङ्कटों का निवारण करता है॥ २५०-२५१॥

छत्राकार नेत्रवाले खड्ग को छत्रनेत्र (८) कहते हैं। इसके प्रभाव से दुर्बल भी सार्वभौम राजा हो जाता है॥ २५२॥

दीन व्यक्ति भी सुखी हो जाता है, सुखी व्यक्ति महेश्वर हो जाता है महेश्वर, सचिव, सचिव

पताकाकृतिनेत्रं चेत् सर्वसम्पत्तिकारकम्। पताकानेत्रमाहुस्तं संग्रामेविजयप्रदम्॥ २५४॥
नेत्रं वीणाकृतिर्यदा वीणानेत्रमुशन्ति तम्। निशीथे विजने खड्गो वीणावत् स्वनमावहेत्।
अस्य प्रभावात् सर्वेऽवशापि वश्या भवन्ति हि॥ २५५॥
मत्स्याकृतिर्यदानेत्रं मत्स्यनेत्रमिदं विदुः। अस्य प्रभावात् क्षितिपः कृत्स्नां साधयेद् महीम्॥ २५६॥
शिवलिङ्गसमं नेत्रं लिङ्गनेत्रमिदं विदुः। भर्त्तुः सर्वार्थसंसिद्ध्यै शत्रूणां नाशनाय च।
वामपार्श्वे तु यात्रायां धर्त्तव्योऽयं तथा रणे॥ २५७॥
(अत्र ध्वजार्द्धचन्द्रकलसानां लक्षणानि पतितानि)।
शूलाकृति यदा नेत्रं शूलनेत्रं वदन्ति तम्। सर्वार्थसाधकः सर्वारिष्टानिष्टप्रणाशनः॥ २५८॥
शार्दूलनेत्रं तं विद्यात् शार्दूलाकृतिनेत्रतः। शत्रुश्रेणी विनाशाय संग्रामे विजयाय च॥ २५९॥
सिंहाकृतिर्यदा नेत्रं सिंहनेत्रमिमं विदुः। अस्य प्रभावात्क्षीणोऽपि कृत्स्नां साधयते महीम्॥ २६०॥
तत् सिंहासननेत्रं स्यान्नेत्रे सिंहासनोपमे। अस्य प्रभावात् क्षितिपः कृत्स्नां साधयते महीम्॥ २६१॥
गजाकृतिर्यदा नेत्रं गजनेत्रं वदन्ति तम्। अस्य प्रभावात् क्षीणोऽपि लभते राजसम्पदम्॥ २६२॥

---

मण्डलेश्वर (अनेक देशों का राजा) और मण्डलेश्वर चक्रवर्ति=सारे संसार का सम्राट् हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ २५३॥

पताका की आकृति सदृश खड्ग को पताका नेत्र (९) कहते हैं, यह सब धनैश्वर्यों को देनेवाला और संग्राम में विजय करानेवाला है॥ २५४॥

वीणा की आकृति सदृश नेत्रवाला खड्ग वीणा नेत्र (१०) कहलाता है। रात्रि और एकान्त में इस खड्ग से वीणा के समान स्वर निकलता है। इसके प्रभाव से वश में न आनेवाले भी सभी वश में आ जाते हैं॥ २५५॥

मत्स्य (मछली) की आकृति से युक्त नेत्रवाले खड्ग को मत्स्यनेत्र (११) कहते हैं। इसके प्रभाव से राजा सारी पृथ्वी को वश में कर लेता है॥ २५६॥

शिवलिङ्ग के समान नेत्रवाले खड्ग को लिङ्गनेत्र (१२) कहते हैं। यह खड्ग स्वामी के सब कार्यों का साधक और शत्रुओं का संहारक है। इसे यात्रा एवं रण (युद्धक्षेत्र) में बाईं ओर धारण करना चाहिये॥ २५७॥

[इस प्रकरण में ध्वज (१३) अर्धचन्द्र (१४) और कलस (१५) के लक्षण नहीं हैं।]

शूल (भाला) के सदृश आकृतिवाले को शूलनेत्र (१६) और इससे युक्त खड्ग शूलनेत्र खड्ग कहलाता है। यह सब कामों का साधक और सब सङ्कटों का नाशक है॥ २५८॥

शार्दूल (चीता) की आकृतिवाले खड्ग को शार्दूलनेत्र (१७) जानना चाहिये। यह शत्रु के समूह का नाशक और संग्राम में विजय दिलानेवाला है॥ २५९॥

सिंह की आकृतिवाला खड्ग सिंहनेत्र (१८) होता है। इसके प्रभाव से राजा समस्त पृथ्वी को अपने वश में कर लेता है॥ २६०॥

सिंहासन के सदृश नेत्रवाला सिंहासननेत्र (१९) कहलाता है। इसके प्रभाव से राजा समस्त पृथ्वी को वश में कर लेता है॥ २६१॥

गज (हाथी) की आकृतिवाला खड्ग गजनेत्र (२०) होता है। इसके प्रभाव से दुर्बल भी

**नेत्रं हंसाकृतिर्यदा हंसनेत्रं वदन्ति तम्। अस्य प्रभावात् भूपालो यशः प्राप्नोत्यनुत्तमम्॥ २६३॥**
**मयूराकृति नेत्रे द्वे तन्नेत्रमिति निर्दिशेत्। अस्य प्रभावान् मनुजः सर्पदर्पान् निषूदयेत्॥ २६४॥**
**जिह्वाकारं यदा नेत्रं जिह्वानेत्रं वदन्ति च। संग्रामखर्परेष्वयं पिबेद् वैरिशिरो रजः॥ २६५॥**
**दन्ताकारं यदा नेत्रं दन्तनेत्रं वदन्ति तम्। अयं रिपुगणं मूर्द्धनि चर्वयत्यतिभैरवम्॥ २६६॥**
**खड्गाकारं यदा नेत्रं खडगनेत्रं वदन्ति तम्। अस्य प्रभावात् मनुजस्त्रिलोकीं वशयेदपि॥ २६७॥**
**मनुष्यपुत्रिकाकारा पुत्रिका नेत्रमुच्यते। अयं सशैलां सद्वीपां कृत्स्ना साधयते क्षितीम्॥ २६८॥**
**न चेयं पुत्रिका किन्तु जयलक्ष्मीरिह स्वयम्। तस्मान्नायं मनुष्यानामल्पभाग्येन लभ्यते॥ २६९॥**
**चामराकृति नेत्रत्वात् तन्नेत्रमिति निर्दिशेत्। अस्य प्रभावात् जायन्ते चामरोद्धृतः सम्पदः॥ २७०॥**
**एकानेकशिखे शैलनेत्रे तन्नेत्रसंज्ञकम्। अपि राष्ट्रमये युद्धे विषमे वैरिसङ्कटे।**
**स्थिरी करोति धरणीं धरणीं पर्वतो यथा॥ २७१॥**
**पुष्पमालां समं नेत्रं पुष्पनेत्रं वदन्ति तम्। अस्य प्रभावात् तुष्यन्ति ग्रहाः सर्वाश्च देवताः॥ २७२॥**

---

राजसम्पदा को प्राप्त कर लेता है॥ २६२॥

जब हंस की आकृतिवाला नेत्र हो तो उसे हंसनेत्र (२१) कहते हैं। इसके प्रभाव से राजा उत्तम यश की प्राप्ति करता है॥ २६३॥

मयूर (मोर) की आकृति के दो नेत्र होने पर खड्ग मयूरनेत्र (२२) कहलाता है। इसके प्रभाव से व्यक्ति सभी दर्प-(घमण्ड)-वालों का संहार कर सकता है॥ २६४॥

जिह्वा की आकृतिवाला खड्ग जिह्वानेत्र (२३) कहलाता है। इस चिह्न से युक्त खड्ग संग्रामरूपी कपालों में वैरि के शिर से निकला हुआ रक्तपान करता है॥ २६५॥

दन्त की आकृतिवाला खड्ग दन्तनेत्र (२४) कहलाता है, इस चिह्न से युक्त खड्ग का प्रभाव बड़ा भयानक होता है। यह शत्रु के शिर को चबा डालता है (भयानक आघात करता है)॥ २६६॥

खड्ग की आकृति अथवा गेंडे के सींग की आकृतिवाला खड्गनेत्र (२५) कहलाता है। यह खड्ग पर्वत-द्वीपोंसहित सारी पृथ्वी को विजय करता है॥ २६७॥

मनुष्य की आँख की पुतली-जैसे चिह्नवाला खड्ग पुत्रिकानेत्र (२६) कहलाता है। यह खड्ग पर्वत-द्वीपों-सहित सारी पृथिवी को विजय करता है। यह पुत्रिका न होकर स्वयं ही विजयश्री होती है। इसलिये इस खड्ग को मन्दभाग्यवाला प्राप्त नहीं कर सकता॥ २६८-२६९॥

चँवर की आकृतियुक्त खड्ग चामरनेत्र (२७) होता है। इसके प्रभाव से चामर द्वारा अर्जित सम्पति की प्राप्ति (राज्यप्राप्ति) होती है॥ २७०॥

एक या अनेक (बहुत) शिखाओं-(चोटियों)-वाले पर्वतचिह्न जिस खड्ग में दीखें उसे शैलनेत्र (२८) कहते हैं। यह खड्ग राष्ट्र में भय (आन्तरिक), विषम युद्ध में शत्रु द्वारा आपत्ति होने पर स्वराज्य को स्थिर रखता है, जैसे पृथ्वी को पर्वत स्थिर (सन्तुलित) रखते हैं॥ २७१॥

पुष्पमाला की आकृति से युक्त पुष्पनेत्र (२९) होता है। इसके प्रभाव से सभी ग्रह और देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं॥ २७२॥

**भुजङ्गमसमे नेत्रे सर्पनेत्रमिदं मतम्। अयं शत्रुगणं हन्ति यथा मर्त्यं भुजङ्गमः॥ २७३॥**
**सवर्णमसवर्णञ्च तत् सर्वं द्विविधं भवेत्। सवर्णं शान्तिसम्पत्त्यै रिपुनाशे तथा परम्॥ २७४॥**
**द्वयोरेकत्रपृष्ठे च तत् पुनर्द्विविधं भवेत्। एकलोकसुखं नेदं ददाति द्विविधं द्वयोः॥ २७५॥**
**मूलमध्याग्रसंस्थानात्तत् पुनर्द्विविधं भवेत्। अग्रे चाग्रफलं ज्ञेयं मध्ये मध्यफलं मतम्॥ २७६॥**
**मूले फलं जघन्यं स्यात् प्राह नागार्जुनो मुनिः। एकं द्वे त्रीणि नेत्राणि नात्र संख्याव्यतिक्रमः॥ २७७॥**
**एकं धर्मस्वर्गकामौ द्वे त्रीणि च त्रिवर्गकम्। तत्फलानि प्रयच्छन्ति प्राह नागार्जुनो मुनिः॥ २७८॥**
**द्विनेत्रमिति जानीयात् स्वसंज्ञां नेत्रयोर्द्वयोः। त्रिनेत्रं त्रिभिर्ज्ञेयं बहुनेत्रमतः परम्॥ २७९॥**
**यथोत्तरं गुणवहं खड्गमाहुरनुत्तमम्। दिङ्नेत्रमिति निर्दिष्टं नेत्राणां शुभदायिनाम्॥ २८०॥**
**इति खड्गपरीक्षायां नेत्राध्यायः पञ्चमः। यथानेत्रस्य संस्थानं तथारिष्टस्य लक्षयेत्।**
**नेत्रेषु स्थाननियमो नारिष्टे स्थाननिर्णयः। प्रशस्ताङ्गोऽपि यः खड्गोऽरिष्टेनैकेन निन्दितः॥ २८१॥**

**अथ त्रिंशदरिष्टानां लक्षणानि—**

**छिद्रकाकपदे रेखा भिन्नं भेकश्च मूषिका। विडालः शर्करानीला मशको भृङ्गसूचकः॥ २८२॥**

---

जिस खड्ग में काले सर्प के समान नेत्र दिखलाई दें, उसे सर्प नेत्र (३०) कहते हैं। यह सर्प के समान शत्रुओं का संहारक होता है॥ २७३॥

ये नेत्र सवर्ण (खड्ग के रूप-सदृश) और असवर्ण (भिन्नरूपवाले) दो प्रकार के होते हैं। सवर्ण नेत्र शान्ति और धन का हेतु है तथा असवर्ण शत्रु-नाशक है॥ २७४॥

जब ये नेत्र खड्ग के पृष्ठभाग पर दोनों ओर स्थित हों, तब ये द्विविध कहलाते हैं। ये द्विविध (दो लक्षणों से युक्त) केवल एक लोक का सुख नहीं देते अपितु दोनों (लोक-परलोक) में सुखदायक होते हैं॥ २७५॥

ये द्विविध नेत्र खड्ग के मूलभाग, मध्यभाग और अग्रभाग में हों तो अग्रभाग में होने से उत्तम फलदायक मध्य में, मध्यफलकारक और मूल में स्थित होने पर निकृष्टफल देनेवाले होते हैं। यह नागार्जुन मुनि ने कहा है॥ २७६॥

जब एक, दो या तीन नेत्र क्रमानुसार हों तो एक धर्म, दो स्वर्ग और काम तथा तीन त्रिवर्ग (धर्म-अर्थ-काम) का फल देते हैं। ऐसा नागार्जुन मुनि ने कहा है॥ २७७-२७८॥

दो नेत्रों से युक्त खड्ग द्विनेत्र, तीन से युक्त त्रिनेत्र और इनसे अधिक नेत्र होने पर बहुनेत्र कहलाता है॥ २७९॥

उत्तरोत्तर गुणों से युक्त खड्ग अद्वितीय होता है। इस अध्याय में शुभकारक नेत्रों का यहाँ दिग्दर्शन कराया गया है॥ २८०॥

(खड्ग परीक्षात्मक अध्याय में यह नेत्र नामक अध्याय समाप्त हुआ)।

जैसे नेत्र की स्थिति खड्ग पर होती है, ऐसे ही अरिष्ट (अशुभकारक चिह्न) भी होते हैं। नेत्रों के होने में स्थान-नियम (एक के पश्चात् समाङ्गुल पर होना प्रशस्त) कहा है, परन्तु अरिष्टों के लिए नियम नहीं है। प्रशस्त अङ्गवाला खड्ग भी एक अरिष्ट के होने से निन्दित हो जाता है॥ २८१॥

**अब तीस अरिष्टों के लक्षण कहते हैं**—छिद्र, काकपद, रेखा, भिन्न, मेंढक, मूषिका, विडाल,

विन्दुश्च कालिकादेवी कपोतः काकविग्रहः। खर्परशकली चाथ क्रोडारिष्टं तथा कुलम्॥ २८३॥
जालारिष्टं करालाख्यं कङ्कखर्जूरशृङ्गकम्। गोपुच्छारिष्टखानित्रे लाङ्गलारिष्टमेव च॥ २८४॥
छिद्रवद् दृश्यते खड्गे स्वभावेन च लक्ष्यते। छिद्रारिष्टमिदं विद्धि भर्तुवीर्यबलापहम्॥ २८५॥
यदाकाकपदाकारमरिष्टं दृश्यते क्वचिद्। अयं काकपदारिष्टः सर्वाभीष्टविनाशनः॥ २८६॥
रेखाकारं यदारिष्टमूर्ध्वं वा तिर्यगेव वा। रेखारिष्टमिदं विद्धि भर्त्तुवीर्यबलापहम्॥ २८७॥
भिन्नभ्रान्तिकरं पापं भिन्नारिष्टमिदं विदुः। भर्त्तुः कुलं यशो राष्ट्रं नाहत्वा न व्रजेत् स्वयम्॥ २८८॥
यदा भेकशिरोरूपमरिष्टं दृश्यते क्वचित्। भेकारिष्टमिदं नाम्ना संग्रामे भयदायकम्॥ २८९॥
अरिष्टे मूषिकाकारे मूषिकारिष्टमुच्यते। अयं खड्गाधमः कुर्यात् पत्युः पातालसंगमम्॥ २९०॥
विडालनयनाकारो विन्दुरेकोऽतिविस्तरः। विडालारिष्टमेतत् स्यात् भर्तुः सर्वार्थः नाशनम्॥ २९१॥
अरिष्टं शर्कराकारं यदा स्पर्शेन बुध्यते। शर्करारिष्टमेतत् स्यात् धनबुद्धिविनाशनम्॥ २९२॥
कालिकारिष्टमित्येतद् धीधृतिस्मृतिनाशनम्॥ २९८॥
एकत्र यदि न ह्येषः प्रयत्नेनापि संवृत्तः। दारी नाम महारिष्टं सर्वाभीष्टविनाशनम्।
अनेकगुणसम्पन्नः खड्गो लोकैर्न गृह्यते॥ २९९॥

---

शर्करा, नीला, मशक, भृङ्ग, सूची, बिन्दु, कालिका, दारी, कपोत, काकविग्रह, खर्पर, शकली, क्रोड़ा, कुल, जाल, कराल, कङ्क, खर्जूर, शृङ्ग, गोपुच्छ, कुद्दाल (खनित्र), लाङ्गल—ये तीस अरिष्ट होते हैं॥ २८२-२८४॥

शेष आकृति स्वाभाविक होने पर भी जिस खड्ग में छिद्र हो उस अरिष्ट (दोष-त्रुटि) को छिद्रारिष्ट कहते हैं। यह अपने स्वामी के बल और वीर्य का नाशक है॥ २८५॥

जब कव्वे के पैर की आकृतिवाला चिह्न कहीं पर भी दिखाई पड़ता है तो उसे काकपद अरिष्ट कहते हैं। यह सभी सिद्धियों का नाशक हैं॥ २८६॥

ऊँची या तिरछी रेखा के आकारवाला रेखा-अरिष्ट जानना चाहिये। यह स्वामी के बल-वीर्य का नाशक है॥ २८७॥

भिन्न (विविध) प्रकार की भ्रान्ति (सन्देह) को उत्पन्न करनेवाला भिन्न-अरिष्ट कहलाता है। यह स्वामी के कुल, यश और राष्ट्र की समाप्ति किये बिना नहीं जाता॥ २८८॥

जब मेंढक के शिर के रूपवाला अरिष्ट कहीं पर भी दिखलाई दे तो उसे भेकारिष्ट कहते हैं। यह संग्राम में भयदायक होता है॥ २८९॥

मूषिका (चूहिया) के आकारवाला अरिष्ट मूषिकारिष्ट होता है। यह अधम खड्ग अपने स्वामी को पाताल में पहुँचा देता है॥ २९०॥

विडाल (बिल्ला) के नयन के सदृश बड़ा बिन्दु विडाल-अरिष्ट होता है। यह स्वामी के सभी कार्यों की समाप्ति करनेवाला है॥ २९१॥ जब छूने से शर्करा (छोटे कङ्कर) के समान प्रतीत हो तो इसे शर्करारिष्ट कहते हैं। यह धन और बुद्धि का नाशक है॥ २९२॥

कालिकारिष्ट (कृष्णतिल-सदृश बिन्दु) बुद्धि, धैर्य, स्मरणशक्ति का नाश करनेवाला है॥ २९८॥ यदि यह एक स्थान पर इकट्ठा नहीं है तो प्रयत्न में बाधा नहीं करता। दारी (बिवाई के समान खड्ग में दरारें दिखाई देना) नामवाला अरिष्ट सभी कामनाओं का नाशक है। यह अनेक गुणों से सम्पन्न होने पर भी ग्रहण करने के अयोग्य है॥ २९९॥

**कपोतपक्ष प्रतिममरिष्टं चेत् तदाह्वयम्। भर्तुः कुलं यशो विद्यां बलं बुद्धिञ्च नाशयेत्॥ ३००॥**
**काकाकृतिर्यदारिष्टं काकारिष्टं तदोच्यते। अनेन भर्तुः संग्रामे भङ्ग एवोपजायते॥ ३०१॥**
**अरिष्टे खर्पराकारे खर्परारिष्टमुच्यते। भर्तुर्यशोबलं वीर्यं बुद्धिं प्रीतिञ्च नाशयेत्॥ ३०२॥**
**यदान्यल्लोह शकलं लग्नं स्यादिव लक्ष्यते। शकलीति स वै खड्गः सर्वाभीष्टनिषूदनः॥ ३०३॥**
**(क्रोडीकुशपत्रकयोर्लक्षणे पतिते)**
**यस्मिन् निम्नमिवाभाति मध्ये वा दृष्यते क्वचित्। जालारिष्टमिदं नाम भर्त्तुः कुलधनापहम्॥ ३०४॥**
**एकैकरेखा दीर्घाग्रा यदा पल्लविनी भवेत्। स्पर्शे वाथ करेणाथ करालारिष्टमुच्यते॥ ३०५॥**
**अयं हि क्षितिपालानां दृष्टियोग्यो भवेन्नहि। दर्शनादेव नश्यति यशो लक्ष्मीजयादयः॥ ३०६॥**
**अरिष्टे कङ्कपत्राभे कङ्कारिष्टं तदुच्यते। अस्य स्पर्शनमात्रेण नश्यत्यायुर्यशो बलम्॥ ३०७॥**
**खर्जूरवृक्षप्रतिमं यदारिष्टस्तु लक्ष्यते। खर्जूरारिष्टमेतत् स्याद् भर्त्तुः कुलधनापहम्॥ ३०८॥**
**गोशृङ्गाभमरिष्टं चेत् शृङ्गारिष्टं तदुच्यते। अनेन भर्त्तुर्नश्यन्ति लक्ष्मीबलकुलादयः॥ ३०९॥**
**गोपुच्छाकृतिश्चेत् खड्गे अरिष्टं संप्रतीक्ष्यते। पुच्छारिष्टमिदं नाम भर्त्तुः सर्वार्थनाशनम्॥ ३१०॥**

---

कपोत (कबूतर) के पङ्ख-सदृश अरिष्ट धारण करनेवाले का कुल, यश, विद्या, बल और बुद्धि का नाश करता है॥ ३००॥

कव्वे की आकृतिवाला अरिष्ट काकारिष्ट कहलाता है। इससे संग्राम में स्वामी का भङ्ग ही होता है॥ ३०१॥

खर्पर (ठीकरा) के सदृश खर्पर-अरिष्ट कहलाता है। यह स्वामी के यश, बल, वीर्य, बुद्धि और प्रीति का नाश करता है॥ ३०२॥

जब खड्ग में लोह का दूसरा टुकड़ा-सा लगा हुआ दिखलाई देता है तो वह खड्ग शकली अरिष्टवाला होता है, जो सभी मनोरथों को समाप्त करनेवाला होता है॥ ३०३॥

(इस प्रकरण में क्रोडी और कुशपत्रक अरिष्टों के लक्षणवाले श्लोक नहीं हैं)—जिस खड्ग में उसका धरातल कहीं-कहीं नीचा दिखाई पड़ता है अथवा मध्यभाग नीचा दिखाई देता है, उसे जालारिष्ट कहते हैं। यह स्वामी के कुल और धन की समाप्ति करनेवाला है॥ ३०४॥

जब एक-एक रेखा अगले भाग में स्थूल या हस्तादि से स्पर्श में पत्राकार अनुभव प्रतीत हो, तो इसे करालारिष्ट कहते हैं। यह खड्ग राजाओं को देखना भी नहीं चाहिये। इसके दर्शनमात्र से यश, धन और विजयादि समाप्त हो जाते हैं॥ ३०५-३०६॥

कङ्कपत्र (कंघी) के सदृश अरिष्ट होने पर उसे कङ्क-अरिष्ट कहते हैं। इसके स्पर्शमात्र से ही आयु, यश और बल नष्ट हो जाते हैं॥ ३०७॥

जब खजूर के वृक्ष-सदृश अरिष्ट दिखाई दे तो उसे खर्जूर-अरिष्ट कहते हैं। यह स्वामी के कुल और धन का अपहरण करनेवाला है॥ ३०८॥

गाय के सींग के सदृश शृङ्ग-अरिष्ट कहलाता है, इससे स्वामी की लक्ष्मी, बल और कुलादि नष्ट हो जाते हैं॥ ३०९॥

जब खड्ग में गाय की पूँछ के सदृश आकृतिवाला अरिष्ट दीखे तो उसे पुच्छ-अरिष्ट कहते हैं। यह स्वामी के सब कार्यों का नाशक है॥ ३१०॥

खनित्राभमरिष्टं चेत् खनित्रारिष्टमुच्यते। शूराणामपि संग्रामे भङ्गमेतत् प्रयच्छति॥ ३११॥
अरिष्टे लाङ्गलाकारे लाङ्गलारिष्टमुच्यते। अयं पापात् पापतरः प्रेक्षणीयो न भूभुजा।
अयमायुः श्रियं हन्ति विद्यां बलमशेषतः॥ ३१२॥
(बडिशारिष्टस्य लक्षणं पतितम्)
इत्यरिष्टानि प्रोक्तानि नाना तन्त्राद् प्रयत्नतः। विचार्यैतानि मतिमान् खड्गं कोशे निधापयेत्॥ ३१३॥
दिङ्मात्रमिदमुद्दिष्टमरिष्टानां हितात्मनाम्। अमङ्गलानां मन्दानां दर्शनञ्चाशुभावहम्॥ ३१४॥
अरिष्टमेकमेव स्याद् द्विररिष्टं शुभावहम्। अन्यान्यमशुभं हन्याद् विषस्य हि विषं यथा॥ ३१५॥
एकमारभ्य सप्तान्तमरिष्टं प्राह नान्यथा। यथोत्तरं द्विगुणितं फलमाहुर्मनीषिणः॥ ३१६॥

**अथ द्विविधाभूमिः —**

दिव्यभौमविभागेन भूमिर्या द्विविधा मता। दिव्दा दिवि समुद्भूता भौमा भूमिसमुद्भवा॥ ३१७॥
तल्लक्षणमशेषेण लिख्यते तन्निबोधत। देवदानवयोर्मध्ये खड्गसृष्टिरभूत् पुरा।
ते खड्गाः पुण्यदेशेषु केषु केषु प्रतिष्ठिताः॥ ३१८॥

---

खनित्र (कुद्दाल-खुरपा आदि) के सदृश अरिष्ट खनित्र-अरिष्ट कहा जाता है। यह संग्राम में शूरवीरों को भी पराजित करा देता है॥ ३११॥

लाङ्गल (हल या कलिहारी) के समान आकृतिवाला लाङ्गल-अरिष्ट होता है। यह अत्यन्त निकृष्ट है। इसे राजा को देखना भी नहीं चाहिये। यह आयु, यश, विद्या और बल का सम्पूर्णरूप से नाशक है॥ ३१२॥

(पूर्व निर्दिष्ट बडिश=मछली पकड़ने का काँटा, अरिष्ट का लक्षण नहीं दिया)—इन अरिष्टों को अनेक शास्त्रों से प्रयत्नपूर्वक इकट्ठा करके कहा है। बुद्धिमान् को चाहिये कि इनका विचार करके ही (शुभाशुभ लक्षण देखकर) खड्ग को कोश (म्यान) में रखे तथा शुभ लक्षणोंवाला खड्ग ही धारण करे॥ ३१३॥

अपने लिए हितकारी अरिष्टों का भी दिग्दर्शन कराया जाता है। अमाङ्गलिक और मन्द अरिष्टों का दर्शन भी शुभकारक नहीं है॥ ३१४॥

पूर्वोक्त अरिष्टों में एक ही अरिष्ट खड्ग में हो तो वह अशुभकारक है, यदि दो अरिष्ट हों तो वे शुभकारक हैं, क्योंकि एक के अशुभ प्रभाव को दूसरा समाप्त कर देता है जैसे कि विष का औषध विष होता है॥ ३१५॥

एक से लेकर ७ तक संख्या में अरिष्ट होना शुभकारक है। इससे अधिक नहीं।

मनीषी (खड्गशास्त्रवेत्ता) एक से अधिक अरिष्ट होने पर क्रमश दुगना, तीन गुणा आदि फल कहते हैं॥ ३१६॥

अब दो प्रकार की भूमि को कहते हैं—दिव्य और भौम के विभाग से दो प्रकार की भूमि खड्ग की होती है। दिव्य भूमि स्वयं ही पूर्व से रहती है और भौम को बनाया जाता है (खड्ग पर ओषधि प्रलेप या पानी चढ़ाना आदि से निर्माण किया जाता है)॥ ३१७॥

इसके सभी लक्षणों को यहाँ लिखा जाता है, इनको जानो।

पहले देवों और दानवों में खड्ग का सर्जन (निर्माण) हुआ। वे खड्ग कुछ पुण्य-स्थानों

**दिव्यलक्षणं यथा—**

**ये खड्गाः स्थूलधारा भृशमतिलघवो निर्मलाङ्गाः सुनेत्राः। ये रिष्टाश्चास्वरूपाः सुविमलतन-वश्चाप्यसंस्कारयोग्यात्। दुर्भेद्या दुर्घटाश्च ध्वनिगुणमुखो यत् क्षते दाहपाकौ ते दिव्याः कुर्वतेऽमी कुलधनविजयश्रीयशोवृद्धिमाशु॥ ३१९॥**

**अथ भौमलक्षणम्—बृहद्हारीते—**

**पूर्वं महेशेन विषाणि यानि भुक्तानि तेषां पतितास्तु बिन्दवः। यस्मिन् प्रदेशे स एव देशः कालायसामाकरतां जगाम॥ ३२०॥ पुरामृतं क्षीरसमुद्रमध्यादुत्पाद्य संगृह्य ययुः सुरेन्द्राः। तद् बिन्दवो यत्र निपेतुरेष शुद्धायसामाकरतां जगाम॥ ३२१॥**

**ये विषोत्था भृशं कालाः खराङ्गाः सम्भवन्ति हि। मूर्च्छादाहज्वरानाहः शोकहिक्का वमीकराः॥ ३२२॥**

**येऽमृतोत्था कर्व्वुराङ्गाः मन्दाङ्गाः सम्भवन्ति च। वलीपतितमालिन्यज्वरव्याधिविनाशनाः। यत्रेव पतितं यत् तु तत्तदाकरतां गताः॥ ३२३॥**

**तद्यथा**

**वाराणसीमगधसिंहलभूमिभागे नेपालभूमिषु तथाङ्गमहीप्रदेशे।**
**सौराष्ट्रिकेऽन्यतरधन्यमहीविभागे शुद्धायसां कृतिवराः प्रवदन्ति जन्म॥ ३२४॥**

---

में स्थापित किये गये॥ ३१८॥

जो खड्ग मोटी धारवाले, तीक्ष्ण, हल्के, निर्मल अङ्गोंवाले, सुनेत्र (शुभसूचक चिह्नादि), अरिष्टों से रहित, सुन्दर आकृतिवाले, बिना संस्कार (पानी चढ़ाना) आदि के ही सुन्दर रहनेवाले, दूसरे के शस्त्राघात से न टूटनेवाले, कठिनकर्मवाले, गुरु (गम्भीर) ध्वनिवाले जिनके द्वारा आहत होने पर दाह और पाक होता हो वे दिव्य होते हैं। ये सभी कुल, धन, विजय, श्री, और यश की बहुत शीघ्र ही वृद्धि करनेवाले होते हैं॥ ३१९॥

पुराकाल (क्षीरसागर मन्थन) में भगवान् शिव ने जिन विषों का पान किया, उनके कुछ बिन्दु जिस देश में गिरे वहीं पर लौहे की खानें बन गईं॥ ३२०॥

पुराकाल में क्षीर-समुद्र से देवता अमृत का मन्थन करके ले-जा रहे थे तब उसके बिन्दु जहाँ-जहाँ पड़े वहीं शुद्ध लोहे की खानों की उत्पत्ति हो गई॥ ३२१॥

जो खड्ग विष की उत्पत्ति (काले लोहे) से बने हुए होते हैं वे बहुत काले, खर अङ्गवाले होते हैं। इनके आघात में मूर्च्छा, दाह, ज्वर, अफारा, शोक, हिक्का (हिचकी) और वमन होती है॥ ३२२॥

जो अमृत से उत्पन्न (शुद्ध लोहे के बने हुए) हैं वे कबूतरी रङ्गवाले, हल्के होते हैं। ये चेहरे की झुर्रियाँ, खिन्नता, ज्वर और अनेक व्याधियों के नाशक हैं॥ ३२३॥

जहाँ (पूर्वोक्त विष और अमृत के बिन्दु) जो बिन्दु पड़ा वहीं वैसी ही खानें उत्पन्न हो गईं।

जैसे वाराणसी, मगध, सिंहलभूमि (लङ्का), नेपाल, अङ्गदेश, सौराष्ट्र और अन्य देशों की भूमियों में भी शुद्ध लोहे की खाने हैं॥ ३२४॥

वाराणसेयाः सुस्निग्धास्तीक्ष्णधारा सदाङ्गिनः। लघवः सुखसन्धेया ज्ञेयाश्चाभेद्यशालिनः॥ ३२५॥
मागधाः कर्कशाः स्थूलधारा गूढतरङ्गिणः। गुरवो दुःखसन्धेयाः खड्गा ज्ञेया विचक्षणैः॥ ३२६॥
नेपालदेशप्रभवा निरङ्गा निश्चलाश्च ये। ज्ञेयाः सदङ्गा मलिना लघवः स्थूलधारिणः॥ ३२७॥
कलिङ्गागुरवः स्वच्छा व्यक्ताङ्गास्तन्तुहेतवः। सौराष्ट्रा निर्मलाः स्निग्धाः सुव्यक्ताङ्गा भृशं खराः॥ ३२८॥
सिंहलद्वीपजातानां चतुर्धा भेदमुच्यते। केचित् सदङ्गा गुरवः कर्कशाः स्निग्धधारिणः।। ३२९॥
एषां रूपेण मिश्रेण ज्ञेया हि द्विजजातयः॥ ३३०॥
सामान्याद् द्विगुणञ्चौण्ड्रं कलिर्दशगुणस्ततः। कलेः शतगुणं भद्रं भद्राद् वज्रं सहस्त्रधा॥ ३३१॥
वज्रात् षष्टिगुणः पाण्डिर्निरविर्दशभिर्गुणैः। ततः कोटिसहस्त्रेण ह्ययस्कान्तः प्रशस्यते॥ ३३२॥

(इत्यादिकं रसायनोपयोगिकमेव न तु खड्गे दृष्टफलम्)

यदाह

एषां तु लौहजातीनां वज्रं खड्गाय युज्यते॥ ३३३॥

तथा च

ये खड्गास्तीक्ष्णधारा भृशमतिगुरवः षड्गुणाढ्याः सुभेद्याः। केचित् साङ्गा निरङ्गा कतिचन

---

वाराणसेया (वाराणसी में बननेवाले) खड्ग चिकने, तीक्ष्णधारवाले, अच्छे अङ्गोंवाले, हल्के, सुख से चलाने योग्य और न टूटनेवाले होते हैं॥ ३२५॥

मगधदेश के खड्ग, कर्कश (कठोर), मोटी धारवाले, गूढ अङ्गोंवाले, भारी, कठिनता से धारण करने योग्य बुद्धिमानों को जानने चाहियें॥ ३२६॥

नेपालदेश में होनेवाले खड्ग निरङ्ग, निश्चल, अच्छी आकृतिवाले, मलिन, लघु और स्थूलधारवाले होते हैं॥ ३२७॥

कलिङ्ग देश के खड्ग भारी, स्वच्छ, स्पष्ट आकृतिवाले, रेखाओंवाले या (चित्रकारीयुक्त) होते हैं। सौराष्ट्र के खड्ग निर्मल चिकने, स्पष्ट आकृतिवाले और बहुत कठोर होते हैं॥ ३२८॥

सिंहलद्वीप (लङ्का) में बने हुए खड्गों के चार भेद होते हैं—कुछ सुन्दर अङ्गोंवाले, भारी, कर्कश, चिकनी धारवाले और कुछ सुन्दर आकृतिवाले, हल्के या छोटे, चिकने, मोटी धारवाले होते हैं। इनके परस्पर मेल से ब्राह्मण, क्षत्रिय-वैश्यात्मक जातिवाले खड्ग जानने चाहियें॥ ३२९,३३०॥

सामान्य लोहे से दो गुणा चौण्ड्र, उससे दश गुणा कलि, कलि से सौ गुणा भद्र, भद्र से हज़ार गुणा वज्र, वज्र से साठ गुणा पाण्डि, पाण्डि से दश गुणा निरवि और उससे भी करोड़ों गुणा उत्तम अयस्कान्त लौह होता है॥ ३३१-३३२॥

(परन्तु इनकी रसायनकार्य=भस्मादि बनाने में ही उपयोगिता कही है। खड्ग-निर्माण में ऐसा फल नहीं देखा गया) जैसा कहा भी है—

इन लौह की जातियों में वज्रलौह खड्ग के लिए जितना उपयुक्त हैं, (इतना अधिक अन्य लौह गुणकारी नहीं है, यह अभिप्राय है)॥

जो खड्ग तीक्ष्णधारवाले, बहुत अधिक भारी, छह गुणों से युक्त, सुगमता से भेदने योग्य,

**समला निर्मलाः केचिदेव। ते भौमाः कुर्वतेऽमी धनविजयबलं षड्गुणा निर्गुणा वा, ते दुःखं स्तोकमुग्रं दधति बलकुलश्रीयशोनाशनास्ते॥ ३३४॥**

**अथाष्टधा ध्वनिः—**

**ध्वनिरष्टविधः प्रोक्तो यः पूर्वं सूत्रसंग्रहे। तेषामपि लिखाम्यत्र सगुणं लक्षणाष्टकम्॥ ३३५॥**

**तद्यथा**

**हंसकास्ये तथामेघः ढक्का काकश्च तन्त्रिका। गर्दभः प्रस्तरश्चैव ध्वनिरष्टविधः स्मृतः॥ ३३६॥**

**पूर्वे चत्वारः शुभदाः परे निन्दास्पदास्तथा। विचार्य खड्गमानञ्च कर्तव्यं खड्गकोविदैः॥ ३३७॥**

**घोरस्तार इति ख्यातो द्विविधः खड्गकोविदैः। घोरः स्यात्सुखसम्पत्त्यै तार उच्चाटने मतः॥ ३३८॥**

**यत्र हंसरवस्येव खड्गे नखहतध्वनिः। हंसध्वनिरयं खड्ग सकलार्थप्रसाधनः॥ ३३९॥**

**कांस्यशब्द इवाभाति यस्मिन्खड्गे हते ध्वनिः। कांस्यध्वनिरयं खड्गः प्राह नागार्जुनो मुनिः॥ ३४०॥**

**(अभ्रस्य लक्षणं पतितम्)**

**ढक्काशब्द इवाभाति यस्मिन्खड्गे हते ध्वनिः। ढक्का ध्वनिरयं खड्गः सर्वशत्रुनिषूदनः॥ ३४१॥**

**काकस्वर इवाभाति यस्मिन्खड्गे हते ध्वनिः। काकस्वरोऽयं खड्गः स्याच्छ्रीयशः कुलनाशनः॥ ३४२॥**

---

कुछ अङ्गोंवाले और कुछ निर्मल हों वे भौमखड्ग होते हैं। ये धन, विजय, बल आदि छह गुणों की वृद्धि करनेवाले और जो गुणरहित होते हैं वे धारण करने पर दुःखदायी बल, कुल, श्री, यश को समाप्त करनेवाले होते हैं॥ ३३४॥

पूर्व सूत्रों के संग्रहों में आठ प्रकार की जो ध्वनियाँ कही है, उनमें से मैं गुणसहित आठ लक्षणोंवाली ध्वनियों को यहाँ लिखता हूँ॥ ३३५॥

हंस, कांस्य, मेघ, ढक्का, (झाँझ) कव्वा, लघु ध्वनि, गर्दभ (गधा) और पत्थर के सदृश— ये आठ प्रकार की ध्वनियाँ कही हैं॥ ३३६॥

पहली चार शुभ हैं और अगली चार निन्दित हैं। खड्ग ज्ञान के जाननेवालों को खड्ग का मान (लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई) सोचकर निश्चित करना चाहिये॥ ३३७॥ घोर (मोटा) और तार (हल्का) ये दो भेद खड्ग के मानानुसार होते हैं। घोर सुखसम्पत्तिकारक और तार इनका नाशक है॥ ३३८॥

जिस खड्ग से नाखून (चुटकी) द्वारा बजाने पर हंस की ध्वनि के सदृश ध्वनि निकलती हो, उसे हंसध्वनि खड्ग कहते हैं। यह सभी कार्यों का साधक हैं॥ ३३९॥

जिस खड्ग के बजाने पर कांस्य (कांसी के बर्तन सदृश) ध्वनि निकलती हो उसे नागार्जुन मुनि ने कांस्यध्वनिवाला खड्ग कहा है॥ ३४०॥

[अभ्र-(विद्युत्)-ध्वनि का लक्षणात्मक सूत्र नहीं है]—जिस खड्ग से ढक्का (झाँझ) के सदृश ध्वनि निकलती हो, उसे ढक्का ध्वनिवाला खड्ग कहते हैं। यह सभी शत्रुओं का नाश करनेवाला है॥ ३४१॥

जिस खड्ग के बजाने से काक-(कव्वे के स्वर-जैसी)-ध्वनि निकलती हो, उसे काक-ध्वनिवाला खड्ग कहते हैं। यह श्री, यश और कुल का नाशक है॥ ३४२॥

तन्त्रीस्वरसमो यस्मिन् भवेत् खड्गे हते ध्वनिः । तन्त्रीध्वनिरयं खड्गः कुलश्रीधननाशनः ॥ ३४३ ॥
खरस्येव ध्वनिर्यस्मिन् खरध्वनिरयं मतः । श्रीयशोज्ञानविज्ञानजयतेजो विनाशनः ॥ ३४४ ॥
प्रस्तरस्येव यः खड्ग स निन्द्यः खड्ग लक्षणे ॥ ३४५ ॥
गभीरतारध्वनिता खड्गस्य शुभलक्षणम् । उत्तानमन्द्रध्वनिता खड्गस्याशुभलक्षणम् ॥ ३४६ ॥
अपाङ्गनेत्रहीनोऽपि खड्गः सुध्वनिरुत्तमः । अन्धः कुरूपो मनुजो यथा भुवि सुगायनः ॥ ३४७ ॥
सर्वलक्षणसम्पन्नः खड्गो यो ध्वनिवर्जितः । स निन्द्यः सुन्दराङ्गोऽपि यथा वाक्यविवर्जितः ॥ ३४८ ॥
नखेन वाथ दण्डेन तथा लौहशलाकया । लोष्ठेन शर्कराभिर्वा ध्वनिविज्ञानमुच्यते ॥ ३४९ ॥

**अथ द्विविधं मानम्—**

यन्मानं द्विविधं प्रोक्तं तस्य लक्षणमुच्यते । उत्तमाधमभेदेन भेदो हि द्विविधो मतः ॥ ३५० ॥
उत्तमं यद् विशालं स्याल्लघुमानं प्रकीर्नितम् । अधमं तच्च यत् खर्व्वं गुरुमानं प्रकीर्तितम् ॥ ३५१ ॥
तत् पुनस्त्रिविधं प्रोक्तमादिमध्यान्त भेदतः ॥ ३५२ ॥
यो मुष्टिं विंशतिसमायततीव्रधारो भर्त्तुर्भवेत् प्रसरतोऽपि षडङ्गुलोभिः ।
मानेन चाष्टपलिकः स हिं खड्गमध्ये नातिप्रकृष्टं न विकृष्टफलप्रदः स्यात् ॥ ३५३ ॥

---

तन्त्री (वीणा) के समान ध्वनि जिससे निकलती हो उस खड्ग को तन्त्रीध्वनि कहते हैं। यह कुल, श्री और धन का नाश करनेवाला है ॥ ३४३ ॥

जिस खड्ग को बजाने से गधे के समान ध्वनि निकलती हो, उसे खरध्वनि कहते हैं। यह श्री, यश, ज्ञान, विज्ञान, जय और तेज का नाश करनेवाला है ॥ ३४४ ॥

पत्थर के सदृश ध्वनिवाला खड्ग भी निन्दित है ॥ ३४५ ॥

गम्भीर और ऊँची (देर तक होनेवाली) ध्वनिवाला खड्ग शुभकारक है और सीधी (बिना गूँजवाला) तथा धीमी ध्वनि खड्ग का अशुभ लक्षण है ॥ ३४६ ॥

अङ्ग और नेत्ररहित खड्ग भी यदि सुन्दर ध्वनिवाला हो तो उत्तम होता हैं। जैसेकि लोक में अन्धा और कुरूप व्यक्ति भी सुन्दर गानेवाला हो तो वह अच्छा माना जाता है ॥ ३४७ ॥

सभी अच्छे लक्षणोंवाला होने पर भी ध्वनिरहित खड्ग निन्दनीय है, जैसेकि सुन्दर आकृतिवाला पुरुष मूक (गूँगा) या मीठा न बोलनेवाला अच्छा नहीं माना जाता ॥ ३४८ ॥

नख (चुटकी), दण्डा, लौहशलाका, ढेला या छोटी कङ्करी से खड्ग में ध्वनि की जाती है ॥ ३४९ ॥

**अब दो प्रकार के मान को कहते हैं**—मान दो प्रकार का कहा है उसका लक्षण कहते हैं, उत्तम, अधम भेद से दो भेद मान के होते हैं ॥ ३५० ॥

जो खड्ग विशाल एवं हल्का हो उसे उत्तम मानवाला और जो छोटा तथा भारी हो उसे अधम मानवाला खड्ग कहते हैं ॥ ३५१ ॥

आदि मध्य और अन्त के भेद से उसके तीन भेद होते हैं ॥ ३५२ ॥

जो बीसमुष्टि लम्बा, तीक्ष्ण धारवाला, धारण करनेवाले की छह अङ्गुलीमान-प्रसार-(चौड़ाई)-वाला आठ पल या अधिक भारवाला खड्ग हो, वह न शुभ और न अशुभ फल

**योो द्वादशाष्टनवमुष्टिभिरायतः स्यात्, मन्दो भवेत् प्रसरतोऽपि चतुर्थभागः।**
**तावत् पलैः परिमितस्तु ततोऽधिको वा, खड्गाधमो धनयशःकुलनाशनाय॥ ३५४॥**

**नागार्जुनोऽपि—**

**यावत्यो मुष्टयो दैर्घ्ये तदर्द्धाङ्गुलयो यदा। प्रसरे तच्चतुर्थांशमिति वै मानमुत्तमम्॥ ३५५॥**
**यावत्यो मुष्टयो दैर्घ्ये प्रसरे तत् त्रिभागिकः। पलैस्तदर्धैस्तुलितः स खड्गो मध्य उच्यते॥ ३५६॥**
**यावत्यो मुष्टयोदैर्घ्ये तुल्यांशः प्रसरे तु तत्। अधमः कीर्तितः खड्गस्तत्समो वाधिकः पलैः॥ ३५७॥**
**भौमानामिदमुद्दिष्टं दिव्यास्तु लघवो मताः॥ ३५८॥**

**भोजस्तु—**

**दीर्घता लघुता खरविस्तीर्णता तथा। दुर्भेद्यता सुघटता खड्गानां गुणसंग्रहः॥ ३५९॥**
**खर्व्वता गुरुता चैव मन्दता तनुता तथा। सुभेद्यता दुर्घटता खड्गानां दोषसंग्रहः॥ ३६०॥**
**(इति निखिलमुदारमुक्तमत्र बहुतन्त्रेषु निष्कृष्य खड्गयष्टे)**
**नृपतिरिति विचिन्त्य यो विधत्ते स चिरतरां श्रियमुच्छ्रितां लभते॥ ३६१॥**
**(इति श्रीभोजराजीये युक्तिकल्पतरौ खड्गपरीक्षा)**

---

देनेवाला होता है॥ ३५३॥

जो बारह, आठ या नौ मुष्टि लम्बा, इनका चतुर्थांश चौड़ा मन्द, इतने ही (१२-८-९) पल भारवाला या अधिक भारवाला खड्ग अधम होता है। यह धन, यश और कुल का नाश करता है॥ ३५४॥

**नागार्जुन ने भी कहा है**—जितनी मुष्टि लम्बाई हो, उतनी ही अंगुलियों के आधे भाग का चौथा भाग चौड़ाई उत्तम मान कहा है॥ ३५५॥

जितनी मुष्टि लम्बाई हो प्रस्तार (चौड़ाई) में उसका तीसरा भाग (अङ्गुलों में) उन (मुष्टियों) से पलों का भार आधा हो, उसे मध्यम खड्ग कहते हैं। जितनी मुष्टि लम्बाई हो उतने ही अंगुल चौड़ाईवाला और उसके समान या अधिक पलभारवाला अधम खड्ग कहा है॥ ३५६, ३५७॥

यह लक्षण भौम खड्गों के कहे हैं। दिव्य खड्ग लघु (छोटे या हल्के) होते हैं॥ ३५८॥

लम्बाई, हलकापन, खरता, विस्तार (चौड़ाई) दुर्भेद्य, सुघड़ आकार ये खड्गों के गुण होते हैं॥ ३५९॥

छोटापन, भारीपन, मन्द (कुण्ठित), छोटा आकार, शीघ्र ही टूट जाना, बद शकल (कुरूपता) ये खड्गों के दोष होते हैं॥ ३६०॥

(यहाँ खड्गों के समस्त लक्षणादि बहुत-से शास्त्रों से संग्रह करके कह दिये हैं।)

इन सब गुण वा गुणों को विचार करके जो इसे धारण करता है, वह चिरकाल तक रहनेवाली लक्ष्मी को प्राप्त करता है॥ ३६१॥

**(यह श्रीभोजराजकृत 'युक्तिकल्पतरू' ग्रन्थ में**
**खड्ग परीक्षात्मक अध्याय समाप्त हुआ।)**

## नीतिप्रकाशिकायां खड्गचालनस्य द्वात्रिंशद् विधयः।

## ( अध्याय ३ )

द्वात्रिंशत् करणानि स्युर्यानि खड्गप्रयोधने। चित्रशीघ्रपदं तानि दैत्यसङ्घे न्यदर्शयत्॥ २४॥
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं सृतम्। संयातं समुदीर्णञ्च निग्रहप्रग्रहौ तथा॥ २५॥
पादावकर्षसन्धाने शिरोभुजपरिभ्रमौ। पाशपादविबन्धाश्च भूम्युद्भ्रमणके तथा॥ २६॥

**सीतारामकृततत्त्वविवृत्तिः—**

भ्रान्तं भ्रमणम्। उद्भ्रान्तमूर्ध्वभ्रमणम्। आविद्धं भुग्नम्। आविद्धं कुटिलं भुग्नमित्यमरः। आप्लुतं हरिणवत् प्लुतम्। विप्लुतं विशेषप्लवनम्। सृतमनुसरणम्। संयातं सम्यग्यानम्। समुदीर्णं सम्यक् तरणम्। निग्रहोऽधिक्षेपः। प्रग्रहो दृढग्रहणम्॥ २५॥

पादावकर्षः पादप्रान्तेन खड्गनमनम्। सन्धानं शत्रूपरि विन्यासः। शिरो भ्रमणं भुजपरिभ्रमणम्। पाशः खड्गयोर्ग्रथनं प्रसिद्धम्। पादः त्सरुमिश्रणम्। खड्गयोर्मिश्रणम्। पाशः पादोमुष्टिर्विमिश्रणमिति मेदिनी। विबन्धः खड्ग निरोधनम्। भूमिरधोविन्यासः उद्भ्रमणक-मुच्चैरुद्धृतिः॥ २६॥

---

१. भ्रान्त—चारों ओर तलवार घुमाना।
२. उद्भ्रान्त—हाथ को ऊपर उठाकर घुमाना।
३. आविद्ध—तिरछा घुमाना।
४. आप्लुत—हरिण के समान छलांग लगाना।
५. विप्लुत—विशेष छलांग लगाना।
६. सृतम्—शत्रु का अनुकरण करते हुए जाना।
७. संयातम्—शत्रु पर हावी होना।
८. समुदीर्णम्—तलवार चलाते हुए शत्रुदल से बाहर निकलना।
९. निग्रह—तलवार से प्रहार करना।
१०. प्रग्रह—दृढता से तलवार को पकड़े रहना।
११. पादावकर्ष—पैर तक खड्ग को झुकाना।
१२. सन्धान—शत्रु पर प्रहार करना।
१३. शिरो-भ्रमण—सिर के ऊपर तलवार घुमाना।
१४. भुज-भ्रमण—अपने हाथ के चारों ओर तलवार घुमाना।
१५. पाश—बन्दिश लगाना।
१६. पाद—मूठ में मूठ मिलाकर बन्दिश लगाना।
१७. विबन्ध—तलवार को रोककर शत्रु को नाकाम कर देना।
१८. भूमि—खड्ग को नीचे करके पैरों पर प्रहार करना।

गतप्रत्यागताक्षेपाः पातनोत्थानके प्लुतम्। लाघवं सौष्ठवं शोभा स्थिरत्वं दृढमुष्टिता॥ २७॥
तिर्यगूर्ध्वप्रचरणे द्वात्रिंशत् करणान्यहो। विजित्य दानवान् सङ्ख्ये हृष्टो रुद्रो बभूव ह॥ २८॥

**व्याख्या—**

गतं पश्चाद् गमनम्। प्रत्यागतं शत्रूद्देशेनाभिमुखगमनम्। आक्षेपो रिपुमुष्टिस्खालनम्। पातनं रिपुकराद् भूमौ खड्गन्यासनम्। उत्थानकं स्वखड्गोद्धृतिः। प्लुतं स्वस्थानप्राप्तिः। लाघवं शीघ्रप्रयोगः। सौष्ठवं खड्गधारणनैपुण्यम्। शोभा एकेनैव खड्गेन समन्ताच्चालितेन सर्वदिगवच्छेदेन झलझलायमानता। स्थिरत्वं दृढावस्थितिः। दृढमुष्टिता त्सरोर्दृढग्रहणम्॥ २७॥
तिर्यक् प्रचरणं तिर्यग् गतिः। ऊर्ध्वप्रचरणमुन्नतदेशावस्थितिः।
इति द्वात्रिंशत् खड्गवल्गितानि॥ २८॥

**मानसोल्लासे खड्गचालनविधयः—**

कोशात् खड्गं समाकृष्य बिलादाशीविषं यथा॥ ६३॥
चर्म वा फलकं वापि गृह्णीयाद्वामपाणिना। पाणिना भ्रामयेत्खड्गं चर्म वामेन चालयेत्॥ ७४॥
पूर्वोक्तपदसञ्चारैः सञ्चरेत विचक्षणः। शीर्षस्योपरि संस्थाप्य खड्गचर्म तथोरसि॥ ७५॥

---

१९. उद्भ्रमण—उछलकर वार मारना।
२०. गतम्—लड़ते हुए पीछे हटना।
२१. प्रत्यागतम्—शत्रु को लक्ष्य करके आगे बढ़ना।
२२. आक्षेप—शत्रु के हाथ से तलवार नीचे गिरा देना।
२४. उत्थानकम्—अपनी नीचे गिरी तलवार को विधि से उठा लेना।
२५. प्लुतम्—अपने स्थान पर आ जाना।
२६. लाघव—स्फूर्ति से प्रहार करना।
२७. सौष्ठव—खड्ग धारण में निपुणता दिखाना।
२८. शोभा—एक ही खड्ग को इस प्रकार घुमाना कि चारों ओर प्रहार होते दिखाई पड़ें।
२९. स्थिरत्वम्—अपने स्थान पर दृढ़ता से स्थित रहना।
३०. दृढमुष्टिता—खड्ग की मूठ को दृढ़ता से पकड़े रहना।
३१. तिर्यक् प्रचरंणम्—तिरछा (पैंतरा काटकर) चलना।
३२. ऊर्ध्वप्रचरणम्—शत्रु को दबाते हुए चलना।

**मानसोल्लास में खड्ग चालन की विधियाँ**—जैसे बिल से सर्प फुंकारता हुआ निकलता है, उसी प्रकार कोश (म्यान) से खड्ग को दाहिने हाथ से शीघ्रतापूर्वक निकाले॥ ७३॥

चर्म (ढाल) या फलक को बायें हाथ से पकड़े। दाहिने हाथ से खड्ग और बायें से चर्म को चलाए॥ ७४॥

बुद्धिमान् को चाहिए कि पूर्वोक्त (छुरी प्रकरण में कहे हुए) पैंतरों से खड्ग चर्म लेकर चले। शिर पर खड्ग और वक्षस्थल पर चर्म रखकर दाहिना पैर आगे करके शिखर स्थान को दिखलावे॥ ७५½॥

दक्षिणांघ्रिं पुरस्कृत्य स्थानं शिखरकं श्रयेत्। वामं हस्तं प्रसार्याग्रे चर्मणा फलकेन वा॥ ७६॥
कर्णोपान्ते समासज्य स्थानं कापोलकं भजेत्। वक्षस्यासज्य फलकं खड्गं तत्रैव बाह्यतः॥ ७७॥
परस्यान्तरमीक्षेत श्रीवत्सस्थानमाश्रितः। खड्गं महीमुखं कृत्वा खड्गाग्रं पुरतः समम्॥ ७८॥
वीक्ष्यमाणः परच्छिद्रं स्थानं भूमण्डलं भजेत्। कुक्षिदेशे त्सरुं कृत्वा फलं तिर्यक्तथोरसि॥ ७९॥
अग्रे प्रसार्य फलकं तीक्ष्णाग्रं स्थानकं न्यसेत्। कडगं चरणे विन्द्याद्दोलगं दक्षिणाङ्गजे (के)॥ ८०॥
पोगरं वामभागे स्यात्कालवल्कं तु मस्तके। आनाभिः कण्ठपर्यन्तं खड्गाग्रेण तु भेदनम्॥ ८१॥
मुनयन्नाम तत् प्रोक्तं कौक्षेयकविचक्षणैः। वारणं हननं तेषु पञ्चघातेषु पाटवम्॥ ८२॥
दर्शयेद् रचनाघातं हस्तलाघवमाचरेत्। फलके वा तथा चर्मण्यङ्गं सर्वं निगृह्य च॥ ८३॥
सञ्चरेत् परघातार्थं शून्यं पश्येत् पराङ्गकम्। पञ्चघातप्रयोगं च पञ्चघातनिवारणम्॥ ८४॥
पादलाघवसंस्थानं चालनं खड्गचर्मणा। प्रदर्श्य रञ्जयेद् राजा सर्वांश्च खुरलीगतान्॥ ८५॥

*—मानसो० २/१/४*

### (महाभारते खड्गसञ्चालनस्य विविधा मार्गाः)

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं प्रसृतं सृतम्। परिवृत्तं निवृत्तञ्च खड्गं चर्म च धारयन्॥ ३८॥
सम्पातं समुदीर्णञ्च दर्शयामास पार्षतः। भारतं कौशिकं चैव सात्वतं चैव शिक्षया॥ ३९॥

*(महा० द्रोण० अ० १९१)*

---

बायां हाथ चर्मसहित आगे फैलाकर उसे कान के समीप लाकर कापोलक स्थान का प्रदर्शन करे॥ ७६½॥

छाती पर ढाल रखकर, वहीं पर बाहर की ओर से तलवार रखकर श्रीवत्स स्थान में स्थित रहता हुआ दूसरे के अन्तर (मर्मस्थल) को देखे॥ ७७½॥

खड्ग को भूमि की ओर करते हुए उसका अगला भाग भूमि के समानान्तर रखकर दूसरे के छिद्र (असुरक्षित स्थान) को देखता हुआ भूमण्डल स्थान को प्रदर्शित करे॥ ७८½॥

कुक्षिदेश (बगल) में तलवार की मूठ लाकर तलवार के अग्रभाग को छाती पर तिरछा रखकर ढाल के आगे फैलाकर तीक्ष्णाग्र स्थान पर स्थित होवे॥ ७९½॥

पैर पर किया जानेवाला खड्ग का प्रहार कड़ग, दाहिनी ओर का प्रहार दोलग, बायीं ओर किया गया पोगर, मस्तक का प्रहार कालवल्क और नाभि से कण्ठ तक खोंच मारकर भेदना मुनय, ये पाँच प्रहार खड्गशास्त्र के विद्वानों ने कहे हैं॥ ८०-८१½॥

इन पाँच आघातों को बचाना और प्रहार करना इत्यादि का प्रदर्शन राजा लाघव (फुर्ति) दिखलाता हुआ करे॥ ८२½॥

ढाल द्वारा अपने सभी अङ्गों को सुरक्षित रखता हुआ प्रतिद्वन्द्वी पर प्रहार करने के हेतु आगे बढ़े। उसके शून्य (असुरक्षित) भाग को देखे। इस प्रकार पाँच प्रहार, पाँच आघात को बचाने के उपाय, पैंतरा चाल, खड्ग और ढाल का चलाना इत्यादि का प्रदर्शन करके राजा खुरली में आये हुए व्यक्तियों का मनोरञ्जन करे॥ ८३-८४-८५॥

# खड्ग चालन के स्थान (पवित्रे)
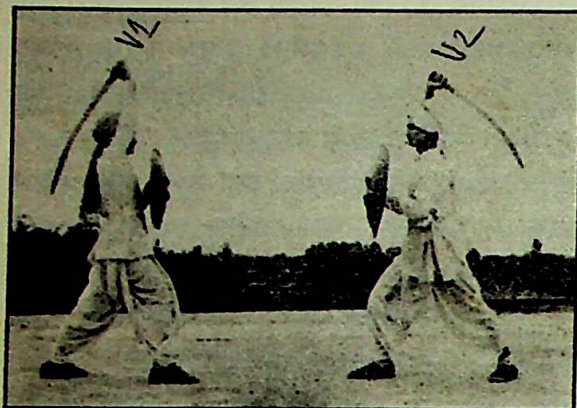
शिखरक
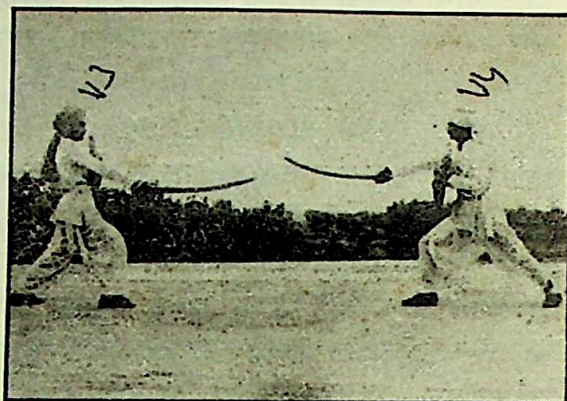
कापोलक

श्रीवत्स
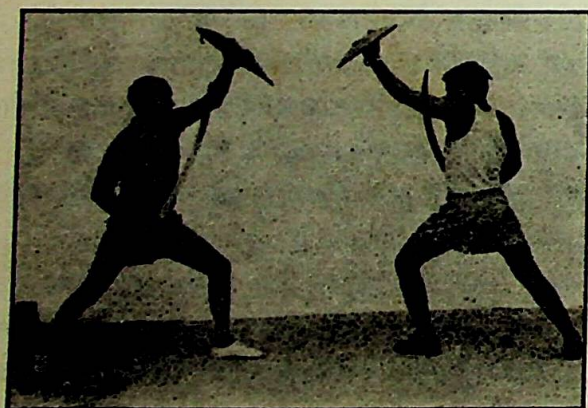
तीक्ष्णाग्र
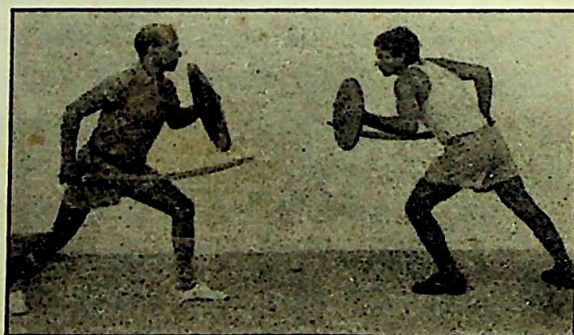
भूमण्डल

# खड्ग के विभिन्न प्रहार

कड्ग

कालवल्क
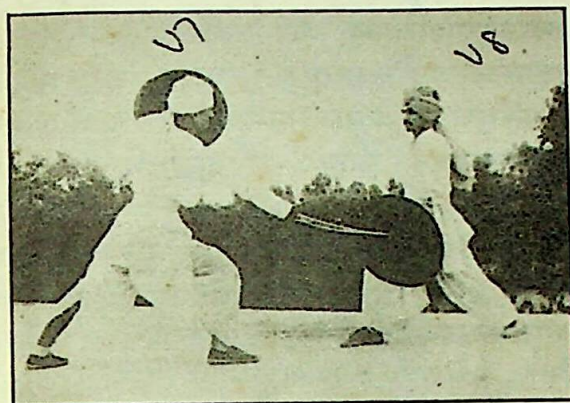
दोलग
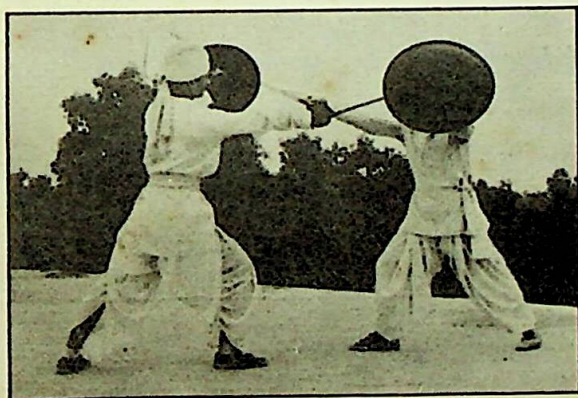
पोगर
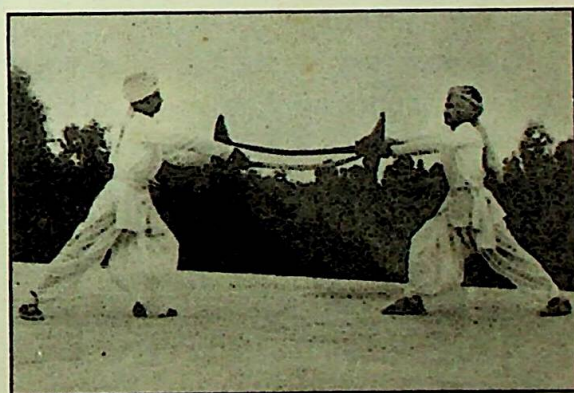
मुनय

**भारतभावदीपटीका—द्रोणपर्व पृष्ठ ३११**

**मण्डलाकारतः खड्गभ्रामणं भ्रान्तमुच्यते। तदेव बाहुमुद्यम्य कृतमुद्भ्रान्तमीरितम्॥ १॥**
**भ्रामणं स्वस्य परितः खड्गस्याविद्धमुच्यते। परप्रयुक्तशस्त्रस्य वारणार्थमिदं त्रयम्॥ २॥**
**शत्रोराक्रमणार्थाय गमनं त्वाप्लुतं मतम्। खड्गस्याग्रेण तद्देहस्पर्शनं प्रसृतं मतम्॥ ३॥**
**वञ्चयित्वा रिपौ शस्त्रपातनं गदितं सृतम्। परिवृत्तं भवेच्छत्रोर्वामदक्षिणभागतः॥ ४॥**
**पश्चात् पदापसरणं निवृत्तं सम्प्रचक्षते। अन्योन्यताडनं प्राहुः सम्पातमुभयोरपि॥ ५॥**
**आधिक्यमात्मनो यत् तत् समुदीर्णमुदीरितम्। अङ्गप्रत्यङ्गदेशेषु भ्रामणं भारतं स्मृतम्॥ ६॥**
**विचित्रखड्गसञ्चारदर्शनं कौशिकं स्मृतम्। निलीयचर्मणिक्षेपो यदसेः सात्वतं हि तत्॥ ७॥**
**भ्रान्तं मण्डलाकृतिः, तदेव क्लमोपेतमाविद्धं, भ्रान्तमेवोन्नति सहितमुद्भ्रान्तं, आप्लुतं केवलमुत्प्लवनं प्रसृतं सर्वासु दिक्षु प्रसरणं प्लुतमेकस्यां दिशि, सम्पातं वेगं समुदीर्णं सर्वान् प्रति समुद्यमम्।** *—(महा० भीष्म० ५४/५०) (भारतभावदीप पृष्ठ १७५)*

---

**महाभारत में खड्ग चालन की अनेक विधियाँ—**

**भारतभावदीप टीका में**—खड्ग को गोलाई में घुमाना भ्रान्त कहा जाता है। इसी को हाथ ऊपर उठाकर घुमाना उद्भ्रान्त होता है। अपने चारों ओर खड्ग को घुमाना आविद्ध कहलाता है। इन तीनों विधियों से दूसरे के शस्त्र से अपनी रक्षा की जाती है॥ १-२॥

शत्रु पर आक्रमण करने के लिए छलांग लगाकर जाना आप्लुत माना गया है। खड्ग के अगले भाग से शत्रु के शरीर को छूना (खोंच का वार मारना) प्रसृत होता है॥ ३॥

शत्रु को धोखा देकर उसपर प्रहार करना सृत कहा गया है। शत्रु के बाँये या दाहिने भाग में प्रहार मारना परिवृत्त विज्ञान होता है॥ ४॥

पीछे की ओर पैंतरा चलकर हटना निवृत्त कहलाता है। परस्पर एक-दूसरे पर प्रहार करना सम्पात होता है॥ ५॥

अपने कौशल्य की अधिकता से दूसरे को दबा लेना समुदीर्ण कहा गया है। अङ्ग-प्रत्यङ्गों (एक बार में ही कई अङ्गों पर निरन्तर प्रहार) पर प्रकार करने के लिए तलवार घुमाना भारत कहा गया है॥ ६॥

खड्ग सञ्चालन का अद्भुत कौशल्य प्रदर्शित करना कौशिक कहलाता है। चर्म (ढाल) से अपने-आपको सुरक्षित करके असि का प्रहार करना सात्वत विज्ञान होता है॥ ७॥

मण्डल (घेरे) में तलवार को घुमाना भ्रान्त, उसी को शीघ्रता या स्फूर्ति से घुमाना आविद्ध, भ्रान्त को ही ऊँचा घुमाना उद्भ्रान्त, केवल छलाङ्ग लगाना आप्लुत, सभी दिशाओं में प्रहार करना प्रसृत, एक दिशा में उछलकर जाना प्लुत, वेग से प्रहार सम्पात और सभी से लड़ने का उद्यम करना समुदीर्ण कहलाता है।

# खड्ग विज्ञान
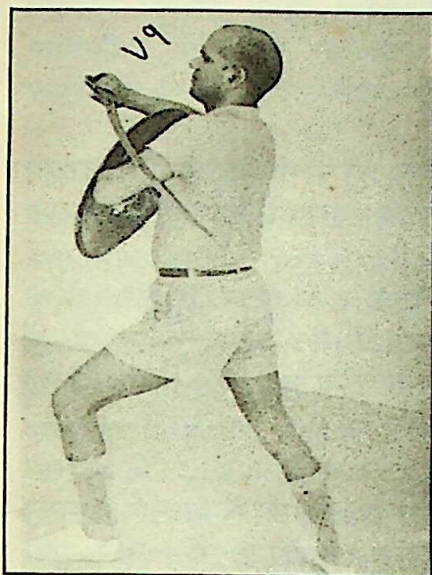
भ्रान्त
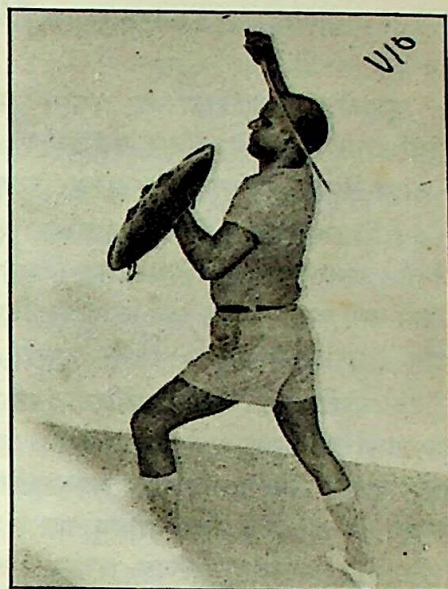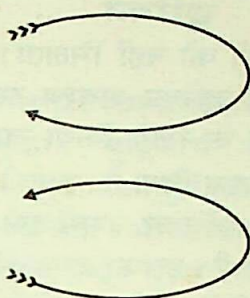
उद्भ्रान्त
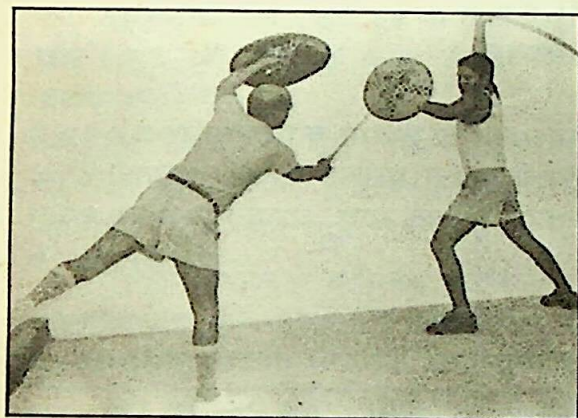
आप्लुत
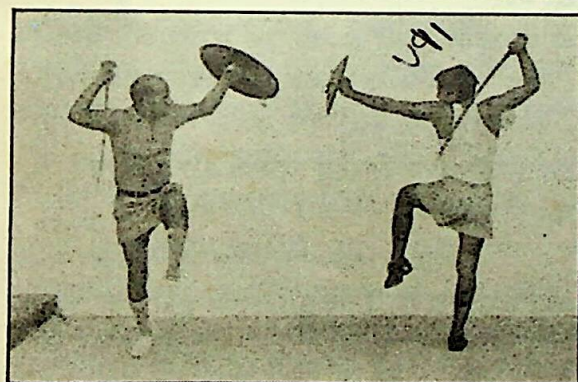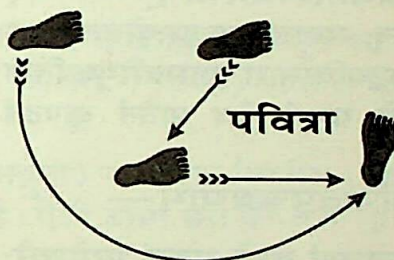
सव्य दक्षिण गमन
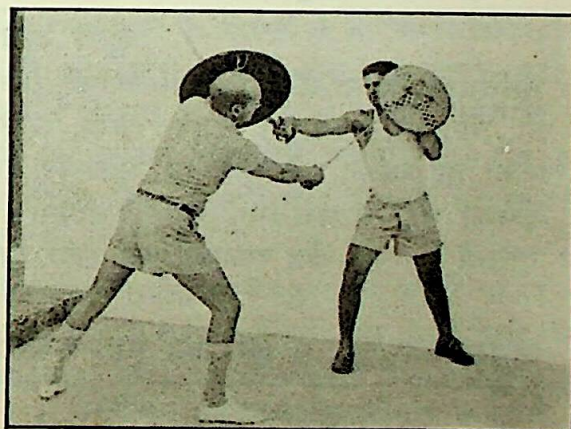
पैतरा चलना

# अष्टम अध्याय

## छुरिका

युद्धक्षेत्र में छुरिका का प्रयोग देखने को नहीं मिलता। फिर भी सभी क्षत्रिय एवं उनकी स्त्रियाँ आत्मरक्षा के लिये कटिप्रदेश में छुरिका अवश्य रखते थे। इसका प्रयोग निकट युद्ध या आकस्मिक विपत्ति से सुरक्षा करने के लिये किया जाता है।

नीतिप्रकाशिका में छुरी का मान १ हाथ दिया है। इसकी चौड़ाई २ अङ्गुल और तीन किनारे होते हैं। कमर प्रदेश में मेखला (पेटी) बाँधकर उसमें इसे लटकाते हैं। 'अपराजितपृच्छा' में छुरिका का मान ६ से १२ अङ्गुल दिया है। इसका दण्ड भैंस के सींग का बना हुआ, जौ के समान (मध्य में स्थूल) और उसमें कीलें लगी हुई होती हैं।

'मानसोल्लास' के शस्त्रविनोदप्रकरण में सर्वप्रथम छुरिका-विनोद ही दिया है। इसके अनुसार राजा समुचित शृङ्गार, भुजा, मस्तक पर तिलक लगाये तथा हाथ एवं कानों में आभूषण धारण करके घुटनों तक आनेवाला कच्छा पहने। इसके पश्चात् रङ्गभूमि (अखाड़े) में जाकर दूसरे छुरीयुद्ध के ज्ञाता व्यक्ति को बुलाकर विविध प्रहार, पवित्रे एवं उनको रोकने की विधियों का प्रदर्शन करे। इनका सचित्र वर्णन आगे किया जाता है।

## छुरिकाया लक्षणम्

**नीतिप्रकाशिकायाम्—**

**असिधेनुः समाख्याता हस्त्योन्नत्या प्रमाणतः। अतलभत्सरुयुक्ता श्यामा कोटित्रयाशिता॥ १५॥**
**अङ्गुलिद्वयविस्तारा ह्यासन्नरिपुघातिनी। [1]मेखला ग्रन्थिनी सा तु प्रोच्यते खड्गपुत्रिका॥ १६॥**
**मुष्ट्याग्रे ग्रहणं चैव पातनं कुण्ठनं तथा। वल्गितत्रयवत्येषा सदा धार्यानृपोत्तमैः॥ १७॥**

*—नीतिप्र० अ० ५*

**अपराजितपृच्छायाम्—**

**छुरिकालक्षणं वक्ष्ये यदुक्तं परमेश्वरैः। कौमारी चैव लक्ष्मीश्च शंखिनी तुन्दका तथा॥ १७॥**

---

## छुरी का लक्षण

**नीतिप्रकाशिका में**—एक हाथ लम्बी, बिना हाथ के बचाने की डण्डी की मूठवाली, श्याम रङ्ग की, तीन धारवाली, दो अङ्गुल चौड़ी, समीप के शत्रु पर वार करनेवाली मेखला (कमर) से लटकी हुई खड्ग की पुत्री या असिधेनु (छुरी) कहाती है॥ १५-१६॥

इसकी मुट्ठी में पकड़ना, पाटन (घोंपना) कुण्ठन (घोंपकर तिरछा करके निकालना) ये तीन गतियाँ हैं। यह श्रेष्ठ राजाओं को सदा धारण करनी चाहिये॥ १७॥

*—धनुर्वेदः पं० जयदेव शर्मा, पृष्ठ ५४*

**अपराजितपृच्छा में छुरी का मान**—जैसा शिवजी महाराज ने कहा वैसा छुरी का मान

---

१. महिषविषाणघटितमुष्टिकटारकोत्कटकटिभागम्। (भैंस के सींग से बनी हुई मूठवाली छुरियाँ जिनके उत्कट कटिभाग में सुशोभित हो रही हैं।) *—यशस्तिलकचम्पूकाव्ये, पृष्ठ० ३१२*

पापिनी शुभगा लक्षा षडङ्गुलादिकोद्भवा। द्वादशान्तिमाङ्गुलान्यङ्गुलमानं प्रशस्यते॥ १८॥
आदिहीना मतिभ्रंशं मध्यहीना धनक्षयम्। हन्याद् वंशहीना शूलाग्रे मृत्युसम्भवः॥ १९॥
चतुरङ्गुला भवेन्मुष्टिरूर्ध्वे द्व्यङ्गुलताडिता। मुष्टिकाऽधो यवाकारो जडनार्थे च कीलकम्॥ २०॥

*—अपरा० अ० २३५, पृष्ठ ५९८*

**मानसोल्लासे—**

**वितस्तिमात्रिकाहीनं मध्यमं विहिनस्ति च। स्थापयित्वोत्तमां शस्त्रीं गृह्णीयाच्छिक्षया नृपः॥ १६॥**
**अङ्गुष्ठपर्वमानेन माननीयासिधेनुका। मुष्टिभागं परित्यज्य गणयेद् वंशपृष्ठतः॥ १७॥**
**आयुर्लक्ष्मीमृतिश्चेति समुच्चार्य पुनः पुनः। आयुर्लक्ष्मीपदे शस्ता वर्ज्या मृत्युपदे स्थिता॥ १८॥**
**तीक्ष्णधारा दृढा लघ्वी तिर्यग्रेखा विवर्जिता। अभिन्नधारा नात्युच्चैर्नीच्चैस्तिष्ठेत्स सौष्ठवम्॥ १९॥**
**वामं पादं तथा सव्यं प्रसृतं बाहुदण्डकम्। पुरस्कृत्यावतिष्ठेत सङ्क्रामेच्च परं प्रति॥ २०॥**
**समुष्टिकं बाहुदण्डं दक्षिणं क्षुरिकान्वितम्। शिरः समं समुत्क्षिप्य भैरवं स्थानमाचरेत्॥ २१॥**

---

एवं लक्षण कहता हूँ। कुमारी, लक्ष्मी, शङ्खिनी, तुन्दका, पापिनी, शुभगा और लक्षा ये सात प्रकार की छुरियाँ होती हैं। इनमें क्रम से कुमारी छह अङ्गुल लम्बी, लक्ष्मी सात, शङ्खिनी आठ, तुन्दका नौ, पापिनी दस, शुभगा ग्यारह और लक्षा बारह अङ्गुल मान की होती है॥ १७-१८॥

प्रारम्भ में हीन (टूटी हुई या विकारयुक्त) बुद्धि की नाशक, मध्य में त्रुटित धन की नाशक, वंश (मूठ) में दोषयुक्त कुल की संहारक और शूलाग्रफल के अगले भाग में दोषयुक्त छुरी मारक होती है॥ १९॥

छुरी की मुष्टि (मूठ) चार अङ्गुल लम्बी और दो अङ्गुल मोटी होती है। मूठ का निचला भाग जौ की आकृति के जैसा (मध्य में कुछ मोटा और किनारों में पतला) होता है एवं जड़ने के लिये कील लगी हुई होती है॥ २०॥

**मानसोल्लास में छुरी का मान**—मात्रिका (एक अङ्गुल) कम एक वितस्ति (बालिस्त) लम्बाईवाली छुरी मध्यम एवं प्रहार करने में समर्थ होती है। ऐसी उत्तम छुरी को राजा युक्तिपूर्वक धारण करे॥ १६॥

छुरी का माप मुष्टि (मूठ) को छोड़कर शेषभाग अंगूठे के पोरवों से करना चाहिये। अंगूठे के तीनों पर्व (पोरवों) को क्रमशः आयु, लक्ष्मी और मृत्यु नाम से उच्चारण करके छुरी का माप करना चाहिये। इसमें आयु और लक्ष्मी (प्रथम दो पर्वों) के माप से समाप्त होनेवाली छुरी प्रशस्त मानी जाती है और मृत्यु (अन्तिम पर्व) पर समाप्त होनेवाली वर्जनीय है॥ १७-१८॥

तेज धारवाली, दृढ, छोटी, तिरछी—रेखाओं से रहित, समानधार, न कहीं पर स्थूलधार और न ही सूक्ष्मधारवाली छुरी उत्तम होती है॥ १९॥

**मानसोल्लास में छुरी सञ्चालन**—बायाँ पैर आगे करके, बायें भुजदण्ड को फैलाकर आगे करके स्थित हो और दूसरे की ओर आगे बढ़े॥ २०॥ दाहिने हाथ में छुरी पकड़कर इसी स्थिति में उसे सिर के समान ऊँचा उठाकर विपक्षी पर प्रहार करे। इसे भैरवस्थान नामक पैंतरा कहते हैं॥ २१॥

**दक्षिणं क्षुरिकाहस्तमपसार्य च पृष्ठतः। वामदण्डं प्रसार्याग्रे पल्लीवालं प्रदर्शयेत्॥ २२॥**
**क्षुरिकाग्रे तथा दण्डं प्रसार्य पुरतः समम्। पुरतो नम्रगात्रस्तु शुनकस्थानकं न्यसेत्॥ २३॥**
**प्रसार्य दक्षिणं बाहुमसिधेनुमधोमुखीम्। उरसि न्यस्तदण्डस्तु स्थानकं नूकमाचरेत्॥ २४॥**
**क्षुरिकाग्रं समुन्नम्य नीचे तु मणिबन्धने। दण्डं चोरसि संस्थाप्य विनूकं स्थानमाश्रयेत्॥ २५॥**
**वामे भागे सशस्त्रीकं करं सन्न्यस्य कम्पयन्। दण्डवत्सन्न्यसेद्दण्डं लुलितं स्थानकं भजेत्॥ २६॥**
**क्षुरिकाग्रं प्रसार्याग्रे दण्डं संकोच्य वक्षसि। नहयं स्थानकं कुर्याद् भूपः सौष्ठवसंयुतम्॥ २७॥**
**असिधेनुमुरौ देशे कृत्वा दण्डं तदग्रतः। नट्टेकं नाम संस्थानं कुर्यात् स रञ्जयन्सताम्॥ २८॥**
**जानुनोर्मध्यभागे तु शस्त्र्यग्रेण स्पृशन् भुवम्। वामं प्रसार्य दोर्दण्डं स्थानं रोपितकं चरेत्॥ २९॥**
**दण्डकस्य शिरस्थाने सासिधेनुं करं दधत्। वामदण्डं क्षिपन्नग्रे स्थानं पोत्ताङ्गुलं भजेत्॥ ३०॥**
**उत्क्षिप्य दक्षिणं बाहुं सासिधेनुं मृगारिवत्। दण्डं नीचं तथा कृत्वा स्थानं व्याघ्रनखं श्रयेत्॥ ३१॥**
**वामदण्डस्थलस्याधः कुर्वन् मूर्वीं स शस्त्रिकाम्। दक्षिणे च स्तने दण्डं भजेदर्धकपोलके॥ ३२॥**

---

दाहिने छुरीवाले हाथ को पीछे और बायें हाथ को आगे करके पल्लीवाल स्थान को दिखाये॥ २२॥

इसी प्रकार छुरी के आगे सम (बराबरवाला बायाँ) हाथ सामने फैलाकर अपने शरीर को आगे बढ़ाकर झुकाये। इसे शुनकस्थान कहते हैं॥ २३॥

दाहिने हाथ को फैलाकर छुरी का मुख नीचे की ओर करे। बायाँ हाथ छाती पर रखकर नूकस्थान को करे॥ २४॥

छुरी का अग्रभाग (मुख) ऊपर की ओर करके दाहिने हाथ की कलाई नीचे करे। बायाँ हाथ पूर्ववत् वक्षस्थल (छाती) पर रखकर विनूक स्थान को दिखाये॥ २५॥

छुरीसहित दाहिने हाथ को चलाता हुआ अपनी बायीं ओर ले जाये। (छुरी भूमि के समानान्तर रहेगी) बायाँ हाथ दण्ड के समान सीधा रखकर लुलितस्थान को प्रदर्शित करे॥ २६॥

छुरिका के अगले भाग को आगे करके हाथ को छाती के पास लेकर दीखने में सुन्दर नहयस्थान को राजा दिखलाये॥ २७॥

छुरी को छाती के पास लाकर हाथ को उसके आगे करके सज्जनों को आनन्दित करता हुआ नट्टेकस्थान का प्रदर्शन करे॥ २८॥

दोनों घुटनों के मध्य से छुरी के अग्रभाग से भूमि को छूते हुए तथा बायाँ हाथ फैलाकर रोपितकस्थान को दिखाये॥ २९॥

शिर के ऊपर छुरीसहित दाहिने हाथ को लाकर बायाँ हाथ आगे फेंकते हुए पोत्ताङ्गुलस्थान को दिखलावे॥ ३०॥

दाहिनी भुजा को ऊपर उठाकर सिंह की भाँति झटके से प्रहार करते हुए नीचे लाकर व्याघ्रनख पैंतरे का प्रदर्शन करे॥ ३१॥

बायें हाथ के नीचे (कक्षा में) छुरीसहित दाहिने हाथ की मुट्ठी को रखे। दाहिने हाथ की कुहनी दाहिने स्तन के पास रहेगी इस प्रकार करता हुआ अर्धकपोलक दाव को करे॥ ३२॥

# छुरिका के विज्ञान
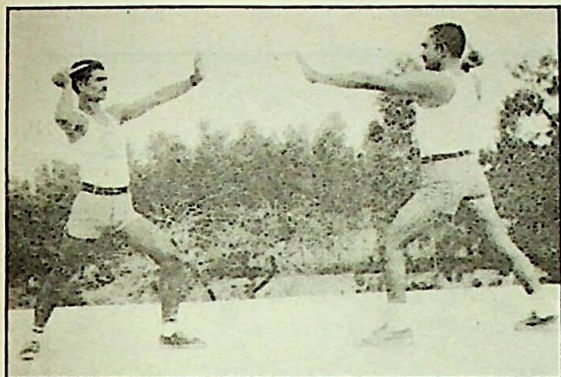
भैरव
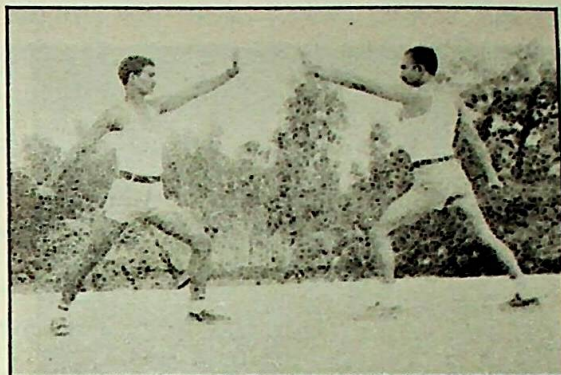
पल्लीवाल
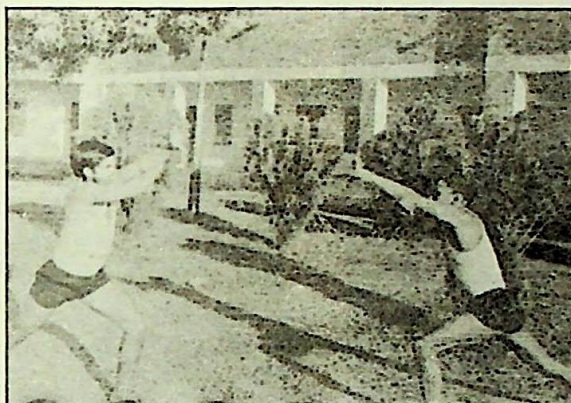
शुनक
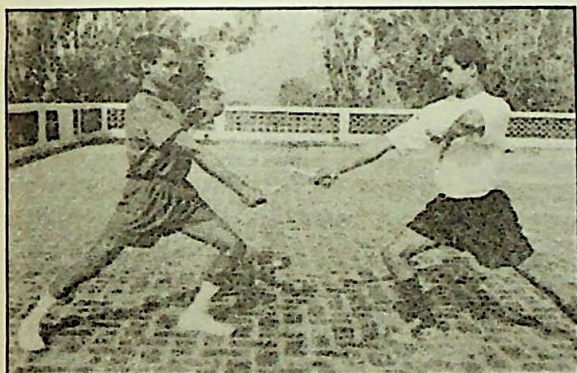
विनूक
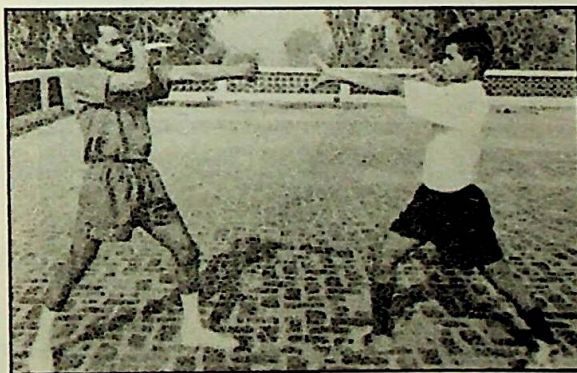
लुलित

# छुरिका के विज्ञान

नूक
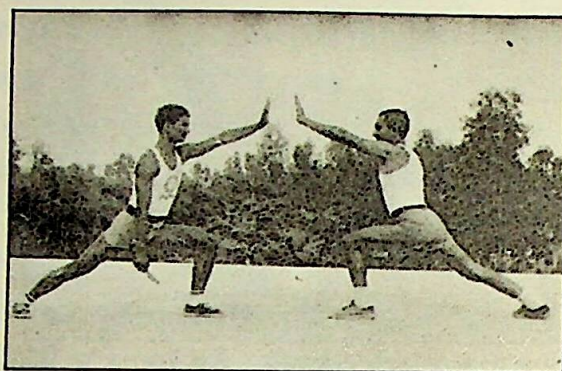
रोपितकम्
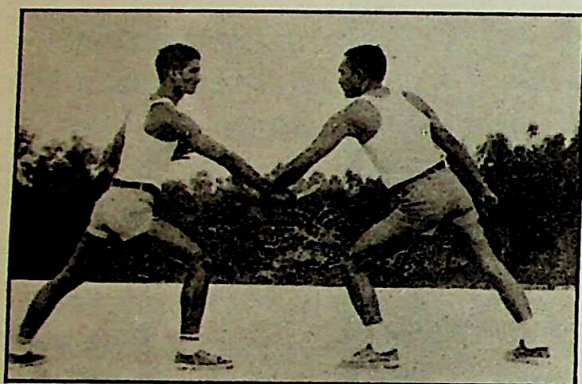
विनूक
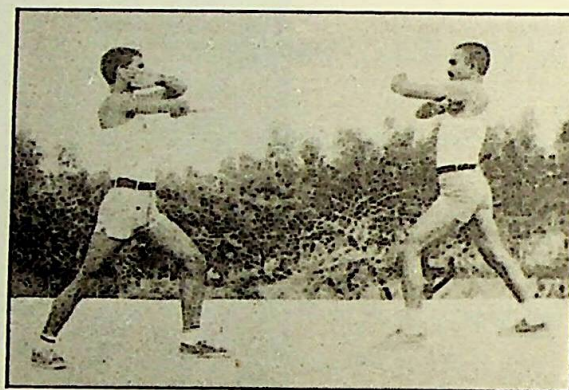
नहयम्
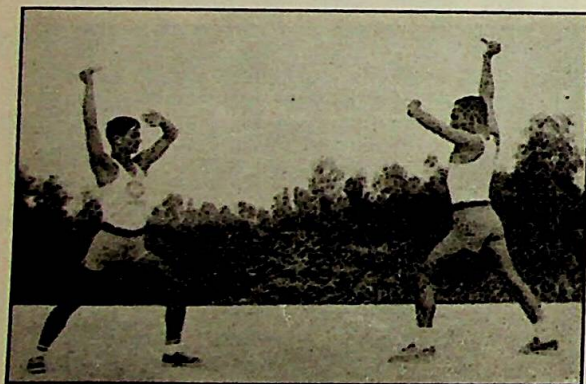
व्याघ्रनख
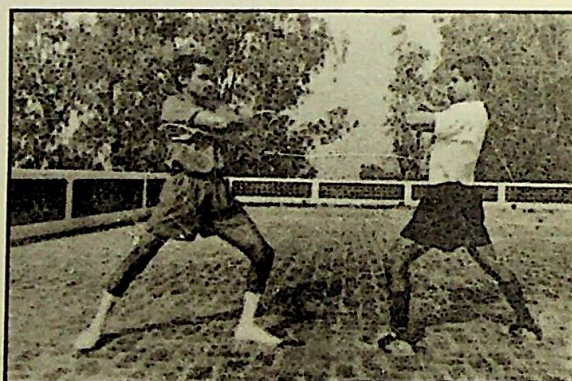
अर्धकपोलक

वामं पुरः स्थितं पादं दक्षिणेन स्पृशेन्ननु। वामं पुनः क्षिपेदग्रे दक्षिणेन पुनः स्पृशेत्॥ ३३॥
तथैवोपन्यसेत् पादं दक्षिणं चरणेन तु। गतागतैर्विनिर्गच्छन् पदग्राहं समाचरेत्॥ ३४॥
पुरः स्थितेन पादेन पाश्चात्यं घट्टयेत् पुनः। तदेवाग्रे क्षिपन्गच्छन् पदप्राप्तिं गतिं भवेत्॥ ३५॥
न्यस्तौ च पादावुत्क्षिप्य प्रसर्पंश्च शनैः शनैः। अनुक्षेपगतिं कुर्यात् सर्पणेन विसर्पणः॥ ३६॥
पादयोर्हतसञ्चारैरीषदुत्क्षेपलक्षणैः। सर्पणं सर्पवत् कुर्यात् सर्पिकां गतिमाचरेत्॥ ३७॥
आकुञ्चितैस्तथा पादैर्लीलाचङ्क्रमणाञ्चितैः। मत्तवारणवद् गच्छेन्मत्तेभगतिमाचरेत्॥ ३८॥
जिघृक्षया द्रुतं गत्वा यदुत्प्लुत्यापसर्पति। तां गतिं वायसीं बिभ्रद्विचरेच्छस्त्र कोविदः॥ ३९॥
आकुञ्चिताभ्यां पादाभ्यामङ्गुल्यग्रैः स्पृशन्महीम्। बाकोटीं गतिमास्थाय सञ्चरेत्क्षुरिकाकरः॥ ४०॥
गात्रसंकोचनं कृत्वा सिंहवल्लङ्घयन्ध्रुवम्। पञ्चाननगतिं कुर्वन्दर्शयेत् पाणिलाघवम्॥ ४१॥
किञ्चिदाकुञ्चयन्शस्त्रीं किञ्चिदालोलयन्भुजम्। आवर्तैः परिवर्तैश्च तथा सव्यापसव्यकैः॥ ४२॥

---

**पैरों का सञ्चालन ( पैंतरे से आगे-पीछे चलना )**—आगे रखे हुए बायें पैर को पीछे रखे हुए दाहिने पैर को आगे बढ़ाकर उसका स्पर्श करे। इसके पश्चात् बायाँ पैर पुनः आगे रखकर दाहिने पैर को बढ़ाये और उससे बायें पैर को छूयें। इसी प्रकार दाहिने पैर को आगे रखते हुए चले। जैसे आगे जाये उसी प्रकार पीछे आना चाहिये, इसे पदग्राह कहते हैं॥ ३३-३४॥

इसके पश्चात् आगे रखे हुए दाहिने पैर से पीछे के बायें पैर को ठोकर मारकर चलायें। इसी प्रकार पीछे के पैर को आगेवाले पैर से चलाते हुए पीछे जाना पदप्राप्ति गति कहलाती हैं॥ ३५॥

स्थिर पैरों को ऊपर उठाकर धीरे-धीरे आगे बढ़े, इसी भाँति सर्पण (आगे जाना), विसर्पण (पीछे आना) क्रिया को करता हुआ अनुक्षेप गति का अभ्यास करे॥ ३६॥

कुछ उछलते हुए (झटके से) पैरों को भूमि पर सर्प के समान सञ्चरित करता हुआ सर्पिका गति (दायें-बायें, तिरछा सर्पवत् जाना) से चलें॥ ३७॥

पैरों को कुछ झुकाकर लीलापूर्वक क्रमशः रखता हुआ मस्त हाथी की भाँति चलता हुआ मत्तेभ गति से चलें॥ ३८॥

किसी वस्तु को लेने की इच्छा से जैसे कव्वा उछल-उछलकर जाता है फिर एक बार ही झपटकर वस्तु को उठा लेता है, उसी प्रकार शस्त्रज्ञान में निपुण वायसी गति का अभ्यास करें॥ ३९॥

कुछ झुके हुए पैरों की अङ्गुलियों के अग्रभाग से भूमि को छूता हुआ छुरी हाथ में लेकर बाकोटी गति से चले॥ ४०॥

शरीर को सिकोड़कर सिंह के समान छलाङ्ग लगाता हुआ पञ्चानन गति से चलता हुआ हाथ का चातुर्य दिखलाये॥ ४१॥

छुरी को कुछ अपने पास लाकर और भुजा को कुछ घुमाते हुए आवर्त-परिवर्त (चारों ओर पैंतरे से चलना) और दायें-बायें पैंतरे से जाने का अभ्यास करते हुए छुरी को ऊपर, पीछे,
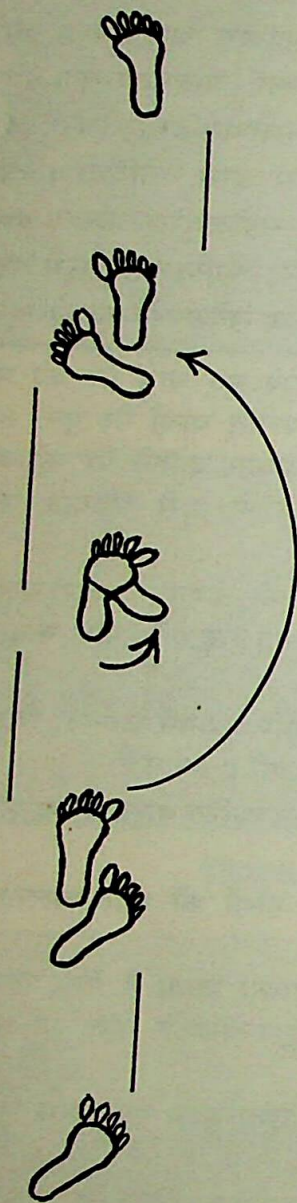
पदग्राह आगे जाना

पदप्राप्ति पीछे आना

**भ्रामयेत् क्षुरिकामूर्ध्वं पृष्ठे पादे तथाग्रतः। कक्षयोः कण्ठदेशे च पादसञ्चारसंयुतः॥ ४३॥**
**विद्युत्पञ्जरमध्यस्थमिवात्मानं प्रदर्शयेत्। चारणे धारणे चैव धारणे मारणे तथा॥ ४४॥**
**अमोघां दर्शयेदाशां दुर्निवारो भयंङ्करः। शस्त्रीं प्रदर्शयेदेवं दुष्टाशयविभीषणीम्॥ ४५॥**

*—मानसोल्लास भाग २, अ० १, विं० ४*

---

पैर में (नीचे) आगे, पार्श्वभाग (बग़ल) और कण्ठ इत्यादि स्थानों पर प्रहार पैंतरेसहित करे॥ ४२-४३॥

छुरी को चलाना, वारों को रोकना, वारों को रोककर पुनः विपक्षी पर प्रहार करना इत्यादि का शीघ्रतापूर्वक सञ्चालन करें, जिस प्रकार विद्युत् पञ्जर (पिंजरा) में चारों ओर प्रतिभासित होती है उसी प्रकार चारों ओर राजा प्रहार करता दिखलाई दे। इन अमोघ वारों का प्रदर्शन राजा अपनी श्रेष्ठता दिखाये। इन प्रहारों को रोकना बहुत ही कठिन है, ऐसा प्रदर्शन दुष्टों को भयदायक छुरी द्वारा करे॥ ४४-४५॥

# नवम अध्याय

## गदा

यह प्रहार का पुरातन आयुध है। भीम, दुर्योधन का गदायुद्ध तो सुप्रसिद्ध है ही। हनुमान् के हाथ में भी गदा सुशोभित है। विष्णु की प्रतिमा में भी गदा चित्रित है। औशनस धनुर्वेद में गदाविज्ञान को बतलानेवाले 'प्रपौत्रशास्त्र' का उल्लेख किया है जो अब अनुपलब्ध है। गदा का भार एक सहस्रपल, आठ सौ पल और छह सौ पल उत्तम, मध्यम, अधम के भेद से होता है।

इसकी संहारशक्ति बढ़ाने के लिये अग्रभाग में लोहे की कीलें लगा देते थे। रामायण में भी ऐसी गदा का वर्णन आया है। गान्धार शैली की प्रतिमाओं में भी शंकुचित्रित गदा देखी जाती है। बम्बई संग्रहालय में भी लोहे की कीलें लगी हुई गदा विद्यमान है।

नीतिप्रकाशिका में गदा का मान चार हाथ दिया है। मानसोल्लास में इसकी लम्बाई ५० अङ्गुल कही है। गदा का निर्माण सुदृढ़ काष्ठ या लोहे से किया जाता है। अग्रभाग स्थूल, ८ या १६ कलियों से युक्त और सबसे ऊपर कलश जैसा बनाया जाता है। इसको त्रिकोण या चार कोनोवाली भी कहा है।

अग्निपुराण में गत-प्रत्यागत आदि २० मण्डल (पैंतरे) गदायुद्ध के दिये हैं। इसी भाँति महाभारत में १७ विज्ञान नीलकण्ठ शास्त्री ने भारतभावदीप टीका में उद्धृत किये हैं। मानसोल्लास में भी गदा का वर्णन किया है।

मध्यकाल के आयुधों में गदा का समावेश प्रायः नहीं है। इसमें यही कारण है कि योद्धा लोगों का बल क्षीण हो गया। अथवा हाथी के मस्तक पर प्रहार करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता था और हाथी द्वारा युद्ध करने का भी मध्यकाल में प्रचलन कम हो गया था।

## गदा

**औशनसधनुर्वेदे—**

**जमदग्निं प्रति शुक्र उवाच। गदा लक्षणं वक्ष्यते, समाहितो निबोध। तत्र गदा पञ्चाशदङ्गुलायामा श्रेष्ठा, चत्वारिंशदङ्गुलायामा मध्यमा, त्रिंशदङ्गुलायामा निकृष्टा भवेदिति त्रिविधा गदा बुधैरुपदिष्टा। पलानां सहस्रमुत्तमायाः शतान्यष्टौ मध्यमायाः षट्शतानि कनिष्ठाया इति गदायाः त्रिविधं गौरवं भवति। सैव लक्षणलक्षिता गदा प्रपौत्रशास्त्रतो**

---

**औशनस धनुर्वेद में**—जमदग्नि से शुक्राचार्य कहने लगे, अब गदा का लक्षण कहते हैं, सावधान होकर समझो।

पचास अङ्गुल लम्बी गदा उत्तम होती है। चालीस की मध्यम और तीसवाली अधम होती है। ये तीन प्रकार की गदा विद्वानों ने कही हैं। सहस्र पलभार की गदा उत्तम, ८०० पल की मध्यम और ६०० पल की अधम ग़दा होती है। इन लक्षणों से युक्त गदा ''प्रपोत्रशास्त्र'' के अनुसार लेनी चाहिये। जो बल का दर्प (घमण्ड) रखता हो, इस गदा का भार सहने में समर्थ

ग्रहीतव्या। यस्तु बलदर्पितः समर्थगोरवो देवदेववराधिष्ठितः स तां गृह्णाति। तस्य मुक्तस्य च दोषाः संभवेयुः। तथा या गदा लघीयसी भवति न सा संग्रामे युद्धविशारदैः प्रशस्यते। तस्मात् समा सर्वेषां प्रशस्ता भवति। या हि प्रतीचारे प्रहारे चारिकासु च सञ्चारमोक्षा समेत्यभिधीयते। त्र्यस्रा वृत्ताश्रिर्वा सुगात्रा व्रणरहिता सुविहिता प्रियदर्शना कर्तव्या। ग्रहो दशाङ्गुलायामो दशाङ्गुल परिणाहश्च त्रयाणां पुरुषाणाम्। मूलतः सुद्रव्यानि पद्मगर्भोपमं पूर्णचन्द्रोपमं वा ग्रहमूलं चित्रज्ञैश्चित्रितं भवति। स्थूलाग्रा विशिष्टा चतुरस्रा मध्यमा तालमूलाकृतिर्निकृष्टा भवति। तप्तकाञ्चनपदैर्रजतपदैर्वा बहुचित्रितरूपैर्मूलमध्याग्रबन्धनैर्विचित्रीकृता गदा श्रेष्ठा भवति सर्वशास्त्रेषु। सा हि क्रियाविधौ वपुष्मत्त्वाद् बलवत्वाच्च सुखयोगा भवति। नाना-चित्रैरलङ्कृता सर्वेभ्यः शस्त्रेभ्यश्चाक्षय्या। सा हि गदा शस्त्रज्ञैरायुधवरेत्यभिधीयते।

**राजविजये—**

**पञ्चाशदङ्गुलो दण्डो दलेष्वर्काङ्गुला गदा। दलानि षोडशैव स्युः कलशोऽङ्गुलिमात्रकः॥**

*—वीर० मित्रो० लक्षणप्रकाशे नानायुधलक्षणम् पृष्ठ ३१५*

**शुक्रनीतौ—**

**अष्टास्रा पृथुबुध्ना तु गदा हृदयसम्मिता।** *—अ० ४-१०४६*

---

हो और देवताओं (गदायुद्ध के ज्ञाता) की जिसपर कृपा हो वह उसको ग्रहण करे। इस गदा को इसके विशेषज्ञों की उपस्थिति के बिना चलाने से हानि सम्भव है। जो गदा छोटी होती है, संग्राम में युद्ध के जाननेवालों ने उसे अच्छा नहीं माना। जो प्रतीचार (दूसरे के प्रहार को रोकना), प्रहार (स्वयं वार करना) और चारिकाओं (विभिन्न पवित्रों से घुमाना) इत्यादि दावों से छोड़ी जाती है, उसे समा कहते हैं। तीन कोणोंवाली, गोलाकार, अच्छे अङ्गोंवाली, व्रणरहित, अच्छी प्रकार बनाई हुई, देखने में सुन्दर गदा बनानी चाहिये। ग्रह (मूठ) दस अङ्गुल लम्बी और घेरे में भी दस अङ्गुल तीनों (उत्तम, मध्यम, अधम) गदाओं की होनी चाहिये। इसका मूलभाग सुन्दर पदार्थों, बिना खिले हुए कमल के सदृश, पूर्ण चन्द्र के समान गोल और चित्रकारी से युक्त होना चाहिये।

जिसका अगला भाग स्थूल (भारी) हो वह गदा उत्तम, चार कोणोंवाली मध्यम और ताल वृक्ष के मूलवाली गदा निकृष्ट होती है। जिस गदा का मूल, मध्यम और अग्रभाग स्वर्ण या चाँदी की पच्चीकारी युक्त हो उसे सब शास्त्रों में श्रेष्ठ कहा है, क्योंकि वह भारी होने और सुदृढ़ होने से चलाने में सुविधापूर्वक चलाई जा सकती है। अनेक प्रकार की चित्रकारी से सुशोभित वह गदा अन्य सभी शस्त्रों से अदम्य है। शस्त्रों के ज्ञाता विद्वान् इस गदा को श्रेष्ठ आयुध बतलाते हैं।

**राजविजय में गदा का लक्षण**—गदा का दण्ड पचास अङ्गुल लम्बा होना उचित है। गदा के दल (कोने) एक-एक अङ्गुल मोटे और संख्या में सोलह होते हैं। कलश (गदा का उपरिभाग जैसे मन्दिरों में कलश होता है) एक अङ्गुल का ही होना चाहिये।

**शुक्रनीति में गदा का लक्षण**—आठ कोणोंवाली, मोटे हत्थे की और छाती के बराबर गदा होती है।

# प्रस्तर प्रतिमाओं में अस्त्र-शस्त्र

१. खड्ग, गदा, चक्र, धनुष
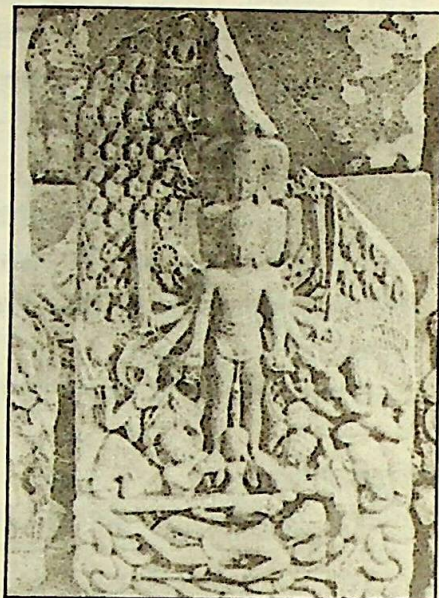
२. हल मूसल
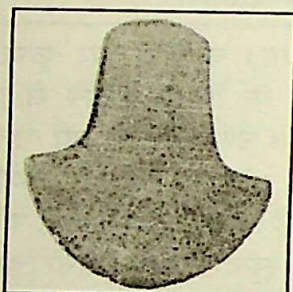
३. परशु
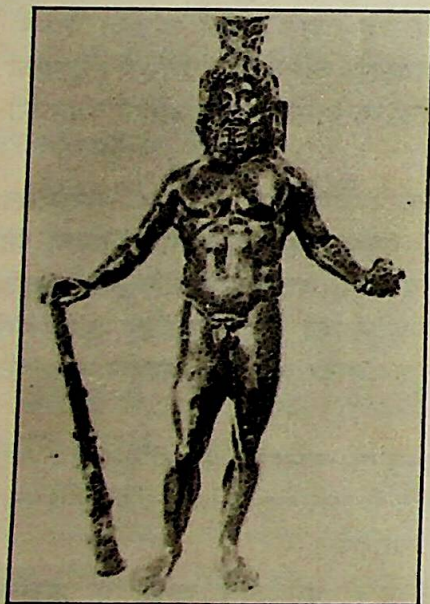
४. गदा
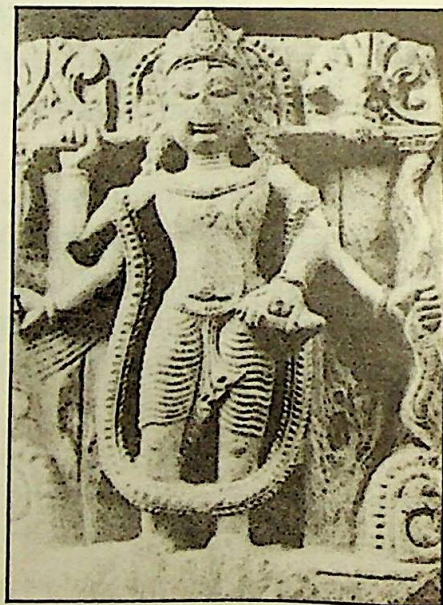
५. परशुधारी परशुराम

**मानसोल्लासे—**

**गदां लोहमयीं कुर्याद् दारुसारमयीं तथा। घनेन निर्मितां वापि रत्नकाञ्चनभूषिताम्॥ १८९॥**
**स्थूलोदरीं च स्थूलाग्रां समदन्तां परां शुभाम्। प्रगृह्य मूलदेशे तु खड्गवद् दृढमुष्टिना॥ १९०॥**
**भ्रामयेत् करयुग्मेन करेणैकेन वा पुनः। विचरेन्मण्डलैश्चित्रैः सव्यैश्चापसव्यकैः॥ १९१॥**
**गतागतैश्च गोमूत्रैरुपप्लवन्नुत्प्लुतैरपि। पातयन् परघातांश्च प्रहाराशाश्च दर्शयेत्॥ १९२॥**
**उपन्यस्तैरपन्यस्तैरावर्तपरिवर्तनैः। दर्शयेत् तु गदाविद्यां विनोदाय महीपतिः॥ १९३॥**

*—मानसो० भाग २, अ० १, विंशतिः ४*

**नीतिप्रकाशिकायाम्—**

**गदा शैक्यायसमयी शतारपृथुशीर्षका। [१]शङ्कुप्रावरणा घोरा [२]चतुर्हस्तसमुन्नता॥ २९॥**
**रथाक्षमात्रकाया च किरीटाञ्चितमस्तका। सुवर्णमेखला गुप्ता गजपर्वतभेदिनी॥ ३०॥**
**मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च। अस्त्रयन्त्राणि चित्राणि स्थानानि विविधानि च॥ ३१॥**
**परिमोक्षं प्रहरणं वर्जनं परिधावनम्। अभिद्रावणमाक्षेपं अवस्थानं सविग्रहम्॥ ३२॥**
**परावृत्तं सन्निवृत्तमवप्लुतमुपप्लुतम्। दक्षिणं मण्डलं चैव सव्यं मण्डलमेव च॥ ३३॥**
**आविद्धञ्च प्रविद्धञ्च स्फोटनं ज्वालनं तथा। उपन्यस्तमपन्यस्तं गदामार्गाश्च विंशतिः॥ ३४॥**

*—नीति० प्र० अ० ५*

---

**मानसोल्लास में**—लौह, दारुसार (पक्की लकड़ी) अथवा घन (इस्पात) इन द्रव्यों से गदा का निर्माण करे जोकि स्वर्ण एवं रत्न आदि से सुभूषित हो॥ १८९॥

गदा का उदर (मध्यभाग) मोटा और अग्रभाग भी मोटा, एवं जिसके दन्त (कोने) समान (छह, आठ, सोलह) हों, ऐसी सुन्दर गदा को मूल से तलवार के समान दृढ़ मुष्टि से पकड़े॥ १९०॥

एक हाथ अथवा दोनों हाथों से पकड़कर गदा को घुमावे। गदा के पवित्रे, सव्य, अपसव्य, गत, प्रत्यागतादि पैंतरों का राजा विनोद के लिये प्रदर्शन करे॥ १९१-१९३॥

**नीतिप्रकाशिका में**—गदा वज्रसार या लोहे की सैकड़ों (बहुत-से) अरों युक्त मोटे शिरवाली, शङ्कु (कीलों से युक्त) भयङ्कर चार हाथ लम्बी, रथ के धुरे के समान मोटी, मस्तक पर मुकुटवाली, सोने की मेखला से मंढी हुई, हाथी और पर्वतों का भी भेदन करनेवाली होती है॥ २९-३०॥

इसके मण्डल, पैंतरे विविध प्रकार के हैं जैसे—गत (आगे बढ़ना) प्रत्यागत (पीछे हटना), अस्त्र-यन्त्र (मर्मस्थल पर प्रहार करना), अनेक पैंतरों से चलना, गदा को घुमाना, प्रहार मारना, शत्रु के प्रहार को अपनी गदा से रोकना, चारों ओर दौड़ना, प्रतिपक्षी की ओर दौड़कर जाना, उछलकर वार करना, स्थिर रहना, पुनः उठकर शत्रु से युद्ध करना, पीछे लौटना, शत्रु के निकट जाना, उलटी छलाङ्ग मारना, कूदकर जाना, दायें-बायें पैंतरों को चलना, आविद्ध, प्रविद्ध, स्फोटन, ज्वालन, अपन्यस्त, उपन्यस्तादि गदा के बीस पैंतरे हैं॥ ३१-३२-३३-३४॥

---

१. (क) कौटिल्यार्थशास्त्रे कंटकयुक्ता गदा स्पृक्तलेत्युक्ता। अस्या गणना चलयन्त्रेषु कृतेति चिन्त्यम्।
*(कौ० आयुधागाराध्यक्षप्रकरणम्)*

(ख) तस्य क्रुद्धस्य रोषेण गदां तां बहुकण्टकाम्। पातयामास धूम्राक्षो मस्तकेऽथ हनूमतः॥
*—रामा० युद्ध० ५२ / ३४*

२. शैक्यां तात चतुष्किष्कुं षडस्रामितोजसाम्। *—महा० उद्योगपर्व ५१ / २८*
अत्रापि चतुष्किष्कुशब्देन चतुर्हस्त एव गदामानमङ्गीकृतम्।

**अग्निपुराणे—**

सत्यागमावदंशश्च वराहोद्धूतकं तथा। हस्तावहस्तमालीनमेकहस्तावहस्तके ॥ १९ ॥
द्विहस्तबाहुपाशे च कटिरेचितकोद्गते। उरोललाटघाते च भुजाविद्धाधमान्तथा ॥ २० ॥
करोद्धूतं विमानञ्च पादाहतं विपादिकम्। गात्रसंश्लेषणं शान्तं तथा गात्रविपर्ययः ॥ २१ ॥
ऊर्ध्वप्रहारं घातञ्च गोमूत्रं सव्यदक्षिणे। पारकं तारकं दण्डं करवीरान्धमाकुलम् ॥ २२ ॥
तिर्यग् बन्धमपामार्गं भीमवेगं सुदर्शनम्। सिंहाक्रान्तं गजाक्रान्तं गर्दभाक्रान्तमेव च ॥ २३ ॥
गदा कर्माणि जानीयात्........ *—अग्नि पु० अ० २५२*

**महाभारते—**

मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥ १७ ॥
अस्त्रयन्त्राणि चित्राणि स्थानानि विविधानि च। परिमोक्षं प्रहाराणां वर्जनं परिधावनम् ॥ १८ ॥
अभिद्रवणमाक्षेपमवस्थानं सविग्रहम्। परिवर्तनं संवर्तमवप्लुतमुपप्लुतम् ॥ १९ ॥
उपन्यस्तमपन्यस्तं गदायुद्धविशारदौ ॥ २० ॥ *—महा० शल्यपर्व अ० ५७*
गदाहस्तौ ततस्तौ तु मण्डलावस्थितौ बली। दक्षिणं मण्डलं राजन् धार्तराष्ट्रोऽभ्यवर्तत ॥ २५ ॥
सव्यं तु मण्डलं तत्र भीमसेनोऽभ्यवर्तत।
( तत्रैव भीमदुर्योधनयोर्गदायुद्धवर्णनम् )

**एतेषामुपरि भारतभावदीपटीका—पृष्ठ १०७**

( १ ) मण्डलानि—शत्रोः परिवेष्टनानि परितो भ्रमणानि।
( २ ) गतम्—शत्रोः सम्मुखगमनम्।
( ३ ) प्रत्यागतम्—आभिमुख्यमत्यजत एवापसरणम्।
( ४ ) अस्त्रयन्त्राणि—कंचिन्मर्मदेशमाक्षिप्य येन शत्रोरुत्क्षेपणमपक्षेपणं च क्रियते तदस्त्रयन्त्रम्। अस्यते क्षिप्यते अनेनेत्यस्त्रं तच्च तद्यन्त्रं निग्रहणं चास्त्रयन्त्रमिति समासः।
( ५ ) स्थानानि—तेषामेवोपयोगीनि मर्मदेशादीनि।

---

**भारतभावदीपटीका में आये गदायुद्ध के दावों का वर्णन—**

१. मण्डल—शत्रु को घेरने के लिये चारों ओर पैंतरा चलना।
२. गत—शत्रु के सामने जाना।
३. प्रत्यागत—शत्रु के सामने से न हटते हुए ही पैंतरा चलकर पीछे जाना।
४. अस्त्रयन्त्र—अपनी गदा का प्रहार शत्रु के किसी मर्मस्थल को देखकर जब किया जाये और शत्रु ऊपर उछले या प्रहार से आहत होकर नीचे बैठ जाय उसे अस्त्रयन्त्र दाव कहते हैं। जिससे फेंका जाय उसे अस्त्र और जिससे शत्रु को वश में किया जाय उसे यन्त्र कहते हैं, इन दोनों का समास अस्त्रयन्त्र होता है।
५. उन अस्त्रयन्त्र इत्यादि दावों के उपयोगी अन्य मर्मस्थानों में प्रहार करने के दाव।

( ६ ) परिधावनम्—वेगेन सव्यापसव्यकरणम्।
( ७ ) अभिद्रवणम्—वेगेनाभ्यगमनम्।
( ८ ) आक्षेपम्—परयत्नस्य तत्पातनहेतुता सम्पादनम्।
( ९ ) अवस्थानम्—अचाञ्चल्यम्।
( १० ) अविग्रहम्—शत्रावुत्थिते पुनस्तेन सहयुद्धकरणम्।
( ११ ) परिवर्तनम्—शत्रुं प्रहर्तुं परितः प्रसरणम्।
( १२ ) संवर्तम्—शत्रुप्रसरस्यावरोधनम्।
( १३ ) अवप्लुतम्—प्रहारवञ्चनार्थं नम्रीभूय निस्सरणम्।
( १४ ) उपप्लुतम्—तदेवार्वाग्गमनयुक्तम्।
( १५ ) उपन्यस्तम्—उपेत्यायुधप्रक्षेपः।
( १६ ) अपन्यस्तम्—परावृत्य पृष्ठतः कृतेन हस्तेन शत्रोस्ताडनम्॥
( १७ ) कौशिकान्—कुश उन्मत्तस्तदाचरितान् वञ्चयित्वा प्रहरणम्।

गदा के समान ही दण्ड, परिघ और मुद्‌गर आदि का प्रहार किया जाता है। शक्ति-क्षीणता के कारण ही गदा के स्थान पर दण्ड (लाठी) का प्रचलन हुआ। इसके सञ्चालन की विधि भी गदा से मिलती है। इसलिये आगे दण्ड का वर्णन किया जायेगा।

## दण्ड

यह मानव का आदि शस्त्र है। सभी स्थानों में सुलभ होने से सर्वत्र इसका प्रयोग देखा जाता है। सर्वप्रथम अथर्ववेद में सर्पादि को दण्ड से मारना तथा आघात की औषध करना—इनका सङ्केत दिया है।[१]

---

६. परिधावन—वेगपूर्वक दायें बायें जाना।
७. अभिद्रवण—वेगसहित शत्रु के सामने जाना।
८. आक्षेप—दूसरे के द्वारा किये हुए प्रहार को व्यर्थ (काटना) करने का प्रयत्न करना।
९. अवस्थान—स्थिर होकर लड़ना।
१०. अविग्रह—शत्रु के उठ खड़ा होने पर पुनः उसके साथ युद्ध करना।
११. परिवर्तन—शत्रु पर प्रहार करने के लिये उसके चारों ओर जाना।
१२. संवर्त—शत्रु के आगे बढ़ने को रोकना।
१३. अवप्लुत—शत्रु के प्रहार को रोकने के लिये नीचा होकर निकलना।
१४. उपप्लुत—उसी प्रकार प्रहार को पीछे हटकर रोकना।
१५. उपन्यस्त—शत्रु के निकट आकर गदा से प्रहार करना।
१६. अपन्यस्त—घूमकर पीछे किये हुए हाथ से शत्रु को मारना।
१७. कौशिकान्—उन्मत्त के समान शत्रु को धोखा देकर प्रहार करना।

---

१. अथर्व० ५।५।४, १०।४।९

रामायण में राक्षसों द्वारा वानर वीरों का संहार दण्ड तथा अन्य शस्त्रास्त्रों से करने का वर्णन मिलता है।[१] इसी भाँति वानरों द्वारा वृक्षों को उखाड़ उनका गदा एवं दण्ड की भाँति प्रयोग करने का उल्लेख है। वहाँ लोहे के दण्ड, मूसल और लाठी का प्रयोग किया गया है।[२]

श्रीकृष्णजी की नारायणी सेना दण्ड-प्रहरण में निपुण थी। महाभारत में अनेक स्थलों पर लाठी, लगुड और मूसल तथा लोहे के दण्डों का प्रयोग मिलता है।[३]

यादवों का मदिरापान द्वारा विनष्ट होने का समाचार जानकर अर्जुन द्वारिका जाकर उनकी स्त्रियों, बच्चों और वृद्धजनों को लेकर जब इन्द्रप्रस्थ लौट रहे थे तब मार्ग में उन्हें किरातों ने लूट लिया। वे सभी लठ्ठधारी थे।[४]

शान्तिपर्व में दण्ड का आलङ्कारिक वर्णन किया है।[५] तदनुसार भगवान् शिव ने चिरकाल तक समाधिस्थ रहने के पश्चात् अपने आपको दण्डरूप में उत्पन्न किया। यह दण्ड महादेवजी ने विष्णु को धर्मरक्षार्थ प्रदान किया। विष्णु ने अङ्गिरा को, अङ्गिरा ने इन्द्र को, इन्द्र ने मरीचि को, मरीचि ने भृगु, भृगु ने ऋषियों को, ऋषियों ने लोकपाल, लोकपाल ने क्षुप और क्षुप ने मनु को यह दण्ड प्रदान किया।

खड्ग, धनुष, गदा, शक्ति, त्रिशूल, मुद्गर, बाण, मूसल, परशु, चक्र, पाश, दण्ड, ऋष्टि, तोमर तथा दूसरे जो कोई प्रहार करने योग्य अस्त्र-शस्त्र हैं उन सबमें दण्ड ही सर्वात्मारूप से मूर्त्तिमान् होकर जगत् में विचरता है।[६] इसी को प्रतीक मानकर लोक में दण्ड देना संज्ञा का व्यवहार प्रसिद्ध हुआ।

आकाशभैरव,[७] अपराजितपृच्छा[८] और नीतिप्रकाशिका[९] में अन्य आयुधों की गणना करते समय दण्ड को भी संगृहीत किया है।

भारतीय परम्परा के अनुसार बालक के गुरुकुल में विद्याध्ययन के लिये प्रविष्ट होने के समय ही वेदारम्भ-संस्कार के समय उसे दण्ड धारण करवाया जाता था।

---

१. गदाभिः पट्टिशैर्दण्डैरायसैर्मुसलैरपि। —वा० रा० युद्ध० ५१।२४

२. (क) पाशमुद्गरदण्डैश्च। —वा० रा० युद्ध० ७९।५

(ख) यष्टिभिर्विविधैश्चक्रैः। —वही ८५।२६

३. महा० द्रोण० १४८।४५, १५।२८

कर्णपर्व १८।३७, ७७।१५

४. ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवस्ते सहस्रशः। —मौसलपर्व ७।४९

५. महा० शान्ति० अ० २२

६. महाभारत शान्तिपर्व अ० २२

७. द्वादशं लगुडं प्रोक्तमयःशङ्कुभिराचितम्। —आ० भ० १०५।६

८. दण्डः स्यात् खड्गमानतः। —अ० पृ० २३५।३१

९. लगुडः सूक्ष्मपादः स्यात् पृथुवंशः स्थूलशीर्षकः। लोहबद्धाग्रभागश्च ह्रस्वदेहः सुपीवरः॥

दन्तकायः दृढाङ्गश्च तथा हस्तद्वयोन्नतः। —नी० प्र० ४।४३-४४

## दण्ड का स्वरूप

नीतिप्रकाशिका में दण्ड को निचले भाग में पतला, सिरे पर स्थूल, बाँस निर्मित, अग्रभाग में लोहे की श्याम (छल्ला) डला हुआ, सुदृढ़ और दो हाथ लम्बाईवाला बतलाया है। इसकी प्रहरण क्षमता को बढ़ाने के लिये इसमें कीलें भी ठोक दी जाती थीं।

## दण्ड-सञ्चालन

नीतिप्रकाशिका के अनुसार दण्ड को ऊपर उठाना, शत्रु पर निपातन (गिराना), प्रेषणं (चूर्ण बनाना, टुकड़े-टुकड़े करना) और प्रोथन (मारना) ये चार गतियाँ हैं।[१] अग्निपुराण में, भिन्दिपाल से जितने कार्य लिये जाते हैं उतने ही कार्यों में दण्ड का भी प्रयोग होता है, ऐसा उल्लेख किया है।[२] अभ्यास के लिये तिनकों से बनी हुई, चर्म से आवेष्टित मानव की आकृति बनाकर दाहिने हाथ से नये दण्ड को पकड़कर उठाये और दोनों हाथों से जोर से प्रहार करे। जब इस कार्य को बिना कष्ट के कर सके तो एक ही प्रहार में शत्रु का वध हो जायेगा, ऐसा निश्चय जानना चाहिये।[३]

देवताओं की आयुध गणना में दण्ड को यम का आयुध बतलाया है। शिव को भी पिनाकपाणि के नाम से जाना जाता है। निरुक्त में पिनाक दण्ड को ही कहा है।[४]

---

१. उन्नामनं पातनं चैव पेषणं प्रोथनं तथा। —नी० प्र० ४।४४

२. अग्निपु० २५२।१५

३. अग्निपु० २५१।११

४. रम्भः पिनाकमिति दण्डस्य। पिनाकं प्रतिपिनष्टि एतेन।
कृत्तिवासाः पिनाकहस्तोऽवततधन्वा। —नि० अ० ३

# दशम अध्याय

अभी तक वाशिष्ठ धनुर्वेद में कहे सात युद्धों में से छह का वर्णन, आयुधों की रचना, चलाने की विधियाँ और अन्य आवश्यक उल्लेख किया गया है। इस अध्याय में अन्य अवशिष्ट अस्त्र-शस्त्र जिनका वर्णन औशनशधनुर्वेद, नीतिप्रकाशिका और अपराजितपृच्छा में किया गया है, उनकी चर्चा की जायेगी। यद्यपि कालक्रम से उनके नामों के स्थान पर दूसरे नाम प्रचलित हो गये हैं और देशभेद के अनुसार रचना में भी अन्तर आ गया है, फिर भी उनकी सत्ता से निषेध नहीं किया जा सकता। उनमें से जिनका वर्णन हो चुका उन्हें छोड़कर नीतिप्रकाशिका और औशनस धनुर्वेद में कहे क्रम से वर्णन किया जायेगा।

## परशुः

**औशनसधनुर्वेदे—**

**जमदग्निं प्रति शुक्रः प्रोवाच—यथोपदेशमुपदिश्यमानं निबोध परशोर्द्रव्यं चोत्तममध्यमाधमानाम्। नराणां सपाणिः पाणिमुक्तश्चेति द्विकर्मा परशुर्भवति। तत्र पञ्चाशत्पलिकः श्रेष्ठश्चत्वारिंशतपलिको मध्यमः, त्रिंशत् पलिकः कनिष्ठ इति। जातप्रमाणस्य पुंरुषस्य सर्वायसमपारस्त्रिविधः परशुर्भवति। श्रेष्ठस्य सार्धचतुरङ्गुलं मूलं, सार्धत्र्यङ्गुलमूलं मध्यमस्य, सार्धद्व्यङ्गुलं निकृष्टस्य मूलं विस्तृतं भवति तथा मध्यं सार्द्धपञ्चाङ्गुलं विस्तृतं चोत्तममध्यमकनिष्ठानां भवति। तथाङ्गमपि पञ्चदशाङ्गुलमुत्तमस्य, सार्धत्रयोङ्गुलं मध्यमस्य, द्वादशाङ्गुलायामं निकृष्टस्येति परशोः फलम्। तथोत्तमं द्वादशाङ्गुलायामं, मध्यमं दशाङ्गुलायाममधममष्टाङ्गुलायाममित्येवमपि त्रिविधं भवति। कुणपदण्डप्रमाणमुत्तममध्यम कनिष्ठत्वभेदात् त्रिविधम्। सल्लकी धवाशोकार्जुनशिरीषशिंशपासनराजवृक्षेन्द्रवृक्षविषतिन्दुकप्रभृतीनां द्रुमाणां दण्डः प्रायो भवेत्। यस्तु सपाणिः परशुः स यथाकामं प्रयोज्य इति।**

*—वीर मि० ल० पृष्ठ ३११*

---

**औशनस धनुर्वेद में**—जमदग्नि के प्रति शुक्र बोले—बड़ों के उपदेशानुसार परशु का द्रव्य और प्रमाण समझिये।

परशु तीन प्रकार का होता है, उत्तम, मध्यम और अधम। सपाणि (हाथ में रहनेवाला) और पाणिमुक्त (हाथ से छोड़ा जानेवाला) इन दो कार्यों के लिये दो प्रकार के परशु होते हैं। पचास पल का उत्तम, चालीस का मध्यम और तीस पल का अधम होता है। पूरे पुरुष की लम्बाईवाला, सारा लोहे से बना हुआ और अच्छी धारवाला तीन प्रकार का परशु होता है। उत्तम परशु का मूल (दस्तेवाला भाग) साढ़े चार अङ्गुल, मध्यम का साढ़े तीन और अधम का अढ़ाई अङ्गुल मोटा होता है। इसी प्रकार उत्तम, मध्यम और अधम का मध्यभाग साढ़े पाँच अङ्गुल चौड़ा होता है। बारह अङ्गुल लम्बाईवाला परशु उत्तम, दस का मध्यम और आठ अङ्गुल लम्बा अधम होता है। इसके भी तीन भेद होते हैं। कुणप के दण्ड के प्रमाणसदृश इसका दण्ड भी तीन प्रकार का होता है। सल्लकी, धव, अशोक, अर्जुन, शिरस, शीशम, साल, राजवृक्ष, देवदारु और आबनूस आदि वृक्षों का दण्ड प्रायः होता है। जो सपाणि परशु है वह इच्छानुसार प्रयोग

**नीतिप्रकाशिकायाम्—**

**परशुः सूक्ष्ममुष्टिः स्याद्विशालास्यः पुरोमुखः। अर्धचन्द्राग्रकोटिस्तु मलिनाङ्गः स्फुरन्मुखः॥ ९॥**
**सत्सरुपादः सशिखरः बाहुमानोन्नतां कृतिः। पातनं छेदनञ्चेति गुणौ परशुमाश्रितौ॥ १०॥**

**अग्निपुराणे—**

**करालमवघातश्च दंशोपप्लुतमेव च। क्षिप्तहस्तं स्थितं शून्यं परशोस्तु विनिर्दिशेत्॥ १३॥**
*—अग्निपु० अ० २५२*

**अथर्ववेदे—**

**तीक्ष्णीयांसः परशोरग्ने तीक्ष्णतरा उत। इन्द्रस्य वज्रात्तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः॥**
*—अथर्व० ३।१९।४*

**अपराजितपृच्छायाम्—अर्धचन्द्रोपमः परशुस्तद् दण्डः खड्गमध्यतः॥** *—पृष्ठ ५९९*

## तोमर

**औशनसधनुर्वेदे—**

**शुक्रो भगवानुवाच जमदग्निं प्रति—वत्स निबोध यथा प्रश्नमुच्यमानम्। तत्र दण्डान्वितं सर्वलोहं चेति तोमरं द्विविधं भवति। यत् तोमरं सदण्डं लक्ष्यपाते च भवेत्। यत् तोमरं सर्वायसं तत् कार्यपाते प्रयोजयेत्। तच्च निकृष्टमध्यमोत्तमं भूयस्त्रिविधं भवति। तत्र चतुर्हस्तप्रमाणं निकृष्टं, सार्द्धचतुर्हस्तप्रमाणं मध्यमं, पञ्चहस्तप्रमाणं तूत्तमं भवति। तथा च कलनायां चाद्यं,**

---

किया जा सकता है।

**नीतिप्रकाशिका में**—परशु सूक्ष्म मुष्टिवाला, विशालमुख और आगे की ओर बढ़ा हुआ, अर्धचन्द्र के आकार सदृश अग्रभाग-(कोटि)-वाला, मैला रङ्ग, चमकता मुख (धार) मूठ के ही पैरवाला, एक बाहुमात्र लम्बा होता है। पातन और छेदन ये दो ही इसकी गतियाँ हैं।

**अग्निपुराण में**—कराल, अवघात, दंश, उपप्लुत, क्षिप्तहस्त, स्थित, शून्य—ये परशु के कर्म हैं।

**अथर्ववेद में**—वे वीर परशु से अधिक तीक्ष्ण, अग्नि से अधिक तीक्ष्ण और इन्द्र के वज्र से (विद्युत्) अधिक तीक्ष्ण हैं, जिनका मैं पुरोहित वा मुखिया हूँ।

(अथर्वा० प० क्षेमकरणकृतभाष्यम्)

अत्र परशोस्तीक्ष्णत्वं प्रदर्शितम्।

**अपराजितपृच्छा में**—अर्धचन्द्र की आकृति के समान परशु होता है। इसके दण्ड का मान खड्ग से आधा (२५ अङ्गुल) होता है, (पृष्ठ ५९९)।

**औशनसधनुर्वेद में**—भगवान् शुक्र जमदग्नि से कहने लगे—हे वत्स! तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर देते हैं सुनो?

तोमर (छवी) दो प्रकार का होता है, एक सदण्ड (डण्डेवाला) दूसरा सर्वलोह (सारा लोहे का)। जो तोमर सदण्ड होता है वह निशाना फोड़ने में काम आता है। जो तोमर सारा लोहे का होता है उसको मारने के काम में प्रयुक्त करें। इसके तीन भेद उत्तमादि होते हैं। चार

**द्वितीयं, तृतीयं चेति त्रिधा। मध्ये द्व्यङ्गुलकलितमेकं स्यान्मध्यमादूर्ध्वं त्र्यङ्गुलकलितं द्वितीयं स्यान्मध्यमात् पूर्वं षडङ्गुलकलितं स्थानकलनया तृतीयं स्यात्। तत्रैकं निकृष्टं, त्र्यङ्गुलं मध्यमं षडुत्तमं कलनायाम्। तथा तोमरास्त्रस्य परिणाहः परः षडङ्गुलो भवति। सार्द्धपञ्चाङ्गुलो मध्यमः, पञ्चाङ्गुलः कनिष्ठ इति त्रयाणां देशानां त्रयश्छन्दाः।**

**तत्रावन्त्यं यत् तोमरं ततः शाणसंस्थानं भवति। मागधं तोमरं योक्त्रसंस्थानं भवति। दाक्षिणात्यं तोमरं वृत्तं भवति। तेषां नामानि तद्देशतो वेदितव्यानि। दण्डस्तु सर्वायसमयस्ताम्रमयो वेणुमयश्चेति त्रिविधो वोच्छकालङ्कृत इति।** *—वीर मि० ल० पृष्ठ ३११*

**नीतिप्रकाशिकायाम्—**

**तोमरः काष्ठकायः स्याल्लोहशीर्षाः सुगुच्छवान्। हस्तत्रयोन्नताङ्गश्च रक्तवर्णस्त्ववग्रहः॥ ३८॥**
**उत्थानं विनिवृत्तिश्च वेधनं चेतितस्त्रिकम्। वलतिशास्त्रतत्वज्ञाः कथयन्ति नराधिप॥ ३९॥**

**अग्निपुराणे—**

**दृष्टिघातं भुजाघातं पार्श्वघातं द्विजोत्तम। ऋजुपक्षेषुणा पातं तोमरस्य प्रकीर्तितम्॥ १०॥**
*—अग्नि० अ० २५२*

## कौ० अर्थ० गणपतिशास्त्रिकृतभाष्ये तोमरलक्षणम्—

**तोमरः शराकृतिशिखः। चतुर्हस्तः कनिष्ठस्तु चत्वारोऽर्धं च मध्यमः।**
**उत्तमः पञ्चहस्तस्तु प्रमाणात् तोमरो भवेत्॥**

---

हाथ प्रमाण का अधम, साढ़े चार हाथ का मध्यम और पाँच हाथ प्रमाण का उत्तम होता है। इसकी आकृति भी प्रथम, द्वितीय, तृतीय तीन प्रकार की होती है। मध्य में दो अङ्गुल की रचनावाला प्रथम, मध्य से ऊपर तीन अङ्गुलवाला द्वितीय और मध्य से पूर्व ६ अङ्गुल की रचनावाला तृतीय होता है। इनमें रचनाकृति में प्रथम निकृष्ट, द्वितीय मध्यम और तृतीय ६ अङ्गुल विस्तारवाला उत्तम होता है।

तोमर का घेरा (चौड़ाई) छह अङ्गुल का उत्तम, साढ़े पाँच अङ्गुल का मध्यम और पाँच अङ्गुल का अधम होता है।

अवन्ती देश के तोमर को आवन्त्य, मगध देश के तोमर को मागध और दक्षिण देश के तोमर को दाक्षिणात्य कहते हैं। आवन्त्य तोमर की आकृति आरे के सदृश (तीक्ष्णाग्र), मागध की योक्त्र (जूए के समान) और दाक्षिणात्य की गोल होती है। उनके नाम उस-उस देश से जानने चाहियें। दण्ड लोहे के, तांबे के और बाँस के होने चाहियें और वे वोच्छकों से भूषित हों।

**नीतिप्रकाशिका में**—तोमर काष्ठ का बना हुआ होता है जिसका सिर लोहे का, गले में घण्टियों का गुच्छा, तीन हाथ ऊँचा, लाल रङ्ग का, नीचे पकड़ने का मुठ्ठा होता है। शस्त्रकारों के मतानुसार इसकी उत्थान, विनिवृत्ति और वेधन ये तीन गतियाँ कही जाती हैं॥ ३८-३९॥

**अग्निपुराण में**—हे द्विजोत्तम! दृष्टि का घात (आँखे फोड़ना), भुजा को घायल करना, पार्श्वभाग को पीड़ित करना, ऋजुपक्ष के इषु-समान प्रहार करना तोमर का कार्य कहा है॥ १०॥

**कौ० अर्थ० में**—तोमर शर की आकृति के समान होता है जोकि चार, साढ़े चार और पाँच हाथ का क्रमशः अधम, मध्यम और उत्तम होता है॥

# कुणपः

**औशनसधनुर्वेदे—**

विंशत्यङ्गुलः षोडषाङ्गुलो द्वादशाङ्गुलश्चेति श्रेष्ठमध्यमाधमत्वेन कुणपोङ्गुलमानेन त्रिविधो भवेत्। एवं पलमानेन विंशतिपलः षोडश पलो द्वादश पलश्चेति बालयोग्यानामेतत् प्रमाणमुक्तम्। अबालानां तु कुणपः त्रिंशत् पलः श्रेष्ठः पञ्चविंशतिपलो मध्यमो विंशतिपलस्तु निकृष्टश्चतुर्विंशत्यङ्गुलः श्रेष्ठो द्वाविंशत्यङ्गुलो मध्यमः कनिष्ठस्तु विंशत्यङ्गुल एव भवेत्। खेटकमपि कुणपस्य त्रिविधमुत्तमं द्वादशाङ्गुलं दशाङ्गुलमध्यमष्टाङ्गुलं तु निकृष्टं बालानामेतत् खेटकम्। अबालानां तु निबोध। विंशत्यङ्गुलमुत्तममष्टादशाङ्गुलं मध्यमं षोडषाङ्गुलं निकृष्टमिति। ऋजुकायो मन्यः सङ्कुचितकोनश्चेति त्रिविधा भवन्ति करणैः कुणपानां तु यानि गात्राणि तानि बलवन्ति निर्व्रणानि च कर्तव्यानि। तेषां मुखानि वेदितव्यानि चतुरस्त्रं कुसुमाग्रं व्रीहिवक्त्रं शिखराग्रं चेति। यः पीनाग्रो निर्व्रणो वलयाढ्यः सुजातो दृढ ऋज्वग्रः शुभशब्दालुः प्रियदर्शश्चेति जातप्राणस्य पुरुषस्य प्रशस्तः कुणपो भवति। *—वीर मि० ल० पृष्ठ ३१३*

# चोत्थक[१] —

चोत्थकस्यार्थे दण्डमुपकल्पयेत्। तस्य ग्रहणविधिर्वक्ष्यते। नाति बालो न वृद्धो न कीटैः कर्शितो न छिन्नो न भिन्नो न सव्रणो न स गर्भाधानकाले नापि फलकाले न पुष्पकाले ग्रहीतः प्रोक्तद्रुमाणां मध्यद्रुमोऽन्यतमः प्रशस्तो यः स्यात् तस्य दण्डस्तमेवंविधं द्रुमक्रमेण ग्रहीत्वा

---

**औशनसधनुर्वेद में**—कुणप अङ्गुलों के माप से तीन प्रकार का होता है। बीस अङ्गुल का उत्तम, सोलह का मध्यम और बारह का अधम। पलों के अनुसार २०, १६, और १२ का उत्तम, मध्यम और अधम होता है। यह बालकों के योग्य कुणप कहा है। बड़ों के लिये कुणप तीस पल का उत्तम, पच्चीस पल का मध्यम और बीस पल का अधम होता है। माप के अनुसार चौबीस अङ्गुल का उत्तम, बाईस का मध्यम और बीस का अधम होता है।

कुणप का खेटक (ढाल) भी तीन प्रकार का होता है। बारह अङ्गुल का उत्तम, दश अङ्गुल का मध्यम और आठ का अधम होता है। यह बालकों का खेटक है, बड़ों का खेटक २० अङ्गुल का उत्तम १८ अङ्गुल का मध्यम और १६ का अधम होता है। सारा सीधा, असमान और सुकड़े हुए कोणोंवाला—इस प्रकार करणों से भी तीन प्रकार का होता है। कुणपों के जो गात्र हैं वे बलवाले और व्रणरहित बनाने चाहियें। उनके मुख चौकोण फूल के अग्र जैसे, धान के अग्र जैसे, वा शिखर के अग्रभाग-सदृश होने चाहियें। जो मोटे अग्रभागवाला हो, व्रणरहित हो, वलययुक्त हो, अच्छा बना हुआ, दृढ़, सीधे अग्रभागवाला शुभ शब्दयुक्त और देखने में सुन्दर हो, ऐसा कुणप पूरे बलवाले पुरुष के लिये उत्तम होता है।

**चोत्थक**—चोत्थक के लिये दण्ड का निर्माण करे। दण्ड के लिये प्रयुक्त काष्ठ बहुत नवीन, बहुत पुराना, घुन लगा हुआ, कटा, फटा, व्रणवाला न हो। न बौर आने के समय, न फल के समय, न पुष्प आने के समय काटा हुआ हो (क्योंकि इन कालों में काष्ट में शक्ति विशेष नहीं

---

१. कुन्तस्याधो भागे प्रहरणं वर्धनाय कलशाकारा याकृतिर्निर्मीयते तं चोत्थकं कथयन्ति।

**समाहितो नात्युष्णे नातिशीतले च देशे विन्यस्य विपर्यासेन संस्थाप्य द्रव्यप्रशान्तो रक्षेत्। ततोऽग्निकर्माणि सुसमाहितं विधाय चतुरस्रं कृत्वा पुनरष्टास्रं षोडशास्रं च कृत्वा तत्सवर्णमयं कारयेत् समन्तादिति दण्डकल्पः। एतेनैव च विधिना सर्वान् प्रकल्पयेत्। दशहस्तो दण्डः श्रेष्ठो नवहस्तो मध्यमः कनिष्ठश्चाष्टहस्तो भवति। तस्य दण्डस्योभयो पक्षयोः सम्यक् प्रयोजयेदागमानुरूपमयोमयमम्भोजकर्णिका संस्थानं वृत्तं वा चतुरस्रं वा प्रमाणेन यथेष्टं फल द्वयम्। तथा हस्तमात्रप्रवेशेन प्रमाणतो द्वौ कोशौ स्यातां द्व्यङ्गुलहीनौ मध्यमस्य चतुरङ्गुलहीनौ कनिष्ठस्य। तेषां त्रयाणामपि मध्ये कल्पना भवति चोत्थकानां पलमानं वक्ष्यते। तत्र पलानां शतमुत्तमस्य नवतिः पलानि मध्यमस्याशितिः पलान्यधमस्य भवन्ति।** —*वीर मि० पृष्ठ ३१४*

## नीतिप्रकाशिकान्तर्गतान्यनुक्तानि शस्त्रास्त्राणि

## मुक्तायुधानि—चतुर्थ सर्गः

**१-२. धनुरिषु (व्याख्याते)**

**३. भिण्डिवालः[1]—**

**भिण्डिवालस्तु वक्राङ्गो नम्रशीर्षो बृहच्छिराः।**
**हस्तमात्रोत्सेधयुक्तः करसम्मितमण्डलः॥ ३०॥**
**त्रिभ्रामणं विसर्गश्च वामपादपुरस्सरम्। पादघाताद्रिपुहणो धार्यः पादातमण्डलैः॥ ३१॥**

---

रहती), उसका दण्ड लेना चाहिये। उस काष्ठ को न बहुत उष्ण और न बहुत ठण्डे स्थान में उलटकर रख दें और सँभालते रहे। फिर अग्निकर्म (तपे हुए लोहे से दागना) में बड़ी सावधानी करके चार कोणोंवाला बनाकर पुनः आठ और सोलह कोणोंवाला बनाकर चित्रकारी करे।

**विधि**—यह दण्ड-निर्माण की विधि हैं। इसी विधि से सब दण्डों को तैयार करें।

दश हाथ का दण्ड श्रेष्ठ होता है। नौ हाथ का मध्यम, आठ हाथ का कनिष्ठ होता है। उस दण्ड के दोनों ओर कमल के सदृश, कनेर के सदृश गोल या चार कोनोंवाले लोहे के दो फल लगावे। उनके दो कोश (म्यान) हों जो एक हाथ परिमाण के हों। मध्यम के दो अङ्गुल कम और अधम के चार अङ्गुल कम माप में हो। उन तीनों के (दण्ड और दो फल) मध्य एक कल्पना गेरु आदि रङ्ग (?) होती है। सौ पलभारवाले चोत्थक उत्तम, नव्वे पलवाले मध्यम और अस्सी पल के चोत्थक अधम होते हैं।

**भिण्डिपाल**—भिण्डिपाल का टेढ़ा शरीर, मोटा एवं झुका हुआ शरीर होता है। यह एक हाथ लम्बा और हाथ जितना मोटा होता है॥ ३०॥ इसको बायाँ पैर आगे करके तीन बार घुमाकर छोड़ा जाता है। पैरों पर प्रहार करने के कारण पदाति सैनिकों के लिये धारण करना उचित है॥ ३१॥

---

१. कौटिल्यार्थशास्त्रेऽस्य हलमुखशस्त्रेषु गणना कृता। गणपतिशास्त्रिणाऽस्यार्थो "भिण्डिपालकुन्त एव पृथुफलः' इति कृतः। परं नीतिप्रकाशिकायाः टीकाकारोऽस्य व्युत्पत्तिं भिण्डिमस्त्रधारणं वलयति श्लथयतीति करोति। केषाञ्चित् मतेनायमाग्नेयास्त्रं भवति। यं भाषायां पिस्तौल इति कथयन्ति। भिन्दिपालः सृगस्तुल्यौ (अमरकोषः २।८।९१) भिन्दिर्द्वादश तालं तु दश कुन्तोऽभिधीयते इति भरताः। तदवच्छिन्नपालोऽपि भिन्दिर्द्वे अश्मप्रक्षेपसाधनस्य 'गोफण' इति ख्यातस्य। नालिकास्त्रस्य इत्यन्ये। (अमरकोष रामाश्रमी व्याख्या पृ० ३८६)

४. शक्तिः ( व्याख्याता )

५. द्रुघणः[1] —

द्रुघणस्त्वायसाङ्गः स्याद्वक्रग्रीवो बृहच्छिराः। पञ्चाशदङ्गुल्युत्सेधो मुष्टिसम्मितमण्डलः॥ ३६॥
उन्नामनं प्रपातश्च स्फोटनं दारणं तथा। चत्वार्येतानि द्रुघणे वल्गितानि श्रितानि वै॥ ३७॥

६-७. तोमरनलिके ( व्याख्याते )

८. लगुडः ( व्याख्यातः )

९. पाशः —

पाशः सुसूक्ष्मावयवो लोहधातुस्त्रिकोणवान्। प्रादेशपरिधिस्सीसगुलिका भरणाञ्चितः॥ ४५॥
प्रसारणं वेष्टनञ्च कर्तनञ्चेति त्रयः। योगाः पाशाश्रिता लोके पाशाः क्षुद्रसमाश्रिताः॥ ४६॥

**शुक्रनीतौ—**

त्रिहस्तदण्डस्त्रिशिखो लोहरज्जुः सपाशकः। —*शुक्र० ४।१०४९*

**अग्निपुराणे—**

दशहस्तो भवेत् पाशो वृत्तकरमुखस्तथा। गुणकार्पासमुञ्जानां भङ्गस्नाय्वर्कवर्मिणाम्॥ २॥
अन्येषां सुदृढानाञ्च सुकृतं च सुवेष्टितम्। तया त्रिंशत् समं पाशं बुधः कुर्यात् सुवर्त्तितम्॥ ३॥
कर्त्तव्यं शिक्षकैस्तस्य स्थानं कक्षासु वै सदा। वामहस्तेन संगृह्य दक्षिणेनोद्धरेत् ततः॥ ४॥
कुण्डल्याकृतिं कृत्वा भ्राम्यैकं मस्तकोपरि। क्षिपेत् तूणमये तूर्णं पुरुषे चर्मवेष्टिते॥ ५॥

---

**द्रुघण**—द्रुघण लोहे का बना हुआ मोटे एवं झुके शिरवाला, पचास अङ्गुल लम्बा, मुष्टि के समान मोटा दण्ड होता है॥ ३६॥

ऊपर उठाना, डालना, फोड़ना और फाड़ना ये चार गतियाँ द्रुघण की होती है।

**पाश**—पाश लोहे के सूक्ष्म तन्तुओं से बना हुआ तीन प्रादेश मान (एक वितस्ति) छल्लों से युक्त एवं सीसे की गोलियों से सुशोभित होता है॥ ४५॥ इसकी फैलाना, लपेटना और काटना ये तीन गतियाँ होती हैं। यह भील, पुलिन्द (बहेलिये) आदि द्वारा प्रयुक्त किया जाता है॥ ४६॥

**शुक्रनीति में**—तीन हाथ लम्बे दण्डवाला, तीन शिखा (गोलों) से युक्त, लोहमयी रज्जु से युक्त पाश होता है।

**अग्निपुराण में पाश**—पाश दश हाथ लम्बा, गोल, अङ्गुली जितना मोटा, कपास, मूँज, भङ्गा, आक, रेशम और अन्य सुदृढ़ रेशों का सुन्दर, तीस हाथ लम्बी रस्सी को बाँटकर बुद्धिमान् पुरुष इसे बनावे॥ २-३॥ शिक्षकों को इसे कक्षा (बगल) में रखना चाहिये।

**प्रयोगविधि**—बायें हाथ से पाश को पकड़कर कुण्डलाकार (गोलाकार) बनाकर दाहिने हाथ से एक बार शिर के ऊपर से घुमाकर चर्म एवं तिनकों द्वारा बनाये हुए पुरुष पर शीघ्रता से फेंके॥ ४-५॥

---

१. द्रुममयो घन इति निरुक्ते। —दैवतकाण्ड अ० ३, पाद ३

विभिन्न प्रकार के पाश
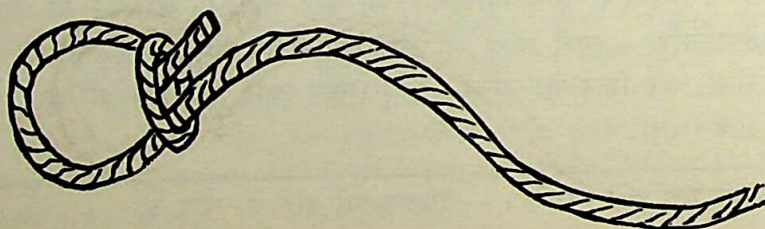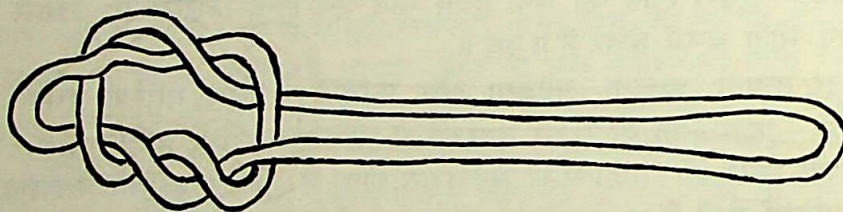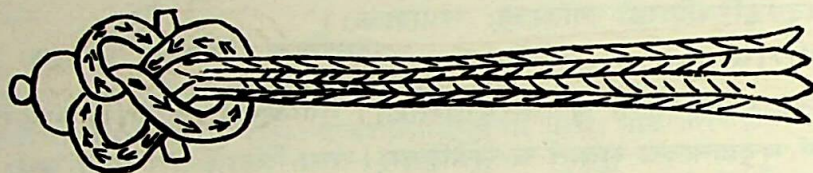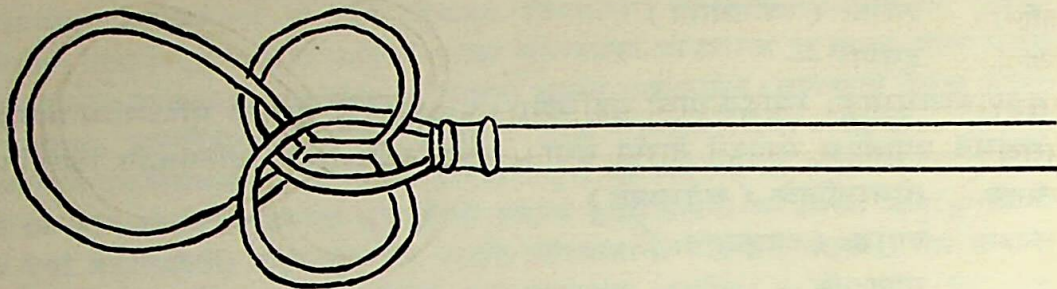
वल्गिते च प्लुते चैव तथा प्रव्रजितेषु च। समयोगविधिं कृत्वा प्रयुञ्जीत सुशिक्षितः ॥ ६ ॥
विजित्वा तु यथान्यायं ततो बन्धं समाचरेत्। —अ० पु० अ० २५१

**पाशस्य कर्माणि—**

परावृत्तमपावृत्तं गृहीतं लघुसंज्ञितम्। ऊर्ध्वात् क्षिप्तमधः क्षिप्तं सन्धारितविधारितम् ॥ ५ ॥
श्येनपातं गजपातं ग्राहग्राह्यं तथैव च। एवमेकादशविधा ज्ञेयाः पाशविधारणाः ॥ ६ ॥
ऋज्वायतं विशालञ्च तिर्यग् भ्रमितमेव च। पञ्चकर्म विनिर्दिष्टं व्यस्ते पाशे महात्मभिः ॥ ७ ॥
—अ० पु० अ० २५२

**१०. चक्रम्—व्याख्यातम्**

**११. दन्तकण्टकः—**

दन्तकण्टक नामा तु लोहकण्टकदेहवान्। अग्रे पृथुस्सूक्ष्मपुच्छश्चाङ्गारकनिभाकृतिः ॥ ४९ ॥
बाहुन्नतः सुत्सरुश्च दण्डकायोग्रलोचनः। पातनं ग्रथनञ्चेति द्वे गती दन्तकण्टके ॥ ५० ॥

**१२. भुशुण्डी ( व्याख्याता )**

**अमुक्तायुधानि ( पञ्चमसर्गः )**

१. अमुक्तप्रथमं वज्रं वक्ष्यामि तव तच्छृणु। अप्रमेय बलं वज्रं कामरूपधरञ्च तत् ॥ १ ॥
दधीचिपृष्ठास्थिजन्यं सर्वतेजप्रशामकम्। वृत्रासुरनिपातार्थं दैवतेजोपबृंहितम् ॥ २ ॥

---

इसी प्रकार चलते हुए, उछलते एवं दौड़ते हुए पुरुष पर सुशिक्षा द्वारा स्थिरचित्त होकर, पाश फेंकने का अभ्यास करें इस विधि से शत्रु को जीतकर उसे बाँध देवे ॥ ६ ॥

**पाश फेंकने की विधियाँ**—परावृत (दूर से फेंकना) अपावृत्त (निकट से फेंकना) गृहीत (शत्रु को पकड़कर पाश में बाँधना) लघुसंज्ञित (चटकी से फेंकना) ऊर्ध्वक्षिप्त (ऊपर से फेंकना), अध:क्षिप्त (नीचे से फेंकना), सन्धारित (भली-भाँति पकड़ना), विधारित (विशेष रीति से गाँठ लगाकर पकड़ना), श्येनपात (बाज के समान झपटकर शत्रु को बाँधना), गजपात (हाथी के सूण्ड के समान लपेटना) और ग्राहग्राह्य (मगरमच्छ की भाँति पकड़ना)—ये ग्यारह विधियाँ पाश की जाननी चाहिएँ ॥ ५-६ ॥

ऋजु, आयत, विशाल, तिर्यक् और भ्रमित—ये पाँच कर्म पाशविज्ञों ने पाश के कहे हैं ॥ ७ ॥

**दन्तकण्टक**—दन्तकण्टक के शरीर में लोहे के काँटे लगे हुए होते हैं। यह आगे से मोटा और पीछे से पतला एवं लाल वर्ण (तांबे का बना हुआ) एक हाथ लम्बा, सुन्दर हत्थे से युक्त और दण्ड से जड़ा हुआ भयङ्कर होता है। पातन और ग्रन्थन ये दो गतियाँ दन्तकण्टक की होती हैं ॥ ४९-५० ॥

हे राजन्! अमुक्त आयुधों में प्रथम वज्र का वर्णन करूँगा—सुनिये। यह वज्र अपरिमित बलवाला, इच्छानुसार आकृति में परिवर्तित होनेवाला, दधीचि की पीठ की अस्थि से बना हुआ एवं अन्य सभी आयुधों के तेज को शान्त (निष्फल) करनेवाला होता है ॥ १ ॥

इसे वृत्रासुर के मारने के लिये सभी देवताओं के तेज से बनाया गया था ॥ २ ॥

**कोटिसूर्यप्रतीकाशं प्रलयानलसन्निभम्। योजनोत्सेधदंष्ट्राभिर्जिह्वया चातिघोरया॥ ३॥**
**कालरात्रिनिकाशं तच्छतपर्वसमावृतम्। पञ्चयोजनविस्तारमुन्नतं दशयोजनम्॥ ४॥**
**असिमण्डलसंवीतं परितस्तीक्ष्णकोटिमत्। तडिद्गौरञ्च पृथुना त्सरुणा च विराजितम्॥ ५॥**
**चालनं धूननञ्चैव छेदनं भेदनं तथा। वल्गितानि च चत्वारि सदा वज्रं श्रितानि वै॥ ६॥**

**अपराजितपृच्छायां वज्रलक्षणम्—**

**वज्रं शूलद्वयं दीर्घमेकविंशतिशूलतः।** —*अ० पृ० २३५ / ३३*

यह करोड़ों सूर्यों के सदृश चमकनेवाला, प्रलयाग्नि के समान संहारक, एक योजन लम्बी दाढ़ों से युक्त, भयङ्कर जिह्वावाला जोकि प्रलय की रात्रि के समान सर्वनाशक सैकड़ों पर्वों से युक्त, पाँच योजन विस्तृत और दश योजन लम्बा होता है॥ ३-४॥

इनके चारों ओर तलवार के समान तीक्ष्ण काँटे लगे हुए होते हैं तथा यह बिजली के समान गौरवर्ण एवं स्थूल मूठ से युक्त होता है॥ ५॥

चालन, धूनन, छेदन और भेदन ये चार गतियाँ वज्र की होती हैं॥ ६॥

**अ० पृ०**—वज्र दो बड़े शूलों से युक्त तथा इक्कीस शूलोंवाला होता है।

## वज्र का स्वरूप

अमुक्त आयुधों में वज्र की गणना की गई है, इसलिये हाथ में पकड़कर इसका प्रयोग होता था, यह सुस्पष्ट है। ऋग्वेद में वज्र को लोहे से बना हुआ[१] तथा तीन सन्धिवाला[२] शतपर्व[३] और अनेक पर्वोंवाला बताया है। जिसे इन्द्र दोनों हाथों में धारण करता है।[४] जिसके प्रहार से सहस्रों लोग काल-कवलित हो जाते हैं।[५] इसे त्वष्टा ने बनाया था।[६]

परन्तु इतना सब-कुछ जानने के पश्चात् भी इसका स्वरूप निर्धारण करना कठिन है। अपराजितपृच्छा के अनुसार इक्कीस काँटों से युक्त गदा जैसी आकृति वज्र की हो सकती है। इस विषय में पौराणिक आख्यान है कि महर्षि दधीचि की अस्थियों से इन्द्र ने वज्र बनाकर वृत्रासुर का संहार किया। मेरुदण्ड की आकृति भी काँटों से युक्त गदा-जैसी ही प्रतीत होती है।

देव प्रतिमाओं में इन्द्र का आयुध वज्र कहा गया है।[७] ऐसी भग्न-प्रतिमा वज्र हाथ में लिये मथुरा संग्रहालय में विद्यमान है। इसमें दोनों ओर तीन-तीन शूल तथा मध्य में पकड़ने के लिये मूठ बनी हुई है। दोनों ओर दो काँटेवाले वज्र भी संग्रहालयों में देखने में आते हैं, परन्तु क्या वस्तुतः ये वज्र ही हैं यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि नीतिप्रकाशिका और अपराजित-पृच्छा में कहे वज्र के स्वरूप से इनकी आकृति नहीं मिलती। सम्भवतः अथर्ववेद में तीन सन्धियोंवाले वज्र का कथन होने से ऐसी कल्पना की गई हो।

१. ऋ० १।८०।१२
२. वज्रेण त्रिषन्धिना (अथर्व० ११।१०।३)
३. वज्रेण शतपर्वणा (ऋ० १।८०।६) और भी ऋ० ६।१७।१०
४. दधे हस्तयो वज्रमायसम् (ऋ० १।८१।४)
५. ऋ० १।८५।९, ६।१७।१०
६. ऋ० ६।१७।१०, १।८५।९
७. मान० अ० १ विं० ३-२ लोक ७७३
८. नीतिप्र० पञ्चम सर्ग, श्लोक १-६

मुद्गर

स्थूण

आस्तर

लवित्र
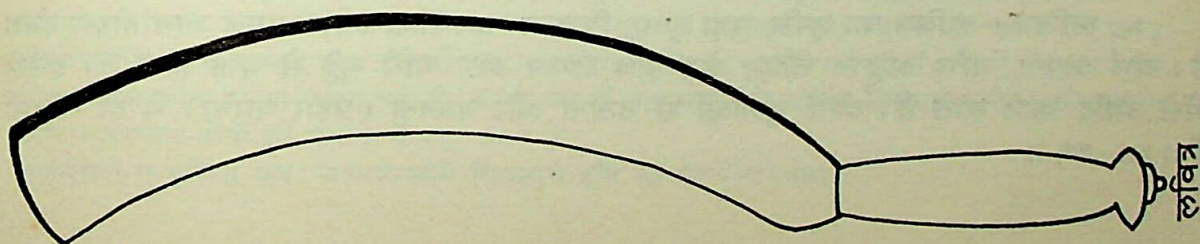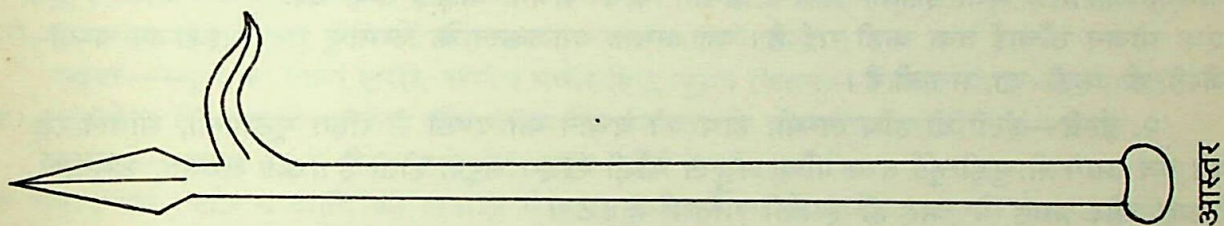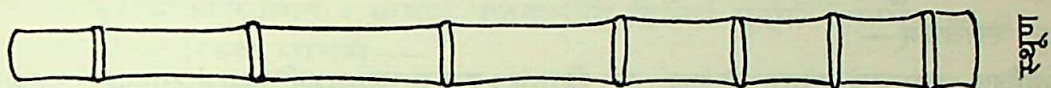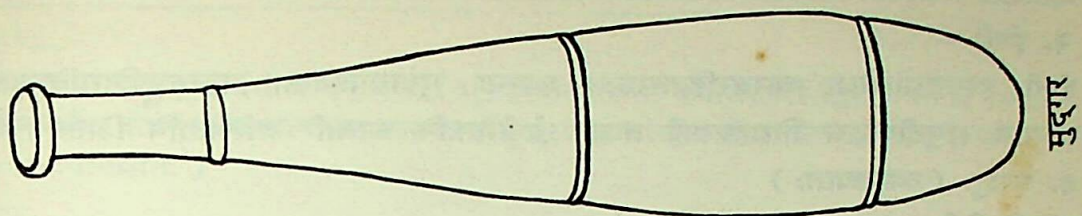
**२. ईली—**

**ईली हस्तद्वयोत्सेधा करत्ररहितत्सरुः। श्यामा भुग्नाग्रफलका पञ्चाङ्गुलिसुविस्तृता ॥ ७ ॥**
**सम्पातं समुदीर्णञ्च निग्रहप्रग्रहौ तथा। ईलीमेतानि चत्वारि वल्गितानि श्रितानि वै ॥ ८ ॥**

**३. परशुः ( व्याख्यातः )**

**४. गोशीर्षम्—**

**गोशीर्षं गोशिरः प्रख्यं प्रसारितपदद्वयम्। अधस्ताद् दारुयन्त्राढ्यमूर्ध्वायः फलकाञ्चितम् ॥ ११ ॥**
**नीललोहितवर्णं तत् त्रिरश्रि च सुसत्सरुः। षोडशाङ्गुल्युन्नतञ्च तीक्ष्णाग्रं पृथुमध्यकम् ॥ १२ ॥**
**सुकृत्य मनवे दत्तं महेन्द्रेण समुद्रिकम्। प्रभुत्वसूचके लोके राज्ञां गोशीर्षमुद्रिके ॥ १३ ॥**
**मुष्टिग्रहः परिक्षेपः परिधीः परिकुन्थनम्। चत्वार्येतानि गोशीर्षे वल्गितानि प्रचक्षते ॥ १४ ॥**

**५. असिधेनुः—व्याख्याता**

**६. लवित्रम्—**

**लवित्रं भुग्नकायं स्यात् पृष्ठे गुरुः पुरः शितम्। श्यामं पञ्चाङ्गुलिव्यामं सार्धहस्तसमुन्नतम् ॥ १८ ॥**
**त्सरुणा गुरुणा नद्धं महिषादिनिकर्तनम्। बाहुद्वयोद्यमक्षेपौ लवित्रे वल्गिते मते ॥ १९ ॥**

---

संस्कृतभाषा में वज्र का अर्थ विद्युत् भी होता है। नीतिप्रकाशिका में वज्र को अमोघ बतलाया है। यह सभी आयुधों को शान्त कर देता है, परन्तु इसका प्रतीकार नहीं किया जा सकता। इसका निर्माण दैव तेज (अग्नि, वायु इत्यादि) से किया जाता है। यह करोड़ों सूर्यों के सदृश चमकनेवाला है तथा इसकी प्रहरण क्षमता पाँच योजन चौड़ाई तथा दश योजन लम्बाई एवं एक योजन ऊँचाई तक कही गई है। यह क्षमता आजकल के परमाणु एवं हाईड्रोजन बम्बों-जैसी ही कही जा सकती है।

**२. ईली**—ईली दो हाथ लम्बी, हाथ को बचाने की दण्डी से रहित मूठवाली, सांवले रङ्ग की एवं आगे से मुड़ी हुई तथा पाँच अङ्गुल चौड़ी खड्ग सदृश होती है ॥ ७ ॥ सम्पात, समुदीर्ण, निग्रह और प्रग्रह ये चार ही इसकी गतियाँ है ॥ ८ ॥

**४. गोशीर्षम्**—गोशीर्ष गाय के शिर सदृश आकृतिवाला, फैले हुए दो पैर, नीला एवं लाल रङ्ग, तीन धार से युक्त, सुन्दर मूठ, सोलह अङ्गुल विस्तृत, तीक्ष्ण अग्रभाग, मध्य में मोटा होता है ॥ ११-१२ ॥

प्राचीन काल में देवराज इन्द्र ने मनु को सम्मानित करके गोशीर्ष मुद्रासहित प्रदान किया, तभी से राजाओं के प्रभुत्व के सूचक गोशीर्ष एवं मुद्रा कहे गये हैं। मुठ्ठी से पकड़ना, फेंकना, परिधी-शत्रु पर सब दिशाओं से वार करना, कुन्थन (मारना) ये चार गोशीर्ष की गतियाँ हैं ॥

**५. लवित्र**—लवित्र का शरीर मुड़ा हुआ, पिछला भाग मोटा और अगला भाग तीक्ष्ण होता है। वर्ण काला, पाँच अङ्गुल चौड़ा, डेढ़ हाथ लम्बा और भारी मुट्ठे से युक्त होता है। इससे भैंसे आदि काटे जाते हैं। दोनों भुजाओं से उठाना और डालना (प्रहार करना) ये दो गतियाँ हैं ॥ १८-१९ ॥

७. आस्तरः[1]—

आस्तरो ग्रन्थिपादः स्याद् दीर्घमौलिर्बृहत्करः। भुग्नहस्तोदरसितः श्यामवर्णो द्विहस्तकः॥ २०॥
भ्रामणं कर्षणञ्चैव त्रोटनं तत्त्रिवल्गितम्। ज्ञात्वा शत्रून् रणे हन्याद् धार्यः सादिपदातिकैः॥ २१॥

८. कुन्तः—( व्याख्यातः )

९. स्थूणः—

स्थूणस्तुर क्तदेहः स्यात्समीपदृढपर्वकः। पुं प्रमाण ऋजुस्तस्मिन्भ्रामणं पातनं द्वयम्॥ २४॥

१०. प्रासः—( व्याख्यातः )

११. पिनाकः—( व्याख्यातः )

१२. गदा—( व्याख्याता )

१३. मुद्गरः—

मुद्गरः सूक्ष्मपादः स्याद्धीनशीर्षस्त्रिहस्तवान्। मधुवर्णः पृथुस्कन्धश्चाष्ट भारगुरुश्च सः॥ ३५॥
सत्सरुर्वर्तुलो नीलः परिघ्याकारसम्मितः। भ्रामणं पातनञ्चेति द्विविधं मुद्गरे श्रितम्॥ ३६॥

**अपराजितपृच्छायां मुद्गरस्य मानम्—**

हस्तग्राह्यश्चोर्ध्वातश्च मुद्गरः षोडशाङ्गुलिः॥ —*पृष्ठ ५९९*

१४. सीरः[2]—

सीरो द्विवक्रो विशिखो लोहपट्टमुखः कृषन्। पुम्प्रमाण स्निग्धवर्णः स्वाकर्षविनिपातवान्॥ ३७॥

---

**७. आस्तर**—आस्तर के पैर में गाँठ, बड़ा शिर, लम्बा हाथ, एक हाथ मुड़ा हुआ तेजधारवाला, श्याम रङ्गवाला और दो हाथ लम्बा अङ्कुश के समान होता है॥ २०॥

घुमाना, खेंचना और तोड़ना ये तीन गतियाँ आस्तर की होती है। इन पूर्वोक्त गुणों को जानकर इसे घुड़सवार और पैदल सैनिकों को धारण करना चाहिये॥ २१॥

**स्थूण**—स्थूण का लाल शरीर, समीप पर्वोंसहित, पुरुष जितना—लम्बा, मोटा बाँस इत्यादि का लठ्ठ होता है। इसकी घुमाना और लक्ष्य पर गिराना ये दो गतियाँ होती है॥ २४॥

**मुद्गर**—मुद्गर सूक्ष्म पैर-(हथेली)-हीन, शीर्ष (कटे हुए शिर) तीन हाथ लम्बा, मधु के समान वर्ण (शीशम आदि की लकड़ी से बना हुआ) मध्य से भारी आठ भार (आठ धड़ी) युक्त मूठ लगा हुआ, नीला गोलाकर बना हुआ होता है। इसकी घुमाना और डालना ये दो गतियाँ होती हैं॥ ३५-३६॥

**अपराजितपृच्छा में मुद्गर का मान**—हाथ में पकड़ने के योग्य ऊपर के भाग में मुद्गर सोलह अंगुल मान का होता है।

**सीर**—सीर (हल) दोनों ओर से मुड़ा हुआ, शिखा से रहित, मुख में लोहे के फालों से

---

१. प्रोफेसर दीक्षितार एवं कर्नल गस्टाव आपर्ट के अनुसार आस्तर आस्ट्रेलिया देश के आदिवासियों का अस्त्र बूमरांग के समान है, जोकि फेंका जाने पर शत्रु को मारकर पुनः वापस आ जाता है, परन्तु नीतिप्रकाशिका में इसकी तीन गतियाँ घुमाना, खेंचना और तोड़ना ये ही दी हैं। इनमें फेंकना और फिर वापस आना इनका सङ्केत नहीं है। हमारे मत में यह अङ्कुश के समान ही आयुध है, जिसे पदाति और घुड़सवार दोनों ही प्रयोग में ला सकते हैं।

२. हलमुसले तु प्रसिद्ध एव। बलरामस्येमे प्रियायुधे इति सुविदितं सर्वेषाम्।

मयूखी
पट्टिश
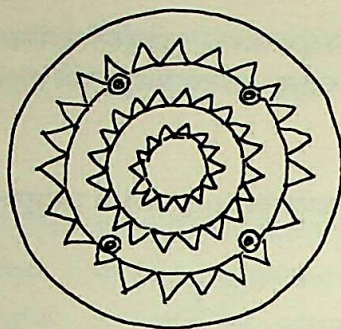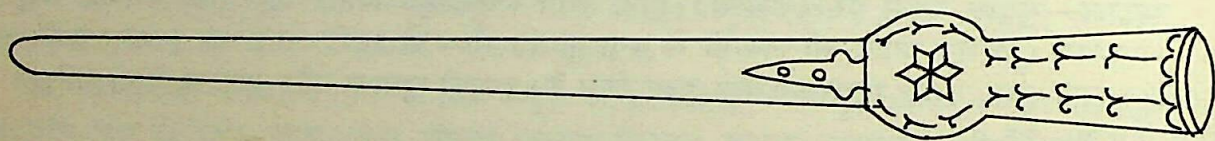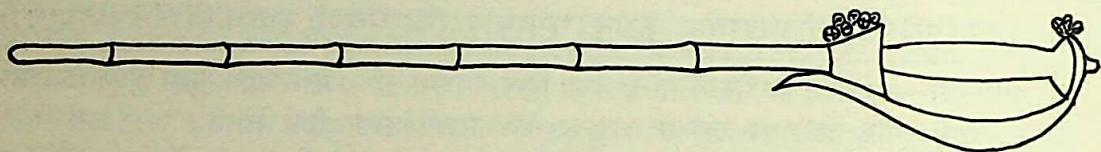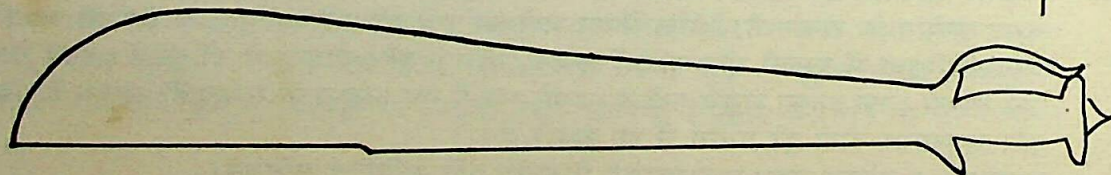
१५. मुसलम्[1]—

**मुसलं त्वक्षिशीर्षाभ्यां करैः पादैर्विवर्जितम्। मूले चान्तेऽतिसम्बन्धः पातनं पोथनं द्वयम्॥ ३८॥**

१६. पट्टिशः ( पटा )

**पट्टिशः पुम्प्रमाणः स्याद् द्विधारस्तीक्ष्णशृङ्गकः। हस्तत्राणसमायुक्तमुष्टिखड्गसहोदरः॥ ३९॥**

**पट्टिशात्मसमो हस्तबुध्नश्चोभयतो मुखः।** *—शुक्र० ४।१०४६*

**पट्टिशो लोहदण्डो यस्तीक्ष्णधारः खुरोपमः। कण्टकछेदनोप्येवं द्विमुखश्च भवत्यसौ॥**

१७. मौष्टिकः—व्याख्यातः *—वैजयन्तिकोषे क्षत्रियाध्यायः*

१८. परिघः[5]—

**परिघो वर्तुलाकारस्तालमात्रः सुतारवः। बलैकसाध्य सम्पातस्तस्मिन् ज्ञेयो विचक्षणैः॥ ४५॥**

१९. मयूखी[6]—

**मयूखी कृतयष्टिः स्यान्मुष्टियुक्ताः नरोन्नता। किङ्कणी संवृता चित्रा फलिका सहचारिणी॥ ४६॥**

२०. शतघ्नीं ( व्याख्यास्यते )

---

जड़ा हुआ, खींचने में समर्थ, पुरुष के जितना लम्बा, चिकना और भली प्रकार खींचने और निपातन योग्य होता है॥ ३६–३७॥

(यहाँ हल से अभिप्राय कृषिकार्य में प्रयुक्त हल से नहीं है। आयुध में प्रयुक्त हल दोनों ओर टेढ़ा तथा लोहे के फलोंवाला मनुष्य जितना ही लम्बा बनाया जाता है। इसकी सहायता से शत्रु को आकर्षित करने, मूसल से प्रहार अथवा अपने वश में किया जाता है। हरिवंश तथा विष्णुपुराण के अनुसार बलरामजी अपने शत्रु को इसी विधि से आकर्षित करके मूसल के प्रहार से मारते थे।[2] इससे उन्होंने हाथियों का भी संहार किया था।[3] हल और मुसल दोनों का एकसाथ प्रयोग होता था, ऐसा प्रतीत होता है।[4] मथुरा संग्रहालय में बलराम की प्रतिमा हलमूसलसहित है।)

**मूसल**—मूसल आँख, शिर, हाथ एवं पैर से रहित (समकाय) दोनों ओर से लोहे की चक्राकार पत्ती से बँधा हुआ होता है, इसकी पातन (शत्रु पर प्रहार करना) और पोथन (शत्रु का संहार करना)—ये दो गतियाँ होती हैं।

**पट्टिश**—पट्टिश की लम्बाई पुरुष जितनी, दोनों ओर धार, तीक्ष्ण मुख हाथ की रक्षार्थ हस्तत्राण (दस्ताना) लगा हुआ तथा यह खड्ग-जैसी ही आकृतिवाला होता है।

**परिघ**—परिघ गोलाकार, चार हाथ लम्बा, सुदृढ़ काष्ठ का बना हुआ होता है, इसको बलपूर्वक उठाना और गिराना ये दो गतियाँ बुद्धिमानों ने कही हैं॥ ४५॥

**मयूखी**—मयूखी बाँस बेंत इत्यादि की बनी हुई मुष्टि से युक्त होती है। इसमें सुन्दर-सुन्दर घण्टियाँ (घुंघरु) लगी हुई होती हैं। इसके साथ ढाल भी रहती है।

---

१. विंशत्यङ्गुलं मुसलं चतुरङ्गुलवृत्तकम्। —अपरा० पृच्छा पृष्ठ ५९९

२. (क) हरिवंशपुराण भविष्य० ९८। २१-२२ (ख) विष्णुपुराण—१२२। ६६

३. वि० पु० ४३। ५८ ४. वि० पु० ४३। ४८

५. जिसे सब ओर घुमाकर मारा जाये उसे परिघ कहते हैं। द्वार में कपाट रोकने के लिये लगाये जानेवाली अर्गली को भी परिघ कहते हैं। उसी के समान स्थूल काष्ठ या लोहे से बने दण्ड को परिघ कहा जाता है।

६. मयूखी शस्त्र को श्री जितेन्द्रकुमार शास्त्री ने 'संस्कृत साहित्य में आयुध' नामक शोधग्रन्थ (पृष्ठ २०९) में वेत्र-चर्म-(फरीगदका)-जैसा माना है।

# उत्तरार्द्ध

## प्रथम अध्याय

### नियुद्ध ( बाहुयुद्ध )

वाशिष्ठ धनुर्वेद में सात युद्धों में अन्तिम बाहुयुद्ध कहा है।[1] अग्निपुराण में इसे अधम युद्धों में गिनाया है।[2] जब लड़ते हुए योद्धाओं के सब अस्त्र-शस्त्र समाप्त हो जाते थे तब अन्य किसी साधन को न पाकर वे मुष्टियुद्ध का आश्रय लेते थे।[3] प्राचीनकाल में जब शरीरबल और द्वन्द्वयुद्ध का बोलवाला था तब सभी योद्धा इसका अभ्यास करते थे। इसे नियुद्ध, बाहुयुद्ध या मुष्टियुद्ध के नाम से जाना जाता है। आजकल का जापानी मल्लयुद्ध जूडो-कराटे और अमेरिकन फ्रीस्टाइल कुश्ती इसी से मिलती-जुलती है, यह हम आगे विचार करेंगे।

इस युद्ध का मूल ऋग्वेद में मिलता है।[4] रामायण में अनेक स्थानों पर वानर वीरों द्वारा मुष्टि का आयुधरूप में प्रयोग किया है।[5] बाली, सुग्रीव, जाम्बवन्त, हनुमान्, रावण और कुम्भकर्ण मल्लयुद्ध के निष्णात योद्धा थे। किष्किन्धा-काण्ड में बाली, सुग्रीव और युद्धकाण्ड में सुग्रीव तथा रावण का मल्लयुद्ध एवं मुष्टियुद्ध रोमाञ्चक, दावपेच से भरा हुआ और दर्शनीय है।[5]

महाभारत काल में भीम और जरासन्ध सुप्रसिद्ध मल्लयोद्धा हुए। उस समय योद्धाओं में सबसे बलिष्ठ भीम था। जिसने जटासुर,[6] हिडिम्ब[7], बकासुर, जीमूत,[8] कीचक[9] और जरासन्ध[10] को मल्लयुद्ध द्वारा ही मार गिराया।

द्रोणपर्व में सात्यकि और भूरिश्रवा का दावपेचों से भरा मल्लयुद्ध उल्लेखनीय है। इन योद्धाओं ने लड़ते हुए मल्लयुद्ध के बत्तीस दावपेचों (विज्ञान) का प्रयोग किया।[11] इससे यह

---

१. सप्तमं बाहुयुद्धं स्यात् (वा० ध० श्लोक ९)

२. अ० पु० २४९।७

३. (क) आयुधक्षयमासाद्य मुष्टियुद्धानि चक्रिरे। (वि० ध० पु० ख० १, अ० २६० श्लोक ६०)
(ख) नियुद्धं चक्रतुर्वीरौ....(वि० ध० पु० १।२६०।८५)

४. (क) नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै। (ऋ० २।८।२), (अथर्व० २०।६०।१८)
(ख) युष्मदेति मुष्टिहा बाहूजूतः—ऋ० ५।५८।४
(ग) ऋ० ८।२०।२०

५.. रामा० कि० काण्ड १६।१७-२९; वही, युद्धकाण्ड ४०।१३-२७

६. महा० आदि० १६३।२६-२७

७. वही, विराट् अ० १२

८. ,, ,, १३।२२-३६

९. कीचकवधपर्व

१०. महा० सभा० २३।११-२३
महाभारत में और स्थल—द्रोण० ११२।३१, १७७।४५, कर्ण० २८।३९-४०, ४८।८०-८१

११. द्वात्रिंशत् करणानि स्युर्यानि युद्धानि भारत। —द्रोण० १४३।४७

प्रतीत होता है कि उस समय यह कला सुप्रसिद्ध एवं विकसित रूप में थी। शुक्रनीति में इसे कला में गिनाया है।[१] शान्तिपर्व में यवन, काम्बोज और मथुरा प्रदेश के लोगों को नियुद्ध में कुशल बतलाया है।[२] हरिवंश[३], विष्णु[४] और भागवत[५] पुराणों में श्रीकृष्णजी एवं बलराम का कंस की सभा में आना और उनके वध के लिये नियत मुष्टि, चाणूर, तोशलादि को पछाड़ना तथा कंस का भी वध करना—इनका विस्तृत वर्णन किया है।

अग्निपुराण में नियुद्ध के ३६ विज्ञानों की गणना की है।[६] इसी भाँति गर्गसंहिता[७], विष्णुधर्मोत्तर महापुराण[८] एवं मत्स्यपुराण[९] में भी मुष्टियुद्ध का वर्णन अनेक बार आया है।

शुक्रनीति में लिखा है कि राजा अपने सैनिकों को समान बलवाले, नियुद्ध में कुशल योद्धाओं के साथ लड़ावे और विविध प्रकार के व्यायाम एवं भोजन द्वारा उनका शारीरिक बल बढ़ाता रहे।[१०] महर्षि पाणिनि के समय में भी यह युद्धक्रीड़ा रूप में प्रचलित था।[११]

श्री सोमदेव सूरि विरचित यशस्तिलक चम्पूकाव्य में चतुरङ्ग मल्ल की प्रशंसा की है जो भुजाओं से घोड़ों, पादप्रहार से पैदल सैनिक, वक्षस्थल से हाथी और रथारूढ़ सैनिकों का संहार करने में चतुर था।[१२]

आजकल इस पुरातन बाहुयुद्ध का रहस्य खोलने के लिये समुचित साहित्य उपलब्ध नहीं है फिर भी भारतभावदीपटीका ने अन्य पुरातन ग्रन्थों से पर्याप्त प्रमाण उद्धृत किये हैं। बारहवीं शताब्दी में लिखा गया अज्ञातकर्तृक, गुजरात, कर्नाटक और तमिलनाडु आदि प्रान्तों में बसे हुए ज्येष्ठी मल्लों (ये आजकल जत्ती कहलाते हैं) की कुलपरम्परा से आया हुआ मल्लपुराण उपलब्ध होता है। इसी समय के आसपास का चालुक्य वंश में उत्पन्न श्री सोमेश्वर महाराज द्वारा लिखित या लिखवाया गया मानसोल्लास नामक ग्रन्थ है, जिसमें मल्ल-विनोद प्रकरण में विविध दावपेचों का सुविस्तृत एवं स्पष्ट वर्णन किया है।

इन दोनों को आधार मानकर रामायण, महाभारत और अग्निपुराण के प्रमाणों से पुष्टि करके नियुद्ध का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

---

१. सन्ध्याघाताकृष्टिभेदैर्मल्लयुद्धं कला स्मृता। शुक्र० ४।३१८
२. तथा यवनकाम्बोजा मधुराभिमताश्च ये। एते नियुद्धकुशला दक्षिणा असिपाणयः॥
३. हरि० पु० विष्णुपर्व ३०।१२-३८
४. वि० पु० ५।२०।६६-७९
५. भागवत पु० स्क० १०।४४
६. अ० पु० २५२।२४-३०
७. गर्गसं० १०।३०।४५
८. वि० ध० पु० १।२६०।६०-६१, १।२६१।८५
९. म० पु० ७०।४५, ११४।२२
१०. शुक्र० ४।८७९
११. अष्टा० ४।२।५७, १।३१ इनके उदाहरणार्थ देखिये काशिका।
१२. यश०च० आश्वास ३ श्लोक ४२२

**नियुद्ध, बाहुयुद्ध या मल्लयुद्ध ये समानार्थक हैं।**[१] **शस्त्रास्त्रों की समाप्ति पर योद्धाओं का परस्पर एक-दूसरे को पकड़कर लात-घूँसे और दावपेच से नीचे गिराकर मारना नियुद्ध कहलाता है।**[२]

**इसके चार भेद हैं**[३]**—धरणिपात—प्रतिपक्षी को भूमि पर गिरा देना, आसुर, नार या मार और युद्ध।** इनमें धरणिपात युद्ध आजकल भी प्रचलित है। युक्ति से दावपेच का प्रयोग करके अथवा स्वयं भूमि पर गिरकर प्रतिपक्षी को गिराना (जैसे जूड़ो का स्टोमक थ्रो और कुश्ती का उलटी पुठ्ठी दाव) धरणिपात कहलाता है। इसमें सीधा ही गिराया जाये ऐसा नहीं है। केवल भूमि पर गिराना ही प्रयोजन है। कंस सभा में श्रीकृष्णजी ने इसी युद्ध की प्रशंसा की है।[४] **जैसे योद्धा को संग्राम में शस्त्रादि के द्वारा सिद्धि प्राप्त होती है वैसे ही रङ्गभूमि (अखाड़े) में प्रतिपक्षी मल्ल को भूमि पर गिरा देनेमात्र से मल्ल को श्रेय (विजय) प्राप्त हो जाता है।**

**जो कोई मल्ल दर्प (घमण्ड) के वशीभूत होकर दूसरे मल्ल को मारता वा अङ्ग-भङ्ग करता है वह दोषी है।**[५] इसी पक्ष का समर्थन करते हुए श्रीकृष्णजी ने कंस के दुराशय मल्लों की निन्दा की है।[६]

**दूसरा युद्ध आसुर युद्ध कहलाता है।** इसमें दूसरे मल्ल का बन्ध इत्यादि लगाकर हाथ-पैर तोड़ना या अन्य अङ्ग-भङ्ग प्रायः होता है। मल्लपुराण में इसके ३२ भेद कहे हैं।[७] केश-आकर्षण, कान-नाक तोड़ना, हाथ-पैर तोड़ना, गला दबाना, अङ्गुली तोड़ना इत्यादि आसुर युद्ध के ही भेद हैं।[८] जापान देश का जूडो-कराटे, चीन का कुंगफू आदि इसी के अन्तर्गत आते हैं।

**तीसरे युद्ध को नार या मार**[९] **युद्ध कहते हैं। इसमें मर्म स्थानों पर प्रहार करके दूसरे मल्ल को मारना ही प्रयोजन है। युद्ध की दृष्टि से इसी का महत्त्व है। अन्य युद्ध सहायक हो सकते हैं।**

---

१. (क) नियुद्धं बाहुयुद्धं स्यात्। —(वैज० कोष, क्षत्रियाध्याय)
   (ख) नियुद्धं बाहुयुद्धे। —अमरकोष

२. (क) नियुद्धं निगृह्यं युद्धम्। —नीलकण्ठशास्त्री महा० सभा० अ० ३३
   (ख) नियुद्धं गतायुधम्। —अग्नि पु० अ० २४९, शुक्र० ४।३१८

३. आद्यं धरणिपातं च आसुरं च द्वितीयकम्। तृतीयं नारमित्युक्तं युद्धं पुनश्चतुर्थकम्॥ —मल्लपु० पृ० ७२

४. बलवतश्च क्रियातश्च बाहुयुद्धविधिर्युधि। निपातानन्तरं किञ्चिन्न कर्तव्यं विजानता॥
   शस्त्रसिद्धिस्तु योद्धानां संग्रामे शस्त्रयोधिनाम्। रङ्गसिद्धिस्तु मल्लानां प्रतिमल्लनिपातजा॥
   —हरि० पु० विष्णुपर्व अ० ३०।१३-१६

५. मल्लपु० १५।१९-२०

६. एतेन बहवो मल्ला निपातानन्तरं हताः। रंगप्रतापकामेन मल्लमार्गश्च दूषितः॥ —हरि० पु० वि० ३०।१२५

७. अथैतद् भासुरं युद्धं द्वात्रिंशद् भेदभीषणम्। —म० पु० १५।५

८. येन केन प्रकारेण मारयुद्धं समागता। —म० पु० १५।११

९. म० पु० १५।१३

चौथा युद्ध धर्मयुद्ध नाम से प्रसिद्ध है। इसमें केवल प्रदर्शन का प्राधान्य रहता है तथा निषिद्ध दावपेचों का प्रयोग नहीं किया जाता। इसमें दोनों मल्ल हाथ में वज्रमुष्टि आयुध पहनकर एक-दूसरे पर प्रहार करते हैं और कभी-कभी बन्धों का भी प्रयोग किया जाता है।

प्राचीनकाल में हनुमान्, जाम्बवन्त, भीम और जरासन्ध—ये चार मल्लयुद्ध के निष्णात योद्धा हुए। उनके नामों के अनुसार मल्लयुद्ध के चार भेद माने जाते हैं। जहाँ दावपेच लगाकर प्रतिपक्षी को आसमान दिखा दिया जाये, उसे हनुमन्ती कुश्ती कहते हैं। इसका प्रचलन हनुमान्जी ने किया था।

जहाँ दावपेच की अपेक्षा बलपूर्वक प्रतिपक्षी पर नियन्त्रण करके उसे विवश किया जाये इसे भीमसेनी कुश्ती कहते हैं।

अङ्गभङ्ग करनेवाली कुश्ती जरासन्धी और जिसमें बन्ध लगाये जायें, उसे जाम्बवन्ती कुश्ती कहते हैं।

नियुद्ध का सामान्य परिचय देने के पश्चात् अब मल्लपुराण एवं मानसोल्लास में कहे मल्ल-विनोद प्रकरण को आधार मानकर मल्लों की प्रकृति, विविध श्रम (व्यायाम), रङ्गभूमि और दिनचर्या का उल्लेख करके मल्लयुद्ध के विज्ञान, मल्लविनोद में कहे विज्ञानों का सचित्र वर्णन और भारतभावदीपटीका के कथनानुसार अन्य विज्ञानों का चित्रसहित वर्णन किया जायेगा।

## मल्लानां प्रकृतयः

**भवन्त्यष्टविधा[1] मल्लाः कथयामि यथा तथा। युवा च प्राणवांश्च ज्येष्ठी चैव तथा परः ॥ १ ॥**
**अपरश्चान्तरज्येष्ठी तथा गोपकुलोऽपि च। भविष्यो बालवृद्धौ च कथिताष्टधा इमे ॥ २ ॥**
**चतुर्भेदैश्च भिन्नास्ते शत्रोर्जयगुणोदयैः। गजसिंहो वृषश्चैव मृगोऽपि तथा परः ॥ ३ ॥**

*—मल्लपुराण अ० ५*

**मानसोल्लासे—**
**मल्लास्तु त्रिविधा ज्ञेया उत्तमो मध्यमोऽधमः ॥ ७९ ॥**
**उत्तमो ज्येष्ठिको नाममध्यमोऽन्तरज्येष्ठिकः। कनिष्ठो गोवलो ज्ञेयः कायप्राणगुणोत्तरात् ॥ ८० ॥**

*—मानसोल्लासः भाग २ विंशति ४*

---

**मल्लों के प्रकार**—आठ प्रकार के मल्ल होते हैं, जिनके स्वरूप का वर्णन करता हूँ। युवा प्राणवान्, ज्येष्ठी अन्तरज्येष्ठी, गोपकुल, भविष्य (भावी), बालक और वृद्ध ये आठ मल्ल होते हैं॥ १-२ ॥ शत्रु के ऊपर जय प्राप्त करनेवाले गुणों के अनुसार इनके चार भेद—गज, सिंह, वृषभ (बैल) और मृग होते हैं॥ ३ ॥

**मानसोल्लास के अनुसार मल्लों के भेद**—मल्लों के उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ ये तीन भेद जानने चाहिएँ। उत्तम को ज्येष्ठिक, मध्यम को अन्तरज्येष्ठिक और कनिष्ठ को गोवल शरीर, शक्ति और दावपेंच इत्यादि के अनुसार जानना चाहिए।

---

१. यहाँ आठ प्रकार के मल्लों की गणना आयु और शक्ति को ध्यान में रखकर की है। इसी ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार ज्येष्ठी, अन्तरज्येष्ठी, गोपकुल और भविष्णु ये चार भेद किये हैं। मानसोल्लास में भी यही चार भेद हैं।

**शरीरानुसारं मल्लानां पञ्चभेदाः—**

**अस्थिसारो मांससारो मेदसारस्तथैव च। तथास्थिमांससारश्च चतुर्थकः प्रकीर्तितः॥ २॥**
**तथास्थिमेदसारोऽ पि पञ्चमश्च प्रयुज्यते॥ ३॥** *—मल्लपु० अ० ११*

**वयोऽनुसारं मल्लानां भेदाः—**

**आविंशतेर्वत्सरेभ्यो भविष्णुर्मल्ल उच्यते। तत ऊर्ध्वं त्रिंशदब्दात् प्ररूढः परिकीर्तितः॥ ८०॥**
**ततः परं हीयमानो नियुद्धे त्वक्षमो भवेत्॥ ८१॥** *—मानसोल्लास खण्ड २ अ० १ विंशति ४*

**मल्लानां श्रमकालस्यायुः—**

**त्रिंशद् वर्षादिपर्यन्तं प्रवृत्तिः सङ्गमेव च। आहारे न प्रवर्तन्ते सर्वेषां भविता गुणाः॥ ६॥**
**त्रिचत्वारिंशद् वर्षाणि मल्लाश्चत्वार एव च। श्रमैरभ्यासैराहारैः संयमैश्च निरन्तरम्॥ ७॥**
**धारयन्त्यात्मनो विद्यां गुणांश्चापि यथा तथा। अथोर्ध्वं यावत्पञ्चाशत्प्राणेनापि बलेन च॥ ८॥**
**सर्वाभ्यासेन शौर्येण कालेनापि पुनः पुनः। वृषभश्च मृगश्चैव सिंहश्चापि तथा पुनः॥ ९॥**
**अथैषामेव मल्लानां धार्यमाणा अपि ध्रुवम्। गुणाः प्रयान्ति व्यसनैः कालस्यापि क्रमादपि॥ १०॥**
**वर्जयित्वा गजं तस्य षष्टिवर्षाणि योग्यता। वृषसिंहमृगाश्चापि तेनेव व्यतिरिच्यते॥ ११॥**
**अन्यानपि गुणान्सर्वान्कथयामि गजस्य च। यैः षष्टिवर्षपर्यन्तं विद्या संधार्यते ध्रुवम्॥ १२॥**

---

**शरीर के आधार पर मल्लों के पाँच भेद**—अस्थिसार (जिसकी हड्डियाँ सुदृढ़ हों), मांससार (सुदृढ़ मांसपेशियोंवाला) मेदसार (वसा=चर्बी की अधिकतावाला, स्थूल), अस्थिमांससार (सुदृढ़ अस्थि और मांसपेशियोंवाला), और अस्थिमेदसार—ये पाँच भेद मल्लों के शरीर के गुणानुसार होते हैं॥ २-३॥

**अवस्थानुसार भेद**—बीस वर्ष तक मल्ल भविष्णु (भावी, आगे बढ़ने की सम्भावनावाला) होता है। बीस से लेकर तीस वर्ष तक पूर्ण युवा प्ररूढ (चढ़ा हुआ) मल्ल कहलाता है, इसके पश्चात् क्रमशः हीन (दुर्बल) होने से नियुद्ध के अयोग्य हो जाता है।

*—मानसोल्लास अ० १ वि० ४ श्लोक ८१-८२*

तीस वर्ष तक अपनी रुचि व संगम (अच्छे गुरु की शरण) से सभी मल्ल दक्ष बन सकते हैं। यहाँ आहार की कुछ अल्पता भी हो तब भी काम चल जाता है, क्योंकि इस समय शरीरादि धातुओं की स्वतः ही वृद्धि होती है॥ ६॥

तीस वर्ष से लेकर तैंतालीस (४३) वर्ष तक चारों प्रकार के मल्ल श्रम, अभ्यास, आहार और संयम (ब्रह्मचर्य) से ही पूर्वोक्त गुणों को बनाये रह सकते हैं॥ ७॥

इसके पश्चात् पचास वर्ष तक प्राण और बल (Stamina and Strength) सभी अभ्यास, शौर्य आदि गुण क्रमशः क्षीण होते जाते हैं। केवल गज-प्रकृति मल्ल ही साठ वर्ष तक इन गुणों को स्थिर रख सकता है॥ ८-१०॥

वृषभ, सिंह और मृग प्रकृतिवाले सभी उससे अल्प रह जाते हैं॥ ११॥

गज-प्रकृति मल्ल के दूसरे अन्य गुणों को भी कहता हूँ, जिनसे साठ वर्ष तक यह विद्या स्थिर रखी जा सकती है॥ १२॥

उद्यमैश्च व्यायामैरग्निराहार एव च। आरोग्यवान् धर्मवांश्च श्रमवानर्थवानपि॥ १३॥
सहायवान् बुद्धिमांश्च बलवान् प्राणवानिति। गजस्तु धारणैरेतैः षष्टिवर्षाणि दुर्जयः॥ १४॥

*—मल्लपुराणे पञ्चमोऽध्यायः*

## मल्लानां गुणाः—

महाकायो महाप्राणो मल्लविद्याविशारदः॥ ८१॥
ज्येष्ठिकः कथ्यते मल्लः प्राणविद्याधिकोऽपि वा।[1] अर्धेन ज्येष्ठिमल्लस्य कायप्राणगुणैस्तु यः॥ ८२॥
हीयमानो भवेन्मल्लो नाम्ना सोऽन्तरज्येष्ठिकः। ततोऽपि हीयमानश्चेदेतैरेव गुणैस्तथा॥ ८३॥
गोवलो[2] नाम मल्लोऽसौ नियुद्धे वेगवान्वरः। वेगाढ्यः सरलो दीर्घो भविष्णुः शैशवे भवेत्॥ ८५॥
जङ्घाकाण्डे कोष्ठके च हनुदेशेऽस्थिसारवान्। द्वात्रिंशतावत्सराणां पाल्यंशे देशविश्रुतः॥ ८६॥

*—मानसोल्लास खण्ड २ अ० ६ विं० ४*

## अस्थिसारादिनां गुणाः—

स्थूलास्थिः स्थूलसन्धिश्च स्वल्पमांसोऽल्पसारवान्। श्रमणो भ्रमणकः कश्चिदल्पश्रमकरस्तथा॥ १९॥
तथा शौर्येण संयुक्तस्तथा चाप्रियदर्शनः। इत्यष्टावास्थिसारस्य भेदाः प्रकीर्तिता मया॥ २०॥
इदानीं मांससारस्य कथ्यते गुणविस्तरः। सुप्रमाणो न सूक्ष्मास्थिर्न स्थूलास्थिर्भवत्यपि॥ २१॥
मध्यस्थास्थिरसौ नैव बहुमांसो न शस्यते। नाल्पमांसो हि बलवान् सममांसश्च चोदयः॥ २२॥

---

उद्यम (उत्साह) और व्यायाम आदि से प्रवृद्ध जठराग्नियुक्त पुष्ट भोजन करनेवाला, स्वस्थ, धार्मिक, परिश्रमी, अर्थवान् (धनी), सहायवान् (इष्ठ-बन्धुजनों का सहयोग), बुद्धिमान्, बलवान् और प्राणशक्ति से युक्त गज-प्रकृति मल्ल साठ वर्षों तक अन्यों से दुर्जय रहता है॥ १३-१४॥

सुडौल शरीर, महाप्राण (बहुत अधिक शक्ति), मल्लविद्या को जाननेवाला, प्राणविद्या (Stamina) में अधिक बढ़ा हुआ ज्येष्ठी मल्ल कहलाता है॥ ८१॥

ज्येष्ठी मल्ल से शरीर, शक्ति और कला में आधा अन्तरज्येष्ठी मल्ल होता है, अन्तरज्येष्ठी से भी गुणों में कम, परन्तु नियुद्ध में॥ ८२॥ तेजी से लड़नेवाले मल्ल को गोवल कहते हैं॥ ८३॥

वेग (फुर्ति) से लड़नेवाला, सरल (सीधा शरीर या विनम्र स्वभाव), दीर्घ=लम्बे कदवाला और बाल्यावस्थायुक्त (बीस वर्ष के कम) भविष्णु मल्ल होता है॥ ८५॥

जङ्घा, कोष्ठ एवं हनुप्रदेश (ठुड्डी) की अस्थियाँ सुदृढ़ हों, ऐसा मल्ल बत्तीस वर्ष की आयु में सुप्रसिद्ध हो जाता है॥ ८६॥

मोटी हड्डियाँ, जिसके अङ्गों के जोड़ मोटे हों, कम मांस एवं सारवाला परिश्रमी दौड़ने में तेज, कम मेहनती, शूरवीर और भद्दी आकृतिवाला—ये आठ भेद अस्थिसार मल्लों के कहे हैं॥ १९-२०॥

अब मांससार (सुदृढ़ मांसपेशियोंवाले मल्ल) के गुणों का कथन किया जाता है।

विशाल शरीर, न स्थूल अस्थि, न सूक्ष्म अस्थिवाला, अर्थात् मध्य अस्थियोंवाला ही उत्तम है। न बहुत मांस से युक्त, न ही अल्प मांसवाला, अर्थात् सममांसवाला ही प्रशस्त होता है॥ २१-२२॥

---

१. मल्लपुराण अध्याय ३ में ज्येष्ठी मल्ल के ६४, अन्तरज्येष्ठी के ३०, गोपकुल के ३७ तथा भविष्णु मल्ल के २४ गुण लिखे हैं। अधिक ज्ञानार्थ वहीं देखिये।

२. गोपकुल इति मल्लपुराणे।

**बलवर्धनलीनाङ्गो बद्धदृढतनुस्तथा। लीनशौर्यगुणोपेतः सर्वेषामुत्तरोत्तरः॥ २३॥**
**प्राणवांश्च श्रमसहस्तथैव च जितश्रमः। कथिता मांससारस्य गुणा एते चतुर्दश॥ २४॥**
**अथातो मेदसारस्य गुणानामेकविंशतिः। मध्यस्थूलो भवेत् कश्चित् सूक्ष्मोऽन्यः करपादयोः॥ २५॥**
**सूक्ष्मास्थिरल्पमांसश्च बहुमेदः श्रमार्धभाक्। श्वासाधिकः स्वल्पबलो व्यायामेऽशक्य एव च॥ २६॥**
**निद्रापरः शय्यापरो बह्वाशी बहुपानकृत्। सेवापरः शीतसहः सदा घर्मेण पीड्यते॥ २७॥**
**बहुश्रमः सूक्ष्मास्योऽर्धस्वरो [१]भीरुरधस्तथा। सस्वेदवान् वातसहो गुणा इत्येक विंशतिः॥ २८॥**
**अथास्थिमेदसारस्य गुणाः सप्तदश स्मृताः। पृथुलास्थिस्वरूपोऽपि मांसलो मेदकस्तथा॥ २९॥**
**कश्चित्स्थूलोदरोऽपि स्यात्सूक्ष्मवक्षः स्थूलोऽपि च। स्थूलस्कन्धः प्रौढ बाहुरल्पजङ्घो भवत्यपि॥ ३०॥**
**अल्पसत्त्वः पृथुश्चैव तथोष्म सह एव च। आहारवान् श्वासपरः प्राणवान् स्थिरयुद्धकृत्॥ ३१॥**
**दृष्टभीरुक् स्वभावात् सः स्थिरश्चैवाङ्गसङ्गरे। इत्यस्थिमेदसारस्य गुणाः सप्तदश स्मृताः॥ ३२॥**
**अथास्थिमांससारस्य गुणाः षोडश प्रोच्यन्ते। शोभनास्थिवयश्चैव तथावशशरीरवान्॥ ३३॥**
**सममांससमास्थिश्च किञ्चित्कायेन मेदुरः। पित्तविस्तारवांश्चापि चतुरवाक्च क्वचिद्भवेत्॥ ३४॥**
**न ह्रस्वः क्वचिदङ्गेषु सप्रमाणश्च सर्वदा। समप्राणः समशौर्यस्तथैवं समसत्वरः॥ ३५॥**

बलिष्ठ, लीनाङ्ग (छरहरे वदन अथवा इकहरे शरीरवाला) सुगठित शरीरयुक्त, लाघव और शौर्यगुणों से युक्त—इन सभी गुणों में उत्तरोत्तर बढ़ा हुआ, प्राणवान्, श्रम को सहन करने में समर्थ और श्रान्त न होनेवाला—ये चौदह गुण मांससार मल्लों के कहे हैं॥ २३-२४॥

अब मेदसारमल्ल के इक्कीस गुणों को कहते हैं—इनमें कुछ मध्यभाग (उदर) से स्थूल, कुछ सूक्ष्म हाथ-पैरवाले, सूक्ष्म हड्डियों और अल्पमांसयुक्त, बहुत मेदवाले, आधा श्रम करनेवाले, जिनका श्वास जल्दी फूलता है, अल्पबल, व्यायाम करने में असमर्थ, अधिक सोनेवाले, खट्वा पर ही पड़े रहनेवाले (आलसी), बहुत भोजन और पान करनेवाले, सेवा चाहनेवाले, सर्दी को सहन करना, धूप से पीड़ित होना, बहुत श्रम करना, छोटा मुख, मन्द और डरपोक स्वर, जिन्हें पसीना अधिक आता हो, वायु को सहनेवाले—इन इक्कीस गुणोंवाले मल्ल मेदसार होते हैं॥ २५-२८॥

अस्थि और मेद जिनके प्रबल हों उनके सतरह गुण होते हैं—मोटी हड्डियाँ, मांसल और मेदस्वी आकृति, किन्हीं का मोटा पेट, किन्हीं की छाती अल्प विस्तृत, मोटे कन्धे, प्रौढ़ भुजा, अल्प जाङ्घें, कम बल परन्तु मोटा शरीर, गर्मी सहन करने में समर्थ, पर्याप्त खाना, श्वासयुक्त, प्राणशक्तियुक्त, जमकर लड़नेवाला, दीखने में डरपोक, परन्तु संग्राम में डटकर लड़नेवाला इत्यादि सतरह गुण अस्थिमेदसार मल्ल के होते हैं॥ २९-३२॥

इसके पश्चात् अस्थिमांससार (जिसकी हड्डियाँ और मांसपेशियाँ सुदृढ़ हों) मल्ल के सोलह गुणों को कहते हैं—सुन्दर अस्थि, जिसका शरीर वश में हो, समुचित मांस और अस्थिवाला, शरीर में कुछ स्थूल (चर्बीवाला), पित्त प्रकृतिवाला, भाषण करने में पटु, जिसके सभी अङ्ग छोटे न हो (सम अनुपात में हो), समप्राण, समान शौर्य, समुचित स्फूर्ति, आधे युद्ध (मल्लयुद्ध

१. अत्र भीरुरवस्तथा इति पाठः स्यात्।

**ऊर्ध्वभद्रप्रयोद्धा च अर्धभद्रप्रयुद्धकृत्। अर्धोर्ध्वभद्रयोधी च सर्वयुद्धकरस्तथा ॥ ३६ ॥**
**अष्टाङ्गभद्रयोधी च गुणाः षोडश संख्यया। इत्यङ्गानां च पञ्चानां गुणाः संकीर्तिता मया ॥ ३७ ॥**

—म० पु० अ० ४

### गजादिप्रकृतीनां मल्लानां गुणाः—( मल्लपुराणे )

**शृणु सोमेश्वरात्रैव एकाग्रहृदयोऽधुना। गजस्तु धारयेद् यांस्तु गुणांस्तान् कथयाम्यहम् ॥ १५ ॥**
**वपुषा धातुतश्चैव बलवान् प्राणवांस्तथा॥ स्नेहसारस्तथा शूर एते शारीरका गुणाः ॥ १६ ॥**
**एतैर्गुणैः सदा मल्लो गजश्चैवोपलक्ष्यते। सिंहोऽपि सहजैस्तद्वदेतैर्द्वादशभिर्गुणै ॥ १७ ॥**
**उरसा चातिविस्तीर्णः कटिविस्तारवांस्तथा। मध्ये क्षामोदरः स्कन्धे प्रकोष्ठे स्थूल एव च ॥ १८ ॥**
**तेजोवान् स्फूर्तिमांश्चैव लघुवेगश्च सर्वदा। वपुषो विस्तरश्चैव तथैवोत्पतने गतिः ॥ १९ ॥**
**शीघ्रप्राणः शौर्यवांश्च सिंहस्य कथिता गुणाः। वृषोऽपि जायते यैस्तु गुणांस्तान्कथयाम्यहम् ॥ २० ॥**
**सुशरीरः सुप्रमाणः पृथुलः कठिनोऽपि च। पादारोपी भारसहो युद्धशूरो जितश्रमः ॥ २१ ॥**
**अष्टौ गुणा भवन्त्येते ज्ञातव्याश्च स्वभावजाः। अथेदानीं मृगस्यापि गुणान्वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ २२ ॥**
**बली वशी भीरुकश्च सूक्ष्मपादकरोऽपि च।**
**सुतनुश्च सुवेगश्च तथैव व्यवसायवान्। अल्पश्रमश्च सप्तैते मृगस्य सहजा गुणाः ॥ २३ ॥**

---

के आधे समय के पश्चात्) में अच्छे प्रकार लड़नेवाला, प्रारम्भ में और बाद में अच्छा लड़नेवाला और सारे समय में भली-भाँति लड़नेवाला तथा आठों अङ्गों से समुचितरूप से युद्ध करनेवाला इन सोलह गुणों से युक्त मल्ल अस्थिमांससार प्रधान होता है॥ ३३-३७॥

**हे सोमेश्वर! एकाग्रचित होकर सुनो! गज प्रकृतिमल्ल जिन गुणों को धारण करें, उनको मैं कहता हूँ॥ १५॥**

शरीर और धातु (रस-रक्त-मांसादि) से बलवान्, प्राणवान्, स्नेह (चर्बी) से युक्त और शूरवीरता—ये शारीरिक गुण जिसमें हों, उसे गज-प्रकृति मल्ल कहते हैं॥ १६½॥

इसी भाँति सिंह भी निम्नलिखित स्वाभाविक बारह गुणों से युक्त होता है—

विस्तीर्ण वक्षस्थल, कटिभाग विस्तृत, मध्य का उदरभाग पतला, स्कन्ध और भुजायें स्थूल, तेज और स्फूर्ति एवं लघुवेग, विस्तृत शरीर, लम्बी छंलाग, एकदम शक्ति लगाना, शौर्य—ये बारह गुण सिंह-प्रकृति मल्ल के कहे हैं॥ १७-१९॥

जिन गुणों से वृष-(बैल)-प्रकृति मल्ल कहाते हैं, उनका कथन कहता हूँ॥ २०॥

सुन्दर, कद्दावर, स्थूल और सुदृढ़ शरीर, पैर को जमानेवाला, भारसहने में समर्थ, युद्ध में शूरवीरता से लड़नेवाला एवं परिश्रम से न थकनेवाला मल्ल वृषभ-प्रकृति जानना चाहिये॥ २०-२१॥

अब मृग-प्रकृति मल्ल के भी सभी गुणों का कथन किया जाता है॥ २२॥

बलवान्, दूसरे के वश में होनेवाला, डरपोक, सूक्ष्म हाथ और पैरोंवाला, सुन्दर शरीरयुक्त, तेजी से लड़नेवाला, कार्य में रत और अल्पश्रम करनेवाला—इन सात गुणों से युक्त मृग-(हरिण)-प्रकृति मल्ल कहलाता है॥ २३॥

**नियुद्धानुसारं मल्लानां द्वादश भेदाः—मानसोल्लासे—**

**महाकायस्तु यो मल्लो भारी सः परिकीर्तितः॥५५॥**
**बलाढ्यः कथ्यते प्राणी ऊर्जलश्च सुशिक्षितः। संस्थाननिरतो ज्ञेयो यः स्थाने सुस्थिरासनः॥५६॥**
**श्रमं न याति यो युद्धे बहुयोधी स कथ्यते। विज्ञानेन गृहीतोऽपि यो मुञ्चति न भाषते॥५७॥**
**नास्फालयति हस्तेन सम्बद्धः पतितो ह्यधः। बलनं सहते यस्तु स भवेद् बलेन सह॥५८॥**
**यो रक्षति हि विज्ञानं मल्लो रक्षणको मतः। आशुप्रयुक्ते विज्ञाने तदपाये परं द्रुतम्॥५९॥**
**स मल्लो ढकणो धन्यः शीघ्रविज्ञानकारकः। परप्रयुक्तं विज्ञानं पररन्ध्रं च पश्यति॥६०॥**
**दर्शनाख्यक्रियायोगान्मल्लो दर्शन उच्यते। उत्प्लुत्य यो लगेत्कण्ठे स मल्लो लगनो भवेत्॥६१॥**
**मर्यादापालको युद्धे नियतः परिकीर्तितः॥६२॥** —*मानसोल्लास भाग २ अ० ६ वि० ४*

**रङ्गभूमिः—**

**अथात्र कथ्यते तावद् रङ्गभूमेस्तु लक्षणम्। जातिवर्णप्रमाणानि बहुभेदसमन्वितम्॥१४॥**
**नित्याभ्यासहिताभूमी रङ्गभूमिः प्रकीर्तिता। सैवाषाढकनाम्नी च प्रसिद्धा परमा मता॥१५॥**
**तस्यास्तु लक्षणं वक्ष्ये जातिवर्णप्रभेदतः। सुलक्षणं जयस्थानं हानिस्थानमलक्षणम्॥१६॥**

---

**नियुद्ध के अनुसार मल्लों के भेद**—जो विशाल शरीरवाला मल्ल है, उसे भारी कहते हैं॥५५॥

अधिक बलवाले को प्राणी, मल्लयुद्ध में अच्छी प्रकार दक्ष, ऊर्जल, अपने स्थान (पैंतरे) पर रहकर लड़नेवाला संस्थाननिरत जानना चाहिये॥५६॥

मल्लयुद्ध में जिसे श्रान्ति (थकान) न आती हो उसे बहुयोधी कहते हैं। विज्ञान (दावपेंच) से पकड़ा जाने पर भी जो दूसरे मल्ल को नहीं छोड़ता और बोलता नहीं, न अपने हाथ से प्रतिक्रिया करता है केवल गिरकर भूमि पकड़ लेता है, ऐसे मल्ल को सम्बद्ध कहते हैं॥५७॥

जो प्रतिपक्षी के द्वारा बलप्रयोग या अंगप्रत्यङ्गों का मरोड़ना इत्यादि को सहनकर लेता है, उसे रक्षणक माना गया है॥५८½॥

प्रतिपक्षी द्वारा बहुत शीघ्र दावपेंच लगाने पर भी जो तुरन्त ही उसकी काट (प्रतीकार) कर देता है, उस मल्ल को ढकण कहते हैं। शीघ्र दावपेंच लगाने से ऐसा मल्ल प्रशंसित है। जो मल्ल दूसरे द्वारा लगाये गये और उसके मर्मस्थल (Weak Points, जहाँ पर अपना दाव लगाकर उसे परास्त किया जा सके) देखने में कुशल है, उसे दर्शन कहते हैं। जो उछलकर कण्ठ को पकड़ ले, ऐसा लगन और नियुद्ध के नियमों का पालक मल्ल नियत कहलाता है॥५९-६२॥

**अखाड़ा**—अब जाति (उन्नत, अवनत समतल आदि), वर्ण (मिट्टी का रङ्ग), प्रमाण (लम्बाई-चौड़ाई) आदि बहुत भेदों से युक्त रङ्गभूमि (अखाड़े) का लक्षण कहा जाता है॥१४॥

प्रतिदिन अभ्यास के लिए उपयुक्त भूमि को रङ्गभूमि कहते हैं, इसी का नाम आषाढ़क (अखाड़ा) भी प्रसिद्ध है॥१५॥

उसका जाति-भेदादि से लक्षण कहता हूँ, क्योंकि अच्छे लक्षणों से युक्त भूमि जय देनेवाली और इससे विपरीत भूमि में श्रम करने से हानि हो जाती है॥१६॥

निम्नोन्नत समत्वेन त्रिविधा भूमिका भवेत्। निम्नोन्नतां परित्यज्य तत्राङ्गी क्रियते सदा॥ १७॥
आषाढकप्रमाणं तु त्रिविधं प्रकीर्तितम्। देवमानं दैत्यमानं मर्त्यमानं तथैव च॥ १८॥
एकोत्तरं हस्तशतं देवमानं प्रकीर्तितम्। दैत्यानामेव पञ्चाशत् मर्त्यानामेकविंशतिः॥ १९॥
चतुरस्त्रं त्रिकोणञ्च वर्तुलं च तथैव च। ब्राह्मणी शुक्लवर्णा च पीता क्षत्रियभूमिका॥ २०॥
श्यामवर्णा तथा शूद्री बहुवर्णा तथाधमा। उत्तमाधममध्यास्तु भूमयो बहुभेदतः॥ २१॥
कर्करैर्लाञ्छिता भूमिर्लोहकाष्ठविदूषिता। पाषाणैः कण्टकैर्वापि कुट्टेनापि पटेन च॥ २२॥
वर्जनीया प्रयत्नेन दुःखदा सर्वदा नृणाम्। —*मल्लपुराणम् अ० ६*
मल्लयुद्धविधानाय रङ्गभूमिं तु विस्तराम्॥ ३५॥
प्रपूज्यां सुदृशां चैव सुवर्तुलाममां नवाम्। एकविंशतिहस्तैश्च विस्तीर्णां च प्रमाणतः॥ ३६॥
हस्तेनोच्चामनीरूक्षामतिमन्द्रामनिन्दिताम्। बीजपातक्षेत्रमिव कोमलां च मनोरमाम्॥ ३७॥
रक्षा सन्तापयेन्मल्लान् शोषं च कुरुते परम्। कण्टकाः कर्कराश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः॥ ३८॥
छिद्राणि चैव रन्ध्राणि पूरयित्वा विशोधनैः। शोधयित्वा प्रपूज्या च बहु पुष्पाक्षतैः किल॥ ३९॥
तत्र जयस्य प्राप्त्यर्थे हरिं संस्थापयेत् परम्। बीजपूरकमप्यत्र रङ्गमध्ये निवेशयेत्॥ ४०॥

---

नीची, ऊँची और समतल—तीन प्रकार की भूमि होती है। इनमें नीची-ऊँची को छोड़कर समतल भूमि ही उपयुक्त है॥ १७॥

देवमान, दैत्यमान और मर्त्यमान (पुरुषों के लिए तीन प्रकार के मान से युक्त) अखाड़ा होता है॥ १८॥

देवमान अखाड़े का प्रमाण एक सौ एक हाथ, दैत्यों के अखाड़े का पचास हाथ और मनुष्यों के अखाड़े का मान इक्कीस हाथ होता है॥ १९॥

अखाड़ा चौकोर, त्रिकोण (तीन कोनोंवाला) और गोलाकार तीन प्रकार का होता है।

ब्राह्मण-(उत्तम)-मिट्टी श्वेत, क्षत्रियमिट्टी पीली और शूद्रगुण-(निम्नगुण)-युक्त काली मिट्टी होती है। अनेक वर्णों से युक्त मिट्टी निकृष्ट होती है। इस प्रकार उत्तम, मध्यम और अधम आदि बहुत-से भेद भूमि के होते हैं॥ २०-२१॥

कङ्कर, लोह, काष्ठ, पत्थर, काँटे, कूड़ा, कर्कट, एवं चिथड़े जहाँ पड़े हों, ऐसा स्थान अखाड़े के लिए उपयुक्त नहीं हैं, क्योंकि वह सदा मल्लों को दुःखदायी होता है॥ २२½॥

मल्लयुद्ध के लिये राजा सेवकों को रङ्गभूमि तैयार करने का आदेश दे। वह भूमि सुन्दर, इक्कीस हाथ प्रमाणवाली, गोलाकार, एक हाथ ऊँची, गीली मिट्टीयुक्त, देखने में शोभनीय और जिसकी मिट्टी इतनी कोमल हो, जैसे बीज बोने के लिये तैयार किया हुआ खेत॥ ३५-३७॥

मल्लों को रोगादि एवं चोट लगना—ये बहुत पीड़ित करते हैं, अतः रङ्गभूमि से कण्टक और कङ्कर (पत्थर) आदि प्रयत्न करके दूर करने चाहियें॥ ३८॥

भूमि के गड्ढे और छिद्रादि को भरकर पुष्प, अक्षत, धूपादि से उसे सुवासित करे॥ ३९॥

वहाँ पर जय की प्राप्ति के लिये हरि (श्रीकृष्णजी) की स्थापना करे। रङ्गभूमि में बिजोरा नींबू को रक्खे॥ ४०॥

**एतल्लक्षणसंयुक्तं कारयेद् रङ्गमुत्तमम्। आयुरारोग्यदं सौख्यं श्रीकरं च यशस्करम्॥ ४१॥**

*—मल्लपुराण अ० १४*

**मानसोल्लासे—**

**स्तम्भैः षोडशभिर्युक्तं गृहं कृत्वा समायतम्॥ ६८॥**
**पश्चिमे तु दिशाभागे चतुरस्त्रां सुविस्तृताम्। सार्धहस्तसमुत्सेधां वेदिकां तत्र कारयेत्॥ ६९॥**
**वेदिकाग्नेयकोणे तु कुर्याच्छ्रीकृष्णमण्डपम्। वेदिकायाः पुरो देशे दसहस्तसुविस्तृतम्॥ ७०॥**
**त्रिंशद् हस्तपरीणाहं वितस्तिद्वयखातकम्। पूरयेच्च ततः खातं ग्रामसञ्जातया मृदा॥ ७१॥**
**मृत्तिकां सेचयेत्तोयैः कुद्दालैश्च निखातयेत्। चालयेच्चालिनीभिश्च दृषदादीन्विशोधयेत्॥ ७२॥**
**सुश्लक्ष्णां मृत्तिकामीषदार्द्रां शुद्धां च कारयेत्। एवमक्खाडकं कृत्वा..........।**

*—मान० विं० ४, अ० ६*

---

इन लक्षणों से युक्त बनाया हुआ अखाड़ा आयु, आरोग्य, सुख, श्री और यश की वृद्धि करनेवाला होता है॥ ४१॥

**मानसोल्लास में**—सोलह खम्भों से युक्त वर्गाकार मण्डप बनवाकर उसके पश्चिम दिशा में चौकोर डेढ हाथ ऊँची वेदि को बनवाये॥ ६८–६९॥

वेदि की आग्नेय (पूर्व–दक्षिण) दिशा में श्रीकृष्णजी का मण्डप स्थापित करे। वेदि के सामने ही दश हाथ चौड़ा और तीस हाथ लम्बा एवं एक हाथ गहरा गड्ढा खोदे। उस गड्ढे को ग्राम से लाई हुई मिट्टी से भर दे॥ ७०–७१॥

मिट्टी को जल से गीला करके कुद्दाल (कस्सी) के द्वारा खुदवाये। छलनी से छनवाकर कङ्कर, रोड़े आदि को दूर कर दे। इस प्रकार चिकनी, कुछ गीली और शुद्ध मिट्टी से अखाड़ा तैयार करे॥ ७२॥

# द्वितीय अध्यायः

## मल्लानां दिनचर्या

**प्रथमं प्रातरुत्थाय मल्लैः कर्त्तव्यमादरात्। मलमूत्रविशुद्धिश्च दन्तधावनमेव च॥ २३॥**
**गण्डूषैर्मुखशुद्धिश्च मुखप्रक्षालनं तथा। सन्ध्यादिकञ्च निर्वृत्य रङ्गं गच्छेत् समाहितः॥ २४॥**
**गत्वा च प्रथमं ज्येष्ठी प्राणायामं च कारयेत्। भूमिवन्दनपूर्वं च कारयेत् च ततः श्रमः॥ २५॥**

## मानसोल्लासे—

**योषितां दर्शनात् स्पर्शात् संलापात् सङ्गमादपि॥ ८९०॥**
**संरक्ष्या यत्नतो मल्ला विशेषेण भविष्णवः॥ ८९०॥** *—मा० मा० २ अ० ६ वि० ४*

## आहारः—

**भविष्णवः प्ररूढाश्च पोष्या बृंहणभोजनैः॥ ८८८॥**
**माषैर्मांसैस्तथा दध्ना पिष्टैः क्षीरविमिश्रितैः। घृतेन सितया चैव विदार्या वाजिगन्धया॥ ८८९॥**
**घृतेन भृष्टैः कुष्माण्डैश्चूर्णितैः सितयान्वितैः॥** *—मानसोल्लास भाग २, अ० ६, विं० ४*

## व्यायामान्ते पानीयम्—

**कर्त्तव्यं च पयः पानं सितया च समन्वितम्। [1]द्राक्षाणां भक्षणं चैव श्वेतवस्त्रनिषेवणम्॥ ५४॥**
*—म० पु० अ० ८*

---

**मल्लों की दिनचर्या**—मल्लों को प्रसन्नतापूर्वक स्वेच्छा से प्रातःकाल उठकर मल-मूत्र का त्याग, दाँतों की शुद्धि, कुल्ला करके मुख की शुद्धि और मुँह धोना चाहिये। इसके पश्चात् सन्ध्यादि से निवृत होकर शान्तचित्त से अखाड़े में जाना चाहिये॥ २३-२४॥

वहाँ जाकर ज्येष्ठी मल्ल (गुरु) प्रथम सभी मल्लों से प्राणायाम का अभ्यास करवावे। पश्चात् भूमि-वन्दना करके पुनः श्रम (व्यायाम, मल्लयुद्धादि) सभी मल्ल करें॥ २५॥

**मानसोल्लास में**—मल्लों के लिए संयम—ज्येष्ठी-मल्ल, मल्लों को स्त्रियों के दर्शन, स्पर्श, बातचीत, सङ्गम आदि अष्टविध मैथुनों से यत्नपूर्वक बचावे, विशेषरूप से भविष्णु (भावी) मल्लों को।

भविष्णु और प्ररुढ़ मल्लों की बृंहण (पुष्टि करनेवाले) पदार्थों—यथा माष (उड़द), मांस, दधि और दुग्ध से युक्त पिष्ट पदार्थ, घी, मिश्री, विदारीकन्द, अश्वगन्ध घी में तला हुआ पेठा मिश्रीयुक्त आदि पुष्टि (बलवर्धन) करनेवाले भोज्य पदार्थों के द्वारा वृद्धि करनी चाहिए॥ ८८८-८८९॥

**व्यायाम के पश्चात् पीने योग्य**—व्यायाम के पश्चात् मिश्री मिला हुआ दुग्ध पीना चाहिये और द्राक्षा (किशमिश, मुनक्का) का भक्षण करना तथा श्वेत वस्त्र धारण करके रहना उपयुक्त है॥ ५४॥

---

१. मल्लपुराण के नवम अध्याय में खाद्यपदार्थों की विस्तृत सूची दी है। बारहवें अध्याय में वात-पित्त-कफ को प्रकुपित करनेवाले पदार्थ और उनके शमन के उपाय भी बताये हैं।

**अतिमात्रं तु रोगाय अंशदोषचतुष्टकम्। भोजनं हीनमात्रं च बलं तेन प्रजायते॥ ९१॥**
**हेमन्ते शीतसंरोधाद् भवति प्रबलोऽनलः। पच्यत्यल्पेन्धनो धातूननलो वायुनेरितः॥ ९२॥**
**गोधूमपिष्टकेनापि पाकांश्चैव बहूनपि। गुणान्करोति संयुक्तो घृतेनापि गुडेन च॥ ९३॥**
**वसन्ते यवगोधूमाः क्षौद्रजाङ्गलकान्यपि। सुशीततोयसिक्ताङ्गो लिप्ताङ्गश्चन्दनैः शुभैः॥ ९४॥**
**पाटलावासितं चाम्भः कर्पूरेण च शीतलम्। शशाङ्ककिरणै रात्रौ सेवितं प्रपिबेन्मुहुः॥ ९५॥**
**अन्नादष्टगुणं पिष्टं पिष्टादष्टगुणं पयः। पयसोऽष्टगुणं माषं माषादष्टगुणं घृतम्॥ ९६॥**
**घृतादष्टगुणं तैलं स्नानसंमर्दनं परम्। शाकपाके रुचिकरं केवलं नैव भक्षयेत्॥ ९७॥**
**माषेन वर्धते कायो घृतेन वर्धते बलम्। पिष्टेन वर्धते प्राणः शौर्यमन्नात् प्रवर्धते॥ ९८॥**

*—मल्लपुराण अ० ९*

**श्रमस्य भेदाः—**

**श्रमाश्चैव तु चत्वारो भवन्ति विनियोगतः। अल्पश्रमश्चार्धश्रमः पूर्णश्रम इति क्रमात्॥ २३॥**
**ततोऽति श्रम एव स्यात् कथिता मल्लकर्मणि।**

**एतेषां लक्षणानि—**

**अथाल्पश्रमसंभूतं लक्षणं कथयाम्यहम्। अल्पश्रमे कृते प्रातः श्वासस्वेदो न जायते॥ ३४॥**
**अर्धश्रमः कृतो यैस्तु लक्षते शृणु तान् गुणान्। अर्धश्रमेण मल्लानां प्रस्वेदो जायते पुनः॥ ३८॥**

---

अधिकमात्रा में किया हुआ भोजन रोगों की वृद्धि करता है। अल्पमात्रा में (कुछ भूख रखकर खाया हुआ) किया हुआ भोजन बलवर्धक होता है॥ ९१॥

शीतकाल में शीत के द्वारा रोमकूप रुद्ध होने से जठराग्नि प्रबल होती है, अतः पर्याप्त भोजन करना चाहिये, इसके अभाव में यह वायु द्वारा प्रेरित होकर धातुओं को जला डालती है॥ ९२॥ अतः इस ऋतु में गेहूँ, पिष्ट पदार्थ, विविधपाक और घृत तथा गुड़युक्त पदार्थ गुणकारक हैं॥ ९३॥

वसन्त ऋतु में जौ, गेहूँ, मधु, जाङ्गलिक पशुओं का मांस, ठण्डे पानी से स्नान, चन्दन का लेप, गुलाब और कर्पूर से युक्त चन्द्रमा की किरणों से शीतल किया हुआ जल पीना चाहिये॥ ९४॥

अन्न से आठ गुणा लाभदायक पिष्ट पदार्थ, पिष्ट से आठ गुणा दुग्ध, दुग्ध से आठ गुणा उड़द, उड़द से आठ गुणा घी, घी से आठ गुणा तेल (स्नान, मर्दन में और केवल शाक का छोंका लगाने में) लाभ दायक है॥ ९६-९७॥

उड़द से शरीर की पुष्टि होती है, घृत से बल बढ़ता है (पीठी से बने पदार्थ) से प्राण और अन्न से शौर्य की वृद्धि होती है॥ ९८॥

**श्रम के भेद**—श्रम (व्यायाम) के चार भेद होते हैं। (१) अल्पश्रम (२) अर्धश्रम, (३) पूर्णश्रम और (४) अतिश्रम॥ २३॥

**इनके ( श्रम के ) लक्षण**—जिन्होंने हल्का व्यायाम किया है, उसका लक्षण कहता हूँ—प्रातःकाल श्रम करने पर जिन्हें स्वेद (पसीना) नहीं निकलता और श्वास भी नहीं फूलता उस श्रम को अल्प श्रम (Light exercise) कहते हैं॥ ३४॥

**अर्धश्रम**—मल्लों को बगल, कण्ठ, गाल, ललाट और हाथ-पैर के जोड़ों में जब स्वेद

**कक्षाकण्ठकपोलेषु ललाटे करसन्धिषु। पादसन्धिषु प्रस्वेदो हृदि श्वासश्च जायते॥ ३९॥**
**पूर्णश्रमे कृते मल्लैर्जायन्ते लक्षणानि वै॥ ४६॥**
**तान्यहं कथयिष्यामि श्रूयतां च प्रयत्नतः। स्वेदः सर्वेषु चाङ्गेषु नेत्रयोश्चैव रक्तिमा॥ ४७॥**
**जरानाशः कफनाशो मेदो नाशस्तथा परः। प्रस्वेदं शोषयत्येव मुखे श्वासः प्रवर्तते॥ ४८॥**
**हृदयं शोषयत्याशु कण्ठे शोषश्च तत्क्षणात्। तथा मुखं च शोषयति कलां शोषयति क्रमात्॥ ४९॥**
**छर्दिभ्रमश्वासकासरक्तं पित्तभयानि च। तथा हृदयदाहं च ज्वरमुत्पादयेदलम्॥ ५०॥**
**भ्रमोऽत्यन्तमेव स्यात् मूर्च्छां प्रकुरुते परम्। पिपासा जायते सद्यो बलहानिर्विशेषतः॥ ५१॥**

*—मल्लपुराण अ० ८*

**श्रमाणां कालः—**

**मार्गशीर्षादि चैत्रान्तं पूर्णं कुर्यात् श्रमं बुधः॥ २०॥**
**हिमयोगो बलं तत्र भक्षणं कुरुते दृढम्। पूर्णश्रमस्य योगेन वर्धते जठरानलः॥ २१॥**
**वर्धिते जठरस्याग्नौ आहारः प्रबलो भवेत्। आहाराद् बलवृद्धिः स्याद् बलाच्छ्रमसहो भवेत्॥ २२॥**
**पञ्चमासाश्च मल्लानां श्लाध्याः पूर्णश्रमस्तदा। वैशाखे ज्येष्ठ मासे च तथाषाढेऽपि दुःसहाः॥ २३॥**
**अर्धश्रमं प्रकुर्वन्ति यथासौख्यं न लुप्यते। वर्षासु श्रावणे चैव तथा भाद्रपदेऽपि च॥ २४॥**

---

(पसीने की बूँदें) आ जायें और हृदय में श्वास भर जाय तब उसे अर्धश्रम कहते हैं॥ ३९॥

पूर्णश्रम (Heavy exercise) करने पर मल्लों के शरीर में जो लक्षण प्रकट होते हैं, उनको मैं कहता हूँ।

पूर्णश्रम से सारे शरीर में स्वेद (पसीना) निकल आता है। आँखें लाल हो जाती हैं। जरा (बुढ़ापा) कफ़ और मेद समाप्त हो जाते हैं। बहुत अधिक पसीना निकलने से मुख सूख जाता है। श्वास फूल जाता है, हृदय और कण्ठ सूख जाते हैं। इस प्रकार मुख एवं सारी धातुयें सूखने लगती हैं॥ ४६-४९॥

अधिक श्रम से वमन, भ्रम (चक्कर आना), श्वास, कास रक्तपित्तादि, घबराहट, हृदय में दाह और ज्वर उत्पन्न हो जाते हैं। अधिक भ्रम (चक्कर) आकर मूर्च्छा आ जाती हैं। अत्यधिक प्यास लगती है और बलक्षीण हो जाता है॥ ५०-५१॥

मार्गशीर्ष के प्रारम्भ से लेकर चैत्र के अन्त तक पाँच मास बुद्धिमान् व्यक्ति को पूर्णश्रम (भारी व्यायाम) करना चाहिये॥ २०॥

क्योंकि इन मासों में सर्दी का प्राधान्य होने से भोजन शीघ्र ही पच जाता है और पूर्णश्रम से भी भूख खूब लगती है॥ २१॥

जठराग्नि के प्रबल होने से भोजन भी बढ़ जाता है। पर्याप्त आहार के द्वारा बल की वृद्धि होती है और बल की वृद्धि से कठिन श्रम को भी सहनेवाला हो जाता है॥ २२॥

ये पाँच मास मल्लों के लिये पूर्णश्रमार्थ उपयुक्त हैं। वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ ये तीन मास ग्रीष्मप्रधान होने से कष्टदायक है, अतः इन मासों में अर्धश्रम ही करना उचित है, जिससे शरीर को कष्ट न हो॥ २३॥

श्रावण-भाद्रपद में वर्षा के कारण और आकाश मेघाच्छन्न रहने से वातावरण में गर्मी रहती

**ऊष्मा भवति मध्ये तु बहिर्मेघाडम्बरम्। अल्पश्रमो युक्त एव कर्तुं तत्रापि नान्यथा॥ २५॥**
**यतोधिक श्रमाभ्यासादन्तः स्वापः प्रजायते। आश्विने कार्तिके चैव पित्तं तत्र प्रकुप्यति॥ २६॥**
**पित्तेन जाठरो वह्निर्मन्दः स्याद् भवति ज्वरः। मन्दे च जाठरे वह्नौ कुत आहारसम्भवः॥ २७॥**
**अनाहारस्य न बलमबलस्य कुतः क्रिया। तस्मादभ्यासयोगेन श्रमः स्वल्पः प्रशस्यते।**
**एवं कुर्वन् सदा मल्लो नियुद्धविजयी भवेत्॥ २८॥** *—मल्लपुराणम् अ० ९*

**मानसोल्लासे—**

**एकान्तरे दिने कुर्युः श्रममश्रमहेतवे॥ ८९१॥**
**पृथक् पृथक् स्वगेहेषु निजैर्गोबलकैस्तथा। गोबालैः सह कुर्वीत नियुद्धं प्राणवर्धनम्॥ ८९२॥**
*—मान० भा० २, अ० ६, वि० ४*

**श्रमस्य विधयः—मल्लपुराणे दशमोऽध्यायः—**

**श्रमोऽयं मल्लविद्यायाः कथितः षोडशात्मकः। यस्य चाभ्यासतो लोके त्रैलोक्यविजयी भवेत्॥ १॥**
**रङ्गश्रमस्तम्भश्रमस्तथा भ्रमणिका श्रमः। श्वासप्रेरणिकाभ्यासस्तथायं स्थापितश्रमः॥ २॥**
**ऊहापोहश्रमोऽन्यो गुरुगोणितकश्रमः। श्रमो लघु गोणितके श्रेष्ठः स्यात् प्रगदाश्रमः॥ ३॥**

---

है, अतः इस ऋतु में अल्पश्रम करना ही उचित है॥ २५॥ क्योंकि अधिक श्रम से अन्तस्ताप (जलन, घबराहट, व्याकुलता) उत्पन्न होता है।

आश्विन-कार्तिक मास में पित्त का प्रकोप होता है॥ २६॥

इसलिये जठराग्नि मन्द हो जाती है और ज्वर का प्रकोप भी होता है। जठराग्नि के मन्द होने से भोजन में अरुचि हो जाती है। बिना समुचित भोजन के बलवृद्धि नहीं होती और बिना बल के व्यायाम नियुद्धादि नहीं किये जा सकते, इसलिए अभ्यास को बनाये रखने के लिए इन मासों में अल्पश्रम करना ही उपयुक्त रहता है। पूर्वोक्त विधियों का परिपालन करता हुआ मल्ल नियुद्ध में सदैव विजयी रहता है॥ २७-२८॥

**मानसोल्लास में**—मल्ल एक दिन छोड़कर श्रम (मल्लयुद्धादि) का अभ्यास करें, जिससे शरीर में श्रान्ति न हो। श्रम का अभ्यास पृथक्-पृथक्, अपने-अपने अखाड़ों में गोवलक मल्लों के साथ करें॥ ८९१-८९२॥

मल्लयुद्ध के लिए शरीर समर्थ बनाने के लिए १६ प्रकार के श्रम कहे हैं। जिनके अभ्यास से लोक में सर्वत्र विजय प्राप्त होती है॥ १॥

इसके नाम निम्नलिखित हैं—

१. **रङ्गश्रमः**—अखाड़े में मल्लयुद्ध का अभ्यास।
२. **स्तम्भश्रमः**—मल्लखम्भ का व्यायाम।
३. **भ्रमणिकाश्रमः**—भ्रमण, दौड़ना।
४. **श्वासप्रेरणिकाभ्यासः**—प्राणायाम।
५. **स्थापितश्रमः**—स्थैर्य देनेवाले दण्ड-बैठक, भारोत्तोलन इत्यादि।
६. **ऊहापोहश्रमः**—मल्लयुद्ध के दावपेचों का अभ्यास या चिन्तन करना।

**आमर्दकी श्रमः श्रेष्ठो याञ्चास्थादनकः श्रमः। कुण्डकर्षणकाभ्यासस्तथाऽन्यकृत् काराश्रमः॥४॥**
**जलश्रमो बहुगुणः परानारोहणश्रमः। भोजनोर्ध्वा भ्रमणिका षोडशैतच्छ्रमास्थिजाः[१]॥५॥**
**श्रमाणां चैव कथ्यन्ते त्रयो भेदाः पृथक् पृथक्। उत्तमा मध्यमाश्चैव भवन्ति च तथाधमाः॥६॥**
**रङ्गश्रमस्तु श्रेष्ठः स्याद् ज्येष्ठःसर्वश्रमेषु च। ये चाभ्यासेन सर्वेऽपि श्रमाः सिद्धा भवन्ति हि॥७॥**
**तत्रादौ मध्यमांश्चान्यानन्यांस्ते कथयाम्यहम्। स्तम्भश्रमणिकाबाहुबाहुश्रमणमेव च॥८॥**
**गुरुगोणितकश्चैव लघुगोणितकस्तथा। गदाश्रमेऽपि तत्रादौ ततश्च छोनकश्रमः॥९॥**
**अङ्गकावर्तनाभ्यासस्तथा च श्रमकाश्रमाः। जलश्रमस्तथा चैव सोपनरो गुरुश्रमः॥१०॥**
**भोजनोर्ध्वश्रमणिका कथिताः सप्त चाधमाः। दिनान्तरे यदाभ्यासे बलमोजः प्रवर्धते॥११॥**
**पञ्चदश समाख्याताः कथ्यन्ते विविधश्रमाः[२]।**

---

७. **गुरुगोणितकश्रमः**—रेत की भरी बोरी उठाना।

८. **लघुगोणितकश्रमः**—हल्की बोरी से अभ्यास करना।

९. **प्रगदाश्रम**—गदा, मुग्दर, मोगरी, करेलादि घुमाना।

१०. **आर्मदकी**—तैलमर्दन (मालिश) का व्यायाम।

११. **आस्थादनकश्रमः**—दण्डबैठक निकालना।

१२. **कुण्डकर्षणश्रमः**—लेजियम का अभ्यास।

१३. **अन्यकृत्कारश्रमः**—परस्पर एक-दूसरे की सहायता से किया जानेवाला व्यायाम।

१४. **जलश्रमः**—तैरना।

१५. **परानारोहणश्रमः**—स्तूप बनाना अथवा दूसरे को अपनी पीठपर बिठाकर सीढ़ी पर चढ़ना।

१६. **भोजनोर्ध्वभ्रमणिका**—सांयकाल भोजन के पश्चात् भ्रमण करना।

श्रमों के तीन भेदों का पृथक्-पृथक् कथन किया जाता है। उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन भेद श्रमों के होते हैं॥६॥

इनमें रङ्गश्रम सभी श्रमों में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं। अभ्यास से जो श्रम साध्य हैं, उनका वर्णन करता हूँ, उनमें मध्यम श्रम के अन्तर्गत स्तम्भश्रम (मल्लखम्भ का व्यायाम) बाहुपेल्लण (हल्का ज़ोर आजमाना), बाहुश्रम (भुजाओं का व्यायाम—दण्डादि), भारी रेत की भरी बोरी उठाना, हल्की बोरी उठाने का व्यायाम—ये पाँच श्रम हैं। गदा घुमाना, कस्सी से अखाड़ादि खोदना, शरीर के अङ्गों को विभिन्न प्रकार से मोड़ना, हल्के व्यायाम, तैरना, सीढ़ियों पर चढ़ना और भोजन के पश्चात् भ्रमण करना (टहलना), जिसका सेवन सायंकाल करने से बल, ओज की वृद्धि होती है—ये सात अधम श्रम हैं[२]॥७-११॥

---

१. मानसोल्लास १।४ श्लोक ९४३-५२ में मल्लों के लिये पाँच व्यायाम—रेत की भरी बोरी उठाना, भ्रमण (दौड़ना), तैरना, बाहुपेल्लण और मल्लस्तम्भ कहे हैं।

२. यहाँ पन्द्रह श्रमों के स्थान पर १३ की ही गणना की है।

**स्तम्भश्रमः—**

**त्रिधा स्तम्भाधिरोहणं दण्डाघातस्तथैव च॥ १६॥**
**अङ्गवर्तनलागश्च तथा पादापकर्षणम्। विज्ञेयो दशधा चैव स्तम्भः श्रमसमुद्भवः॥ १७॥**
**अङ्गस्य सहजं प्राणं स्कन्धप्राणं तथैव च। करप्राणं सुविप्राणं दण्डप्राणमपि ध्रुवम्॥ १८॥**
**तलहस्तभवं प्राणं बाहुप्राणं तथैव च। जङ्घाप्राणं कटिप्राणं पादसन्धिभवं तथा॥ १९॥**
**जायते कठिनाङ्गत्वं अङ्गस्य च जयस्तथा। अग्निवृद्धिः श्रमो ज्ञेयो लघुत्वमपि दृश्यते॥ २०॥**
**इत्येवं पञ्चदशधा प्राणस्तम्भश्रमस्तथा। अभ्यस्तेन सदायुक्तो नियुद्धजयी भवेत्॥ २१॥**

*—मल्ल पु० अ० १०*

**मानसोल्लासे—**

**आश्लेषयोग्यं सुश्लक्ष्णमूर्ध्वबाहू तलोन्नतम्॥ ९४९॥**
**दृढं निखानितं स्तम्भं चर्चितं चन्दनादिना। उत्प्लुत्याक्रम्य सक्थिभ्यां बाहुभ्यां चैव वक्षसा॥ ९५०॥**
**दृढं सम्पीड्य तं स्तम्भं पद्भ्यामूर्ध्वां समाश्रयेत्। बाहूभ्यां ततोरूभ्यामावर्तनविवर्तनैः॥ ९५१॥**
**अधश्चोर्ध्वं च संश्लेष्य स्तम्भेन श्रममाचरेत्।** *—मान० भाग २, अ० ६, वि० ४*

**अथ मल्लपुराणे एकादशोऽध्यायः—**

**कथयाम्यन्यश्रमणं रमणीकमुत्तमम्। तथाक्रमं प्रकुर्वीत मल्लाः पञ्चविधा अपि॥ १॥**
**अस्थिसारो मांससारो मेदसारस्तथैव च। तत्रास्थिमांससारश्च चतुर्थकः प्रकीर्तितः॥ २॥**
**तथास्थिमेदसारोऽपि पञ्चमः प्रयुज्यते। पञ्चानां गुणभेदानां भिन्नभ्रमणिका स्मृता॥ ३॥**

---

स्तम्भ (मल्लखम्भ) पर तीन विधियों से चढ़ा जाता है, यथा हाथों से पकड़कर चढ़ना, उछलकर, अड़ी मारते हुए, दशरंग करते हुए और पैरों से पकड़कर चढ़ना॥ १६-१७॥

मल्लखम्भ से होनेवाले लाभ निम्नलिखित हैं—

समस्त अङ्गों में शक्ति का सञ्चार, स्कन्धप्रदेश की पुष्टि, हाथ, पहुँचा (दण्ड), हथेली, भुजा, जङ्घा, कमर, पैरों के जोड़ (घुटनादि) इन सबकी पुष्टि होती है॥ १७-१९॥

अङ्ग कठोर होते हैं। दूसरों पर विजय प्राप्त होती है। इस प्रकार मल्लखम्भ के अभ्यास से पन्द्रह लाभ होते हैं। इसका अभ्यास करने से मल्ल सदैव विजयी रहता है॥ २०-२१॥

**मानसोल्लास में**—पकड़ने योग्य, चिकना, अपना हाथ उठाने जितना ऊँचा, दृढ़भूमि में गड़ा हुआ, चन्दनादि से लिप्त मल्लखम्भ होना चाहिये। इसपर उछलकर जाङ्घों से पकड़ना और भुजा तथा वक्षस्थल पैरों से मल्लखम्भ को सुदृढ़ पकड़कर ऊपर चढ़े। इसी प्रकार हाथों और जाङ्घों से पकड़कर विविध आवर्तन-विवर्तन (दशरङ्गादि मल्लखम्भ की विधियों) से उपर चढ़ें और नीचे आकर मल्लखम्भ का व्यायाम करें॥ ९५१॥

**मल्लपुराण का ग्यारहवाँ अध्याय**—अब रमणीक और अद्वितीय भ्रमण श्रम का वर्णन कहता हूँ, जिसको पाँच प्रकृतियोंवाले मल्ल करें॥ १॥

अस्थिसारादि पाँच प्रकृतियोंवाले मल्ल होते हैं। इन पाँचों की पृथक्-पृथक् प्रकृतियाँ होने से प्रत्येक के भ्रमण की विधि पृथक् है॥ २-३॥

**कथयिष्यामि विधिवद्यो यथा तं करिष्यति। क्रमात् त्रयः समाख्याताः पूर्वसूरिभिरेव च॥ ४॥**
**प्रेयस्य[१] क्रमोऽतिक्रमो धारणा क्रमेति [२]स्मृतः। दोषचयस्तनोर्वातकफपित्तस्य संभवः॥ ५॥**
**तत्रास्थिसारमल्लेन पित्तसारेण तेन तु। प्रशस्तक्रमपूर्वं तु कर्तव्या भ्रमणिका सदा॥ ६॥**
**मांससारेण वातेन संयुक्तेन यथाक्रमः। इति क्रमभ्रमणिका कर्तव्या सुखमिच्छता॥ ७॥**
**तथैव मेदसारेण कफवातयुतेन ते। सदा गोणितककटिप्राणसंप्राणमेव च[३]॥ ८॥**
**पवनस्य जयश्चैव एतदष्टगुणं स्मृतम्। मल्लानां विजयकरं तस्मादेतत्समभ्यसेत्॥ ९॥**

**मानसोल्लासे—**

**भ्रमणार्थं ततो गच्छेत् क्रोशमेकं बहिः पुरात्॥ ९४५॥**
**निवर्तेत तथा तूर्णं श्रमोऽयं भ्रमणाभिधः।** *—मान० भा० २ अ० वि० ४*

**बाहुप्रेरणिकश्रम[४]—**

**अष्टधा भवति प्राणं बाहुप्रेरणिकश्रमात्। तलहस्तभवं प्राणं भुजप्राणं तथैव च॥ १०॥**
**स्कन्धप्राणमुरःप्राणं भुजशीर्षभवं तथा। जानुप्राणं कटिप्राणं रोपणं तलपादयोः॥ ११॥**

---

मल्ल जिस प्रकार भ्रमण (दौड़ना, तेजी से चलना) करे, उसको कहता हूँ। पहले के शरीरशास्त्र के जाननेवालों ने उसके तीन भेद कहे हैं॥ ४॥

प्रशस्तक्रम अतिक्रम और धारणाक्रम—ये तीन प्रकार की भ्रमणिका हैं। शरीर में वात, कफ़ और पित्त ये तीन दोष एकत्रित होते रहते हैं॥ ५॥

अतः अस्थिसार और पित्तप्रधान व्यक्ति को सदा प्रशस्तक्रम भ्रमणिका करनी चाहिये॥ ६॥

मांससार और वात प्रकृतिवाले पुरुष को क्रमभ्रमणिका (धीरे-धीरे भ्रमण या दौड़ना) उपयुक्त रहता है॥ ७॥

इसी प्रकार मेदसार और कफ़, वात प्रकृतिवाले मल्ल को गोणितक उठाने का व्यायाम करना चाहिये। इससे कटिप्रदेश बलिष्ठ बनता है और वायु का प्रशमन होता है। पूर्वोक्त गोणितक के अभ्यास से आठ लाभ होते हैं, अतः इसका अभ्यास मल्लों को विजयप्रद होने से सदा करना चाहिये॥ ८-९॥

**मानसोल्लास में**—प्रातःकाल नगर या ग्राम से एक कोश बाहर भ्रमण को जावे और आते समय शीघ्रतापूर्वक चलते हुए लौटे, इस श्रम को भ्रमणश्रम कहते हैं॥ ९४५½॥

बाहुप्रेरणिक श्रम से आठ अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुदृढ़ बनते हैं, यथा—हाथों की हथेलियाँ, भुजा, स्कन्ध, वक्षस्थल, ग्रीवा, जङ्घा, कमर आदि। एवं पैरों के तलुवों में रोपणशक्ति (एक स्थान

---

१. यहाँ प्रेयस्य के स्थान पर 'प्रशस्त' पाठ होना चाहिये।
२. पहले पाँच प्रकार के मल्लों को निम्न पाँच भ्रमण करने चाहियें, यह कहकर केवल तीनों का ही उल्लेख किया है।
३. भ्रमणश्रम में गोणितकश्रम का समावेश असङ्गत है।
४. मल्लपुराण की भूमिका में इसके संपादक महोदय ने बाहुप्रेरणिकाश्रम का अर्थ दण्ड पेलना किया है। यह भी सम्भव है, परन्तु मानसोल्लास में इसी से मिलता बाहुपेल्लणक श्रम दिया है जिसमें दो मल्ल खड़े हुए आपस में हाथों से एक-दूसरे को धकेलते हुए ज़ोर आज़माइश करते हैं, यही अर्थ उचित प्रतीत होता है।

**ऊर्ध्वस्थायिकमैतत् प्राण एकादशात्मकः। अतः सर्वप्रकारेण श्रममेव सदाभ्यसेत्॥ १२॥**

**मानसोल्लासे—**

**स्थितौ तुदेतामन्योन्यं कराभ्यां बाहुयुग्मकम्॥ ९४८॥**

**सांयकाले विधातव्यो बाहुपेल्लणकः श्रमः।** *—मान० भाग-२ अ० १ वि० ४*

**४. ऊहापोहश्रमः—**

**ऊहापोहस्तु कर्त्तव्यः प्रतिमल्लसमागमे। यथातथ्यं व्यक्तं शृणु अनुष्ठेयं च सर्वदा॥ १३॥**

**ऊहापोहश्च कार्यस्तु प्राण अष्टविधस्तथा। कथं च धारयिष्यामि कथं स्थास्यामि वा पुनः॥ १४॥**

**कथं च धारयिष्यति गमिष्यामि च वा कथम्। गृह्यते वा कथं ह्येष रक्ष्यते वा कथं परः॥ १५॥**

**कथं प्रमाणं क्रियते कथं न क्रियतेऽपि वा।**

**५-६. गोणितकश्रमः—**

**गुरुगोणितका भेदाः श्रेष्ठाः सप्तदशापि वा॥ १६॥**

**तानहं कथयिष्यामि यथायोग्यं तथा बलम्। प्रथमं नमस्कृत्य कक्षायां जानुसम्भवम्॥ १७॥**

**ध्रियते वामपार्श्वे तु दक्षिणेन पुनस्तथा। तथैव कुक्षिजानुभ्यां तले कृत्वा विधारणम्॥ १८॥**

**धृतेनापि वशं तिष्टेत् ततो याति तथा पुनः। उरसा धारणं तस्मात् ततो दण्डविधारणम्॥ १९॥**

**पुनश्चैव तु जानुभ्यां तले हस्तविधारणम्। पुनरुतिष्ठविंशति यथाशक्त्या समभ्यसेत्॥ २०॥**

---

पर डटे रहना) आ जाती है। इस प्रकार ऊपर के ग्यारह अङ्ग-प्रत्यङ्ग बलवान् बनते हैं, अतः सर्वप्रकार से इन व्यायामों का अभ्यास करे॥ १०-१२॥

**मानसोल्लास में**—परस्पर दो मल्ल सामने खड़े होकर एक-दूसरों को बाहुओं द्वारा धकेलें (धक्का-मुक्की करें) यह बाहूपेल्लणकश्रम सायंकाल करना चाहिये॥ ९४८½॥

**ऊहापोहश्रमः**—दूसरे मल्ल के सामने आने पर ऊहापोहश्रम (तर्क-वितर्कसहित दूसरे मल्ल पर दाव लगाने का चिन्तन) करना चाहिये। इसमें आठ बातें सोचनी चाहिये। यथा मैं दूसरे मल्ल को कैसे पकडूँगा? किस पैंतरे से खड़ा होऊँगा? कौन-से दाव लगाऊँगा? कौन-से दाव से यह मेरे काबू में आ सकता है? कौन-से दाव से यह मेरे दाव को काट सकता है अथवा बचकर निकल सकता है? इसका कौन-सा दाव अच्छा है और कौन-सा अच्छा नहीं है इत्यादि॥ १३-१५॥

भारी रेत से भरी बोरी के व्यायाम सतरह प्रकार के हैं॥ १६॥

उनका वर्णन करता हूँ। इसका यथायोग्य और बलानुसार प्रयोग करना चाहिये। पहले झुककर घुटने से सहारा लेकर बायीं बगल में गोणितक को उठाया जाता है और इसी प्रकार दाहिनी बग़ल में।

इसी प्रकार कुक्षि (बग़ल) और जानु (घुटने) से हाथों पर रखना और इसी स्थिति में रहना। बार-बार करना। इसके पश्चात् लेटकर अपनी छाती पर गोणितक को रखना और पुनः हाथों से उठाना॥ १७-१९॥

फिर घुटनों से उठाना और हाथों द्वारा बीस बार ऊपर उठाना और नीचे शक्ति के अनुसार करना चाहिये।

ध्रियते वाङ्घ्रिजानुभ्यां लोलयेत् च पुनः पुनः। धारणं तलपादाभ्यां तथैव च पुनः क्रमात्॥ २१॥
अथ धारयकस्यैव स्थानानि परिपूरयेत्। शिरसा धारणं चैव शिरसो हननं ततः॥ २२॥
बाहुचालनमेवोक्तं चरणग्रहणमेव च। पदस्य सन्धिग्रहणं करसन्धिस्तथैव च॥ २३॥
सर्वाङ्गे चालनं चैव भेदाः सप्तदशः स्मृताः। गुरुगोणिताभ्यां चैव वर्धते प्राण उत्तमः॥ २४॥
एकोनविंशत्यधिकं कथ्यतेऽथ यथा शृणु। जङ्घाप्राणमुरः ( प्राणं ) कण्ठप्राणं च उत्तमम्॥ २५॥
सर्वाङ्गस्थानसंभूतं जायते प्राणमष्टधा। इति ज्ञात्वा च सततं सादरं च समभ्यसेत्॥ २६॥

**मानसोल्लासे—**

पालीदिवसेप्रातर्बालुका भृतगोणिका[१]॥ ४३॥
बाहुभ्यामुत्क्षिपेच्छक्त्या पादाभ्यां च मुहुर्मुहुः। भारं सोढुं स कर्त्तव्यो ज्येष्ठैर्मल्लैविशेषतः॥ ४४॥
भारश्रमोऽयमाख्यातो गात्रप्राणविवर्धनः। *—मान० भाग २ अ० १ वि० ४*

**७. [२]पीडनकश्रमः—**

मयात्वेवं समाख्याता सर्वे विजयहेतवः। जयः पीडनका भेदाः कथिता मल्लकर्मणि॥ २७॥
तलहस्तविधारणं कक्षाधारणमेव च। भुजसन्धिधारणं च त्रय पीडनकेऽधमाः॥ २८॥

---

इसी प्रकार जङ्घाओं और घुटनों पर उठाकर बार-बार ऊपर, नीचे करें। इसी प्रकार पैरों के तलुवों पर रखकर अभ्यास करें॥ २१॥

गोणितक को उठानें की जितनी विधियाँ हैं उन सबका अभ्यास करे। शिर से उठाकर शिर को घुमाये॥ २२॥

इसी प्रकार हाथ, पैर, पैरों के जोड़, हाथों के जोड़ और सभी अङ्गों से अभ्यास करने के सतरह भेद कहे गये हैं॥ २३½॥

गुरु और लघु गोणितक से उन्नीस से भी अधिक अङ्ग-प्रत्यङ्गों में शक्ति का सञ्चार होता है। जङ्घा, वक्षस्थल, ग्रीवादि बलिष्ठ होकर सभी अङ्गों में आठ प्रकार की शक्ति बढ़ती है। ऐसा जानकर श्रद्धा से इसका अभ्यास करना चाहिये॥ २४-२६॥

**मानसोल्लास में**—जिस दिन मल्लयुद्ध करना हो उस दिन प्रातः बालु (रेत) से भरी हुई बोरी हाथों और पैरों से बार-बार उठाये। ज्येष्ठी मल्लों को भार-वहन में समर्थ होने के लिए इसका विशेषरूप से अभ्यास करना चाहिये। यह भारश्रम शरीर में शक्ति का बढ़ानेवाला है॥ ४४½॥

मल्लयुद्ध में मेरे द्वारा कथित सर्वत्र विजय प्राप्त करवाने में सहायक पीडनकश्रम के तीन भेद होते हैं॥ २७॥

हाथों से धारण करना, कक्षाभाग से धारण करना और हाथों के जोड़ (कुहनियों) से धारण करना—ये तीन व्यायाम पीडनकश्रम के अधमश्रम (Light exercise) हैं॥ २८॥

---

१. गोणितक शब्द का अर्थ मल्लपुराण के सम्पादक ने गोलाकार मुद्‌गर (नाली) किया है, जो असङ्गत है। मानसोल्लास में बालू से भरी बोरी यह अर्थ स्पष्ट ही है।

२. पीडनकश्रम से क्या अभिप्राय है यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। इनकी संख्या दो होने से सम्भवतः डम्बल-जैसे साधन हो सकते हैं, जिन्हें हाथ में पकड़कर घुमाते हैं।

**गुणा भवन्ति ये चान्ये शृणु तान्कथितान्मया। प्राणं चतुर्धा भवति व्यक्तं पीडनकश्रमात्॥ २९॥**
**कक्षाप्राणं च भवति प्राणं च करसन्धिजम्। तलहस्तभवं प्राणं पादप्राणं भवत्यपि॥ ३०॥**
**इति पीडनकाभ्यां च दृढप्राणं चतुष्टयम्।**

**८. गदाश्रमः—**

**प्राणपद्मं गदाभ्यासात् कर्तुर्भवति सर्वदा॥ ३१॥ तलहस्तप्राणं चात्र भुजप्राणं तथा पुनः।**

**९. छोटनश्रमः[१]—**

**यो वा छोटनकाभ्यासात् प्राणत्रयसमुद्भवः॥ ३२॥**
**तलहस्तभवं प्राणं पोवाप्राणं तथैव च। भुजप्राणं तथैवात्र सदा तेन समभ्यसेत्॥ ३३॥**

**१०. [२]कुण्डकावर्तनश्रमः—**

**चतुर्विधं भवेत् प्राणं कुण्डकावर्तनश्रमात्॥ ३४॥**
**जङ्घाप्राणं च प्रथमं कटिप्राणस्तथैव च। जितश्वासश्च भवति हृदयं दृढमेव च॥ ३५॥**
**कुण्डकावर्तनाभ्यासात् सदा तेन समाचरेत्।**

**११. [३]कर्करश्रमः—**

**कर्करश्रमकायोगात् प्राणं चैव चतुर्विधम्॥ ३६॥**

---

इनसे जो लाभ होते हैं उन्हें सुनो—

पीडनकश्रम से कक्षा, हाथों के जोड़ (कलाई, कुहनी) हथेलियाँ और पैर सुदृढ़ बनते हैं॥ २९-३०½॥

गदा (मोगरी, मुद्‌गर, करेलादि) घुमाने से हाथों की हथेलियाँ, कलाई और भुजा बलिष्ठ बनती हैं॥ ३१½॥

**छोटनश्रमः**—छोटन (कस्सी से अखाड़ा खोदना) से हाथ की हथेलियाँ, पहुँचा और भुजायें शक्तिशाली होती है, अतः इसका अभ्यास सदैव करना चाहिये॥ ३२-३३॥

योगचाप (लेजियम) को खेंचने के व्यायाम से जङ्घा और कटि में शक्ति का सञ्चार होता हैं। श्वास (Stamina) बढ़ता है और हृदय बलवान् होता है, अतः इसका अभ्यास सदैव करना चाहिये॥ ३४-३५½॥

कर्कर (भारी पत्थर का गोला) उठाने से चार अङ्ग जङ्घा, कटि बलवान् बनती है, शरीर

---

१. छोटनश्रम का अर्थ कुद्दाल या अन्य साधन से भूमि खोदना प्रतीत होता है। इसी ग्रन्थ के पन्द्रहवें अध्याय के १७वें श्लोक में '**न वा कच्छछोटनं कुर्यात्**' ऐसा पाठ आया है जिसका अर्थ कच्छा नहीं फाड़ना, किया है। मल्लयुद्ध के समय भूमि खोदना आवश्यक है। साथ ही इससे पर्याप्त व्यायाम भी हो जाता है। छुट् धातु से छोटन शब्द की सिद्धि होती है।

२. कुण्ड गोलाकार पदार्थ को कहते हैं। कुण्डकावर्तनश्रम से क्या अभिप्राय है यह निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता। मल्लपुराण के सम्पादक ने नियुद्ध के समय मल्ल दायें-बायें गोलाई में पैंतरे पर चलते हैं उसे कुण्डकावर्तन श्रम माना है। इसी अध्याय में कुण्डकर्षणश्रम का उल्लेख है। कुण्ड शब्द धनुष का वाचक है, अतः योगचाप (लेजियम) के व्यायाम को कुण्डकर्षणश्रम मान सकते हैं। इससे कटिप्रदेश का पर्याप्त व्यायाम हो जाता है।

३. कर्करश्रम से यहाँ भारी गोलाकार पत्थर उठाना और पीछे की ओर से फेंक देना अभिप्राय है। इसे लोक में मुग्दर उठाना भी कहते हैं। अधिक ज्ञानार्थ देखिये—भारतीय व्यायाम एण्ड फिजिकल कल्चर।

**जङ्घाप्राणं कटिप्राणं लघुत्वं च भवत्यपि। पवनस्य जयश्चैव अर्थश्च जायते सदा॥ ३७॥**
**तेन तत् सर्वदा कुर्यात् कर्करश्रममुत्तमम्।**

**१२. जलश्रमः—**

**प्राणद्वयं जलाभ्यासात् कर्तुर्भवति निश्चितम्॥ ३८॥**
**भुजप्राणमुरःप्राणं सर्वं तेन समाचरेत्।**

**मानसोल्लासेः—**

**पुष्करिण्यां तडागे वा नद्यां च प्रविशेज्जलम्॥ ९४६॥**
**कण्ठदघ्नं ततस्तोयं बाहुभ्यामवलोडयेत्। बाहुप्राणकरो ज्ञेयो द्वितीयः सलिलश्रमः॥ ९४७½॥**

*—मान० भाग २ अ० १ वि० ४*

**१३. सोपानरोहणश्रमः[1]—**

**सोपानरोहणे चैव प्राणत्रयमुदाहृतम्॥ ३९॥**

**१४. भ्रमणिकाश्रमः—**

**भोजनोर्ध्वं भ्रमात् पुंसां त्रिविधं प्राणमेव च। जायते सर्वसामान्यं तथैव च समाचरेत्॥ ४०॥**

**१५. रङ्गश्रमः—**

**पञ्चदशविधानोऽपि श्रमे प्राणसमुद्भवः। एवं रङ्गसमभ्यासात् प्रशमो जायते तनुः॥ ४१॥**
**तेन सर्वश्रमाणां तु ज्येष्ठी रङ्गश्रमोधिकः। इति ज्ञात्वा गुणान् सर्वानुत्तमा गुणहेतवः॥ ४२॥**

**१६. मर्दनाश्रमः—**

**मर्दना भीमसेनी च दातव्या शत्रुमर्दिनी। अष्टौ गुणा भवन्त्येते शृणु वा कथयाम्यहम्॥ ४३॥**

---

हल्का होता है और आपानवायु (अथवा पैट) व्यवस्थित (अथवा सुदृढ़) होता है और मल्ल सदैव समर्थ रहता है, अतः सदैव कर्करश्रम को करें॥ ३६-३७½॥

जलश्रम (तैरना) से भुजा और वक्षःस्थल सुदृढ़ बनते हैं, अतः इसका अभ्यास सभी को करना चाहिये॥ ३८½॥

**मानसोल्लास में**—बावड़ी, तालाब या नदी के जल में कण्ठ तक पानी आ जाय वहाँ स्थित हो भुजाओं से जल का विलोडन करे। यह द्वितीय सलिलश्रम भुजाओं में प्राणशक्ति का सञ्चार करनेवाला है॥ ९४६-९४७½॥

इसी प्रकार सीढ़ियों पर चढ़ने से तीन अङ्गों में प्राणशक्ति बढ़ती है॥ ३९॥

इसी प्रकार भोजन के पश्चात् (सायंकाल) भ्रमण करने से तीन प्रकार की शक्ति बढ़ती है। इसका सेवन सभी को करना चाहिये॥ ४०॥

पूर्वोक्त पन्द्रह प्रकार के श्रमों से जो शक्ति शरीर में आती है वह अकेले रङ्गश्रम का अभ्यास करने से मिल जाती है। शरीर सभी कष्टों को सहन करने योग्य हो जाता है॥ ४१॥

इसलिए ज्येष्ठी मल्ल को सभी श्रमों की विधियाँ एवं उनसे होनेवाले लाभों का ज्ञान तथा इन सबसे अधिक रङ्गश्रम है, ऐसा जानकर सभी उत्तम गुणों की वृद्धि करनी चाहिये॥ ४२॥

भीमसेनी मर्दना (तैल मालिश) जो शत्रुओं का मर्दन करनेवाली है (जिसके द्वारा शरीर प्रतिपक्षी को परास्त करने योग्य हो जाता है) अस्थिमांससार व्यक्ति को करनी चाहिये। इसके

---

१. सोपानरोहण (सीढ़ी चढ़ना) के लाभ नहीं कहे। हमारे मत में इससे पैर एवं जङ्घा के स्नायु सुदृढ़ बनते हैं।

श्वासहरा वृद्धिकरा तथा श्रमहरापि च। मेदोहरा प्राणकरा सुशरीरकरापि च॥ ४४॥
तथोत्करकरौ[१] चैव तथाप्यायनकरापि[२] ( च )। देयास्थिमांससारस्य भीमसेनी च मर्दनी॥ ४५॥
त्वक्रुधिरमांसमेदपर्यन्तेनाभिसंयुता:। गुणा: सप्त भवन्त्यत्र स्फुटं ते कथयाम्यहम्॥ ४६॥
निद्रां करोति प्रथमं तथा तेज: करोति च। शौर्यकरा दीपनी च अङ्गशुद्धिं करोति च॥ ४७॥
कुरुतेऽत्यन्तशोभां च मन: स्थिरकरा तथा। भीमसेनी च दातव्या मांससारस्य मर्दना॥ ४८॥
त्वग्रुधिरमांसपुष्टस्य लघुसारेण वर्द्धयेत्। करोति च गुणान् सप्त शृणु सर्वसुखावहान्॥ ४९॥
उत्साहं कुरुते चाशु तथाह्लादं करोति च। सुखं करोति परमं लाघवं कुरुते परम्॥ ५०॥
मेधां ददाति परमां तन्द्रां च हरयेत् सदा। एवं सा कुरुते भद्र श्वाससारस्य मर्दना॥ ५१॥
तेन सर्वैस्तथा सेव्या मल्लै: सर्वाङ्गसिद्धये। तथा मांसास्थिसारस्य लघ्वी देया च मर्दना॥ ५२॥
त्वग्रुधिरपुष्टिकरा प्रजाह्लादप्रदायिनी। चलकरा दीप्तिकरा चक्षुरारोग्यकारिणी॥ ५३॥
कायाशोधकरा चैव कायामार्दवकारिका। मर्दनाय परा नास्ति कार्या सौष्ठवकारका॥ ५४॥
अस्थिगता मांसगता तथा मलगतापि वा। श्रुता सा परमा गुह्या साम्या चैव पृथक् पृथक्॥ ५५॥

---

द्वारा आठ लाभ होते हैं, जिनको मैं कहता हूँ॥ ४३॥

भीमसेनी मर्दना श्वास का प्रशमन करती है, शरीर की वृद्धि करती है और थकान को दूर करती है, चर्बी को घटाती है, शक्ति का सञ्चार करती है, शरीर को पुष्ट बनाती है और मुटापे को दूर करके दुर्बल व्यक्ति को स्थूल बनाती है॥ ४४-४५॥

इस मालिश से त्वचा, रुधिर, मांस, मेदादि प्रभावित होते हैं। इसके सात गुणों को कहता हूँ॥ ४६॥

निद्रादायक, तेजकारक, शौर्यकारक, दीपक, अङ्गशुद्धिकारक, अत्यन्त शोभावर्द्धक और मन को स्थिर करनेवाली है। इसे मांससार मल्ल करें॥ ४७-४८॥

त्वचा, रक्त और मांस की पुष्टि के लिए लघुसार (हल्की मालिश) करनी उचित है। इससे सात लाभ होते हैं, यथा—उत्साह बढ़ता है, प्रसन्नताकारक है, सुखकारक है, शरीर हल्का हो जाता है, मेधाप्रद है, तन्द्रा (आलस्य) को दूर करती है और श्वाससार व्यक्ति के लिए कल्याणप्रद है। इसलिए मल्लों को सभी अङ्गों को सशक्त बनाने के लिए विशेषकर मांसास्थिसार मल्लों को हल्की मालिश करनी चाहिये॥ ४९-५२॥

यह लघुमर्दन (धीरे-धीरे मालिश करना) त्वचा रक्त की पोषक, पुरुषत्वप्रद और आनन्दवर्धक, कार्य में सामर्थ्यदायक दीप्तिकारक, नेत्रों की ज्योतिवर्धक, आरोग्यप्रद, शरीर की संशोधक और सुकोमल बनानेवाली हैं। शरीर की सुन्दरता बढ़ानेवाला मर्दन से बढ़कर अन्य साधन नहीं हैं॥ ५३-५४॥

इसका प्रभाव अस्थि, मांस और मल (वात, पित्त, कफ़) तक होता है। यह परम गुह्य और साम्य हैं॥ ५५॥

---

१. यहाँ 'उत्करकरा' ऐसा पाठ होना चाहिये।
२. यहाँ पाठ त्रुटित है।

**प्रथमा भीमसेनी च तथा नारायणी परा। तृतीया चित्रिणी प्रोक्ता मसृणी च तथा परा॥ ५६॥**
**चेतः प्रकरा चैवेयं कथिता कैटभारिणा। प्रथमा चरणे देया द्वितीया जानुनि न्यसेत्॥ ५७॥**
**तृतीया च करे देया मसृणी पट्टके तथा। पुनश्चतुर्विधा देया द्वात्रिंशद् गुणकारिका॥ ५८॥**
**तथा त्रयोदशगुणैर्हेतुभिर्नामदोहरा। श्रमहरा तथा वातहरा च कफहारिणी॥ ५९॥**
**अग्निकरा वृद्धिकरा तनुविस्तारकारिका। काठिन्यदा प्राणकरा तथा श्वासहरापि च॥ ६०॥**
**इत्यास्थिता त्रिदशधा कथिता मर्दना मया। कष्टं हरन्ति निःशेषजडत्वं यात्यसंशयम्॥ ६१॥**
**श्रमवानस्थिवानिति मांसस्य मर्दको भवेत्। भीमसेनी च मल्लानां देया नारायणीं शृणु॥ ६२॥**
**चित्रिणी बालवृद्धानां तैलाभ्यङ्गेषु मर्दनी। भीमसेनी च विज्ञेया मर्दना सुखकारिका॥ ६३॥**
**धातुपञ्चकपर्यन्तं जानुपादविमर्दनम्। सा ज्ञेया नारायणी चासौ मर्दना सुखहेतवे॥ ६४॥**
**करस्तु केवलं यत्र दद्यात्त्वङ्मांसमर्दना। सा मर्दना प्रयत्नेन चित्रिणी कथिता बुधैः॥ ६५॥**
**तैलाभ्यङ्गे पटेनैव मसृणी त्वग्विमर्दना। इति विशेषतो युक्ता मर्दना लोकसंमता॥ ६६॥**
**ज्ञात्वैतां च बहु शृणु चतुर्नाम समन्विताम्। या यस्य रोचतेऽन्त्यन्तं तां तस्य कारयेद् ध्रुवम्॥ ६७॥**
**व्यायामः कफनाशाय वातनाशाय मर्दनी। स्नानं च पित्तनाशाय तेन मल्ला महाबलाः॥ ६८॥**

---

भीमसेनी, नारायणी, चित्रिणी और मसृणी—ये मर्दन के चार भेद हैं। यह चित्त को प्रसन्नता देनेवाली श्रीकृष्णजी ने कही है॥ ५६½॥

पहली मर्दना (भीमसेनी) पैरों की करनी चाहिये। दूसरी घुटनों पर, तीसरी हाथों पर, चौथी पट्टक (शिर) में करनी चाहिये। पुनः चारों प्रकार की मर्दना को करे। जोकि बत्तीस गुणों को देनेवाली है॥ ५७-५८॥

इसके अतिरिक्त तेरह गुण अन्य होते हैं, यथा—मद (मूर्च्छा), वात, कफ़ को दूर करनेवाली, अग्निवर्धक—-वृद्धिकारक, शरीरवर्धक, सुदृढ़ताकारक, शक्तिसञ्चारक श्वास को दूर करनेवाली इत्यादि। इससे कष्ट दूर होते हैं और जड़त्वं (आलस्य या शरीर का जकड़ जाना) निस्सन्देह दूर होता है। मांससार मल्ल इससे श्रम करने में समर्थ हो जाता है॥ ५९-६१॥

यह भीमसेनी मर्दना मल्लों की करनी उचित हैं। अब नारायणी को सुनो॥ ६२॥

इनमें भीमसेनी मर्दना ही सुखकारक है॥ ६३॥

पाँच धातु (रस, रक्त, मांस, अस्थि, मेद) तक जिसका प्रभाव हो वह नारायणी मर्दना जाननी चाहिये। यह सुखकारक है तथा यह पैरों और घुटनों की की जाती है॥ ६४॥

जिसमें केवल रक्त का सञ्चार करने के लिए (जिसका प्रभाव मांसादि तक न हो) हल्के हाथ से मर्दन किया जाता है उसे ज्ञानी लोगों ने चित्रिणी मर्दना कहा है॥ ६५॥

तैलमर्दन में शिर, मुख, नेत्रादि पर मसृणी मर्दना करनी चाहिये, परन्तु इसमें त्वचा का अधिक घर्षण न होने पाये, इसका ध्यान रखा जाना चाहिये॥ ६६॥

इन चारों को जानकर जो मर्दना जिसे अधिक अनुकूल पड़े उसे ही करवावें॥ ६७॥

व्यायाम से कफ की निवृति होती है। मर्दन से वात की और स्नान से पित्त शान्त होता है। इन तीनों दोषों को शमन करके ही मल्ल बलवान् रह सकते हैं॥ ६८॥

# तृतीय अध्यायः

## नियुद्धस्य चत्वारो भेदाः

### ( मल्लपुराणे पञ्चदशोध्यायः )

चतुर्विधं नियुद्धन्तु शृणु मतिमतां वर। आद्यं धरणिपातं च आसुरं च द्वितीयकम्॥ १॥
तृतीयं [1]नारमित्युक्तं युद्धं पुनश्चतुर्थकम्। तेषां धरणिपातस्य भेदः पञ्चविधो भवेत्॥ २॥
तलप्रहारः प्रथमः करप्रहार एव च। निपत्य चात्मना भूमौ परं पातयति ध्रुवम्[2]॥ ३॥
पातितस्य स्फुटं हारं निरुद्धे विजयो भवेत्। ज्ञात्वैवं बलबुद्धिभ्यां युद्धमेतत् समाचरेत्॥ ४॥

**आसुरयुद्धम्—**

अथैतदासुरं युद्धं द्वात्रिंशद्भेदभीषणम्। केशाकर्षणपीडा च कर्णस्फोटनमेव च॥ ५॥
नासिका स्फोटनं चैव तथा चर्वणमेव च। दन्तपातनमेव स्यान्मुखे पांशुनिपातनम्॥ ६॥
अथ पांशौ परिक्षेपो नखैरेव विदारणम्। नासिकापीडनं चैव ग्रीवाग्रहणकं तथा॥ ७॥
एकाङ्गुलीमोडनं वा तथा द्व्यङ्गुलीमोडनम्। अङ्गुलीत्रितयस्यापि मोडनं कथितं क्वचित्॥ ८॥

---

**नियुद्ध के चार भेद**—बुद्धिमानों में श्रेष्ठ सोमेश्वर! चार प्रकार के नियुद्धों का वर्णन सुनिये—

**पहला धरणिपात**—भूमि पर दावपेंच द्वारा द्वितीय मल्ल को गिरा देना, दूसरा आसुर, तीसरा नार और चौथा युद्ध—ये चार भेद नियुद्ध के हैं।

उनमें धरणिपात युद्ध पाँच प्रकार का होता है॥ २॥

प्रथम तलप्रहार (थप्पड़ मारना) २. हाथ से प्रहार (पहुँचे से प्रहार करना या कुहनी से मारना) ३. और स्वयं भूमि पर गिरकर प्रतिपक्षी को भूमि पर गिराना॥ ३॥

(प्रतिपक्षी का सन्तुलन बिगाड़ने के लिये स्वयं भूमि पर बैठना, घुटना रखना, लेटनादि क्रियायें की जाती हैं)

भूमि पर गिरे हुए मल्ल को दावपेंच (Locks) द्वारा क्रियारहित करने पर ही द्वितीय मल्ल की विजय होती है। इस प्रकार बल और बुद्धि का प्रयोग करके इस युद्ध को करे॥ ४॥

**अब आसुरयुद्ध का वर्णन करते हैं**—इस आसुरयुद्ध के बत्तीस भेद हैं यथा—केशों को खींचना, पीड़ित करना, कान फाड़ना, नाक को तोड़ना, नाक को दाँतों से काटना, दाँतों को तोड़ना, मुख में धूल डालना, धूल में गिराना, नखों से विदारण करना, नाक को पकड़कर खींचना या पीड़ा देना, गले को दबाना (गला घोटना), एक अङ्गुली को पकड़कर मरोड़ना, दो अङ्गुलियों को मरोड़ना अथवा तीनों को मरोड़ना, हाथ का अंगूठा तोड़ना या पैर का अंगूठा तोड़ना, सारी

---

१. इस श्लोक में तीसरे युद्ध को नारयुद्ध बताया है, परन्तु आगे दशवें श्लोक में मारयुद्ध कहा है। यहाँ मारयुद्ध कहना ही उचित है। इसका उद्देश्य प्रतिपक्षी मल्ल को मारना ही होता है।

२. धरणिपात युद्ध के तीन प्रकार ही बतलाये हैं। इसके पश्चात् प्रतिपक्षी को बन्ध लगाकर क्रियारहित कर देना ही विजयकारक कहा है। सम्भवतः धरणिपात के पाँच भेदों में इसकी भी गणना की गई हो।

कराङ्गुष्ठमोडनं च पादाङ्गुष्ठमोडनम्। समग्राङ्गुलिभङ्गो वा फणग्रहणमेव च॥ ९॥
भारेण च प्रहारेण विज्ञानेन पुनस्तथा। [1]वालकेन प्रकारेण मारयुद्धमथापि च॥ १०॥
प्राणेन चौजसा चैव तथा वहणिनापि च। येन केन प्रकारेण मारयुद्धं समागताः॥ ११॥
स एव मर्मो मल्लानां पातनं च महीतले। भारं च भारभग्नं च वितरं समरे त्यजेत्॥ १२॥
येनाषाढकमध्ये तु जीवितं च विमुञ्चति। इदानीं धर्मयुद्धस्य द्वात्रिंशत् कथिता गुणाः॥ १३॥
तानहं कथयिष्यामि यथा विक्रमणागताः। केशानाकर्षयति च कर्णौ च त्रोटयत्यपि॥ १४॥
अक्षिणी न स्फोटयत्यपि मुखं च स्फोटयत्यपि। नासिकां च त्रोटयति नन्दाति सर्वयत्यति॥ १५॥
न दन्तान् पातयति च पांशुक्षेपो न वै मुखे। नाक्ष्णोः पांशुपातनं च विदारयति नो नखैः॥ १६॥
न नालिकां पीडयति ग्रीवां चैव न पीडयेत्। न कच्छछोटनं कुर्याद् दण्डं गृह्णाति नैव हि॥ १७॥
शिरसोघातनं नैव मर्मभङ्गं च वर्जयेत्। प्रकाशयन् धर्मयुद्धं यशो हर्षविवर्धनम्॥ १८॥
धरणिपातितस्याथ मत्सरं[2] परिवर्जयेत्। यः कश्चिद् दर्पसंयोगादासुरं युद्धमारभेत्॥ १९॥
भग्ने वापि मृते तस्मिन् राजा च दोषभाग्भवेत्। इत्यङ्गसङ्गरे मल्लं ज्ञात्वा यत्नेन भूपतिः॥ २०॥

---

अङ्गुलियों को तोड़ना या हाथ को कलाई से पकड़कर मरोड़ना, भार, प्रहार या दाव लगाकर अथवा बालक सदृश (अनाड़ी ढङ्ग से लड़ना)—ये सब आसुरयुद्ध कहलाता है॥ ५-१०॥

अब मारयुद्ध को कहते हैं—प्राण (शक्ति) ओज (निपुणता) एवं वहणि (दावपेंच) आदि किसी भी ढङ्ग से द्वितीय मल्ल को मारना (परास्त करना) मारयुद्ध कहलाता है॥ ११॥

मल्लों का यही कर्त्तव्य है कि दूसरे मल्ल को भूमि पर गिराकर ही छोड़ दे। भार अथवा भार से अङ्गभङ्ग करना और अन्य विधियाँ जिनसे प्रतिद्वन्द्वी का प्राणान्त हो जाय, उनका परित्याग कर दे अथवा संग्राम को छोड़कर अन्यत्र मारयुद्ध का प्रयोग न करे॥ १२½॥

**धर्मयुद्ध**—अब धर्मयुद्ध के बत्तीस गुण कहे जाते हैं॥ १३॥

धर्मयुद्ध में केशों को खींचना, कान पर प्रहार करना, मुख पर प्रहार करना और नासिका को पीड़ित करना वैध हैं और आँख फोड़ना, दाँत तोड़ना, मुख में धूल डालना, आँखों में धूल डालना, नखों से विदारण करना, नस-नाड़ियों को दबाना, ग्रीवा को मरोड़ना (गला घोटना) कच्छा (जाङ्घिया) फाड़ना, दण्ड (लिङ्ग) को पकड़ना, शिर पर प्रहार करना और मर्मस्थलों पर आघात करना ये अवैध (अनुचित) उपाय हैं। इनसे बचकर यश और हर्ष को बढ़ानेवाले धर्मयुद्ध को करे॥ १४-१८॥

प्रतिपक्षी मल्ल को भूमि पर गिराकर ही छोड़ दे। उससे द्वेष नहीं करे। यदि कोई मल्ल दर्प (घमण्ड) के वशीभूत होकर आसुर युद्ध को प्रारम्भ कर दे॥ १९॥ और द्वितीय मल्ल का अङ्गभङ्ग या प्राणान्त हो जाय तो इसमें राजा ही दोषी माना जाता है॥ २०॥

---

१. यहाँ वालकेन के स्थान पर बालकेन ऐसा पाठ होना चाहिये। जैसे बालक नियमानुसार नहीं लड़ते वैसे ही अङ्ग-भङ्गात्मक युद्ध आसुर कहलाता है। आजकल इस आसुरयुद्ध को जुजुत्सु और जूडो-कराटे के नाम से जाना जाता है।

२. **बलवतश्च क्रियातश्च बाहुयुद्धविधिर्युधि। निपातानन्तरं किञ्चिन्न कर्तव्यं विजानता॥ १६॥**
**शस्त्रसिद्धिस्तु योधानां संग्रामे शस्त्रयोधिनाम्। रङ्गसिद्धिस्तु मल्लानां प्रतिमल्लनिपातजा॥ २६॥**
—हरिवंशपुराणं विष्णुपर्व, अ० ३०

**निवारयति यो भूपः सम्प्राप्नोति परं यशः। पक्षपातो न कर्त्तव्यः सर्वत्र समतां वरः॥ २१॥**
**समेन पालयेद्राजा यशः प्राप्नोति निश्चितम्। धर्मयुद्धे कृते मल्लो मल्लं मारयते यदि॥ २२॥**
**राजा चोपेक्षते चैव तदा दोषो महान्भवेत्। प्रमादान्म्रियते वापि न दोषो राजमल्लयोः॥ २३॥**
**घाताश्चैवोपघाताश्च विज्ञाताश्चैव विक्रमाः। इत्येते धर्मयुद्धस्य द्वात्रिंशत् कथिता गुणाः॥ २४॥**

## मुष्टियुद्ध

यह पहले ही कहा जा चुका है कि सब आयुध समाप्त हो जाने पर हाथ-पैरों से प्रहार करने अथवा गुत्थमगुत्था होकर एक-दूसरे को धराशायी करने को नियुद्ध कहते हैं। रामायण, महाभारत तथा मानसोल्लास में इस युद्ध के अनेक विज्ञान कहे गये हैं, जिनका वर्णन आगे किया जायेगा। पाणिनि के समय भी यह कला प्रचलित थी। काशिकाकार ने समिमुष्टौ (अ० ३।३।३६) सूत्र का उदाहरण 'अहो मल्लस्य संग्राहः' यह दिया है। बँधी हुई मुट्ठी को संग्राह करते हैं। इसी का दूसरा नाम वज्र भी है।[१]

परन्तु बाद की परम्परा में मुष्टिप्रहार को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये मुष्टि नामक आयुध का आविष्कार हुआ जिसे धारण करके प्रहार किया जाता था। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में आयुधों की गणना में मुष्टि को भी सम्मिलित किया है।[२] इसी प्रकार प्रश्न-व्याकरणम् में मोठिया शब्द मुष्टि आयुध का ही वाचक है।[३]

नीतिप्रकाशिका में मौष्टिक आयुध के लक्षण और उसकी गतियाँ भी दी हैं। इस ग्रन्थ के भाष्यकार कर्नल गस्टाव आपर्ट ने इसका अर्थ छुरिका किया है। अन्य विद्वानों ने भी उसी का अनुकरण करके छुट्टी पा ली है। इसका मान प्रादेश (नव अङ्गुल) जितना बताया है। इतनी छोटी छुरिका की प्रहरण क्षमता नगण्य है। यहाँ ज्ञानार्थ मूल पाठ उद्धृत करना आवश्यक है।

**मौष्टिकं सत्सरुज्ञेयं प्रदेशोन्नतिभूषितम्। शिताग्रं सन्नतग्रीवं पृथूदरं सितं तथा॥ ४०॥**

---

अतः मल्लयुद्ध के समय इस आसुरयुद्ध को जानकर राजा यत्नपूर्वक उसका निवारण करे। इससे उसका यश सर्वत्र होता है॥ २०½॥

राजा को किसी श्रेष्ठ मल्ल का अथवा दूसरे का पक्षपात नहीं करना चाहिये। राजा नियमों का पालन करने से ही कीर्तिमान् होता है॥ २१½॥

यदि धर्मयुद्ध (प्रदर्शनात्मक) करते समय एक मल्ल दूसरे मल्ल को मारता है और ऐसा करते समय राजा इस कृत्य की उपेक्षा करता है तो उसी का दोष है। यदि प्रमाद (अपनी भूल से) कोई मल्ल मर जाता है तो राजा और द्वितीय मल्ल का दोष नहीं है॥ २२-२३॥

घात (प्रहार), उपघात, विज्ञान (दावपेंच) और विक्रम—ये धर्मयुद्ध के बत्तीस गुण इस अध्याय में कहे गये हैं॥ २४॥

**अर्थ**—मौष्टिक=मूठसहित, प्रदेशमात्र (नव अङ्गुल) लम्बा होता है। इसका अग्रभाग तीक्ष्ण,

---

१. संग्राहो वज्रमिष्यते (काशिका)
२. वि० ध० ३।८७।२७
३. प्रश्न० व्या० सूत्र ४, पृ० १८

## वज्रमुष्टि

१

२

३

४
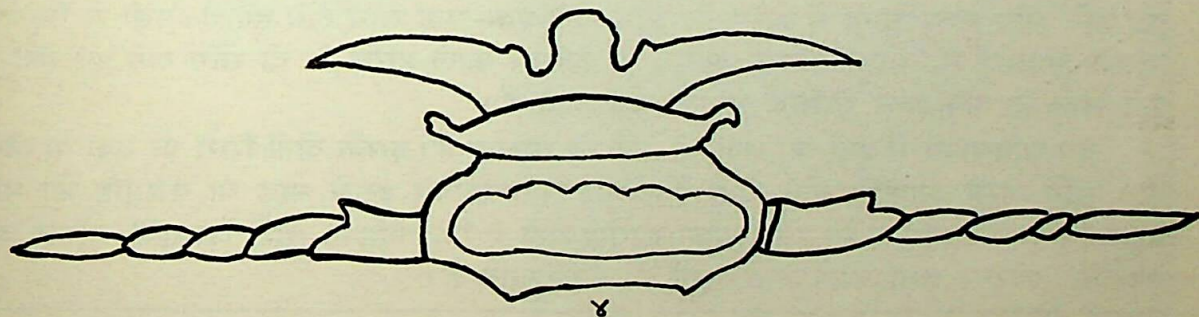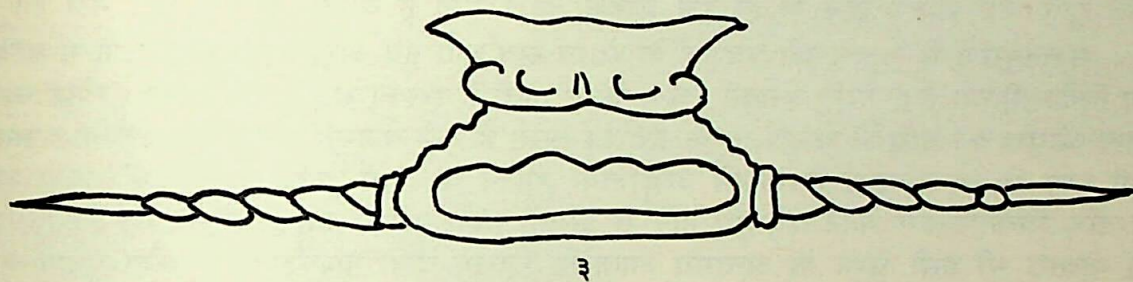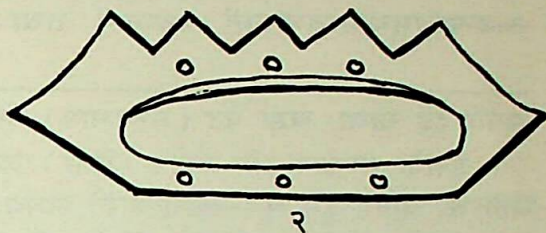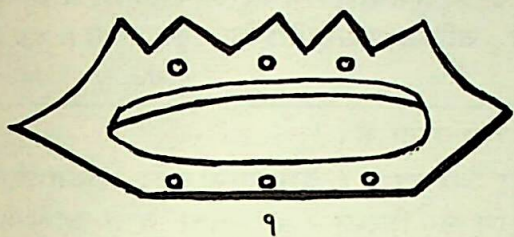
मण्डलानि विचित्राणि स्थानानि विविधानि च। गोमूत्राणि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च॥ ४१॥
तिरश्चीनगतान्येव तथा वक्रगतानि च। परिमोक्षं प्रहरणं वर्धनं परिधावनम्॥ ४२॥
अभिद्रावणमाप्लावं साधःस्थानं सविग्रहम्। परावृत्तमपावृत्तमपद्रुतमुपप्लुतम्॥ ४३॥
अपन्यस्तमुपन्यस्तमाघातं स्थालनं तथा। एतानि वल्गितान्याहुर्मौष्टिके नृपसत्तम॥ ४४॥
–नी० पु० अ० ५

झुकी हुई ग्रीवा, बड़ा पेट (मध्यभाग) और वर्ण श्वेत होता है।

इसके मण्डल और स्थान (पैंतरे) विविध और विचित्र हैं। जैसे गोमूत्रिका अर्थात् जैसे बैल के चलते हुए मूत्र-त्याग करते समय उससे भूमि पर तिरछी रेखा बनती चली जाती है, वैसे चलना, आगे जाना, पीछे लौटना, तिरछा चलना ये परिमण्डल कहलाते हैं। परिमोक्ष प्रहार करने को तैयार होना, दूसरे के प्रहार को रोकना, चारों ओर गोलाकार घूमना, सामने जाना, उछलकर जाना, नीचे बैठना, दूसरे को दबाना, स्वयं पीछे हटना, तेजी से पीछे हटना, छलांग लगाना, नीचे झुकना, ऊपर उठना, आघात करना और रोकना ये मौष्टिक की गतियाँ हैं।

इस ग्रन्थ के टीकाकार ने (मौष्टिकं नाम मल्लैः हस्तधार्या छुरिका) अर्थात् मल्लों द्वारा हाथ में धारण की जानेवाली छुरिका अर्थ किया है जोकि हमारे पक्ष की पुष्टि करता है। इसके दाँत छुरी जैसे तीक्ष्ण होने से ही इसे छुरिका कहा गया है वास्तव में यह छुरी नहीं है।

मल्लपुराण में मल्लों को प्रदर्शन के समय सूत्र लगे हुए आयुध को अङ्गुलियों में पहनने का निर्देश किया है।[१] परन्तु इसकी रचना कैसी होती है इसका सङ्केत नहीं किया। ज्येष्ठी मल्ल जिस आयुध को हाथ में धारण करके प्रदर्शन करते हैं उसे वज्रमुष्टि कहते हैं। यह आज सर्वत्र इसी नाम से जाना जाता है। इसमें अङ्गुलियाँ डालने के लिये चार छिद्र होते हैं। ऊपर चार या पाँच त्रिकोणाकार काँटे बने हुए होने से इसकी प्रहार क्षमता बहुत अधिक है। जापान देश का यावारा भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आता है, जिसमें दोनों पार्श्वभागों में कोने बनाये जाते हैं।

वज्रमुष्टि के भी दो भेद हैं। मल्लों के कीडार्थ भैंस के सींग से बना हुआ, जिसमें चार छिद्र न होकर एक ही बड़ा छिद्र मध्य में होता है, अग्रभाग में चार-पाँच काँटे होते हैं और दूसरा वास्तविक युद्ध में प्रयुक्त होनेवाला जोकि पीतल या लोहे का बना हुआ होता है। मद्रास पुरातत्व संग्रहालय में वज्रमुष्टि के दो नमूने ऐसे भी विद्यमान हैं जिनमें सामने छुरी जैसे शृंगाकार दो काँटे और पार्श्व भागों में हरिण के सींग जैसे एक-एक सींग लगे हुए हैं। इसी से मिलता-जुलता महाराष्ट्र में 'माड़ू' नामक आयुध है, जिसमें काले हरिण के दो सींग लगे हुए होते हैं। इसे मध्य से पकड़कर विविध प्रहार किये जाते हैं।

देव प्रतिमाओं में इन्द्र का वज्र भी इसी से मिलता है। इसके दोनों सिरों पर एक या तीन-तीन सींग जैसी आकृति बनी होती है। मध्य से पकड़कर इससे माड़ू या वज्रमुष्टि की भाँति प्रहार किया जा सकता है। इन सबका सारांश यही है कि मौष्टिक, मुष्टि, वज्रमुष्टि, यावारा और वज्र का स्वरूप तथा कार्य एक-दूसरे से मेल खाते हैं।

१. मल्लपु० १४।४९

# मुष्टियुद्ध के पवित्रे
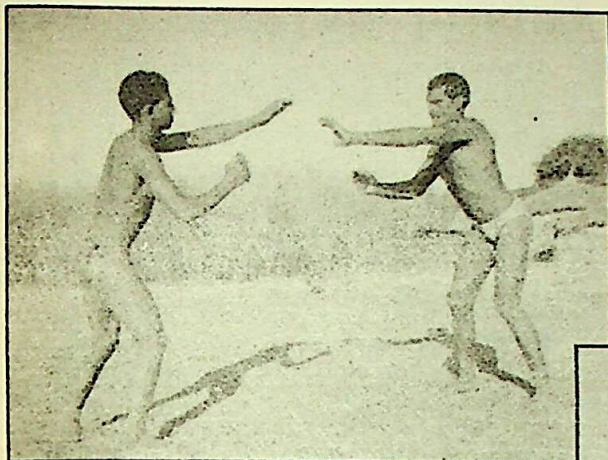
गजपाद
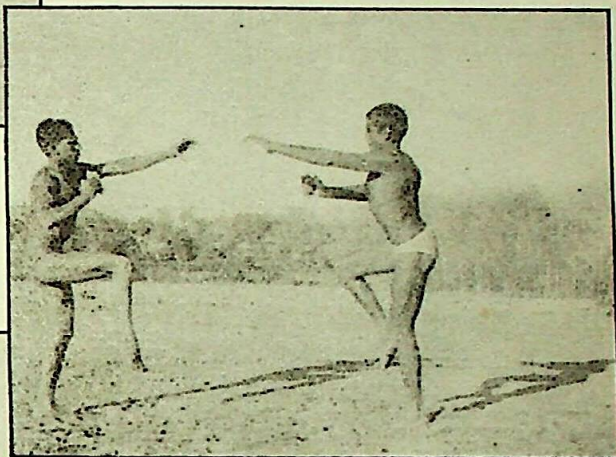
सिंहपाद
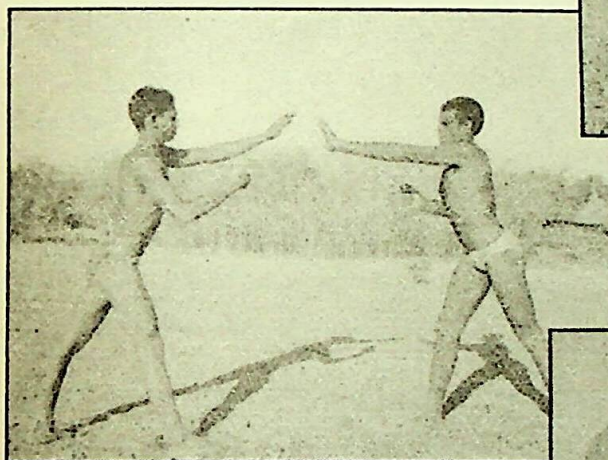
वृषभपाद
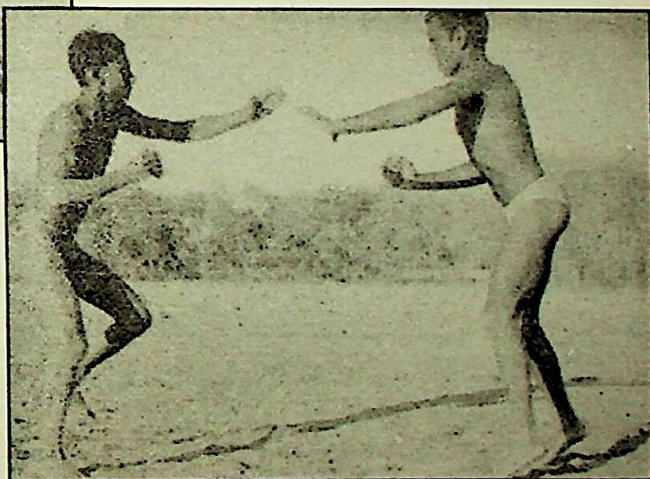
मृगपाद

# वज्रमुष्टि के विभिन्न प्रहार
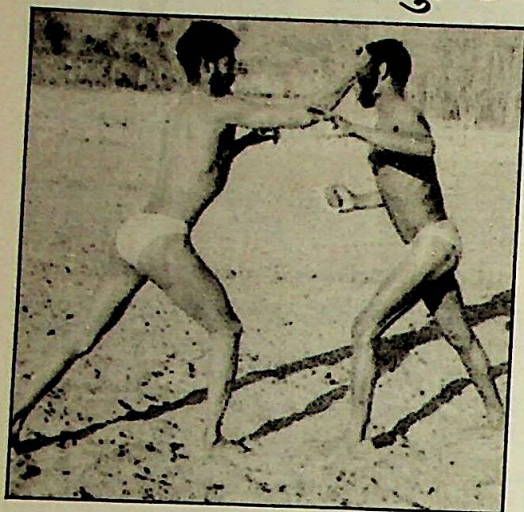
तमाचा
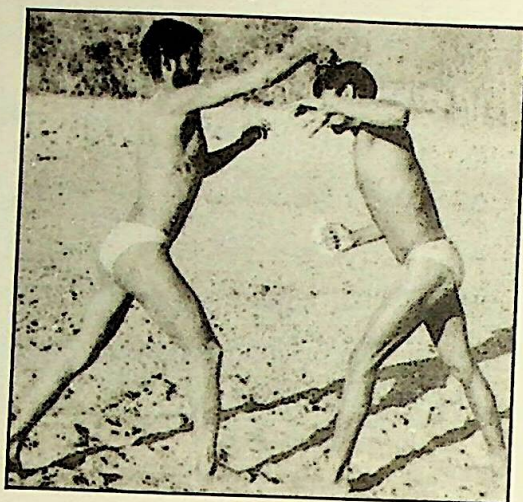
शिर

बाहेरा
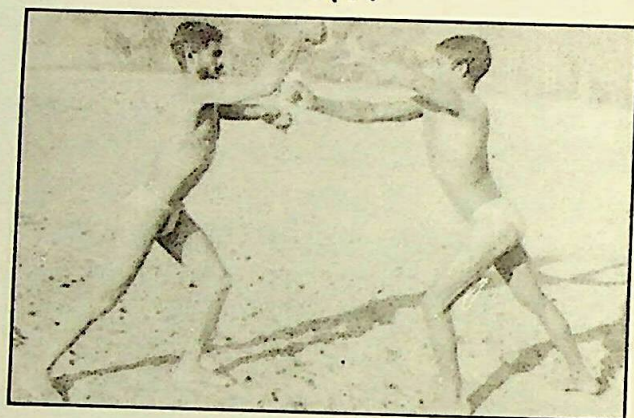
चीर

चीर
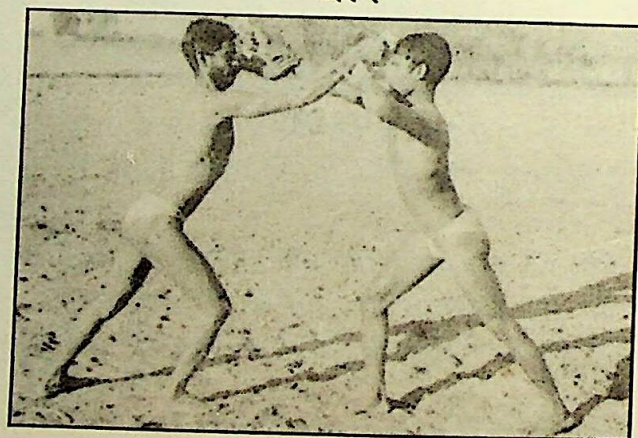
हूल

## वज्रमुष्टि से किया जानेवाला युद्ध

मल्लपुराण में इस युद्ध का संक्षेप में वर्णन किया है। इस युद्ध को केवल मनोरंजन के लिये ही किया जाता था, परन्तु असावधानी से कभी-कभी यह प्राणान्तक भी हो सकता है। इस युद्ध में वज्रमुष्टि से पैर, घुटने, शिर एवं वक्षस्थल से शरीर के विभिन्न अङ्गों पर प्रहार किये जाते हैं। परस्पर लहूलुहान होने पर भी यह युद्ध चलता ही रहता है। जब तक दूसरा मल्ल बन्धादि के द्वारा निष्क्रिय न हो जाये तब तक निर्णय नहीं होता।

मल्लपुराण में वज्रमुष्टि से प्रहार कैसे कहाँ-कहाँ करे इसका विस्तार से वर्णन नहीं किया गया। इसके स्पष्टीकरण के लिये हमें एन्साईक्लोपीडिया आफ फिजिकल कल्चर पृ० २३० से सहयोग लेकर विषय को समझने में सरलता रहेगी।

वज्रमुष्टि से आठ स्थलों पर प्रहार किया जाता है—

१. तमाचा—बायीं कनपटी पर प्रहार करना।

२. चीर—ठोड़ी पर सामने से सीधा प्रहार मारना।

३. चीर—कुहनी पर मारना।

४. चीर—शस्त्र से रहित बायें हाथ की कलाई पर प्रहार करना।

५. शिर—शिर पर मारना।

६. बाहेरा—दाहिनी कनपटी पर मारना।

७. हूल—मुख पर सीधा मारना।

८. पंजा—शस्त्रवाले हाथ की कलाई पर प्रहार करना। इनमें चीर सीधा सामने से मारा जाता है। हूल दाहिने हाथ को बायीं ओर लाकर मारते हैं पाँचवा शिर, छठा बाहेरा और आठवाँ पंजा ये पैंतरे चलकर दाहिने हाथ को बायीं ओर लाकर मारे जाते हैं। इन प्रहारों को प्रतिपक्षी बायें हाथ से पैतरा चलकर रोके। इस प्रकरण में नाभि से नीचे प्रहार करने का निषेध किया है। नाभि से नीचे प्रहार करना पुरातन क्षत्रिय परम्परा के विरुद्ध है।

**स्थानानि—**

**समपादं गजस्यैव विषमं वृषभस्य च। सिंहस्य चोन्नतं पादं चलत् पादं मृगस्य च॥**

*—म० पु० ७/११*

**योद्धव्या सर्वमल्लास्तु द्वन्द्वशोऽथ यथाबलम्। मल्लैस्तु सावधानैश्च कर्त्तव्यं युद्धमुत्तमम्॥ ४८॥**

**कराङ्गुलिषु संवेश्य सूत्रग्रथितमायुधम्। तेन सूत्रमयेनाथ जयमन्त्रकृतेन वा॥ ४९॥**

---

गज प्रकृतिवाले मल्ल का पवित्रा समपाद (दोनों पैरों को समानान्तर तथा कुछ झुकाकर खड़ा होना), वृषभ प्रकृति मल्ल को विषम पाद (एक पैर आगे कुछ मुड़ा हुआ, दूसरा पीछे सीधा), सिंह प्रकृति मल्ल का एक पैर उठा हुआ और मृग प्रकृतिवाले मल्ल के दोनों पैर चलते रहते हैं॥ ११॥

सभी मल्लों को जोड़ी बनाकर समान बलवालों के साथ लड़ना चाहिये। युद्ध के समय सावधानी रखना आवश्यक है॥ ४९॥

सामूहिक उत्सवों
पर मल्लयुद्ध
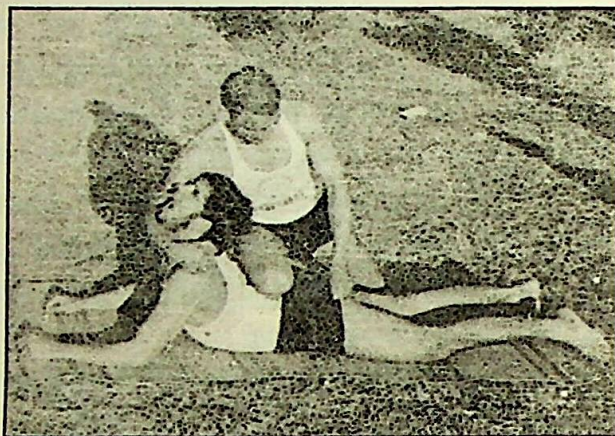
ततोऽस्यजानुना पृष्ठमपीड्य बलादिव।
बाहुना परिजग्राह दक्षिणेन शिरोधराम्॥
सव्येन च कटिदेशे गृह्य वाससि पाण्डवः।
तद् रक्षो द्विगुणं चक्रे रुवन्तं भैरवं रवम्॥
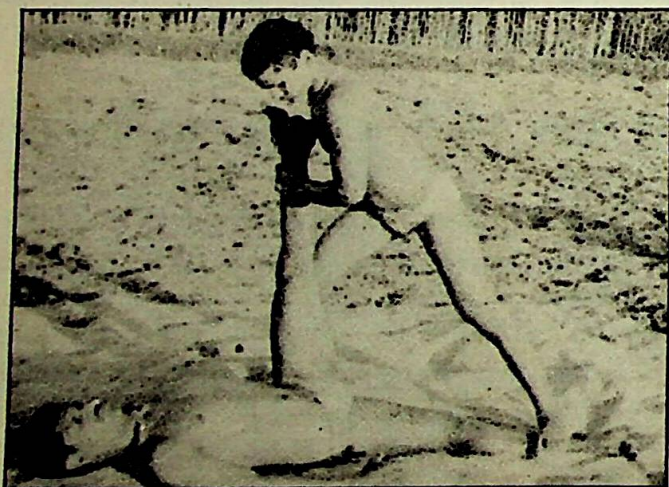
एकां जंघा पदाक्रम्य परामुद्यम्य पाट्यते।
केतकी पत्र वच्छत्रुर्युद्धं तद् बाहुकण्टकम्॥

शत्रुभङ्गे भवेन्मल्लो जयश्रीः प्राप्यतेऽचिरात्। तेन बाणप्रहारस्तु मल्लाङ्गेषु प्रजायते॥ ५०॥
चरणेन प्रहारस्तु प्रहारो जानुभिस्तथा। कटिप्रहार उरसा पृष्ठेनाथ करेण च॥ ५१॥
मुष्टिप्रहार इतरः शिरसा च ललाटके। राजा च जयिनं मल्लं कुर्याच्छृंगारसंयुतम्॥ ५२॥

*—मल्लपु० अ० १४*

## नियुद्ध

**महाभारतकालीन नियुद्ध के दावपेंच**—द्रोणपर्व में सात्यकि और भूरिश्रवा ने ३२ विज्ञानों का प्रयोग नियुद्ध करते समय किया।[1] जिनके नाम भी अन्य कई स्थानों पर आये हैं। कुछ स्थलों पर प्रयुक्त विज्ञान का स्पष्ट वर्णन भी किया है, जैसाकि भीम द्वारा प्रयुक्त पृष्ठभङ्ग एवं बाहुकण्टक विज्ञान। श्री नीलकण्ठ शास्त्री ने इन विज्ञानों की स्पष्ट व्याख्या की है। उनसे पहले उपलब्ध साहित्य में से ये उद्धरण लिये गये हैं, ऐसा प्रतीत होता है। नियुद्ध में हाथ, पैर, घुटना, कुहनी एवं शिर से प्रहार, प्रतिपक्षी को दावपेंच से नीचे गिराना, उसे नियन्त्रित करने के लिये बन्ध लगाना और मर्म-स्थानों पर आघात करके मारना सम्मिलित है। मल्लपुराण में कहे आसुर युद्ध और मारयुद्ध इसी के अन्तर्गत आते हैं। यहाँ इन विज्ञानों का यथासम्भव सचित्र वर्णन किया जायेगा।

**पृष्ठभङ्ग—**

ततोऽस्य जानुना पृष्ठमवपीड्य बलादिव। बाहुना परिजग्राह दक्षिणेन शिरोधराम्॥ २६॥
सव्येन च कटिदेशे गृह्य वाससि पाण्डव। तद् रक्षो द्विगुणं चक्रे रुवन्तं भैरवं रवम्॥ २७॥

*—महा० आदि पर्व अ० १३६*

### सभापर्व अध्याय २३, श्लोक १३-२३—भारतभावदीपटीका पृष्ठ ४४

**( १ ) चित्रहस्तादिकम्—**

**हस्तस्यातिवेगेन आकुञ्चनप्रसारणोपर्यधश्चालनमुष्टीकरणानि चित्रहस्ता आदि पदात्पादस्याकुञ्चनादि।**

**( २ ) कक्षाबन्धम्—**

**परस्परकक्षायां हस्तौ कृत्वा बन्धनम्।**

---

हाथ की अङ्गुलियों में सूत्र से युक्त आयुध (वज्रमुष्टि) को धारण करे। यह सूत्रयुक्त आयुध, जय का हेतु है। इससे मल्ल प्रतिपक्षी शत्रु मल्ल को परास्त करने में सफल हो शीघ्र ही जयश्री प्राप्त करता है तथा इससे मल्ल के अङ्गों पर बाण-जैसा आघात लगता है॥ ५०॥

इसके अतिरिक्त पैर से प्रहार, घुटने से प्रहार, वक्षस्थल, पृष्ठभाग या हाथ से कटि पर प्रहार अथवा शिर पर अपने शिर या मुष्टि से प्रहार भी दोनों मल्ल परस्पर करें। जिस मल्ल का जय होवे राजा उसे विविध वस्त्राभूषण देकर पुरस्कृत करे॥ ५१-५२॥

हाथ को वेगपूर्वक सिकोड़ना, फैलाना, ऊपर-नीचे चलाना, मुष्टि बाँधना एवं इसी प्रकार पैर से क्रिया करना चित्रहस्त कहलाता है।

एक-दूसरे की कक्षा (बग़ल) में हाथ डालकर बाँधना।

प्रतिपक्षी के गल (ग्रीवा) पर अपने शिर के अग्रभाग से प्रहार करना।

---

१. द्वात्रिंशत् करणानि स्युर्यानि युद्धानि भारत। —महा० द्रो० १४३।४७

**( ३ ) गलगण्डम्—**

गले गण्डेन भालदेशेनाभिघातस्तेन।

**( ४ ) बाहुपाश: चरणपाश:—**

बाहुपाशादिकं चरणपाश आदि शब्दार्थ:। पादाभ्यामाहता: शिरास्नायवो याभ्यां तौ।

**( ५ ) उरोहस्तम्—**

उरसि चपेटाप्रहारम्।

**( ६ ) पूर्णकुम्भौ—**

ग्रथिताङ्गुलिभ्यां हस्ताभ्यां परशिरस: पीडनं पूर्णकुम्भ:।
( द्वित्वं परस्परं द्वावपि चक्रतुरिति वक्तुम्। )

**( ७ ) उदरम्—**

आवृत्य जत्रुदेशे पृष्ठं कृत्वा बाहुभि: बहुत्वाद् द्वावपि मिथं उदरमादाय प्रचक्रतु: प्रचिक्षिपतु:। कृ विक्षेपे अस्य रूपम्। एवं कट्यां सुपार्श्वे च प्रचक्षतु:। तक्षवन्तौ तक्षस्तनुकरणं गात्रं संकोच इत्यर्थ:।

**( ८ ) अधोहस्तम्—**

उरसि अधस्ताद् हस्तं कृत्वा हस्ताभ्यामुदरमावेष्ट्य
स्वकण्ठे स्वोरसि च कण्ठोर: समीपे आनीय आक्षिपत्।

**( ९ ) पृष्ठभङ्गम्—**

पृष्ठस्य भूसम्बन्धेन जातं भङ्गं पराभवम्।

**( १० ) सम्पूर्णमूर्च्छा—**

बाहुभ्यामुदरादिनिपीडने सम्पूर्णमूर्च्छाम्।

**( ११ ) तृणपीडम्—**

रज्जूकरणे तृणमिव यत्र बाह्वादिकं व्यावर्त्यते तद् युद्धं तृणपीडम्।

**( १२ ) पूर्णयोग:—**

पूर्णयोगं योगो विश्रब्धपातनं तच्च पूर्णं अन्यत्र मुष्टे: पातं प्रदर्श्यान्यत्र पातनमित्यर्थ:।

---

हाथ पैरों से परस्पर एक-दूसरे को जकड़कर शिरा एवं स्नायु का अवपीडन करना।

छाती में थप्पड़ मारना।

दोनों हाथों की अङ्गुली परस्पर बाँधकर दोनों हाथों से प्रतिपक्षी के शिर को दबाना।

अपनी भुजाओं से प्रतिपक्षी की पीठ को लपेटकर उसे अपनी हँसली के पास लाकर गिराना।

छाती के नीचे से हाथ लाकर दोनों हाथों से प्रतिपक्षी को जकड़कर उसे अपनी छाती और ग्रीवा के समीप लाकर गिराना।

प्रतिपक्षी को पीठ के बल गिराना या उसकी रीढ़ की हड्डी को तोड़ना।

दोनों भुजाओं द्वारा उदर पर आघात करना या उसे अत्यधिक दबाकर मूर्च्छित करना।

जैसे रस्सी बटी जाती है, उसी प्रकार हाथ को मरोड़ना।

निरन्तर मुष्टिप्रहार करना अथवा अन्यत्र मुष्टिप्रहार दिखाकर दूसरे स्थान पर धोखे से मारना।

# नियुद्ध विज्ञान
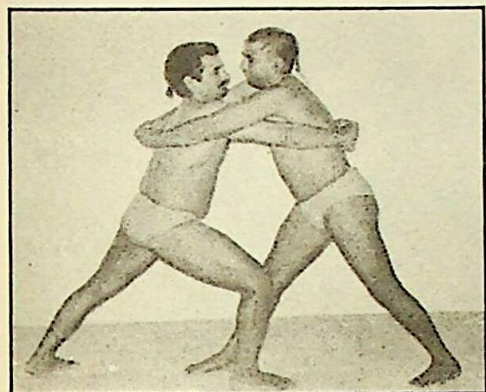
कक्षाबन्धम्
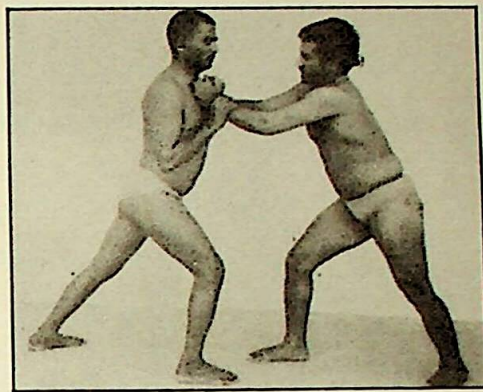
मुष्टि
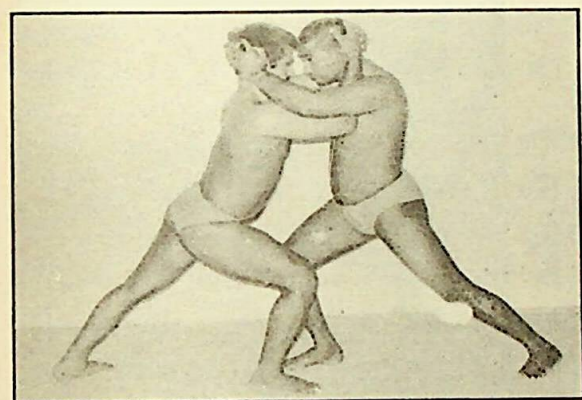
पूर्णकुम्भ
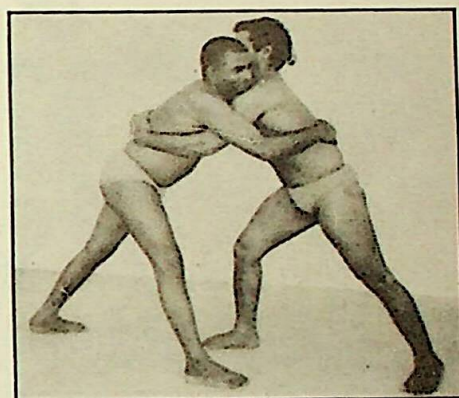
उदर
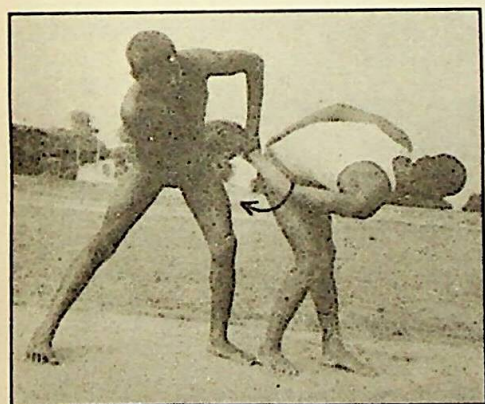
तृणपीड
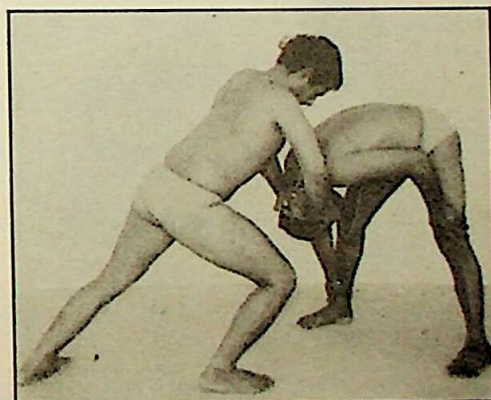
निग्रह

# नियुद्ध विज्ञान
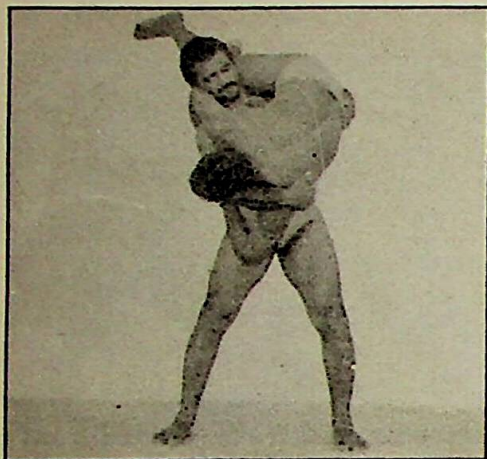
वराहोद्धृत निस्वन
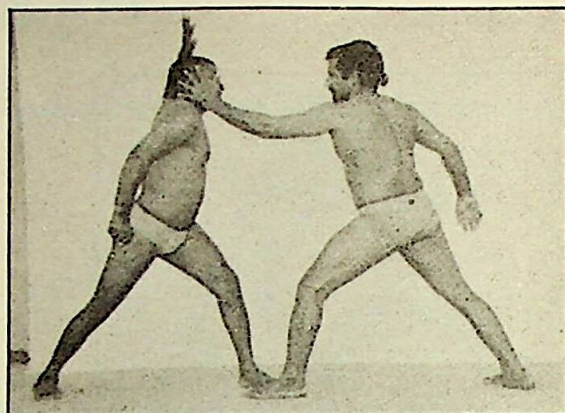
तल ( चपेटा मारना )
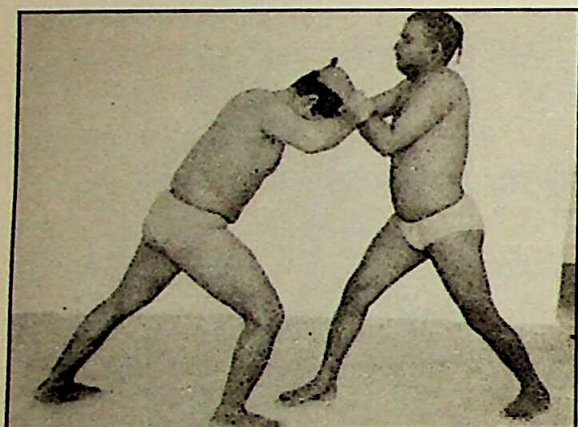
केशाकर्षण
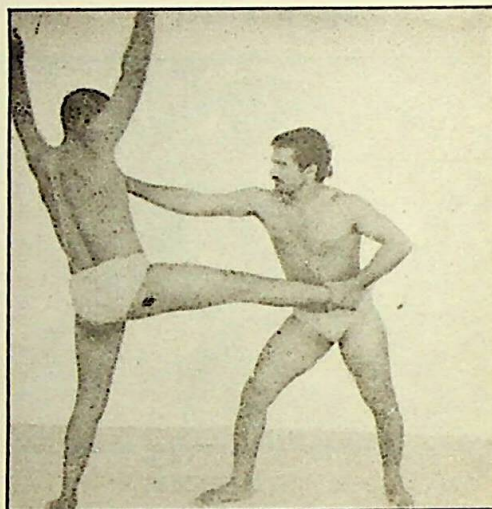
प्रकर्षण–२
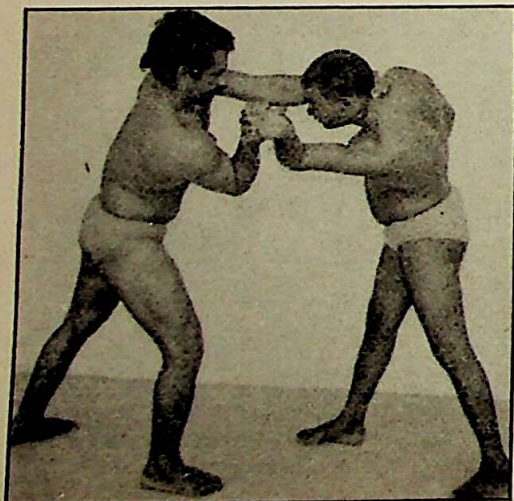
हस्त त्रोटन
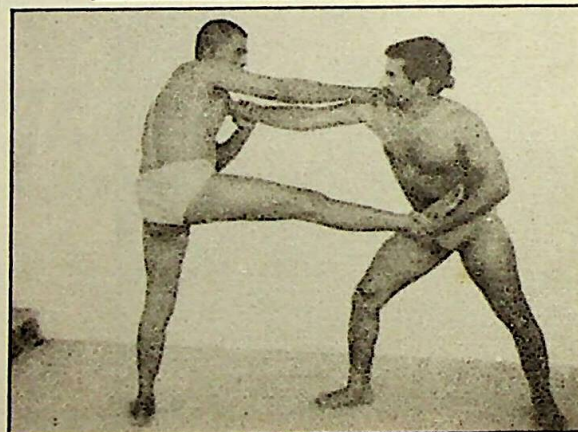
प्रकर्षण–१

**( १३ ) निग्रहः—**

**हस्ताभ्यां कन्धराकर्षणेन शत्रोरधोमुखी करणम्।**

**( १४ ) प्रग्रहः—**

**शत्रोरुत्तानपातनार्थं पादाकर्षणम्।**

**( १५ ) प्रकर्षणम्—**

**पश्चादपसारणम्। इतरोनुकर्षति अवाङ्मुखमनुपातयितुम्।**

**( १६ ) आकर्षम्—**

**अर्वाक्करणम्। इतरो विकर्षति तिर्यङ् नयतीत्यर्थः।**

**निपात्य पेषणं भूमौ प्रमाथ इति कथ्यते। यत्तूत्थायाङ्गमथनं तदुन्मथनमुच्यते॥ १॥**
**क्षेपणं कथ्यते यत्तु स्थानात् प्रच्यावनं हठात्। उभयोर्भुजयोर्मुष्टिरुरोर्मध्ये निपात्यते।**
**मुष्टिरित्युच्यते तज्ज्ञैर्मल्लविद्याविशारदैः॥ २॥**
**अवाङ्मुखं स्कन्धगतं भ्रामयित्वा तदैव यः। क्षिप्तस्य शब्दः स भवेद् वराहोद्धूतनिःस्वनः॥ ३॥**
**तर्जन्यङ्गुष्ठमध्येन प्रसारितकरो हि यः। सम्प्रहारतलाख्यस्तु संग्राहो वज्रमिष्यते॥ ४॥**
**अङ्गुल्यः प्रसृता यास्तु ताः प्रसृष्टा उदीरिताः।**
**आकृष्य क्रोडीकरणं प्रकर्षणमुदाहृतम्। आकर्षणं लीलयैव सम्मुखीकरणं स्मृतम्॥ ५॥**

---

निग्रह—दोनों हाथों से शत्रु की ग्रीवा पकड़कर उसे नीचे की ओर दबाना।

शत्रु को सीधा डालने के लिये पैरों को खींचना (पट्ट निकालना)।

पीछे की ओर ढकेलना जिससे दूसरा गिर पड़े।

उलटा गिराना।

**प्रमाथ**—प्रतिपक्षी को भूमि पर डालकर उसे पीसना (रगड़े देना) प्रमाथ कहलाता है।

**उन्मथन**—खड़े-खड़े ही दूसरे के अङ्गों को पीड़ित करना अथवा द्वितीय मल्ल का नीचे से दाव लगाकर ऊपर आना और प्रतिद्वन्द्वी को पीड़ित करना।

**क्षेपणम्**—द्वितीय मल्ल को स्वस्थान से बलपूर्वक ढकेलना क्षेपण कहलाता है।

**मुष्टि**—अपनी दोनों भुजाओं की मुष्टि बाँधकर प्रतिद्वन्द्वी के वक्षस्थल (छाती) में प्रहार करने को मल्लशास्त्र के वेत्ताओं ने मुष्टि कहा है।

प्रतिपक्षी को ऊपर उठाकर उसका मुख नीचे करके (निकाल आदि दावों को लगाकर) उसे घुमाकर नीचे फेंकना (जिसके फेंकने से ऐसा शब्द हो जैसे सूअर ने टक्कर मारी हो) वराहोद्धूत निःस्वन होता है।

**सम्प्रहार**—तर्जनी और अङ्गुष्ठ के मध्यभाग को फैलाकर (जिसमें चारों अङ्गुलियाँ परस्पर मिली रहें) थप्पड़ मारना सम्प्रहार माना गया है।

**प्रसृष्ट**—जब सभी अङ्गुलियों को फैलाकर थप्पड़ या चपेटा मारते हैं तो उसे प्रसृष्ट कहा गया है।

प्रतिपक्षी को खेंचकर, उसे दबाकर उसकी गाँठ-सी बाँधना प्रकर्षण कहा जाता है।

**पुरः पश्चात्पार्श्वयोश्चाभ्याकर्षो भ्रमणं तथा। पश्चात्प्रपातनं वेगाद्विकर्षणमुदाहृतम्॥ ६॥**

*—विराटपर्व अ० १३, भा० भा० दीप० पृष्ठ २०*

### बाहुकण्टकयुद्धम्[१]—

**बाहुकण्टकं केतकपत्रं तद्वद् यत्र बलिना दुर्बलस्य शरीरं पाट्यते तद् बाहुकण्टकं नाम युद्धम्। यथोक्तमेकां जङ्घां पदाक्रम्य परामुद्यम्य पाट्यते। केतकीपत्रवच्छत्रुर्युद्धं तद्बाहुकंटकम्॥**

*—महा०, शान्ति०, अ० ६, श्लोक ४ भा० भा० दी० टीका पृष्ठ ७*

### मानसोल्लासे विज्ञानानि—

**संस्थानानि च चत्वारि कल्पयेयुर्दृढानि च। विज्ञानानि च सर्वाणि तेऽभ्यसेयुरशेषतः॥ ९३॥**
**वक्ष्यामि [२]स्थानकानाञ्च विज्ञानानां च लक्षणम्। कक्षे पूर्वापरे धृत्वा प्रोत्तानपतितस्य हि॥ ९४॥**
**तत्कपोलं स्वपार्श्वेन सम्पीड्यार्धाङ्गकं भवेत्। पुरः कक्षं समादाय पूर्ववत्पातितः स हि॥ ९५॥**
**मूर्ध्नि कूर्मासनं बद्ध्वा भजेद्वाप्येकपादकम्। उत्तानप्रतिमल्लस्य निवार्य चरणद्वयम्॥ ९६॥**
**उदरस्योपरिस्थानं स्थानं करवलं स्मृतम्। स्वयमुत्तानपतितो जठरागमनोद्यतम्॥ ९७॥**

---

लीलापूर्वक (दावपेंच या धोखा देकर) अपनी ओर खेंचना आकर्षण कहलाता है।

**विकर्षण**—सामने से, पीछे से, पार्श्वभाग (बराबर) से प्रतिपक्षी को अपनी ओर खींचकर उसे चक्र देकर वेगपूर्वक (झटके से) पीछे गिरा देना विकर्षण कहा गया है।

**बाहुकण्टक**—बाहुकण्टक केतकी का पत्ता होता है, उसी के समान बली पुरुष के द्वारा दूसरे को भूमि पर डाल, एक पैर से उसकी जङ्घा को दबाकर दूसरे पैर को अपने हाथों से ऊपर को उठाकर केतकी के पत्र के समान उसके शरीर को फाड़ा जाता है। इस युद्ध को बाहुकण्टक कहते हैं।

**मानसोल्लास में नियुद्ध के विज्ञान**—चार प्रकार के संस्थान (स्थिति, पैंतरा आदि) जिनसे सुदृढ़ होकर लड़ा जाये और सभी विज्ञान (दावपेंचादि) का अभ्यास सभी मल्ल करें॥ ९३॥

अब स्थान और विज्ञानों का लक्षण कहता हूँ—

**स्थान**—प्रतिपक्षी के सीधा गिरने पर, उसे दोनों कक्षा (बग़लों) से पकड़कर अपनी बग़ल से उसके कपोल (गण्डस्थल, गाल) को दबाकर रखना अर्धाङ्गक स्थान होता है॥

सामने से बगल में हाथ डालकर प्रतिपक्षी को पूर्ववत् सीधा डालने पर उसके सिर पर कूर्मासन (अपने हाथ-पैरों को कछुवे के सदृश सिकोड़ना) बाँधकर उसे काबू करे अथवा दूसरे मल्ल के सीधा गिरने पर अपने दोनों पैरों को उसके पेट पर रखना करवल स्थान कहलाता है॥ ९६॥

अपने आप सीधा गिर जाने पर प्रतिपक्षी द्वारा जठर (पेट) पर प्रहार करने के लिये उद्यत होने पर अपने दोनों पैरों द्वारा प्रहार करना जठरस्थान कहलाता है॥ ९७॥

---

१. बाहुकण्टकयुद्धेन तस्य कर्णोऽथ युध्यतः। बिभेद सन्धिं देहस्य जरया श्लेषितस्य च॥ —म०शान्ति० ६।४

२. **मल्लपुराणे—**
अथ द्वादश स्थानानि कथ्यन्ते मल्लकर्मणि। जयस्थानकमप्यत्र चतुर्धा परिकीर्तितम्॥ १०॥
शिरसि स्थानकं प्रोक्तं स्थानं करतलेऽपि च। उदरस्थानकं वापि पृष्ठस्थानमतः परम्॥ ११॥ —अ० ८

# स्थान

अर्धांगक स्थान
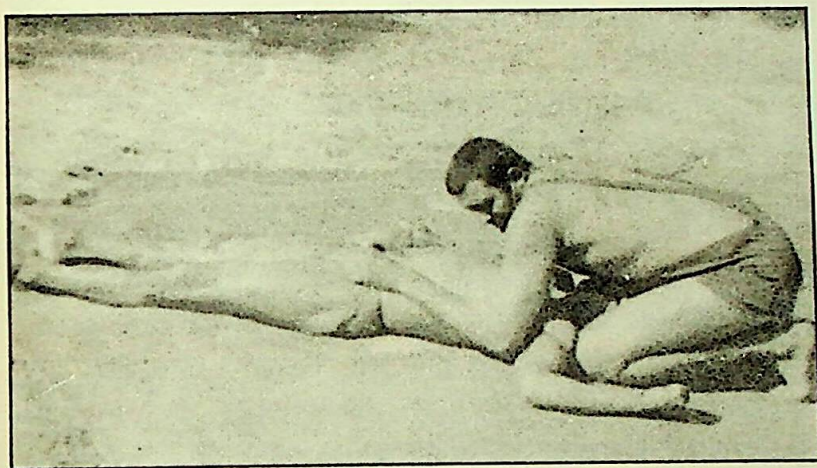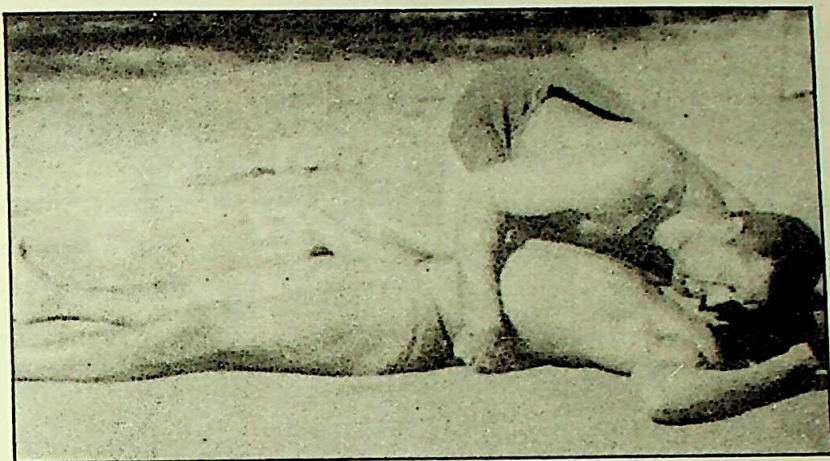
करवल स्थान

करवल स्थान
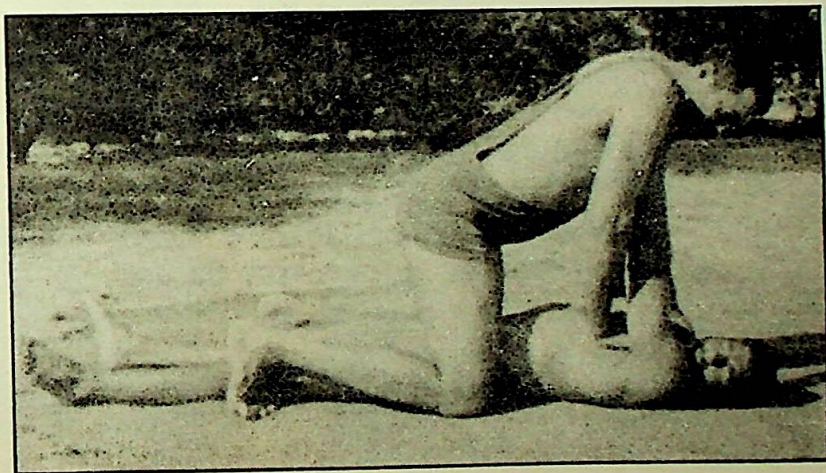
पादाभ्यां पीडयन्मध्ये जठरस्थानकं भवेत्। पराङ्मुखस्य मल्लस्य स्थितस्य पतितस्य वा॥ ९८॥
कक्षामाक्रम्य पार्श्वाभ्यां पृष्ठस्थानकमाचरेत्। उक्तानि स्थानकान्येवं विज्ञानानि प्रचक्ष्महे॥ ९९॥
स्वरूपेण तथा नाम्ना विस्तरेण यथागमम्। अर्धाङ्गस्थानकस्थेन मल्लेन स्थूलवर्ष्मणा॥ १००॥
पीडनान्मुखदेशस्य विज्ञानं स्यात् तदेव तु। स्थित्वैवार्धाङ्गके स्थाने पादस्याकर्षणं बहिः॥ १०१॥
बहिः पणमिति ज्ञेयं विज्ञानं पादमोटनम्। शिरःस्थानकमास्थाय गृहीत्वैकेन मूर्धकम्॥ १०२॥
अन्येन तत्करस्याधःक्षिप्तेन स्वकरे धृते। बहिर्भागे च वलिते विज्ञानं बाहुमोटनम्॥ १०३॥
तस्यैव परिदत्तस्य मोटने बाहुसी भवेत्। जङ्घाभ्यां च भुजाक्रान्तौ ताभ्यां शिरसि पीडिते॥ १०४॥
पुरः कक्षां समाकृष्य गुणालं प्राणघातकम्। ग्रीवायाः सभुजायाश्च पादेनाक्रमणे सति॥ १०५॥
अन्यजान्ववबद्धेन कुर्यादुत्तरढोङ्करम्। शिरः स्थितेन मल्लेन विक्षेपायोद्यतं पदम्॥ १०६॥
गृहीत्वा सक्थियुग्मेन कक्ष्ये निक्षिप्य पार्ष्णिकम्। उत्तानजानुदेशस्य कटियन्त्रेण पीडनम्॥ १०७॥
पट्टिशं नाम विज्ञानं जानुसन्धिप्रभञ्जनम्। अनेनैव प्रकारेण बाहुसन्धिप्रपीडनम्॥ १०८॥
छुडुकीनाम विज्ञानं प्राह सोमेशभूपतिः। अधो विधाय तद् बाहोः पूर्ववत् पीडनं यदि॥ १०९॥

---

प्रतिपक्षी मल्ल के औंधा गिरने पर या औंधा रहने पर अपने पार्श्वभाग (बग़ल) से उसकी कक्षा को पीड़ित करना पृष्ठस्थान होता है॥ ९८॥

स्थानों का वर्णन कर दिया है, अब विज्ञानों को कहते हैं॥ ९९॥

अपने स्वरूप और नामों से विज्ञानों का विस्तार जानना चाहिये। अर्धाङ्गस्थान से स्थित होकर स्थूलकाय मल्ल के द्वारा प्रतिपक्षी के मुखस्थान को पीड़ित करना अर्धाङ्गविज्ञान के नाम से ही प्रसिद्ध होता है॥ १००॥

अर्धाङ्गस्थान में बैठकर प्रतिपक्षी के पैर को बाहर की ओर खींचना (मरोड़ना) पादमोटन-विज्ञान जानना चाहिये॥ प्रतिपक्षी के शिर के पास बैठकर एक हाथ से उसका शिर दबाकर दूसरे हाथ को उसके हाथ के नीचे से निकालकर उसके हाथ को पकड़कर बाहर की ओर मरोड़ना बाहुमोटनविज्ञान होता है॥ १०२-१०३॥

उसी हाथ को ऊपर से दोनों हाथों से बाँधकर मरोड़ना (दबाना) बाहुसीविज्ञान होता है। जङ्घाओं (पिंडली) द्वारा प्रतिपक्षी की दोनों भुजाओं को दबाकर उसके शिर को पीड़ित करना (चोट पहुँचाना) और सामने से कक्षा (बग़ल) को खेंचना यह प्राणघातक गुणालविज्ञान है॥ १०४½॥ प्रतिपक्षी की ग्रीवा को और भुजा को भी अपने अधिकार में करके उसके घुटनों में अपना घुटना डालकर गिरानेवाला उत्तरढोङ्कर दाव करे॥ १०५½॥

शिर की ओर स्थित होने पर प्रतिपक्षी द्वारा प्रहार करने को उठाया हुआ पैर पकड़कर अपनी दोनों जङ्घाओं से उसे दबाकर बग़ल में पार्ष्णिक (एड़ी) को लाकर घुटने के सीधा होने पर उसे मोड़कर कमर से दबाना (घुटने को तोड़ना) पट्टिशविज्ञान है॥ १०७½॥

इसी प्रकार हाथ को तोड़ा जाता है। इसे 'सोमेश्वर' ने छुडुकीविज्ञान कहा है॥ १०८½॥

इसी दाव को नीचे से लगाकर पूर्ववत् बाहु को तोड़ना अन्तःछुडुकीविज्ञान कहलाता है॥ १०९½॥

# नियुद्ध के विभिन्न विज्ञान, बन्ध
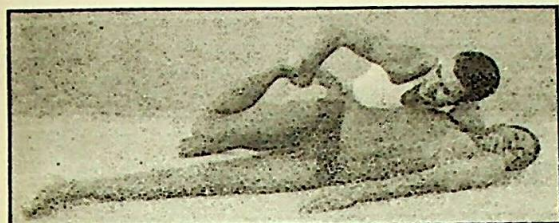
पाद मोटन
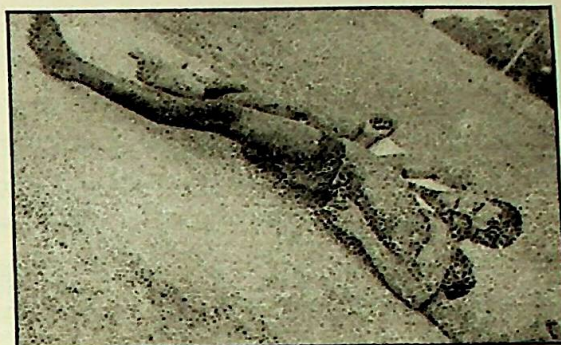
तुर्यष्टि
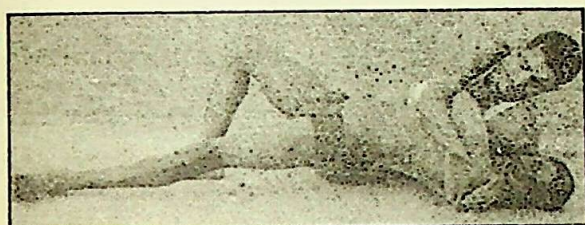
बाहु मोटन
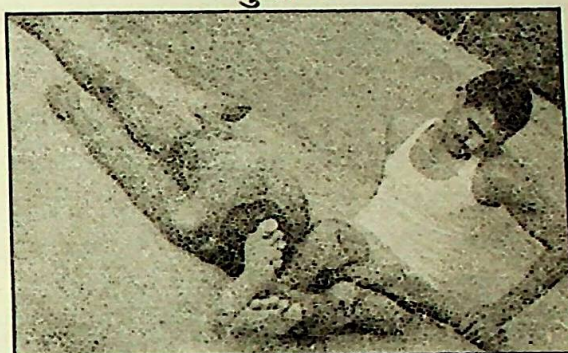
छुडुकी
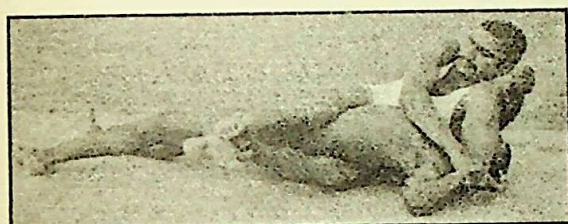
ढोङ्कार
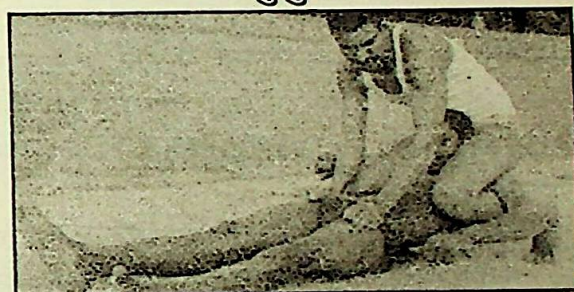
गुणाल
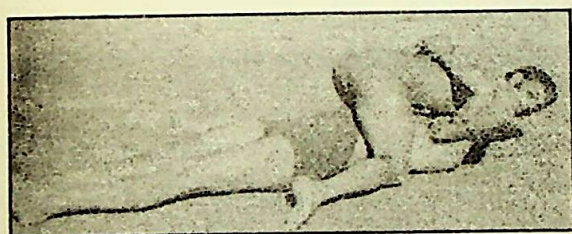
पादमुद्वड

चरणपट्टिश

चरणपट्टिश

**विज्ञानमन्तश्छुडुकी बाहुसन्धिप्रभञ्जनी। मन्यां कक्षे विनिक्षिप्य भुजेनैकेन संयुताम्॥ ११०॥**
**गलं प्रकोष्ठेना पीड्य तत् करेण करान्तरम्। सन्धौ प्रगृह्य जठरं सक्थिभ्यां परिपीडयेत्॥ १११॥**
**ततस्तद् ढोङ्करं नाम विज्ञानं जीवघातनम्। अर्धाङ्गस्थानके स्थित्वा बाहुभ्यां मध्यमुन्नयन्॥ ११२॥**
**पार्श्वेन पीडयन् कण्ठं कक्षामूरुं स्वजङ्घया। तुर्यष्टिरिति विज्ञेयं विज्ञानं मध्यभञ्जनम्॥ ११३॥**
**शिरःस्थानकविज्ञानान्यमूनेकादशैव तु। स्थाने करवले स्थित्वा वक्त्रेक्षिप्त्वा निजोदरम्॥ ११४॥**
**पादमुद्दवडं नाम्ना विज्ञानं श्वासरोधनम्। उरसा पीडनं तद्वद् विज्ञानं मुखपट्टकम्॥ ११५॥**
**हस्तद्वयेन वक्त्रस्य पिधानं मुस्तिकाह्वयम्। स्थित्वा करवले स्थाने मणिबन्धस्य मोटनम्॥ ११६॥**
**क्रियते यत्र तत्प्रोक्तं कुट्टानं करभञ्जनम्। बाहुभ्यां मध्यमाक्रम्य जङ्घामाक्रम्य जङ्घया॥ ११७॥**
**जानुसन्धिविभागार्थं भजेच्चरणपट्टिशम्। परस्य जानुसन्धौ तु करं निक्षिप्य कञ्चन॥ ११८॥**
**जङ्घाभ्यामुरुमाक्रम्य विदध्याल्लोलपादकम्। जठर स्थानके स्थित्वा बाह्वोर्यत्र निपीडनम्॥ ११९॥**
**संदशाकृतिबाहुभ्यां सन्दंशं नाम तद्भवेत्। जङ्घां विधाय मन्यायां जानुसन्धिनिपीडिताम्॥ १२०॥**

---

मन्या (ग्रीवा) को काँख में दबाकर इसी अवस्था में एक हाथ के प्रकोष्ठ (पहुँचे) से प्रतिपक्षी का गला दबाये और दूसरे हाथ से उसका दूसरा हाथ सन्धिस्थान से दबाकर उसके उदर को अपनी जङ्घाओं द्वारा दबाकर पीड़ित करे, यह प्राणों को लेनेवाला ढोंकर नामवाला विज्ञान है॥ ११०-१११½॥

अर्धाङ्गस्थान से बैठकर अपनी भुजाओं द्वारा प्रतिपक्षी के मध्यभाग को (पेट) को ऊँचा उठाते हुए बग़ल से उसके कण्ठ को दबाना और उसकी बग़ल और जङ्घा को अपनी जङ्घा (पिंडली) से दबाना तुर्यष्टिविज्ञान कहलाता है। यह मध्यभाग का तोड़नेवाला है॥ ११२-११३॥

इस प्रकार अर्धाङ्गस्थान से बैठकर लगाने के ग्यारह विज्ञान कहे गये हैं॥ ११३½॥

करवल-(हाथ-पैर सिकोड़कर कछुवे की भाँति बैठना)-स्थान से बैठकर अपना पेट प्रतिपक्षी के मुख पर लाकर उसका श्वास रोकना पादमुद्दवडविज्ञान कहलाता है॥ ११४½॥

इसी भाँति छाती से मुख दबाकर श्वास रोकना मुखपट्टविज्ञान होता है॥ ११५॥

दोनों हाथों से प्रतिपक्षी के मुख को दबाकर उसका श्वास रोकना मुस्तिका नामक दाव होता है॥ ११५½॥

करवल स्थान से बैठकर मणिबन्ध (कलाई) को मोड़ना कुट्टानविज्ञान कहा है॥ ११६½॥

अपनी दोनों भुजाओं द्वारा प्रतिपक्षी का मध्यभाग (कटि या उदर) पकड़कर अपनी जाङ्घ (पिंडली) से उसकी जाङ्घ को काबू में करके घुटने से पैर तोड़ने में चरणपट्टिश का प्रयोग करे॥ ११७½॥

दूसरे के घुटनों के जोड़ में अपना कोई-सा भी हाथ डालकर जाङ्घों से उसके उस प्रदेश को दबाकर लोलपादविज्ञान का प्रदर्शन करे॥ ११८½॥

जठरस्थान (पीठ के बल सीधा गिरना) में स्थित हो, अपने दोनों हाथों को संडासी (Cross) के सदृश करके प्रतिपक्षी की भुजाओं को पीड़ित करना सन्दंशविज्ञान होता है। जङ्घा को मन्या (ग्रीवा) में डालकर उससे घुटनों को सन्धिभाग द्वारा पीड़ित करता हुआ शिखा या बग़ल (कन्धे के पासवाला भाग) को खींचता हुआ ढोङ्कार दाव को लगाये॥ १२०½॥

# नियुद्ध के विभिन्न विज्ञान, बन्ध
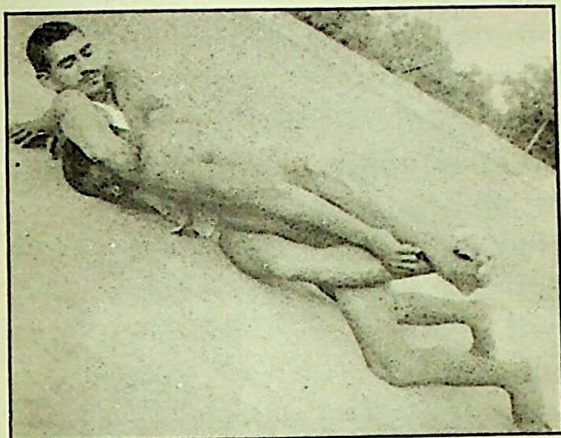
गूढांगुली
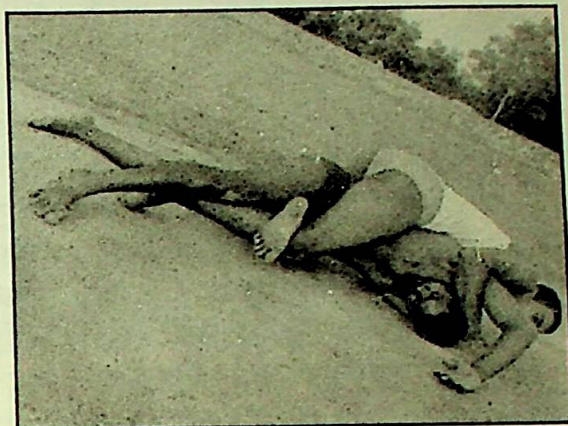
गरुडपक्ष
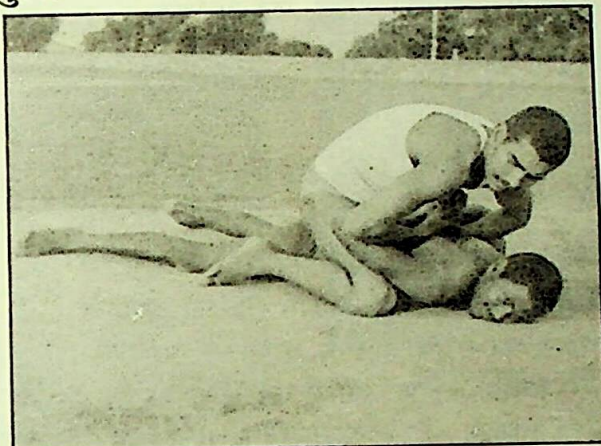
वेष्टन
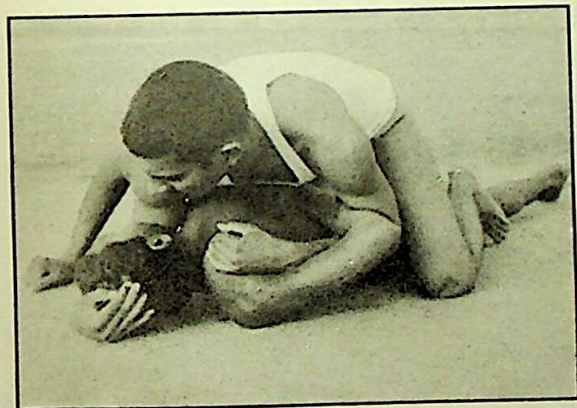
वध
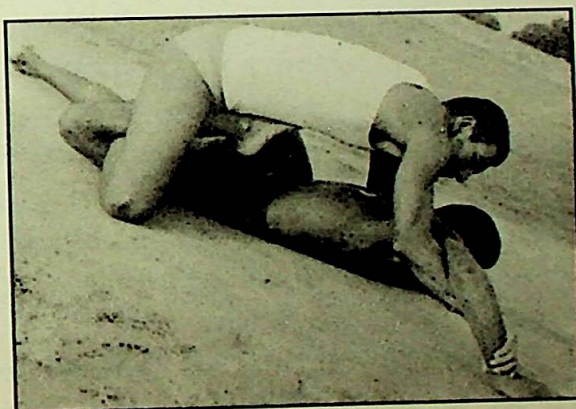
अंगवलन

**चूडां वा पूर्वकक्षां वा कर्षन् ढोङ्कारमाचरेत्। उरुभ्यां मध्यमाक्रम्य पादौ निक्षिप्य कक्षयोः॥ १२१॥**
**आविध्य बाहुना जङ्घे कुर्याज्जवलशङ्कुकम्। साम्याज्जवलशङ्कुस्य पादस्यैकस्य पीडनात्॥ १२२॥**
**उक्तं कक्षवडं नाम विज्ञानं पादभञ्जनम्। सर्वाङ्गं पीडयेद् यत्र मध्यमाक्रम्य तिष्ठतः॥ १२३॥**
**सुमुखीनाम विज्ञानं सङ्कोचादङ्गसाधनम्। उरुभ्यां मध्यमाक्रम्य मन्यां कक्षान्तरे क्षिपेत्॥ १२४॥**
**ज्ञेयं गूढांगुलिर्नाम विज्ञानं कण्ठमोटनम्। पृष्ठ स्थानकमास्थाय बाहू कक्षान्तनिर्गतौ॥ १२५॥**
**मन्यायां सङ्गतौ कृत्वा करशाखानिबन्धनौ। ताभ्यां सम्पीडयेन्मन्यां कुर्वंश्चाधोमुखं शिरः॥ १२६॥**
**उरुभ्यां मध्यमापीड्य युञ्ज्याद् गरुडपक्षकम्। पृष्ठस्थः प्रतिमल्लस्य पृष्ठपृष्ठे भुजं बलात्॥ १२७॥**
**आकृष्य वर्तयन्कुर्याद् विज्ञानं वेष्टनं बुधः। जानुसन्धौ क्षिपेज्जङ्घां पतितः स्यादवाङ्मुखम्॥ १२८॥**
**उरसा पीडयेद् पादं तदङ्गवलनं भवेत्। मन्यां कक्षान्तरे कुर्याद् बाहुं गरुडपक्षवत्॥ १२९॥**
**मध्यपीडनयोगेन भवेत् सदुपवेदनम्। एकद्वित्र्यङ्गुलीं मुक्त्वा करशाखाचतुष्टयम्॥ १३०॥**
**भज्यतेऽङ्गुष्ठवर्ज्यं तद् विज्ञानं चतुरङ्गुलम्। बाहुना बाहुमाविध्य धृत्वा चान्येन मुद्धकम्॥ १३१॥**

---

जाङ्घों से प्रतिपक्षी के मध्यभाग (कटिप्रदेश) को दबाकर दोनों पैरों को उसकी कक्षाओं में डाले और अपनी भुजा से उसकी जाङ्घों को पीड़ित करे, इसे जवलशङ्कुविज्ञान कहते हैं॥ १२१½॥

जवलशङ्कु के सदृश ही जब एक पैर को पीड़ित किया जाये तो पैर को तोड़नेवाला यह कक्षवडविज्ञान है॥ १२२॥

खड़े हुए प्रतिद्वन्द्वी की कमर पर अपने शरीर को सङ्कुचित करके प्रहार करके उसके सभी अवयवों को पीड़ित करना सुमुखी विज्ञान है॥ १२३॥

जाङ्घों से प्रतिपक्षी की कमर पकड़कर उसकी मन्या (ग्रीवा) को अपनी कक्षा (काँख) में दबाकर कण्ठ को दबानेवाला गूढ़ाङ्गुलीविज्ञान जानना चाहिये॥ १२४॥

प्रतिपक्षी के औंधा गिरने पर स्वयं उसकी कमर के पास बैठकर अपने दोनों हाथ उसकी बग़लों में डालकर ऊपर ले जाकर उसकी ग्रीवा को पीछे से परस्पर दोनों हाथों की अङ्गुलियाँ मिलाकर प्रतिपक्षी की ग्रीवा दबाये और उसका शिर नीचा कर दे। उसके पश्चात् अपने पैरों से उसकी कमर को बाँधे, इसे गरुड़पक्षविज्ञान कहते हैं॥ १२५-१२६॥

प्रतिपक्षी मल्ल के पृष्ठस्थान में (औंधा) होने पर अपनी भुजा पेट के नीचे से डालकर उसकी पीठ को खेंचता हुआ वेष्टनविज्ञान को करे॥ १२७॥

प्रतिपक्षी के औंधा स्थित होने पर उसके घुटने की सन्धि में अपना पैर डालकर स्वयं भी औंधा होते हुए छाती से उसके पैर को दबाये, इसे अङ्गवलन कहते हैं॥ १२८॥

ग्रीवा को बग़ल में डालकर पूर्ववत् हाथों को गरुड़पक्ष की भाँति डालकर मध्यभाग को दबाना सदुपवेदनविज्ञान होता है॥ १२९॥

एक, दो, तीन या चारों अङ्गुलियाँ अंगूठे को छोड़कर तोड़ना या मरोड़ना चतुरङ्गुलविज्ञान कहलाता है॥ १३०॥

प्रतिपक्षी के एक हाथ को अपने एक हाथ से दबाकर (सांडी तोड़कर) दूसरे से उसके शिर को तिरछा मरोड़ना त्रधनामकविज्ञान है॥ १३१॥

जवलशंख
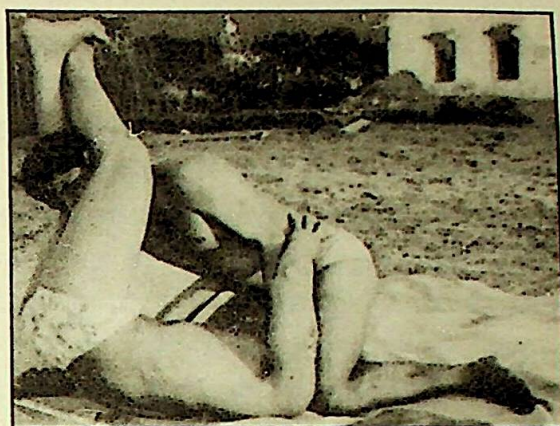
दाव की काट

गूढांगुली

करवल स्थान आक्रमण
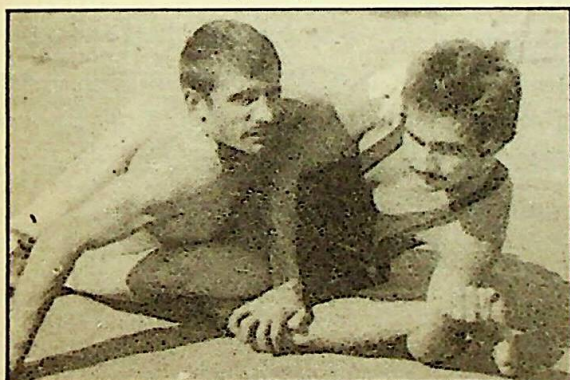
कक्षावड

ढोङ्कार

**मोट्यते तु शिरस्तिर्यग्विज्ञानं तद्वधाभिधम्। हस्तौ पादौ च शीर्षं च पद्भ्यामावेष्ट्य पीडनात्॥ १३२॥**
**विज्ञानं तत् समाख्यातं डोक्करं सकुटुम्बकम्। विज्ञानान्येवमुक्तानि बन्धमोटनकारणम्॥ १३३॥**
**वक्ष्यामि वञ्चनोपायान्विधिवच्छास्त्रदृष्टितः। छुडुक्यां तु प्रयुक्तायां भ्रमित्वा तां निषेधत्येत्॥ १३४॥**
**मुखस्योपरि जङ्घां वा निक्षिप्य विनिवारयेत्। पट्टिशेन गृहीताङ्घ्रिस्त्रिवृत्यापनयेन्नतम्॥ १३५॥**
**बाहुमोटनविज्ञानं हस्तौ संयोज्य वारयेत्। शिरस्थानगतं मल्लं बाहुभ्यामुत्क्षिपद् बलात्॥ १३६॥**
**पादाभ्यामवकर्षेद्वा देहं वा वर्तयेदवाक्। स्थितं करवलैस्थाने जयेच्छुः प्रतिमल्लकम्॥ १३७॥**
**पश्चात्कक्षान्तरं न्यस्तपादाङ्गुष्ठेन कर्षयेत्। अशक्यश्चेत्तथा क्रष्टुमूरुभ्यां तस्य सक्थिकम्॥ १३८॥**
**निपीड्य धारयेन्मल्लं यथा नान्यक्षमो भवेत्। जठरस्थानसंलग्नं पुरः कच्छां विधार्य च॥ १३९॥**
**कूर्पराभ्यां निपीड्योरु अवसृत्य विमोचयेत्। तथा मोचयमानस्य जङ्घे धृत्वा निजाङ्घ्रिणा॥ १४०॥**
**नाभिदेशे विनुद्याथ पातयेद्धरणीतले। पात्यमानस्तथामल्लः पादं पश्चात् प्रसार्य च॥ १४१॥**
**तिष्ठेत् स्थैर्यमथालम्ब्य यथा न पतति क्षितौ। पालीदिने नियुद्धाख्यः श्रम एवं निवेदितः॥ १४२॥**

---

पैरों से प्रतिपक्षी के दोनों हाथों को बाँधना, पैरों को बाँधना (कैंची के सदृश) और शिर को बाँधना डोक्करविज्ञान कहलाता है॥ १३२॥

इस प्रकार बाँधने एवं मरोड़ने, तोड़ने के विज्ञान और उनकी विधियों को कह दिया है। अब उनकी काटों को शास्त्रानुसार विधिसहित कहूँगा॥ १३३॥

छुडुकी दाव लगाने पर घूमकर उसकी काट करे॥ १३४॥

अथवा उसके मुख पर अपने पैर से प्रहार करके उसका दाव निष्फल कर दे॥ १३४½॥ पट्टिश दाव से पकड़े हुए पैर की झुके हुए प्रतिपक्षी मल्ल को त्रिवृत्य (तीन बार लेटकर लुढकना) से दूर करे॥ १३५॥ शिर की ओर आये हुए मल्ल को बलपूर्वक अपनी दोनों भुजाओं द्वारा फेंक दे॥ १३६॥ अथवा पैरों से धक्का दे या उलटा लेट जाये॥ १३६॥

दूसरे मल्ल के करवल स्थान में स्थित होकर, अपने ऊपर कब्जा करने की इच्छावाला होने पर कक्षा से स्थित होकर पैर के अंगूठे से खेंचे॥ १३७॥

यदि इस प्रकार खेंचने में असमर्थ हो जाये तो अपनी जङ्घाओं द्वारा उसकी जङ्घा को दबाकर उस मल्ल पर काबू कर ले, जिससे वह दाव न लगा सके॥ १३८॥

जठर-स्थान से स्थित होकर दूसरे मल्ल के पकड़ने पर सामने से उसका कच्छा पकड़कर अपनी कोहनियों से उसकी जाङ्घ दबाकर पीछे होकर छोड़ दे। प्रतिपक्षी मल्ल को छोड़ते हुये अपने पैरों से उसकी जाङ्घ पकड़कर नाभिदेश में प्रहार करके उसे धरती पर डाल दे। उसे डालता हुआ अपना पैर पीछे फैलाकर इस प्रकार स्थित हो कि भूमि पर न गिर पड़े॥ १४१½॥

इस प्रकार प्रदर्शन के दिन नियुद्धश्रम का कथन कर दिया गया है॥ १४२॥

# चतुर्थ अध्याय

## व्यूह-रचना

विशिष्ट पद्धति से युद्धक्षेत्र में सेना को खड़ा करना व्यूह कहलाता है।[1] भाषा में इसको मोर्चाबन्दी कहते हैं। व्यूह से युक्त सेना अल्पसंख्या में होती हुई भी दूसरी सबल सेना को जीत सकती है। इसके विपरीत सबल सेना भी बिना व्यूह के छोटी व्यूहबद्ध सेना को पराजित नहीं कर सकती।[2]

सर्वप्रथम व्यूह-रचना का सङ्केत अथर्ववेद में मिलता है। वहाँ भोग (सर्पवत् कुण्डलाकृति) द्वारा शत्रु सेना से अपनी रक्षा करने को कहा है।[3] श्री रामचन्द्रजी ने गरुडव्यूह की रचना करके लङ्का की घेराबन्दी की थी।[4] महाभारत युद्ध में तो व्यूहरचना सामान्य बात रही है। इस अध्याय में कौटिल्य-अर्थशास्त्र, अग्निपुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, वीरमित्रोदय, शुक्रनीति, वाशिष्ठ-धनुर्वेद तथा अन्य ग्रन्थों से सामग्री लेकर व्यूहरचना-पद्धति, सिद्धान्त तथा अन्य आवश्यक बातों का चित्रों की सहायता से स्पष्टीकरण किया जायेगा।

**बलं व्यूहप्रौढं परबलविभेदेऽल्पमपि यद्भवेदूनं व्यूहैर्महदपि जये न क्षमबलम्।**
**अतो वक्ष्ये व्यूहान् सुरपृतनां पूर्वममराः पराजिग्युर्व्यूहैरुपचितबलां वीर्यमहतीम्॥ १॥**

*—राजविजये वीरमित्रोदये राजचक्रलक्षणम्*

### कौटिल्य-अर्थशास्त्रे—

**पञ्चधनुः शतापकृष्टदुर्गमवस्थाप्य युद्धमुपेयात्। भूमिवशेन वा विभक्तमुख्यामचक्षुर्विषये मोक्षयित्वा सेनापतिनायकौ व्यूहेयाताम्। शमान्तरं पत्तिं स्थापयेत्। त्रिशमान्तरमश्वम्।**

---

**अर्थ**—व्यूह (मोर्चाबन्दी) से युक्त सेना अल्पसंख्या में होती हुई भी दूसरी सबल सेना को जीत सकती है। इसके विपरीत सबल सेना भी बिना व्यूह के छोटी सेना को जीतने में असमर्थ रहती है, इसलिये पूर्वकाल में देवताओं ने असुरों की महती और बलवती सेना को जिन व्यूहों से पराजित किया था उनका वर्णन करता हूँ॥ १॥

**कौटिल्य-अर्थशास्त्र में**—अब व्यूह और सेना का विभाजन तथा अश्व, रथ एवं हाथियों के युद्ध के विषय में कहेंगे। रणक्षेत्र से पाँच सौ धनुष दूरी पर छावनी स्थापित करके विजिगीषु रणक्षेत्र बनवाये। इससे कम दूरी भी रख सकते हैं। प्रमुख सैनिकों को पक्ष-कक्ष आदि पर

---

१. समग्रस्य तु सैन्यस्य विन्यासः स्थानभेदतः। स व्यूह इति विख्यातो युद्धेषु पृथिवीभुजाम्॥
—हलायुधकोष, पृष्ठ ६४६

२. वीरमित्रोदये राजचक्रलक्षणम्।

३. उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह। भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परिवारय॥ —अथर्व० ११।९।५

४. (क) गरुडं व्यूहमास्थाय सर्वतो हरिभिर्वृतः। मां विसृज्य महातेजा लङ्कामेवाभिवर्तते॥
—रामा० युद्ध० २१।१२ भण्डारकर संस्करण

(ख) अन्यच्च बलं च तत्र विभजच्छास्त्रदृष्टेन कर्मणा। —रामा० २४।१३

**पञ्चशमान्तरं रथं हस्तिनं वा। द्विगुणान्तरं त्रिगुणान्तरं वा व्यूहेत। एवं यथासुखमसम्बाधं युध्येत। पञ्चारत्निः धनुः, तस्मिन् धन्विनः स्थापयेत्। त्रि धनुष्यश्वम्, पञ्चधनुषि रथं हस्तिनं वा। पञ्च धनुरनीकसन्धिः पक्षकक्षोरस्यानाम्।**

**अश्वस्य त्रयः पुरुषाः प्रतियोद्धारः, पंचदश रथस्य, हस्तिनो वा पञ्च चाश्वाः। तावन्तः पादगोपा वाजिरथद्विपानां विधेयाः। त्रीणि त्रिकाण्यनीकं रथानामुरस्यं स्थापयेत्। तावत् कक्षं पक्षञ्चोभयतः। पञ्चचत्वारिंशदेवं रथा व्यूहे भवन्ति। द्वे शते पञ्चविंशतिश्चाश्वाः, षट्शतानि पञ्चसप्ततिश्च पुरुषाः प्रतियोद्धारः। तावन्तः पादगोपा वाजिरथद्विपानाम् ( एष समव्यूहः )।**

**तस्य द्विरथोत्तरा वृद्धिरा एकविंशतिरथादित्यवतोजा दश समव्यूहप्रकृतयो भवन्ति।**

**पक्षकक्षोरस्यानामतो विषमसंख्याने विषमव्यूहः। तस्यापि द्विरथोत्तरा वृद्धिरा एकविंशति-रथादित्येवमाजौ दशविषमव्यूहप्रकृतयो भवन्ति। अतः सैन्यानां व्यूहशेषमावापः कार्यः। रथानां द्वौ त्रिभागावङ्गेष्वावापयेत्। शेषमुरस्यं स्थापयेत्। एवं त्रिभागोनो रथानामावापः कार्यः। तेन हस्तिनामश्वानामावापो व्याख्यातः। यावदश्वरथ द्विपानांयुद्धसम्बाधं न कुर्यात्तावदावापः कार्यः।**

---

स्थित करते हुए शत्रु की दृष्टि से बचकर सेनापति और नायक व्यूहरचना करें। एक शमा ( चौदह अङ्गुल) के अन्तर पर पदाति सैनिक को खड़ा करे।

तीन शमा (बयालीस अङ्गुल) के अन्तर पर घोड़े, पाँच शमा (७० अङ्गुल) के अन्तर से रथ या हाथी को खड़ा करे। अथवा यह अन्तर दुगना या तीन गुणा रखकर व्यूहरचना करे। इस प्रकार सुविधापूर्वक व्यूह बनाकर युद्ध करना चाहिये। पाँच अरत्नि का एक धनुष होता है इतने अन्तर से धनुषधारियों को खड़ा करे। तीन धनुष के अन्तर से घोड़े और पाँच धनुष पर रथ या हाथी को स्थापित करे। व्यूह के भागों (सन्धि, पक्ष, कक्ष, उरस्य) आदि में पाँच धनुष का अन्तर रहना चाहिये।

प्रत्येक अश्वारोही के आगे तीन पदाति, रथ के या हाथी के आगे पन्द्रह सैनिक और पाँच पाँच घुड़सवार और इतने ही (पाँच) पादरक्षक भी निश्चित करने चाहियें। इस प्रकार तीन-तीन की पंक्तियों में नौ-नौ और कक्ष-पक्ष में भी नौ-नौ रथ रक्खे जायें। इस प्रकार एक व्यूह में पैंतालीस रथ, दो सौ पच्चीस घोड़े और छह सौ पचहत्तर पुरुष हुए। यह समव्यूह कहलाता है। इस व्यूह में दो-दो रथ की वृद्धि इक्कीस रथ तक कर सकते हैं, इस प्रकार वृद्धि करने से समव्यूह के दस भेद हो जाते हैं।

पक्ष, कक्ष और उरस्य में रथों की विषम संख्या हो तो वह विषमव्यूह बनता है। इसमें भी दो-दो की वृद्धि करने पर संग्राम में दस प्रकार के विषमव्यूह बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार व्यूहरचना करने पर भी यदि सैनिक बच जायें तो उन्हें भी इधर-उधर नियुक्त कर दे। यदि रथ शेष रहें तो उनका दो तिहाई भाग पक्ष और कक्ष में एवं शेष उरस्य में मिला दे, इस प्रकार मिलाये हुए रथों की संख्या एक तिहाई से भी कम ही रहनी चाहिये। इसी प्रकार हाथी और घोड़ों के विषय में भी यही नियम रहेगा। जब तक युद्ध करने में बाधा न हो तब तक उसमें हाथी-घोड़े और रथों को मिलाता जाय।

व्यूह संरचना

**दण्डबाहुल्यमावापः। पत्तिबाहुल्यं प्रत्यावापः। एकाङ्गबाहुल्यमन्वावापः। दूष्यबाहुल्यमत्यावापः। परावापात्प्रत्यावापादाचतुर्गुणादाष्टगुणादिति वा विभवतः सैन्यानामावापः कार्यः। रथव्यूहेन हस्तिव्यूहो व्याख्यातः। व्यामिश्रो वा हस्तिरथाश्वानाम्। चक्रान्तयोर्हस्तिनः, पार्श्वयोरश्वमुख्याः, रथा उरस्ये। हस्तिनामुरस्यं रथानां कक्षावश्वानां पक्षाविति मध्यभेदी। विपरीतोऽन्तर्भेदी। हस्तिनामेव तु शुद्धः। सन्नाह्यानामुरस्यम्, औपवाह्यानां जघनं व्यालानां कोट्याविति अश्वव्यूहो वर्मिणामुरस्यं शुद्धानां कक्षपक्षाविति। पत्तिव्यूहः पुरस्तादावरणिनः पृष्ठतो धन्विन इति शुद्धाः।**

**पत्तयः पक्षयोरश्वः, पार्श्वयोः, हस्तिनः पृष्ठतो रथाः पुरस्तात्, परव्यूहवशेन वा विपर्यासः इति द्व्यङ्गविभागः। तेन त्र्यङ्गबलविभागो व्याख्यातः। दण्डसम्पत् सारबलं पुंसाम्। हस्त्यश्वयोर्विशेषः कुलं जातिः सत्त्वं वयः स्थता प्राणो वर्ष्म जवस्तेजः शिल्पं स्थैर्यमुदग्रता**

---

व्यूहरचना के पश्चात् बची हुई सेना को व्यूह में ही लगा देने को आवाप कहते हैं। केवल पैदल सेना ही खपाई जाय तो उसे प्रत्यावाप कहेंगे। अश्व, रथ या हाथी में से किसी एक अङ्ग को मिलाना अन्वावाप और दूषित व्यक्तियों को सम्मिलित करना अत्यावाप कहलाता है। शत्रु ने अपनी सेना में जितना आवाप या प्रत्यावाप किया हो, जयेच्छु राजा को उससे चार वा आठ गुणा आवाप और प्रत्यावाप करना चाहिये। रथव्यूह की रचना के समान ही हाथियों की रचना जाननी चाहिये। अथवा हाथी, रथ और घोड़ों की रचना जाननी चाहिये। अथवा हाथी, रथ और घोड़ों को मिलाकर व्यूहरचना करे। सेना के आगे दोनों ओर हाथियों को, पार्श्व भाग में अश्वों को और मध्यभाग में रथों को खड़ा करे। इसे 'पक्षभेदी' व्यूह कहते हैं। यदि उरस्य भाग में हाथी, दोनों कक्षों में रथ और पार्श्वभाग में अश्व हों तो 'मध्यभेदी' व्यूह बनता है। इसके विपरीत, अर्थात् मध्यभाग में अश्व और पक्ष-कक्ष में हाथी तथा रथ हों तो 'अन्तर्भेदी' व्यूह कहलाता है। केवल हाथियों से ही रचना की गई हो तो इसे 'शुद्ध' कहते हैं। उनमें जो हाथी कवच आदि से युक्त हों उन्हें मध्य-भाग में, सवारी के काम आनेवालों को पीछे और मस्त (बिगड़ैल) हाथियों को कोटिभाग (किनारों) पर रक्खे। अश्वव्यूह की रचना में कवच से युक्त अश्वों को मध्यभाग में और कवच से रहितों को पक्ष एवं कक्ष से स्थापित करे। इसी प्रकार केवल पदाति सैनिकों से ही व्यूहरचना की जाय तो उसमें सामने कवचधारी और पीछे धनुर्धारी योद्धा रहेंगे। यह शुद्ध व्यूहों की व्याख्या हुई।

दो अङ्गों से व्यूहरचना करने पर यदि पैदल और घोड़े से व्यूहरचना की जाये तो सामने (पक्ष) में पदाति और पीछे के भाग (कक्ष) में अश्वों को रक्खे। हाथी और रथों में आगे रथ एवं पीछे हाथी रहेंगे। अथवा शत्रु के व्यूह की स्थिति को देखकर यथोचित परिवर्तन कर ले। यह दो अङ्गों से व्यूहरचना कही गई। इसी सें तीन अङ्गों की रचना समझ लेनी चाहिये (तीनों अङ्गों को पक्ष-कक्ष और उरस्य में स्थापित करे।

अब सार और असार सेना को कहा जाता है—सार (पितृपितामह द्वारा परम्परागत) सेना ही वास्तव में राजा का बल होता है। हाथी और घोड़े के विषय में यह विशेष है कि कुल, जाति, सत्त्व, आयु, धैर्य, बल, लम्बाई-चौड़ाई, वेग, पराक्रम, कुशलता, स्थिरता, स्फूर्ति, वश में रहना (आज्ञा का पालन करना) एवं अन्य श्रेष्ठ लक्षण से युक्त हाथी-घोड़ों को सार बल

**विधेयत्वं सुव्यंजनाचारतेति। पत्त्यश्वरथद्विपानां सारत्रिभागमुरस्यं स्थापयेत्, द्वौ त्रिभागौ कक्षं पक्षं चोभयतः। अनुलोममनुसारम्। प्रतिलोमं तृतीयसारम्। फल्गु प्रतिलोमम्। एवं सर्वमुपयोगं गमयेत्।**

**फल्गुबलमन्तेष्ववधाय वेगोऽभिहुतो भवति। सारबलमग्रतः कृत्वा कोटीष्वनुसारं कुर्यात्। जघने तृतीयसारं, मध्ये फल्गुबलमेतत्सहिष्णु भवति। व्यूहं तु स्थापयित्वा पक्षकक्षोरस्यानामेकेन द्वाभ्यां वा प्रहरेत्। शेषैः प्रतिगृह्णीयात्। यत्परस्य दुर्बलं वीतहस्त्यश्वं दूष्यामात्यकं कृतोपजाप वा, तत्प्रभूतसारेणाभिहन्यात्। यद्वा परस्य सारिष्ठं तद् द्विगुणसारेणाभिहन्यात्। यदङ्गमल्पसार-मात्मनस्तद्बहुत्वेनोपचिनुयात्। यतः परस्यापचयस्ततोऽभ्याशे व्यूहेत, यतो वा भयो भवेत्।**

**अभिसृतं परिसृतमतिसृतमपसृतमुन्मथ्यावधानं वलयो गोमूत्रिका मण्डलं प्रकीर्णिका व्यावृत्तपृष्ठमनुवंशमग्रतः पार्श्वाभ्यां पृष्ठतो भग्नरक्षा भग्नानुपात इत्यश्वयुद्धानि।**

---

मानना चाहिये।

पदाति, घोड़े, रथ और हाथियों के सार बल के तीसरे भाग को उरस्य में और शेष दो तिहाई को पक्ष एवं कक्ष में दोनों ओर स्थापित करे। अनुसार (सारबल से न्यून शक्तिवाली सेना) को सार बल से पीछे रखे उससे भी कम बलवाली (तृतीय सार) सेना को सारबल से आगे नियुक्त करे और उससे भी कम (फल्गु बल) को सबसे आगे रखे। इस प्रकार सबका उपयोग जान ले।

फल्गु बल को आगे खड़ा करने से सारबल का वध नहीं होता और शत्रु का वेग भी मन्द हो जाता है। सारबल को आगे करके कोटी भागों में 'अनुसार' को स्थापित करे। पीछे 'तृतीय सार' और मध्य में फल्गु सेना को स्थापित करे इस व्यूहरचना से शत्रु का आक्रमण सहन किया जा सकता है। व्यूहरचना करके पक्ष, कक्ष और उरस्य भाग में स्थित सेना के एक वा दो अङ्गों से आक्रमण करे। शेष अङ्गों से शत्रु के आक्रमण को रोके।

जो शत्रु की सेना दुर्बल, हाथी घोड़ों से रहित, दूषित मन्त्रियों से युक्त अथवा भेद से तोड़ी हुई हो उसे पर्याप्त सारबल से समाप्त कर दे। यदि शत्रु की सारबल सेना हो तो उसे अपने दुगने सारबल से समाप्त करे। अपनी सेना के जिस अङ्ग में 'अल्पसार' हो, वहाँ अधिक संख्या में सैनिकों की नियुक्ति करे। जिधर से शत्रु की सेना का संहार हो सके उधर ही व्यूह की रचना करे अथवा जिधर से शत्रु के आक्रमण की सम्भावना हो उसी ओर मुख करके व्यूह का निर्माण करे।

अभिसृत (आगे बढ़ना), परिसृत चारों ओर से घेरा डालना, अतिसृत (अचानक धावा बोलना), अपसृत (पीछे हटना), उन्मथ्यावधान (शत्रुसेना को नष्ट करके एकत्रित होना), वलय (गोलाकार गति में चलना), गोमूत्रिका बैल के चलते समय मूत्रत्याग सदृश जो रेखा बनती है उसके समान तिरछा चलना, मण्डल, (मण्डलाकार चलना), प्रकीर्णिका (बिखर कर आक्रमण करना), व्यावृतपृष्ठ (पीछे लौटना), अनुवंश सेना के साथ चलना, आगे से, पार्श्वभागों से और पीछे से भग्न-सेना की रक्षा करना, भग्न-सेना की सहायता करना ये अश्वों के युद्ध कहे गये हैं।

प्रकीर्णिकावर्जान्येतान्येव, चतुर्णामङ्गानां व्यस्तसमस्तानां वा घातः।
पक्षकक्षोरस्यानां च प्रभंजनमवस्कन्दः सौप्तिकं चेति हस्तियुद्धानि।
उन्मथ्यावधानवर्जान्येतान्येव स्वभूमावभियानापयानस्थितयुद्धानीति रथयुद्धानि।
सर्वदेशकालप्रहरणमुपांशुदण्डश्चेति पत्तियुद्धानि। एतेन विधिना व्यूहानोजान् युग्मांश्च कारयेत्।
विभवो यावदङ्गानां चतुर्णां सदृशो भवेत्॥ १॥
द्वे शते धनुषां गत्वा राजा तिष्ठेत् प्रतिग्रहे। भिन्नसंघातनं तस्मान्न युध्येताप्रतिग्रहः॥ २॥

—कौ० अ०

**वाशिष्ठधनुर्वेदसंहितायाम्—**
संभृत्य महतीं सेनां चतुरंगां महीपतिः॥ २४२॥
व्यूहयित्वाग्रतः शूरान्स्थापयेज्जयलिप्सया। पृष्ठेन वायवो यान्ति पृष्ठे भानुर्वयांसि च॥ २४३॥
अनुप्लवन्ते मेघाश्च यस्य तस्य रणे जयः। युवास्वरे मध्यसेना युद्धं कुर्यादतन्द्रिता।
द्वे सेने पार्श्वयोश्चैका पृष्ठतो रक्षयेत् सदा॥ २४७॥
एकां विकटसेनां तु दूरस्थां भ्रामयेद्युधि। स्वल्पा युद्धं कुर्याद् बह्वी सेना च सर्वतो भ्रमेत्।

---

प्रकीर्णिका को छोड़ ये सब कार्य, चारों अङ्गों (पदाति, अश्व, हाथी, रथ) का नाश, बिखरे हुए या सामूहिकरूप से शत्रु का घात, शत्रुपक्ष की दायें-बायें या मध्य स्थित सेना का संहार, शत्रु के छिद्र देखकर प्रहार करना और सोते हुए सैनिकों को कुचलना—ये हाथियों द्वारा किये जानेवाले युद्ध हैं।

उन्मथ्यावधान (शत्रुसेना को मर्दित करना) को छोड़ पूर्वोक्त सभी कार्य रथों के द्वारा किये जाते हैं। अपनी भूमि में स्थित होकर शत्रु पर चढ़ाई करना, आक्रमण करके पीछे हटना और एक स्थान पर स्थिर रहकर युद्ध करना—ये रथों द्वारा किये जानेवाले युद्ध हैं।

सभी स्थानों एवं कालों में शत्रु-सेना पर प्रहार करना एवं अपनी सेना की रक्षा करना—यह पदाति सैनिकों का युद्ध कहा गया है।

इस विधि से राजा पूर्वोक्त अयुग्म और युग्म व्यूहों की रचना करवावे। जितनी चतुरङ्गिणी सेना अपने पास हो उसके अनुसार ही व्यूह रचना करे॥ १॥

स्वयं राजा मुख्य युद्धस्थल से दो सौ धनुष दूर रहकर प्रतिग्रह (पीछे सुरक्षित सेना) में स्थित रहे। वहीं से भिन्न सेना को पुनः व्यवस्थित करके युद्ध करे। बिना प्रतिग्रह के राजा को अन्यत्र रहकर युद्ध करना उचित नहीं है॥ २॥

**वाशिष्ठ धनुर्वेद संहिता में**—राजा विशाल एवं चतुरङ्ग सेना का संग्रह करके व्यूह रचना में जय की इच्छा से आगे शूरवीरों को नियुक्त करे। व्यूह-रचना इस प्रकार करे कि वायु पीछे की ओर से बहे। सूर्य भी अपने पीछे रहे। जिसके पीछे से पक्षी उड़ते हों और मेघों की गति भी पीछे से हो तो उस राजा की युद्ध में विजय अवश्य होती है।

युवा स्वरवाली मध्यभाग में स्थित सेना सावधान होकर युद्ध करे। दो सेनायें (पक्षों में स्थित) और एक सेना पीछे रहकर मध्यसेना की रक्षा करे। एक विकट (जो भयङ्कर प्रहार करने में दक्ष हो) दूर रहकर युद्धक्षेत्र में घूमती रहे॥ २४७½॥

समभूमौ चाश्ववारा युद्धं कुर्युः। जले करितुम्बिदृतिनौकाभिर्युद्धं विधेयम्। पदातयो भुशुण्डिं गृहीत्वा वा धनूंषि चादाय वने वृक्षेष्वन्तर्धाना वारूढा भूत्वा युध्यत। स्थले चर्म्मखड्गभल्लैर्युध्यत। युद्धाहंकारिणस्तुङ्गाग्रे स्थाप्याः अन्ये पश्चात्। *(वा० ध० २५२)*

ये राजपुत्राः सामन्ता आप्ताः सेवकजातयः। तान् सर्वानात्मनः पार्श्वे रक्षायै स्थापयेन्नृपः॥ २३५॥
परम्परानुरक्ता ये योद्धा शार्ङ्गधनुर्धराः। युद्धज्ञास्तुरगारूढास्ते जयन्ति रणे रिपून्॥ २३६॥

*—वा० धनु०*

**विष्णुधर्मोत्तरे—**

**व्यूहानामथ सर्वेषां पञ्चधा सैन्यकल्पना। द्वौ पक्षौ बन्धपक्षौ द्वावुरस्यः पञ्चमो भवेत्॥ २०॥**
**अनेन यदि वा द्वाभ्यां भागाभ्यां युद्धमाचरेत्। भागत्रयं स्थापयेत्तु तेषां रक्षार्थमेव च॥ २१॥**
**न व्यूहे कल्पना कार्या राज्ञो भवति कर्हिचित्। पत्रच्छेदे फलच्छेदे वृक्षछेदावकल्पने॥ २२॥**
**पुनः प्ररोहमायाति मूलच्छेदे विनश्यति। स्वयं राज्ञा न योद्धव्यमपि सर्वास्त्रशालिना॥ २३॥**
**नित्यं लोके हि दृश्यन्ते शक्तेभ्यः शक्तिमत्तराः। सैन्यस्य पश्चात्तिष्ठेत्तु क्रोशमात्रे महीपतिः॥ २४॥**

---

युद्ध करते समय थोड़ी सेना ही युद्ध करे। बहुत-सी सेना चारों ओर घूमती रहे। समभूमि में श्रेष्ठ घोड़ों पर सवार होकर युद्ध करें। जल में हाथी पर बैठकर, तुम्बि, मशक या नावों पर चढ़कर युद्ध करना उचित है। पैदल सैनिक बन्दूक या धनुष लेकर वन या वृक्षों की आड़ लेकर अथवा वृक्षों पर चढ़कर युद्ध करें। स्थल में ढाल, तलवार और भालों से लड़ें। युद्ध का अहङ्कार करनेवाले और तीव्रगतिवाले सैनिकों को आगे और अन्यों को पीछे रखे॥ २५२॥

जो राजकुमार, सामन्त, सेवक, विज्ञ सैनिक हों उन्हें राजा अपनी रक्षा के लिये अपने समीप ही रखे।

जो योद्धा कुल-परम्परा से अपनी सेना में हों एवं शार्ङ्ग आदि धनुषों को धारण करके घोड़ों पर आरूढ़ हों एवं युद्ध करने में कुशल हों, वे ही रण में शत्रु को जीतते हैं।

**विष्णुधर्मोत्तर में**—सभी व्यूहों को पाँच भागों में विभक्त करके बनाया जाता है—दो पक्ष, दो बन्धपक्ष (कक्ष) और उरस्य॥ २०॥

उरस्य अथवा दो भागों (पक्ष) से युद्ध करे। शेष तीनों भाग उनकी रक्षा के लिये ही सुरक्षित रखे॥ २१॥

राजा को स्वयं व्यूह में सम्मिलित नहीं होना चाहिये, क्योंकि पत्ते, फल और वृक्ष का छेदन करने पर वह पुनः हरा-भरा हो जाता है, किन्तु मूल के काटने पर नष्ट हो जाता है। राजा ही मूल है॥ २२॥

इसलिये राजा को सभी अस्त्र-शस्त्रों से युक्त होकर भी स्वयं युद्ध नहीं करना चाहिये॥ २३॥

इस संसार में एक बलवान् व्यक्ति से दूसरे अधिक बलवान् भी देखे जाते हैं, अतः राजा स्वयं युद्ध न करके सेना से एक कोश दूर स्थित रहे॥ २४॥

व्यूह संरचना

१ पक्ष

२ उरस्य

३ पक्ष

४ कक्ष

५ कक्ष

६ शिविर स्थान

७ राजा

**भग्नसन्धारणं तत्र योद्धानां परिकीर्तितम्। प्रधानभङ्गे सैन्यस्य नावस्थानं विधीयते॥ २५॥**
**न भङ्गान् पीडयेच्छत्रूनेकायनगता हि ते। मरणे निश्चिताः सर्वे हन्युः शत्रूंश्चमूरपि॥ २६॥**
**शटाभङ्गछलेनापि नयति स्वभुवं पराम्। तेषां स्वभूमिसंस्थानां वधः स्यात् सुकरस्तथा॥ २७॥**
**न संहतार्त विरलान् योधान् व्यूहे प्रकल्पयेत्। आयुधानां तु सम्मर्दो यथा न स्यात्परस्परम्॥ २८॥**
**तथा तु कल्पना कार्या योधानां भृगुनन्दन। भेत्तुकामं परानीकं संहतैरेव भेदयेत्॥ २९॥**
**भेदरक्षापरेणापि कर्त्तव्या संहता तथा। स्वेच्छया कल्पयेद् व्यूहं ज्ञात्वा वा रिपुकल्पितम्॥ ३०॥**
**व्यूहे भेदावहं कुर्याद् रिपुव्यूहस्य पार्थिवः। गजस्य देया रक्षार्थं चत्वारस्तु रथा द्विज॥ ३१॥**
**रथस्य चाश्वाश्चत्वारोऽश्वस्य तस्य च वर्मिणः। वर्मिभिश्च समास्तत्र धन्विनः परिकीर्तिताः॥ ३२॥**
**पुरस्ताच्चर्मिणो देया देयास्तदनु धन्विनः। धन्विनामनु चाश्वीयं रथास्तदनु योजयेत्॥ ३३॥**
**रथानां कुञ्जराश्चानुदातव्याः पृथिवीक्षिता। पदाति कुञ्जराश्वानां वर्म कार्यं प्रयत्नतः॥ ३४॥**
**अवर्मयित्वा यो वाहं चात्मानं वर्तयेन्नरः। स राम नरकं याति स्वकृतेनापि कर्मणा॥ ३५॥**

---

वहीं से व्यूह के भग्न या सेना के पैर उखड़ जाने पर उन्हें पुनः व्यवस्थित करना राजा का कार्य कहा गया है। प्रधान (राजा) के भङ्ग हो जाने पर सेना को सँभालना दुष्कर हो जाता है॥ २५॥

हारे हुए शत्रु को पीड़ा न दे, क्योंकि वे पुनः संगठित होकर मरने का निश्चय करके पूरी सेना को परास्त कर सकते हैं॥ २६॥

चोट खाकर भी सिंह पुनः पराक्रम करता है (अपनी गुफा के निकट नहीं आने देता), अतः अपने स्थान में रहकर ही शत्रु का वध सरलता से हो सके वैसा प्रयत्न करे॥ २७॥

युद्ध में सैनिकों को न अधिक मिलाकर और न अधिक अन्तर से खड़ा करे। हे भृगुनन्दन! परस्पर एक दूसरे के शस्त्रास्त्र न टकरावें इस विधि से व्यूह रचना करनी चाहिये॥ २८½॥

शत्रु की सेना की घेराबन्दी को मिलकर ही तोड़ें। शत्रु द्वारा अपनी सेना को भेदने का प्रयास करने पर भी मिलकर ही उसका प्रतिरोध करना उचित है॥ २९½॥

व्यूहरचना स्वेच्छा से अथवा शत्रु के व्यूह की रचना को जानकर जैसे उसको तोड़ा जा सके वैसे करनी चाहिये॥ ३०½॥

एक हाथी की रक्षार्थ चार रथ, एक रथ के लिये चार अश्वारोही, एक अश्व के लिये चार ढाल तलवार लिये हुये योद्धा और उतने ही धनुर्धर होने चाहियें॥ ३१-३२॥

सबसे आगे खड्ग-चर्मधारी योद्धा, उनके पीछे धनुर्धर, पुनः घुड़सवार, उनके पश्चात् रथ और सबसे पीछे हाथियों को खड़ा करना चाहिये॥ ३३½॥

पैदल सैनिक, घोड़े और हाथी, इनके लिये कवच अवश्य ही बनवावें। जो व्यक्ति स्वयं कवचादि से अपनी रक्षा करके अपने वाहन की रक्षा नहीं करता हे परशुरामजी! वह अपने इस कुकृत्य से नरक में जाता है॥ ३४-३५॥

**शूराः प्रमुखतो देया न देया भीरव क्वचित्। शूरान् वा मुखतो दत्वा स्कन्धमात्रं प्रदर्शनम्॥ ३६॥**
**कर्त्तव्यं भीरुसंघेन शत्रुविद्रावकारकम्। दारयन्ति पुरस्तात् तु विद्रुता भीरवः पुरः॥ ३७॥**
**प्रोत्सारयते वरुणी भीरून् शूरान् पुनः स्थिता।** *(वि० घ० खण्ड २, अ० १७७)*

**वाद्यसङ्केतानुसारं व्यूहरचनम्—शुक्रनीतौ—**

**यथा देशं कल्पयेद् वा शत्रुसेनाविभेदकम्। व्यूहरचनसंकेतान् वाद्यभाषा समीरितान्॥ १०९८॥**
**स्वसैनिकैर्विना कोऽपि न जानाति तथा विधान्। नियोजयेच्च मतिमान्व्यूहान्नानाविधान्सदा॥ १०९९॥**
**अश्वानाञ्च गजानाञ्च पदातीनां पृथक्पृथक्। उच्चैः[1] संश्रावयेद् व्यूहसंकेतान्सैनिकान्नृपः॥ ११००॥**
**वामदक्षिणसंस्थो वा मध्यस्थो वाग्रसंस्थितः। श्रुत्वा तान्सैनिकैः कार्यमनुशिष्टं यथा तथा॥ ११०१॥**
**सम्मीलनं प्रसरणं परिभ्रमणमेव च। आकुञ्चनं तथा यानं प्रयाणमपयानकम्॥ ११०२॥**
**पर्यायेण च साम्मुख्यं समुत्थानं च लुण्ठनम्। संस्थानं चाष्टदलवच्चक्रवद् गोलतुल्यकम्॥ ११०३॥**

**अग्निपुराणे, २४२तमेऽध्याये—**

**अश्वस्य प्रतियोद्धारो भवेयुः पुरुषास्त्रयः॥ ३७॥**

---

शूरवीरों को व्यूह के अग्रभाग में खड़ा करे। कभी भी कायर पुरुषों को आगे खड़ा न करे। अथवा शूरवीरों को आगे करके उनके पश्चात् भीरु व्यक्तियों के समूह को इस प्रकार खड़ा करे कि उनके कन्धे मात्र ही दीखें, जिससे (अधिक संख्या को देखकर) शत्रु भयभीत होवे॥ ३६½॥

भीरु व्यक्ति आगे खड़े कर दिये जायें तो वे युद्ध प्रारम्भ होने पर भयभीत होकर भागने लगते हैं और उनको देखकर सारी सेना भागना प्रारम्भ कर देती है। वारुणी (शराब आदि मादक द्रव्य) भीरु को भी प्रोत्साहित कर देती है॥ ३७॥

जैसा देश हो उसी के अनुसार व्यूह बनाना उचित है, जिससे शत्रु-सेना का भेदन हो सके। बाजे की भाषा से व्यूह रचना करने के सङ्केत पूर्व से निश्चित रखने चाहियें। इन सङ्केतों को अपनी सेना के लोगों के सिवा अन्य कोई न जान सके। बुद्धिमान् राजा इन सङ्केतों के अनुसार अनेक व्यूहों की रचना करे॥ १०९८-९९॥

घुड़सवार, गजारोही और पैदल सैनिकों को राजा व्यूहरचना के सङ्केतों को उच्च स्वर में सुनवा देवे॥ ११००॥

इस समय राजा बांयीं, दाहिनी ओर या मध्य अथवा अग्रभाग में स्थित हो जावे। व्यूहरचना के सङ्केतों को सुनते ही सैनिक शिक्षा के अनुसार शीघ्र ही व्यूह रचना कर डालें॥ ११०१॥

इसी प्रकार सैनिक लोग सङ्केतों के अनुसार, एकत्रित होना, फैलना, चारों ओर घूमना, सिकुड़ना, पीछे हटना, क्रम से सामने आना, खड़े होना, लौटना, अष्टदल (पद्मव्यूह) बनाना, चक्राकार खड़े होना इत्यादि क्रियाओं को करें॥ ११०२-३॥

**अग्निपुराण में**—अश्व के रक्षक तीन पुरुषों को नियुक्त करे। इसी प्रकार हाथी की रक्षार्थ तीन अश्व और पन्द्रह पादरक्षक पदाति सैनिक होवें। यह एक हाथी का विधान कहा। रथ

---

१. कौटिल्यार्थशास्त्रेऽपि—अङ्गदशकस्यैकः पतिः पदिकः, पदिकदशकस्यैकः सेनापतिः तद् दशकस्यैको नायक इति। स तुर्यघोषध्वजपताकाभिर्व्यूहाङ्गानां संज्ञाः स्थापयेत्॥ (१०।६)

**इति कल्प्यास्त्रयश्चाश्वा विधेयाः कुञ्जरस्य तु। पादगोपा भवेयुश्च पुरुषा दश पञ्च च॥ ३८॥**
**विधानमिति नागस्य विहितं स्यन्दनस्य च। अनीकमिति विज्ञेयमिति कल्प्या नव द्विपाः॥ ३९॥**
**तथानीकस्य रन्ध्रन्तु पञ्चधा प्रचक्षते। इत्यनीकविभागेन स्थापयेद् व्यूहसम्पदः॥ ४०॥**

**व्यूहस्याङ्गानि—**

**उरस्यकक्षपक्षांस्तु कल्प्यानेतान् प्रचक्षते। उरः कक्षौ च पक्षौ च मध्यं पृष्ठं प्रतिग्रहः॥ ४१॥**
**कोटी च व्यूहशास्त्रज्ञैः सप्ताङ्गो व्यूह उच्यते। उरस्यकक्षपक्षास्तु व्यूहोऽयं सप्रतिग्रहः॥ ४२॥**
**गुरोरेष च शुक्रस्य कक्षाभ्यां परिवर्जितः। तिष्ठेयुः सेनापतयोऽग्रवीरैः पुरुषैर्वृताः॥ ४३॥**
**अभेदेन च युद्धेरन् रक्षेयुश्च परस्परम्। मध्यव्यूहे फल्गुसैन्यं युद्धवस्तु जघन्यतः॥ ४४॥**
**युद्धं हि नायकप्राणं हन्यते तदनायकम्। उरसि स्थापयेन्नागान् प्रचण्डान् कक्षयोरथान्॥ ४५॥**
**हयांश्च पक्षयोर्व्यूहो मध्यभेदी प्रकीर्तितः। मध्यदेशे हयानीकं रथानीकञ्च कक्षयोः॥ ४६॥**
**पक्षयोश्च गजानीकं व्यूहोन्तर्भेद्ययं स्मृतः। रथस्थाने हयान् दद्यात् पदातींश्च हयाश्रये॥ ४७॥**
**रथाभावे तु द्विरदान् व्यूहे सर्वत्र दापयेत्। यदि स्याद् दण्डबाहुल्यमाबाधः सम्प्रकीर्तितः॥ ४८॥**

---

के रक्षक भी हाथी के जितने भी रहेंगे। इस प्रकार नौ हाथियों से युक्त एक अनीक (सेना की एक टुकड़ी) होती है। जोकि पाँच भागों में विभक्त होती है॥ ३७–३८–३९॥

इस प्रकार सेना के विभाग करके व्यूहरचना करे॥ ४०॥

उरस्य, कक्ष और पक्षों की रचना को कहते हैं—उरस्य, कक्ष, पक्ष, मध्य, पृष्ठ, प्रतिग्रह और कोटी—ये सात अङ्ग व्यूहशास्त्र के ज्ञाताओं ने व्यूह के कहे हैं॥ ४१॥

शुक्राचार्य के मतानुसार उरस्य, कक्ष, पक्ष और प्रतिग्रहयुक्त कक्षाओं से रहित व्यूह होता है॥ ४२॥

सेनापतिगण शूरवीर सैनिकों से धिरे हुए अग्रभाग में स्थित होकर, मिलकर एक-दूसरे की रक्षा करते हुए लड़ें॥ ४३॥

व्यूह के मध्य भाग में सारहीन सेना को खड़ा करें। युद्ध के उपकरण—यन्त्र, आयुध, औषध, भोज्यसामग्री आदि पीछे रहने चाहियें॥ ४४॥

युद्ध का प्राण नायक—सेनापति या राजा होता है। नायक के न रहने पर या मारे जाने पर उसकी सेना हार जाती है॥ ४४॥

उरस्य (मध्यभाग) में प्रचण्ड हाथियों को खड़ा करे। कक्षों में रथ और दोनों पक्षों में घोड़ों को स्थापित करे, इस व्यूह को 'मध्यभेदी' कहते हैं॥ ४५॥

मध्यभाग (उरस्य) में घोड़ों की अनीक (सेना), कक्ष स्थानों में रथों की सेना और पक्ष स्थानों में हाथियों की सेना खड़ी करने पर इसे 'अन्तर्भेदी' व्यूह कहते हैं॥ ४६॥

इसी व्यूह में रथ के स्थान (कक्षदेश) में घोड़ों को तथा घोड़ों के स्थान पर पैदल सैनिकों को खड़ा करे तो यह दूसरे प्रकार का अन्तर्भेदी व्यूह है॥ ४७॥

रथों के अभाव में व्यूह में सर्वत्र हाथियों को खड़ा करे। यदि सेना का बाहुल्य हो तो उसे आबाध व्यूह कहते हैं॥ ४८॥

**व्यूहानां भेदोपभेदाः—**

**मंडलासंहतो भोगो दण्डस्ते बहुधा शृणु। तिर्यग्वृत्तिस्तु दण्डः स्याद् भोगोऽन्यावृत्तिरेव च॥ ४९॥**
**मण्डलः सर्वतो वृत्तिः पृथग्वृत्तिरसंहतः।** (अग्नि० पु० अ० २४२)

**कौटिलीयेऽर्थशास्त्रे—**

**प्रपक्षकक्षोरस्या उभयोर्दण्डमण्डलासंहताः प्रकृतिव्यूहाः। तत्र तिर्यग्वृत्तिर्दण्डः। समस्ताना-मन्वावृत्तिर्भोगः। सरतां सर्वतो वृत्तिर्मण्डलः। स्थितानामनीकवृत्तिरसंहतः।** (कौ० १०-६)

**दण्डस्य भेदाः—**

**प्रदरो दृढकोऽसह्यः चापः कुक्षिरेव च॥ ५०॥**
**प्रतिष्ठसुप्रतिष्ठश्च श्येनो विजयसञ्जयौ। विशालो विजयः सूची स्थूणाकर्णचमूमुखौ॥ ५१॥**
**सर्पास्यो वलयश्चैव दण्डभेदाश्च दुर्जयाः। [१]अतिक्रान्तः प्रतिक्रान्तः कक्षाभ्याञ्चैकपक्षतः॥ ५२॥**

---

मण्डल, असंहत, भोग और दण्ड—ये चार मुख्य भेद हैं। जिस व्यूह की रचना दण्ड के समान (बायें से दाहिने) तिरछी हो उसे दण्डव्यूह, सर्प के समान खड़ा होना सर्पव्यूह, गोलाकार खड़ी हुई सेना जिसका सब ओर मुख हो, मण्डलव्यूह और सेनाओं को पृथक्-पृथक् खड़ी करना असंहतव्यूह कहलाता है॥ ४९½॥

आचार्य शुक्र और बृहस्पति के मतानुसार दो पक्ष, दो कक्ष और उरस्य भागों में स्थित सेना के दण्ड, मण्डल और असंहतव्यूह बन सकते हैं, एवं इनके अन्य भेदों का बनना भी सम्भव है। सेना को तिरछी (पक्ष, कक्ष, उरस्य समरेखा में) खड़ी करना दण्डव्यूह कहलाता है। इन्हीं को कई घुमाव देकर स्थित करना सर्पव्यूह होता है। शत्रु पर आक्रमण करते समय उसे चारों ओर से घेरना मण्डल और अलग-अलग सेना को खड़ा करना असंहतव्यूह कहलाता है।

दण्डव्यूह के सतरह भेद हैं—प्रदर, दृढ़क, असह्य, चाप, चापकुक्षि, प्रतिष्ठ, सुप्रतिष्ठ, श्येन, विजय, सञ्जय, विशालविजय, सूची, स्थूणाकर्ण, चमूमुख, सर्पमुख, वलय और दुर्जय॥ ५०-५१½॥

यदि उरस्य, कक्ष और पक्ष समस्थिति में हों तो दण्डव्यूह कहलाता है। यदि कक्षा के सैनिक आगे निकले हों और शेष दो स्थानों के सैनिक भीतर की ओर दबे हों तो वह व्यूह शत्रु का विदारण करने से प्रदर कहलाता है। यदि पूर्वोक्त दण्ड के कक्ष पीछे और पक्ष भीतर की ओर प्रविष्ट हों और केवल उरस्य भाग ही आगे निकला हो तो वह दृढ़क कहलाता है। यदि दोनों पक्ष आगे निकले हों तो असह्य व्यूह होता है। इन तीनों को उलटा अर्थात् जिस भाग को अतिक्रान्त किया गया है उसे प्रतिकान्त कर दिया जाय तो क्रमशः चाप, चापकुक्षि और प्रतिष्ठव्यूह बन जाते हैं॥ ५२॥

---

१. **कौटिल्यार्थशास्त्रे—**पक्षकक्षोरस्यैः समं वर्त्तमानो दण्डः। स कक्षाभिक्रान्तः प्रदरः। स एव पक्षाभ्यां प्रतिक्रान्तो दृढकः। स एवातिक्रान्तः पक्षाभ्यामसह्यः। पक्षाववस्थाप्योरस्यातिक्रान्तः श्येनः। विपर्यये चापं चापकुक्षिः प्रतिष्ठितः सुप्रतिष्ठितश्च। चापपक्षः संजयः। स एवोरस्यातिक्रान्तो विजयः। स्थूलः कर्णपक्षः स्थूलकर्णः। द्विगुणपक्षस्थूलो विशालविजयः। त्र्यभिक्रान्तपक्षश्चमूमुखः। विपर्यये झषास्यः। ऊर्ध्वराजिदण्डः सूची। द्वौ दण्डौ वलयः। चत्वारो दुर्जयः। इति दण्डव्यूहाः। (कौ० अ० १०-६)

**अतिक्रान्तस्तु पक्षाभ्यां त्रयोऽन्ये तद्विपर्यये। पक्षोरस्यैरतिक्रान्तः प्रतिष्ठोऽन्यो विपर्ययः॥ ५३॥**
**स्थूणापक्षो धनुःपक्षो द्विस्थूणो दण्ड ऊर्ध्वगः। द्विगुणोऽन्तस्त्वतिक्रान्तपक्षोऽन्यस्य विपर्ययः॥ ५४॥**
**द्विचतुर्दण्ड इत्येते ज्ञेया लक्षणतः क्रमात्। गोमूत्रिकाहिसञ्चारी शकटो मकरस्तथा॥ ५५॥**
**भोगभेदाः समाख्यातास्तथा पारिप्लवङ्गकः। दण्डपक्षौ युगोरस्यः शकटस्तद् विपर्यये॥ ५६॥**
**मकरो व्यतिकीर्णश्च शेषः कुञ्जरराजिभिः। मण्डलव्यूहभेदौ तु सर्वतोभद्रदुर्जयौ॥ ५७॥**
**अष्टानीको द्वितीयस्तु प्रथमः सर्वतो मुखः। अर्धचन्द्रक ऊर्ध्वाङ्गो वज्रभेदास्त्वसंहतः॥ ५८॥**

---

दोनों पक्षों के आगे निकलने तथा उरस्य भाग के पीछे की ओर प्रविष्ट होने पर सुप्रतिष्ठ व्यूह बन जाता है॥ ५३॥

इसी का विपरीत (दोनों पक्ष पीछे और उरस्य आगे) कर देने पर श्येन व्यूह बनता है। आगे कहे जानेवाले स्थूणाकर्ण ही जिसके पक्ष हों उसका नाम विजय है। (यह साढ़े तीन व्यूहों का संघ है, इसमें १७ अनीक सेना काम में आती है)। दो चापव्यूह ही जिसके पक्ष हों वह ढ़ाई व्यूहों का संघ एवं तेरह अनीक सेना से युक्त व्यूह सञ्जय कहलाता है। एक के ऊपर एक क्रम से स्थापित दो स्थूणा कर्णों को विशाल विजय कहते हैं। ऊपर-ऊपर स्थापित पक्ष, कक्ष आदि जो दण्ड के समान ऊर्ध्वगामी (सीधा खड़ा) हो उसे सूचीव्यूह कहते हैं। जिसके दोनों पक्ष द्विगुणित हों उस दण्ड को स्थूणाकर्ण कहा है। जिसके तीन-तीन पक्ष निकले हों वह चतुर्गुण पक्षवाला ग्यारह अनीक से युक्त चमूमुख नामक व्यूह है। इसके विपरीत लक्षण, अर्थात् जिसकें तीन-तीन पक्ष प्रतिक्रान्त (भीतर की ओर गये हुए) हों, वह व्यूह सर्पास्य (झषास्य) होता है। इसमें भी ग्यारह अनीक सेनायें होती हैं। दो दण्ड व्यूह मिलकर दस अनीक सेनाओं का एक वलयव्यूह बनाते हैं। चार दण्ड व्यूहों के मेल से बीस अनीकों का एक दुर्जय नामक व्यूह बनता है। इस प्रकार क्रम से इनके लक्षण जानने चाहियें॥ ५४॥

गोमूत्रिका, अहिसञ्चारी (सर्प के चलते समय भूमि पर जो रेखा बनती है उसके समान), शकट, मकर तथा परिप्लवङ्गक (कामन्दकीय नीति में परिपतन्तिक) ये पाँच भोग के भेद कहे हैं। मार्ग में चलते समय बैल के मूत्र करने से जो रेखा बनती है उसकी आकृति के समान सेना को खड़ी करना गोमूत्रिका व्यूह है। सर्प के सञ्चरण स्थान की रेखा जैसी आकृतिवाला व्यूह अहिसञ्चारी कहा गया है। जिसके कक्ष और पक्ष आगे-पीछे के क्रम से दण्डव्यूह की भाँति स्थित हों, किन्तु उरस्य की संख्या दुगुनी हो वह शकटव्यूह होता है। इसके विपरीत स्थिति में स्थित व्यूह मकर कहलाता है। इन दोनों व्यूहों में से किसी के भी मध्यभाग में हाथी और घोड़े आदि आवाप (संकुल मिलाकर खड़ा होना) मिला दिये जायें तो वह परिपतन्तिक नामक व्यूह होता है॥ ५५-५६॥

मण्डलव्यूह के दो ही भेद हैं—सर्वतोभद्र तथा दुर्जय। जिस मण्डलाकार व्यूह का सब ओर मुख हो उसे सर्वतोभद्र कहा गया है। इस में पाँच अनीक सेना होती है। इसी में आवश्यकतानुसार उरस्य तथा दोनों कक्षों में एक-एक अनीक बढ़ा देने पर आठ अनीक का 'दुर्जय' व्यूह बन जाता है। अर्धचन्द्र, ऊर्ध्वाङ्ग और वज्र ये असंहत के भेद हैं। इसी तरह कर्कट-शृङ्गी (काकड़ासिंगी) काकपादी (कव्वे के पैर सदृश) और गोधिका (छिपकली या गोह के समान) भी असंहतव्यूह के ही भेद हैं॥ ५७-५८॥

**तथा कर्कटशृङ्गी च काकपादी च गोधिका। त्रिचतुः पञ्च सैन्यानां ज्ञेया आकारभेदतः ॥ ५९ ॥**
**दण्डस्य स्युः सप्तदशव्यूहा द्वौ मण्डलस्य च। असंघातस्य षट् पञ्च भोगस्यैव तु सङ्गरे ॥ ६० ॥**
**स्यात् कक्षपक्षोरस्यैश्च वर्त्तमानस्तु दण्डकः। तत्र प्रयोगो दण्डस्य स्थानन्तुर्येण दर्शयेत् ॥ ६५ ॥**
**स्याद्दण्डसमपक्षाभ्यामतिक्रान्तः प्रदारकः। भवेत्सः पक्षकक्षाभ्यामतिक्रान्तो दृढः स्मृतः ॥ ६६ ॥**
**कक्षाभ्याञ्च प्रतिक्रान्तः व्यूहोऽसह्यः स्मृतो यथा। कक्षपक्षावधः स्थाप्योरस्यैः क्रान्तश्च खातकः ॥ ६७ ॥**
**द्वौ दण्डौ वलयः प्रोक्तो व्यूहो रिपुविदारणः। दुर्जयश्चतुर्वलयः शत्रोर्बलविमर्दनः ॥ ६८ ॥**
**कक्षपक्षोरस्यैर्भोगो विषयं परिवर्तयन्। सर्पचारी गोमूत्रिका शकटः शकटाकृतिः ॥ ६९ ॥**
**विपर्ययोऽमरः प्रोक्तः सर्वशत्रुविमर्दकः। स्यात् कक्षपक्षोरस्यानामेकीभावस्तु मण्डलः ॥ ७० ॥**
**चक्रपद्मादयो भेदा मण्डलस्य प्रभेदकाः। एवञ्च सर्वतोभद्रो वज्राक्षरवत् काकवत् ॥ ७१ ॥**
**अर्धचन्द्रश्च शृङ्गाटो ह्यचलो नामरूपतः। व्यूहा यथा सुखं कार्याः शत्रूणां बलवारणाः ॥ ७२ ॥**

*(अग्निपुराणम् अ० २४२)*

---

अर्धचन्द्र तथा कर्कटशृङ्गी ये तीन अनीकों के व्यूह हैं। ऊर्ध्वाङ्ग और काकपादी चार अनीकों से बनते हैं। वज्र और गोधिका ये दो व्यूह पाँच अनीकों से बनाये जाते हैं। अनीक की दृष्टि से तीन (तीन, चार, पाँच) भेद होने पर भी आकृति में भेद होने के कारण इनके छह भेद कहे गये हैं। इन व्यूहों में दण्ड के १७, मण्डल के २, असंहत के ६ और भोग के ५ भेद होते हैं॥ ५९-६० ॥

कक्ष, पक्ष और उरस्य—ये सम स्थिति में वर्त्तमान हों तो दण्डव्यूह बनता है। दण्ड का प्रयोग और स्थान व्यूह के चतुर्थ अङ्ग (प्रतिग्रह) द्वारा प्रदर्शित करे। दण्ड के समान ही यदि दोनों पक्ष आगे की ओर निकले हों तो प्रदरव्यूह होता है। वही पक्ष-कक्ष दोनों से अतिक्रान्त (आगे की ओर निकला हुआ) होने पर 'दृढ़' व्यूह बन जाता है। यदि दोनों पक्ष मात्र आगे निकले हों तो वह 'असह्य' नामवाला व्यूह होता है। कक्ष और पक्ष को नीचे स्थापित करके उरस्य द्वारा निर्गत व्यूह 'चाप' कहलाता है। दो दण्ड मिलकर एक वलय व्यूह बनाते हैं। यह व्यूह शत्रु को विदीर्ण करनेवाला होता है। चार वलय व्यूहों के योग से एक दुर्जय व्यूह बनता है जो शत्रुवाहिनी का मर्दन करनेवाला होता है॥ ६५-६८ ॥

कक्ष, पक्ष तथा उरस्य जब विषमभाव से स्थित हों तो भोग नामक व्यूह होता है। इसके पाँच भेद हैं—सर्पचारी, गोमूत्रिका, शकट, मकर और परिपतन्तिक। सर्पसंचरण की आकृति से सर्पचारी, गोमूत्र के आकार से गोमूत्रिका, शकट की जैसी आकृति से शकट तथा इसके विपरीत स्थिति से मकर व्यूह का सम्पादन होता है। यह भेदोंसहित भोगव्यूह सम्पूर्ण शत्रुओं का मर्दन करनेवाला है। कक्ष, पक्ष और उरस्य का एकीभाव (परस्पर मिलना) मण्डलव्यूह कहलाता है। इसके चक्रव्यूह और पद्मव्यूहादि भेद-प्रभेद हैं। इसी प्रकार सर्वतोभद्र, वज्र, अक्षर, काक, अर्धचन्द्र, शृङ्गाटक (सिंघाड़े की आकृति) और अचल आदि व्यूह नाम और रूप के समान बनते हैं।

इन व्यूहों का अपनी सुविधा के अनुसार शत्रु-सेना को रोकने के लिये प्रयोग करना चाहिये।

*(अग्निपुराण, गीताप्रेस से अनूदित, अ० २४२)*

श्येन व्यूह

**विशिष्टव्यूहानां रचनम्—राजविजये—( वीरमित्रोदये राजचक्रलक्षणे )**
**( १ ) श्येनव्यूहः—एको रथोऽग्रे कर्तव्यः पश्चाद् द्विरदसप्तकम्॥ ३॥**
**त्रिंशदश्वाः खड्गिशतं पार्श्वे कुन्तधरास्तथा। मध्येष्टौ रथिनस्त्रिंशदश्वाः पार्श्वे गजद्वयम्॥ ४॥**
**ततश्च पृष्ठतः सर्वे श्येनव्यूहः स उच्यते।**
**शुक्रनीतौ—**
**बृहत्पक्षं मध्यगलपुच्छे श्येनं मुखे तनु॥ ११९२॥**
**आकाशभैरवे—**
**कुर्याद् गरुडवद् व्यूहं पुच्छपक्षमुखान्वितम्॥ ७५॥**
**तुण्डस्थाने रथानश्वान्वक्षस्थाने मतङ्गजान्। पुच्छस्थानेऽवशिष्टस्य स्थाने देहस्य सैनिकान्॥ ७६॥**
**संस्थाप्य वैनतेयाभं व्यूहमेवं विधाय तम्। स्वयं तस्योदरस्थाने तिष्ठेत् भूमिपुरन्दरः॥ ७७॥**
*(आ० भै० पटल १३७)*

**( २ ) क्रौञ्चव्यूहः—राजविजये—**
**अग्रे द्वौ पृष्ठगाश्चान्ये क्रौञ्चव्यूहः स उच्यते॥ ५॥**
**शुक्रनीतौ—**
**एकैकशो द्विशो वापि संघशो बोधितो यथा।**
**क्रौञ्चानां खेगतिर्यादृक्पंक्तितः सम्प्रजायते॥ १११०॥**
**तादृक् संरचयेत्क्रौञ्चं व्यूहं देशबलं तथा। सूक्ष्मग्रीवं मध्यपुच्छं स्थूलपक्षं तु पङ्क्तिः॥ ११११॥**

---

**विशेष व्यूहों की रचना—राजविजय में—१. श्येनव्यूह**—श्येनव्यूह में एक रथ आगे करना चाहिये, पश्चात् सात हाथी॥ ३॥

उसके पश्चात् तीस घोड़े और सौ तलवार चलानेवाले योद्धा। पार्श्वभागों में भालों से युक्त योद्धा रहें। मध्य में आठ रथी, तीस घोड़े और दोनों पार्श्वों में दो-दो हाथी॥ ४॥

उसके पश्चात् अन्य योद्धा पीछे रहेंगे। इस व्यूह को श्येन व्यूह करते हैं।

**शुक्रनीति में**—श्येन पक्षी के समान जिस सेना का, पार्श्वभाग (पक्ष में अधिक विस्तार हो, मुखभाग पतला और गल एवं पुच्छ मध्यम (न कम, न अधिक) हों उसे **श्येनव्यूह** कहते हैं॥ १११२॥

**आकाशभैरव में**—गरुड़ पक्षी के समान पुच्छ, पक्ष और मुखसहित सेना की व्यूह रचना करे। इस व्यूह में चोंच के स्थान पर रथों एवं अश्वों को, वक्ष (उरस्य) में हाथियों को एवं पुच्छ (प्रतिग्रह) में बचे हुए सैनिकों एवं अन्य स्थानों में पदाति सैनिकों को स्थापित करके राजा इस व्यूह के उदर भाग में स्वयं स्थित रहे॥ ७५-७७॥

२. **क्रौञ्चव्यूह**—यदि पूर्वोक्त श्येनव्यूह में आगे दो रथी हों और अन्य पीछे रहें तो उसे क्रौञ्चव्यूह कहते हैं।

**शुक्रनीति में**—जैसे आकाश में क्रौञ्चपक्षी एक-एक, दो-दो या मिलकर गति करते हैं उसी के समान देशकाल के अनुसार सेना की रचना करे इसे क्रौञ्चव्यूह कहते हैं। इसकी ग्रीवा सूक्ष्म, पुच्छभाग मध्यम और पक्ष स्थूल होते हैं। इसे पंक्तियों के अनुसार बनावे॥ १११०-११॥

शकट व्यूह

सिंह व्यूह

## चक्र व्यूह

**( ३ ) शकटव्यूहः—**

**अग्रे रथद्वयं पश्चाद् गजाः सप्त व्यवस्थिताः ॥ ६ ॥**
**तत्पृष्ठे विंशतिरिभाः पञ्चाशद्वाजिवाहकाः। सप्त सप्त रथाः पार्श्वे गजौ द्वौ द्वौ ततः स्थितौ ॥ ७ ॥**
**तत् प्रमाणैर्रथैर्वेदी बहिस्तत्तद् गजाः स्थिताः। मध्ये पदातयश्चान्ते पार्श्वयोश्च तुरङ्गमाः ॥ ८ ॥**
**विज्ञेयः शकटव्यूहो न भेद्यस्त्रिदशैरपि।** *(राजविजये)*

**( ४ ) सिंहव्यूहः—**

**अग्रे रथत्रयं पृष्ठे गजाकारो गजव्रजः ॥ ९ ॥**
**स्यन्दनाः पञ्चपञ्चैव अथो षष्टिर्धनुष्मताम्। मध्ये पदातयः षष्टिः पार्श्वयो रथिनो गजाः ॥ १० ॥**
**पृष्ठे तु सकला सेना सिंहव्यूहः प्रजायते। शकटव्यूहे कालेऽयं सूचीव्यूहेन भिद्यते ॥ ११ ॥**
**पद्मव्यूहस्तु सिंहेन सूची काकेन भिद्यते।**

**( ५ ) चक्रव्यूहः—**

**गजषोडशकं मध्ये वृत्ताकारेण कल्पयेत् ॥ १२ ॥**
**बाह्यतो रथिभिर्वेष्ट्यं तद् बाह्ये कुन्तधारकैः ॥ १३ ॥**
**शरचापधरा बाह्ये खड्गचर्मधरास्ततः। बाह्यतोऽश्वैः समावेष्ट्यं पंक्तित्रितयतः क्रमात् ॥ १४ ॥**
**पुनः पुनः प्रकुर्वीत यावद् भवति वाहिनी। चक्रव्यूहः स विज्ञेयो दुर्भेद्यस्त्रिदशैरपि ॥ १५ ॥**

**आकाशभैरवे—**

**अथवा चक्रवद् व्यूहं कारयेन्नृपतिः प्रिये। चक्राकारं भटैः कुर्यात् प्राकारं प्रथमं ततः ॥ ८० ॥**

---

३. **शकटव्यूह**—आगे दो रथ, उसके पीछे सात हाथी, उनके पीछे पुनः बीस हाथी और पचास घुड़सवार, दोनों पार्श्वभागों में सात-सात रथ, उनके भी पार्श्वभागों में दो-दो हाथी स्थित हों ॥ ६-७ ॥

इतने ही रथों से शकट की वेदी और उसके चारों ओर हाथी रहें। मध्य में पदाति सैनिक और उसके पार्श्वभागों में घुड़सवार रहें। इसे **शकटव्यूह** कहते हैं जिसको देवता भी नहीं भेद सकते ॥ ८ ॥

४. **सिंहव्यूह**—आगे तीन रथ, उनके पीछे गज की आकृति में हाथियों का समूह ॥ ९ ॥

पार्श्वभागों में पाँच-पाँच रथ और साठ धनुर्धर, मध्य में साठ योद्धा और पीछे के पार्श्व भागों में रथ और हाथी रहें यह **सिंहव्यूह** बन जाता है ॥ १०½ ॥

शकटव्यूह को भेदन करने के लिये इसका निर्माण करते हैं। इसका भेदन सूचीव्यूह द्वारा किया जाता है। पद्मव्यूह को सिंहव्यूह से और सूचीव्यूह को काकव्यूह से भेदते हैं ॥ ११½ ॥

५. **चक्रव्यूह**—प्रथम सोलह हाथियों को गोलाई में स्थित करें ॥ १२ ॥

उसके पीछे रथ, उसके पीछे भाला लिये हुए सैनिक, उसके बाहर धनुर्धर, उसके पश्चात् खड्ग-चर्मधारी, उसके बाहर तीन पंक्ति बनाकर अश्वारोही रहें ॥ १३-१४ ॥

जब तक सेना अवशिष्ट रहे तब तक इसी क्रम से उनको खड़ा करता रहे। इसे **चक्रव्यूह** कहते हैं जोकि देवों द्वारा भी दुर्भेद्य है ॥ १५ ॥

**आकाशभैरव में**—शिवजी महाराज कहते हैं कि हे पार्वती! चक्र के समान गोलाई में राजा व्यूह की रचना करे। पहली पंक्ति में योद्धाओं को चक्र की आकृति में खड़ा करे। दूसरी

द्वितीयमश्वैर्मातङ्गैस्तृतीयं स्यन्दनैस्ततः। तुरीयमेवं निर्माय चक्रव्यूहं तदन्तरे॥ ८१॥
स्वयमाप्तजनैः साकं युद्धे बद्धस्पृहो भवेत्। (आ० भै० पटल १३७)

**शुक्रनीतौ—**

चक्रव्यूहश्चैकमार्गो ह्यष्टधाकुण्डलीकृतः॥ १११३॥

**( ६ ) पद्मव्यूहः—**

अन्तरे रथमेकैकं स्थानेष्वष्टसु कल्पयेत्। तदन्तरे गजान् पञ्च नवाश्वान् स्थापयेत् ततः॥ १६॥
ततः पत्तीन् पञ्चदश पत्रे पत्रे प्रकल्पयेत्। तन्मध्ये स्यन्दनान् सप्त गजांश्चैव त्रयोदश॥ १७॥
एकोनविंशति हयान् पदातीनष्टविंशतिम्। गजैः रथैः पूरणीया पद्ममध्यस्य कर्णिका॥ १८॥
तन्मध्ये गजमारूढश्चमूपो वा नृपोऽथ वा। अन्तरे द्रोणिकायां तु रथा द्विरदवाजिनः॥ १९॥
त्रयस्त्रयश्च सर्वत्र त्रयत्रिंशत् पदातयः। पद्मव्यूहः स विज्ञेयः पद्माकारः कृतो यतः॥ २०॥
(राजविजये)

**आकाशभैरवे—**

अथवा कल्पयेद् व्यूहं पद्मवत् पद्मलोचने। रथैस्तु कर्णिकां कृत्वा परितः कुञ्जरैर्हयैः॥ ७८॥
विधाय वलयन्तस्य परितः सैनिकैरुमे। रचयित्वाऽष्टपत्राणि तिष्ठेत् तन्मध्यतस्स्वयम्॥ ७९॥
(आ० भै० प० १३७)

---

पंक्ति में अश्व, तीसरी में हाथी और चौथी में रथों को चक्राकार खड़ा करे। इस प्रकार चक्रव्यूह का निर्माण करके अपने विश्वासपात्र सैनिकों के साथ व्यूह के मध्य में स्थित होकर युद्ध करे॥ ८०-८१॥

शुक्रनीत्यानुसार चक्रव्यूह में आठ कुण्डली (आठ चक्र) और केवल एक मार्ग होता है॥ १११३॥

६. **पद्मव्यूह**—आठ स्थानों में कुछ अन्तर रखकर गोलाकार आकृति में एक-एक रथ को स्थित करे। उसके पश्चात् पाँच हाथी और नौ घुड़सवारों को खड़ा करे॥ १६॥

उसके पश्चात् पन्द्रह-पन्द्रह पैदल सैनिक प्रत्येक पत्र में स्थित करे। उन पैदल सैनिकों के मध्य में सात रथ और तेरह हाथियों को रखे॥ १७॥

पश्चात् उन्नीस घोड़े और अट्ठाईस पदाति सैनिकों को स्थापित करे। पद्मव्यूह का मध्यभाग (कर्णिका, वह स्थान जहाँ केशर होता है) की रचना हाथी और रथ से करे। इस पद्मव्यूह के मध्य में सेनापति या राजा हाथी पर चढ़कर स्थित रहे। इसके पश्चात् द्रोणि-प्रदेश में तीन-तीन रथ, हाथी और घोड़े तथा तीस-तीस पैदल सैनिक प्रत्येक पंखड़ी में रहेंगे। पद्म के आकार का होने से इसे **पद्मव्यूह** कहते हैं॥ १८-१९-२०॥

**आकाशभैरव में**—हे पद्मलोचने (पार्वती)! राजा पद्म (कमल) के समान व्यूह की रचना करे। उसकी कर्णिका रथों द्वारा बनवावे। उसके चारों ओर हाथी और घोड़े रहें। उसके पश्चात् चारों ओर सैनिकों का घेरा बनाकर आठ पत्तों की आकृति में व्यूहरचना करे और स्वयं राजा उसके मध्य में स्थित रहे॥ ७८-७९॥

पद्म व्यूह
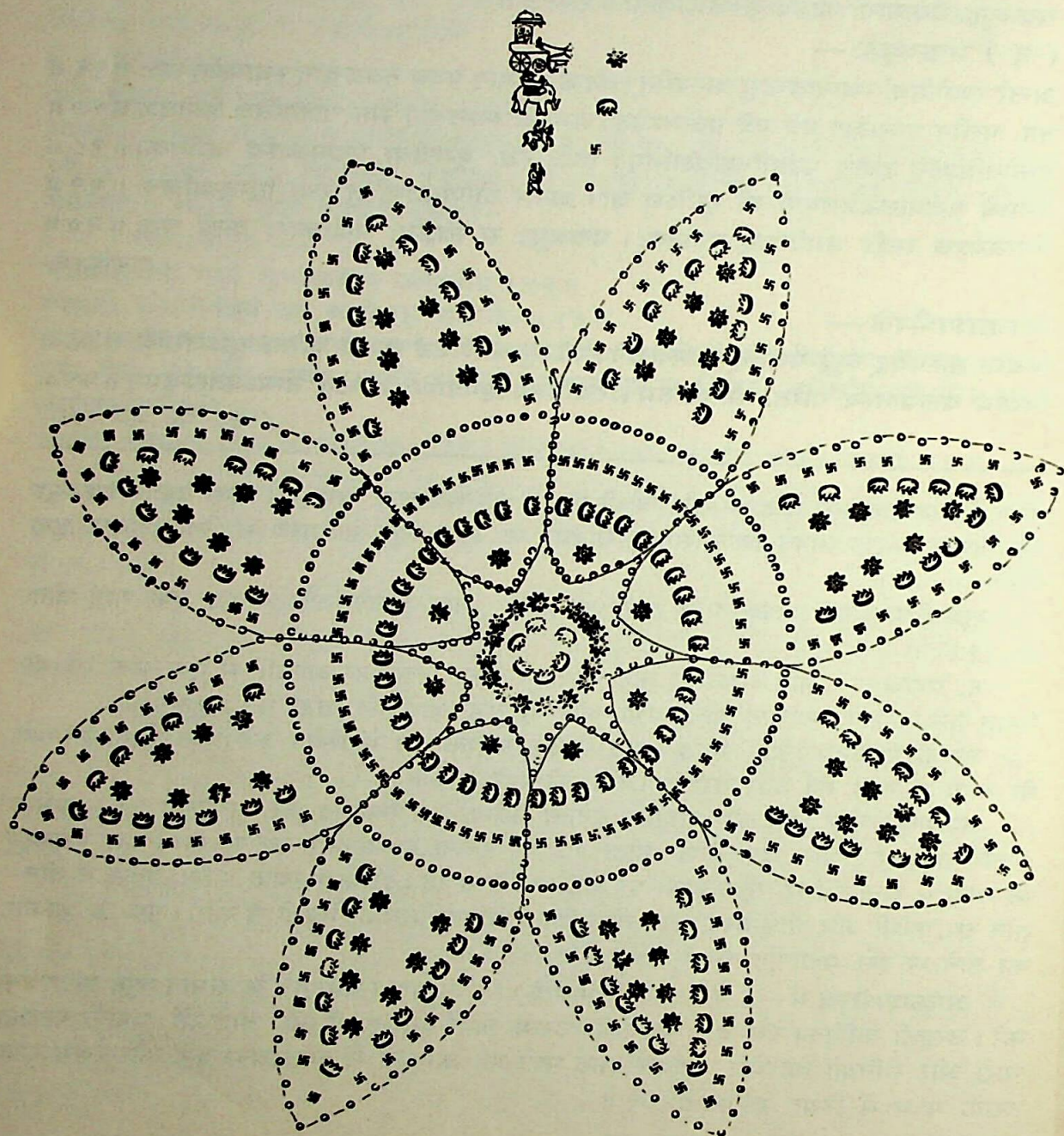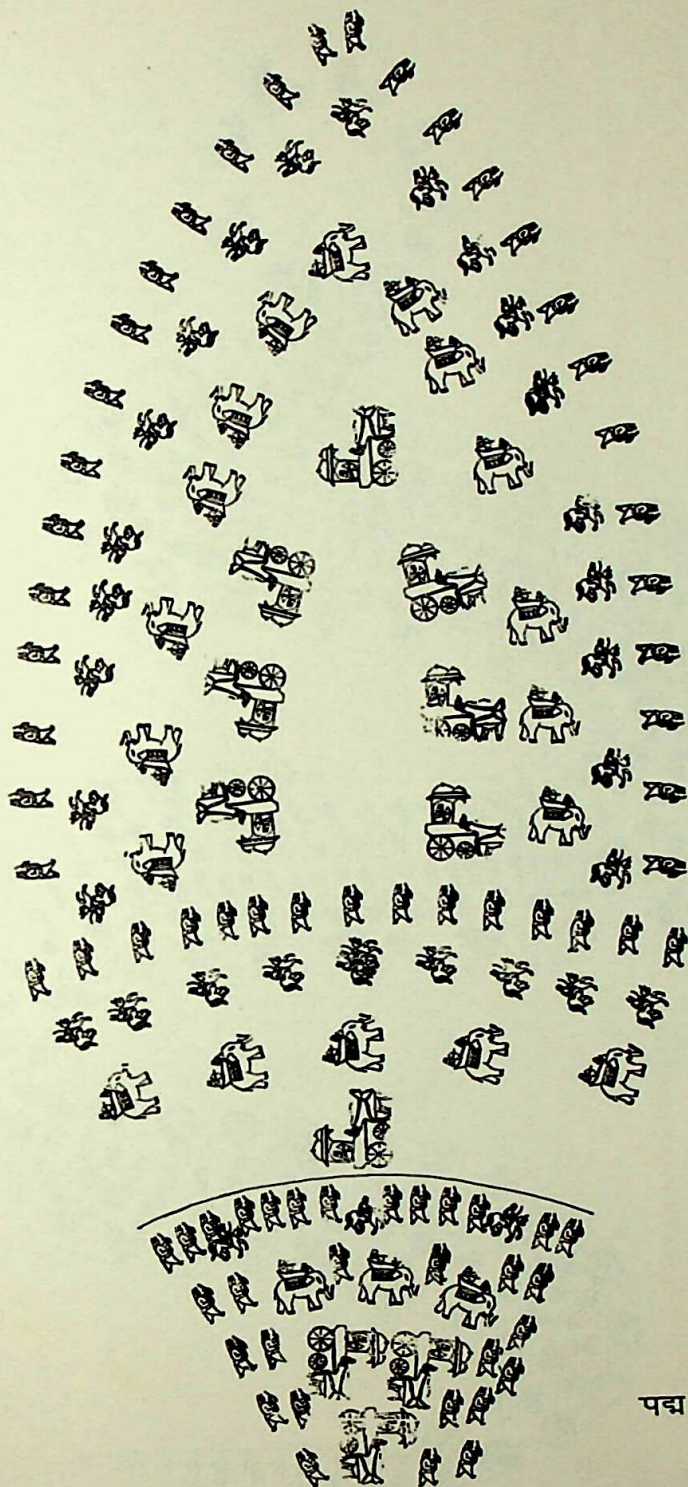
पद्म व्यूह की एक कलिका
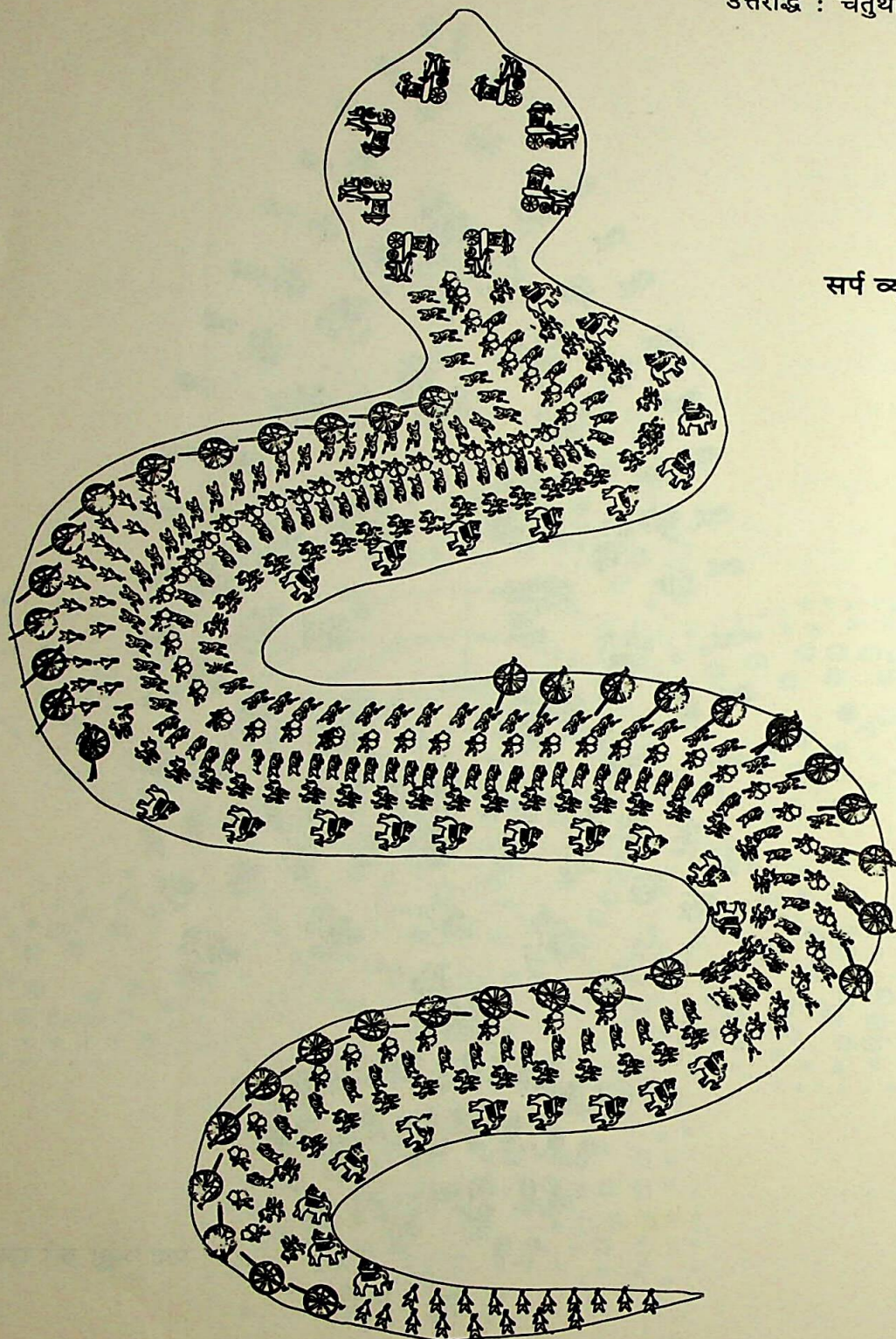
सर्प व्यूह

अग्नि व्यूह

**( ७ ) मालाव्यूहः —**

**रथं गजं हयं पत्तिं मालाकारेण विन्यसेत्। पुनः पुनः श्रेणी बद्धान् मालाव्यूहः स उच्यते॥ २१॥**

*( राजविजये )*

**( ८ ) सर्पव्यूहः —**

**चतुर्दिक्षु रथौ द्वौ तत् पृष्ठे तु द्विरदा दश। चतुर्विंशतिरश्वाश्च त्रिंशत् खड्गधरास्ततः॥ २२॥**
**शरचापधराश्चैव खेटपट्टिशधारिणः। तेषां पृष्ठे कुन्तधराः यन्त्रधरास्तथैव च॥ २३॥**
**सर्पाकारं रथेभाश्वैः पूरयेत् सैनिकैरपि। सर्पव्यूहः स विज्ञेयः कृतान्तो युद्धकर्मणि॥ २४॥**

**( ९ ) अग्निव्यूहः —**

**सप्तधा स्युः सप्त रथा गजवाजिपदातयः। रथेभाश्वाः पत्तयश्च सप्त-सप्तगुणाः क्रमात्॥**
**अधोऽधः कल्पयेदेवमग्निव्यूहः स उच्यते। सर्वोत्तमोऽयं व्यूहानामग्निवन्नाशकारकः॥ २५॥**

**( १० ) खलकव्यूहः —**

**चतू रेखाङ्कितां सेनां वेद्याकारां प्रकल्पयेत्। रथैर्गजैर्हयैः खड्गैः क्रमेण च चतुर्दिशम्॥ २६॥**
**ततश्चतुर्षु द्वारेषु रथौ द्वौ द्वौ तथा गजौ। अश्वानपि पदातींश्च चतुर्दिक्षु प्रकल्पयेत्॥ २७॥**
**तन्मध्ये नृपतिस्तिष्ठेद् वेद्याकारेऽन्तरे सुधीः। विज्ञेयः खलकव्यूहः खलको द्वारसंस्थितः॥ २८॥**
**सौपर्णः श्येनकः कार्यस्तत् संख्या द्विगुणः पुनः। सार्पाग्निचक्रसंज्ञाश्च व्यूहेषु बलवत्तराः॥ २९॥**

*( इति वीरमित्रोदये राजचक्रलक्षणप्रकरणे व्यूहलक्षणानि पृष्ठसंख्या २३५-३६ )*

---

७. **मालाव्यूह**—रथ, हाथी, घोड़े और पदाति सैनिकों को माला की आकृति में कई बार पंक्ति बनाकर खड़ा करने पर **मालाव्यूह** कहलाता है॥ २१॥

८. **सर्पव्यूह**—चारों दिशाओं में दो-दो रथ, उनके पीछे दश हाथी, चौबीस घोड़े, तीस तलवारधारी योद्धा रहें। उनके पश्चात् धनुर्धर, ढाल और पट्टा के योद्धा भी तीस-तीस रहें। उनके पश्चात् भालाधारी सैनिक और यन्त्र (शतघ्न्यादि) स्थित करे। इस प्रकार रथ, हाथी, घोड़े और पदाति सैनिकों से सर्पाकार में इस व्यूह की रचना करे। इस व्यूह को **सर्पव्यूह** कहते हैं। यह यमराज के सदृश युद्ध में दुर्जय और संहारक है॥ २२-२४॥

९. **अग्निव्यूह**—रथ, हाथी, घोड़े और पदाति सैनिकों को सात-सात की संख्या में सात पंक्तियों में खड़ा करे। इसी प्रकार रथ, हाथी, घोड़े और पदाति सैनिकों की संख्या क्रमशः सात गुणी बढ़ती जाय। इसी प्रकार सारी सेना की रचना करे। इसे **अग्निव्यूह** कहते हैं। जैसे अग्नि प्रारम्भ में अल्प होकर पश्चात् बढ़ती जाती है उसी भाँति क्रमशः वृद्धि होने से इसे अग्निव्यूह कहा गया है। यह अग्नि के समान शत्रु का नाश करनेवाला है, अतः सर्वोत्तम है॥ २५॥

१०. **खलकव्यूह**—चार रेखाओं से युक्त वेदि के सदृश सेना को स्थापित करे। रथ, हाथी, अश्वारोही और पदाति क्रमशः चारों दिशाओं में रहें। उसके पश्चात् चारों द्वारों में दो-दो रथ और दो-दो हाथी खड़े करे। इसी प्रकार घुड़सवार और पैदल सैनिकों की स्थिति रहे। इस वेदि के आकार के सदृश व्यूह के मध्य में राजा स्थित रहे। इसे **खलकव्यूह** कहते हैं। जैसे द्वारस्थित खलक होता है॥ २६-२८॥

इसी भाँति गरुड़ (सुपर्ण) व्यूह और श्येन व्यूह दुगनी संख्या करके बनावे।

इन व्यूहों में सर्पव्यूह, अग्निव्यूह और चक्रव्यूह अधिक श्रेष्ठ हैं॥ २९॥

## खलक व्यूह
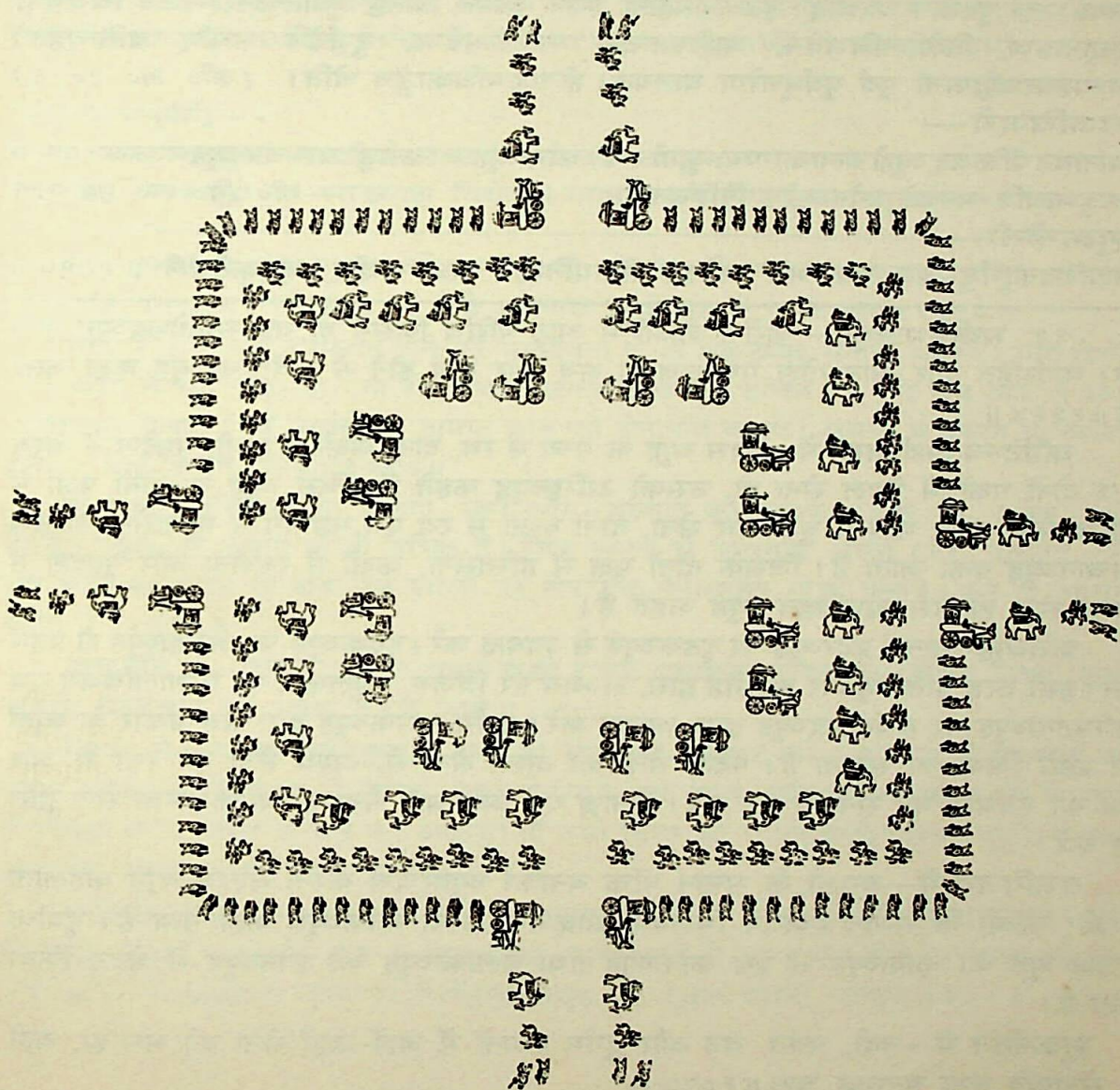
**( ११ ) सर्वतोभद्रः—**

**चतुर्दिक्ष्वष्टपरिधिः सर्वतो भद्रसंज्ञकः। अमार्गश्चाष्टवलयी गोलकः सर्वतोमुखः॥ १११४॥**

*(शुक्रनीति)*

**कौटिल्यार्थशास्त्रे—**

**रथोरस्यो हस्तिकक्षोश्वपृष्ठोऽचलः। पत्तयोश्वा रथा हस्तिनश्चानुपृष्ठमचलः।**
**हस्तिनोऽश्वा रथाः पत्तयश्चानुपृष्ठमप्रतिहतः।**

**प्रतिव्यूहाः—**

**तेषां प्रदरं दृढकेन घातयेत्। दृढकमसह्येन, श्येनं चापेन, प्रतिष्ठं सुप्रतिष्ठेन, संजयं विजयेन, स्थूलकर्णं विशालविजयेन, पारिपतन्तकं सर्वतोभद्रेण, दुर्जयेन सर्वान् प्रतिव्यूहेत। पत्त्यश्वरथद्विपानां पूर्वं पूर्वमुत्तरेण घातयेत्। हीनाङ्गमधिकाङ्गेन चेति।** *(कौ० अ० १०/६)*

**राजविजये—**

**बलाका पंक्तिवद् व्यूहो बलाकारण्यः कृतो रणे। काकव्यूह काकसङ्घो बलाका व्यूहभञ्जकः॥ २॥**
**तावुभावपि भज्येते श्येनव्यूहेन निश्चितम्॥** *—वी० मि० ल० पृष्ठ २३६*

**शुक्रनीतौ—**

**नद्यद्रिवनदुर्गेषु यत्र यत्र भयं भवेत्। सेनापतिस्तत्र तत्र गच्छेद् व्यूहकृतैर्बलैः॥ १०९५॥**

---

११. **सर्वतोभद्रव्यूह**—चारों दिशाओं में आठ परिधि जिसमें हों वह सर्वतोभद्रव्यूह होता है। मार्गरहित और आठ गोल मण्डलवाला सब ओर मुख होने से सर्वतोभद्रव्यूह कहा जाता है॥ १११४॥

**कौटिल्य अर्थशास्त्र में**—जिस व्यूह के मध्य में रथ, दोनों कक्षों में हाथी, पृष्ठदेश में अश्व एवं दोनों पक्षों में पैदल सेना हो, उसको **अरिष्टव्यूह** कहते हैं। जिस व्यूह के दोनों पक्षों में पैदल सेना, मध्य भाग में घुड़सवार सेना, दोनों कक्षों में रथ एवं पृष्ठभाग में हस्तिसेना हो उसे **अचलव्यूह** कहा जाता है। जिसके दोनों पक्ष में हस्तिसेना, कक्षों में रथसेना और पृष्ठदेश में पैदल सेना हो उसे **अप्रतिहत** व्यूह कहते हैं।

**प्रतिव्यूह**—इनमें प्रदरव्यूह पर दृढकव्यूह से आघात करे। दृढकव्यूह पर असह्यव्यूह से प्रहार करे। इसी तरह प्रतिष्ठव्यूहपर सुप्रतिष्ठ द्वारा, सञ्जय पर विजय, स्थूलकर्ण पर विशालविजय एवं पारिपतन्तव्यूह पर सर्वतोभद्रव्यूह द्वारा आघात करे। दुर्जय नामकव्यूह द्वारा सब प्रकार के व्यूहों पर प्रहार किया जा सकता है। पैदल सेना को अश्व सेना से, अश्व सेना को रथों से और रथों को हाथियों की सेना से नष्ट करे। हीनाङ्ग एवं अल्पबल सेना को शक्तिसम्पन्न सेना द्वारा नष्ट करे।

**राजविजय में**—बगुलों के समान पंक्ति बनाकर व्यूहरचना करना बलाकाव्यूह कहलाता है और कव्वों के समान एकदम मिलकर आक्रमण करना काकव्यूह कहा गया है। पूर्वोक्त बलाकाव्यूह को काकव्यूह से एवं काकव्यूह तथा बलाकाव्यूह को श्येनव्यूह से भेदन किया जाता है।

**शुक्रनीति में**—नदी, पर्वत, वन और दुर्गम स्थानों में जहाँ-जहाँ सेना को भय हो, वहीं पर सेनापति व्यूह बनाकर चले॥ १०९५॥

**यायाद् व्यूहेन महता मकरेण पुरो भये। श्येनेनोभयपक्षेण सूच्या वा धीरवक्त्रया॥ १०९६॥**
**पश्चाद्भये तु शकटं पार्श्वयोर्वज्रसंज्ञिकम्। सर्वतः सर्वतोभद्रं चक्रं व्यालमथापि वा॥ १०९७॥**
**सैन्यमल्पं बृहद् वापि दृष्ट्वा मार्गं रणस्थलम्॥ ११११५॥**
**व्यूहैर्व्यूहेन व्यूहाभ्यां संकरेणापि कल्पयेत्। यन्त्रास्त्रैः शत्रुसेनाया भेदो येभ्यः प्रजायते॥ १११६॥**
**स्थलेभ्यस्तेषु सन्तिष्ठेत् ससैन्यो ह्यासनं हि तत्।** *(शुक्र अ० ४)*

**मनुस्मृतौ—**
**दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा। वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा॥ १८७॥**
**यतश्च भयमाशङ्केत् ततो विस्तारयेद् बलम्। पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम्॥ १८८॥**
**सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत्। यतश्च भयमाशङ्केत्प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम्॥ १८९॥**
*(मनु० अ० ७)*

**वाशिष्ठधनुर्वेदे—**
**सर्वतोभये दण्डव्यूहरचना कार्या। पृष्ठतो भये शकटव्यूहम्।**
**पार्श्वभये वराहव्यूहो वा गरुडव्यूहो विधेयः। अग्रतो भये पिपीलिका व्यूहम्॥ २५०॥**

---

जब सामने से शत्रु के भय की आशङ्का हो, तो सेनापति मकरव्यूह बनाकर चले, अथवा दोनों पक्ष प्रबलवाले श्येनव्यूह या पैनी धारवाले सूचीव्यूह से गमन करे॥ १०९६॥

यदि पीछे से भय उपस्थित होने की सम्भावना हो तो शकटव्यूह बनाना चाहिये। यदि दोनों पार्श्वभागों से भय खड़ा हो गया हो तो वज्रसंज्ञकव्यूह बनाना उचित है। यदि सब ओर से भय आनेवाला दिखाई दे तो सर्वतोभद्र नामक व्यूह को सेनापति बनावे। अथवा चक्रव्यूह या व्याल (सर्प) व्यूह बनाया जावे॥ १०९७॥

सेना की अधिकता वा न्यूनता, मार्ग और रणस्थल को देखकर, एक, दो, अनेक तथा मिश्रित व्यूहों की रचना करनी उचित है। जिन स्थलों से यन्त्रयुक्त अस्त्रों (तोप इत्यादि) से शत्रु सेना का भेदन हो सके उन स्थलों पर सेनापति सेनासहित मोर्चा बनावे। इसे ही आसन कहते हैं॥ १११६॥

**मनुस्मृति में**—शत्रु के पुर पर चढ़ाई करते समय दण्डव्यूह, शकटव्यूह, वराह, मकर, सूची अथवा गरुड़व्यूह की रचना करके जावे॥ १८७॥

जिधर से भय की आशङ्का हो उधर ही सेना का विस्तार करे। राजा स्वयं पद्मव्यूह की रचना करके उसके मध्य में स्थित होवे। सेनापति एवं अन्य अधिकारियों को सभी दिशाओं में नियुक्त करे। जिधर से भय की आशङ्का हो उसी दिशा को सामनेवाली दिशा (पूर्व) मानकर व्यूह की रचना करनी चाहिये॥ १८८-८९॥

**वाशिष्ठधनुर्वेद में**—सब ओर भय की आशङ्का होने पर दण्डव्यूह की रचना करनी उचित है। पीछे से भय उपस्थित होने पर शकटव्यूह, पार्श्वभागों से सम्भावना होने पर वराह या गरुड़ और आगे से आक्रमण होने पर पिपीलिकाव्यूह की रचना करनी चाहिये॥ २५०॥

# पञ्चम अध्याय

## रक्षात्मक साधन

**वर्म**—शत्रुसेना द्वारा प्रयुक्त आयुधों के निवारण करने के लिये शरीर पर धारण किये गये आवरण को वर्म कहते हैं। वेदों में भी इसकी उपयोगिता स्वीकार की गई है।[१] वहाँ नगर की चारदीवारी को लोहे से सुदृढ़ करने का भी निर्देश किया है।[२] कवच की भाँति शिरस्त्राण एवं हस्तघ्न प्रभृति सुरक्षा के अन्य साधन भी बतलाये हैं।[३] रक्षात्मक साधनों के दो भेद हैं। प्रथम प्रकार के साधन मनुष्यों द्वारा प्रयुक्त साधारण आयुधों के प्रहारों से रक्षा करते हैं और दूसरे दिव्य इषु (आग्नेयास्त्रादि) से रक्षा करने के लिये बनाये जाते हैं।[४] द्वितीय प्रकार के रक्षात्मक साधनों का उल्लेख महाभारत में मिलता है। अश्वत्थामा द्वारा नारायणास्त्र छोड़े जाने पर श्रीकृष्ण और अर्जुन माया (रक्षात्मक साधन) का प्रयोग करके ही भीम को सुरक्षित निकाल लाये।[५] प्रस्तुत प्रकरण में प्रथम श्रेणी के रक्षात्मक साधनों का ही वर्णन किया जायेगा।

**युक्तिकल्पतरौ—**

**तल्लक्षणं संग्रहेण प्रवक्ष्यामि निबोधत। काष्ठं चर्म च सकलं त्रयमेतत्तु दुस्तरम्॥ ३३॥**
**यथोत्तरं गुणयुतं यथापूर्वन्तु निन्दितम्। शरीरवदेकत्वन्तु लघुत्वं दृढता तथा॥ ३४॥**
**दुर्भेद्यत्वे तु कथितः कवचे गुणसंग्रहः। साच्छिद्रतातिगुरुता तनुता सुखभेद्यता॥ ३५॥**

---

**युक्तिकल्पतरु में**—कवच का लक्षण संक्षेप में कहूँगा, उसे सुनिये। काष्ठ, चर्म और सांकल (धातु आदि की कड़ियों से)—इन तीन द्रव्यों से कवच का निर्माण किया जाता है। इनमें पहला अधम, चर्म मध्यम और धातु की कड़ियों से बना उत्तम होता है॥ ३३॥

शरीर के समान एकरूप, हल्कापन, दृढ़ता और दुर्भेद्यता—ये कवच के गुण कहे हैं॥ ३४॥

अधिक छिद्र, भारीपन, कम मोटाई और सुखपूर्वक जिसे शत्रु भेद सके—ये संक्षेप से कवचों के दोष होते हैं॥ ३५॥

---

१. जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद् वर्मी याति समदामुपस्थे।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु॥ —ऋ० ६।७५।१

२. (क) व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम्॥ —ऋ० १०।१०१।८
(ख) मर्माणि ते वर्मणा छादयामि। —ऋ० ६।१७५।१८

३. (क) शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः। —ऋ० ५।५४।११
(ख) शिप्राः शीर्षन् हिरण्ययीः। —ऋ० ८।७।२५
(ग) अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः॥ —ऋ० ६।७५।१४

४. परीवृत्तो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मानुषीरवसृष्टा वधाय॥ —अथर्व० १७।१।२८

५. महा० द्रोण० अ० २००

**कवचानां विनिर्दिष्टः समासाद् दोषसंग्रहः। अत्र वर्णो विनिर्दिष्टः क्रमादेवं चतुर्विधः॥ ३६॥**
**सितो रक्तस्तथा पीतः कृष्णो ब्रह्मादिषु क्रमात्। केचित् कुर्वन्ति कुशलाः कवचं धातुसंभवम्॥**
**कनकं रजतं ताम्रं लोहस्तेषु यथाक्रमम्॥ ३७॥** *(यु० क० अस्त्रयुक्तिरध्यायः, पृष्ठ १४०)*

**शुक्रनीतौ—**

**गोधूमसम्मितस्थूलपत्रं लोहमयं दृढम्। कवचं सशिरस्त्राणमूर्ध्वकायविशोभनम्॥** *(४/१०५०)*

**चर्म[१]—**

**शरीरावरकं शस्त्रं चर्म इत्यभिधीयते। तत् पुनर्द्विविधं काष्ठं चर्म सम्भवभेदतः॥ ६२॥**
**शरीरावरकत्वञ्च लघुता दृढता तथा। दुर्भेद्यतेति कथिता चर्मणां गुणसंग्रहः॥ ६३॥**
**स्वल्पता गुरुता चैव मृदुता सुखभेद्यता। विरुद्धवर्णता चेति चर्मणां दोषसंग्रहः॥ ६४॥**
**सितो रक्तस्तथा पीतः कृष्णा इत्यभिशब्दितः। ब्रह्मादिजातिभेदेन चर्मणां वर्णनिश्चयः॥ ६५॥**
**चित्रवर्णस्तु सर्वेषां सर्वदैवोपपद्यते॥ ६६॥** *(यु० क० पृष्ठ १७४-७५)*

**अपराजितपृच्छायाम्—**

**खड्गमानोद्भवो व्यासो द्व्यङ्गुलाभ्यां तथाधिकः। तद्वदग्रे पुनस्त्वेवं ज्येष्ठमध्यकनिष्ठकम्।**
**उभयपक्षे चान्तरं तु चतुर्दशाङ्गुलैर्भवेत्॥ २४॥**
**हस्ताधारं द्वयं कुर्याद् वृत्ताकारं तु वारुणम्।** *—पृष्ठ ५९९*

---

इन कवचों के वर्ण भी कहे हैं। श्वेतवर्ण ब्राह्मण के लिये, लाल क्षत्रिय के लिये, पीला वर्ण वैश्य के लिये और काले वर्ण का कवच शूद्र के लिये उपयुक्त रहता है॥ ३६॥

कुछ कुशल शिल्पी धातु के कवच बनाने में दक्ष होते हैं। इनमें स्वर्ण, रजत, ताम्र और लोहे के कवच ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिये क्रम से कहे हैं॥ ३७॥

**शुक्रनीति में**—जिसके पत्ते गेहूँ के समान मोटे लोहे के बने हों, वह ऐसा कवच होता है जो मस्तक की रक्षा करे। ऐसे कवच को शिरस्त्राण कहते हैं। यह शरीर के ऊपरी भाग पर पहना जाता है।

**चर्म**—आघात से शरीर की रक्षा करनेवाले साधन को चर्म कहते हैं। इनका निर्माण काष्ठ और चर्म से किया जाता है॥ ६२॥

जिससे पूरे शरीर की रक्षा हो सके, धारण करने में हल्का, दृढ़ और दुर्भेद्य हो—ये चर्म के गुण कहे हैं॥ ६३॥

छोटा, भारी, पतला, जिसका सरलता से भेदन किया जा सके और जिस वर्ण के लिये जैसा चर्म निश्चित है, उसके विरुद्ध धारण करना ये चर्मों के दोष कहे हैं॥ ६४॥

श्वेत, लाल, पीत एवं कृष्ण—ये क्रमशः ब्राह्मणादि श्रेणियाँ चर्मों की हैं। सभी चर्मों पर चित्रकारी सुवर्णादि से करनी चाहिये॥ ६५॥

**अपराजितपृच्छा में**—खड्ग के मान जितना मान चर्म का होना चाहिये। यह मान कनिष्ठ चर्म का है। उससे दो अङ्गुल बड़ा मध्यम और चार अङ्गुल बड़ा ज्येष्ठ चर्म कहलाता है। चर्म पर लगाये जानेवाले चन्द्रादि का अन्तर १४ अङ्गुल रहना चाहिये। पकड़ने के लिये दो हस्ताधार गोल एवं वरुण रङ्गवाले बनाने चाहियें॥ २४½॥

---

१. गोल, त्रिकोणाकार एवं आयताकार आकृति के चर्म बनाये जाते हैं।

**वर्म—अपराजितपृच्छयाम्—विश्वकर्मोवाच—**

**कवचानां लक्षणं वक्ष्ये वज्रदेहानुरूपिणाम्। शस्त्रोपघातके चैव युद्धकाले हितानि च॥ २॥**
**आयसोद्भवपत्राणि कर्त्तव्यानि विचक्षणैः। द्व्यङ्गुलायतकं कुर्यात् पृथुत्वं चैकमङ्गुलम्॥ ३॥**
**कवचं तेऽधुना वक्ष्ये वज्रदेहानुरूपिणम्। वृत्ताकारं तु स्वविवेद्विसोधत..... ?॥ ४॥**
**तनुत्राणं देहदृष्टिद्विगुणवस्त्रादिकोद्भव। कटिसूत्रं च सूत्रस्य संस्थाने अवलिभुजा॥ ५॥**
**रक्षिवाग् छित्तिनानि कंटिकाकसिणैर्धृताः। शीर्षे तु मुकुटाकारमचलं सर्वतस्तथा॥ ६॥**
**जङ्घारेखा प्रकर्तव्याऽऽयामे तीर्थकलाकृतिः।** *(अग्रे त्रुटितः पाठः)*

*(अपरा० अ० २३५, पृष्ठ ५९८)*

**वैजयन्ती-कोशे—( भूमिकाण्डः ३ क्षत्रियाध्यायः ७ )**

**त्वक्त्रं तु दंशनं वर्म तनुत्रं कवचोऽस्त्रियाम्॥ १५२॥**
**माठिः स्त्री जागरो वक्षश्छदः सन्नाहकङ्कटौ। तत्सूत्रकं सूत्रमयं जालिका स्यादयोमयी॥ १५३॥**
**नागोदर्युदरत्राणं जङ्घात्राणं तु मत्कुणम्। पट्टस्तु लिपिसन्नाहः प्रकोष्ठादौ कृतो यथा॥ १५४॥**
**बाहुलं बाहुरक्षा च मर्दनी पादरक्षणी। गोधा तला च न नरौ हस्तघ्नो ज्या निवारणे॥ १५५॥**
**अङ्गुलित्रे कपी शीर्षत्राणे शीर्षण्यशीर्षके। अधिकाङ्गं सारसनं मध्ये धार्यं सकङ्कटैः॥ १५६॥**
**सर्वाभिसारः सर्वौधः सर्वसन्नहनार्थकः।**

---

**विश्वकर्मा कहने लगे**—कवचों का लक्षण कहता हूँ। ये कवच वज्र (लोहे) के बने तथा शरीर के मान जितने और शस्त्र के आघात को सहने में समर्थ ही युद्ध-समय पहनने चाहियें॥ २॥

ये कवच बुद्धिमान् शिल्पियों द्वारा लोहे के दो अङ्गुल चौड़े और एक अङ्गुल मोटे पत्रों के द्वारा बनाने चाहियें॥ ३॥

अब सुदृढ़ शरीर पर धारण किये जानेवाले कवच का वर्णन करता हूँ। यह गोलाकार... ! शरीर की रक्षा करनेवाला, शरीर के अनुरूप और दुगुने वस्त्र से युक्त भीतर की ओर होना चाहिये॥ ४-५॥

(रक्षिवाग्....अस्पष्टार्थः)

यह कवच शिर पर मुकुट के समान आकृतिवाला और सब ओर से स्थिर होना चाहिये॥ ६॥

**वैजयन्तीकोश में**—दंशन, वर्म, तनुत्र, कवच, माठि, जागर, वक्षछद, सन्नाह और कङ्कट इत्यादि शरीर की रक्षा करनेवाले साधनों के नाम हैं। इनमें सूत्र और लोहे की जाली होती है॥ १५२-१५३॥

उदर की रक्षा करनेवाली नागोदरी कहलाती है। जङ्घा प्रदेश को ढकनेवाला मत्कुण, समस्त शरीर को ढकनेवाला पट्ट कहा जाता है॥ १५४॥

बाहु की रक्षा करनेवाला बाहुल, पैरों की रक्षा करनेवाली मर्दनी, अंगुलियों की रक्षक गोधा और ज्या के आघात से बचानेवाला हस्तघ्न कहलाता है॥ १५५॥

अङ्गुली की रक्षा करनेवाले को कपी और शीर्ष की रक्षा करनेवाले को शीर्षणी आदि भी कहते हैं॥ १५६॥

सूत्रसहितमध्य भाग में धारण किये जानेवाला सारसन और सभी अङ्गों में जो धारण किया जाय उसे सर्वौध कहते हैं।

**कौटिल्य–अर्थशास्त्रे—**

**लोहजालजालिकापट्टकवचसूत्रकङ्कटशिशुमारकखडगि् धेनुकहस्तिगोचर्मखुरशृङ्गसंघातं वर्माणि। शिरस्त्राणकण्ठत्राणकूर्पासकञ्चुकवारवाणपट्ट नागोदरिकाः पेटीचर्म हस्तिकर्णतालमूलधमनि–काकवाटकिटिकाप्रतिहतवलाहकान्ताश्चावरणानि।** *(कौ० अ० आयुधागाराध्यक्षः)*

**अत्र श्रीगणपतिशास्त्रिणः श्रीमूलाख्यव्याख्या—पृष्ठ २५४**

**वर्माण्याह—लोहजालेति—**

**लोहशब्दो जालादिषु चतुःषु प्रत्येकं सम्बध्यते। लोहजालं सशिरस्त्राणं प्रावरणी।**

**लोहजालिका—**

**मुण्डसन्नाहः, लोहपट्टोविबाहुसन्नाहः, लोहकवचं बाहुरहितं वक्षः पृष्ठमावरणं, सूत्रकंकटः कार्पासादिसूत्रमयः शिशुमारकादीनां पञ्चानां चर्म खुरसंघातश्च चतुरशिल्पीसन्नाहो घटितानि त्वक् शफविषाणानि च वर्माणि भवन्ति। तत्र शिशुमारकः, अम्बुकपिनामा जलचरः, खड्गी खड्गमृगः, धेनुको गोसदृशो गवय इति व्याख्येयं, हस्ती गजः गौर्वृषभः।**

**शिरस्त्राणेत्यादि—**

**शिरस्त्राणादयः सप्त च वर्माणि। तत्र शिरस्त्राणं शिरोमात्रावरणं, कण्ठत्राणं कण्ठमात्रावरणं, कूर्पास अर्धबाहुकः, कञ्चुको जानुपर्यन्तः वारवाणो गुल्फपर्यन्तः पट्टो विबाहुरलोहमयः, नागोदरिका कराङ्गुलित्राणम् इत्येतानि देहधार्याणि।**

---

**कौटिल्य अर्थशास्त्र में**—लोहजाल, लोहजालिका, लोहपट्ट, लोहकवच, सूत्रकङ्कट, घड़ियाल, गेंडा, नीलगाय हाथी और बैल आदि के चर्म, खुर और सींग से निर्मित आवरण—ये सभी वर्म कहलाते हैं।

शिरस्त्राण, कण्ठत्राण, कूर्पास, कञ्चुक, वारवाण, पट्ट, नागोदरिका, पेटी, चर्म, हस्तिकर्ण तालमूल, धमनिका, कवाट, किटिका, अप्रतिहत और वलाहकान्त ये आवरण कहलाते हैं।

**इसपर गणपति शास्त्री की श्रीमूलव्याख्या**—लोह शब्द जालादि चारों से सम्बन्धित है। इनमें शिर तक को ढकनेवाला कवच लोहजाल कहलाता है।

**अर्थ**—केवल शिर (ग्रीवा) की रक्षा करनेवाली लोहजालिका होती है। भुजाओं के अतिरिक्त शेष शरीर को ढकनेवाला लोहपट्ट और बिना भुजाओं के छाती और पीठ की रक्षा करनेवाला लोहकवच कहा जाता है।

कपास आदि के सूत्र से बना हुआ सन्नाह सूत्रकङ्कट कहलाता है। घड़ियाल आदि पाँच पशुओं के चर्म, खुर और सींगो से चतुर शिल्पियों द्वारा वर्मों (कवचों) का निर्माण किया जाता है।

उनमें शिशुमार (घड़ियाल) जल में रहनेवाला जीव है। खड्गी गेंडा और धेनुक गाय के समान (नील गाय) होता है। हस्ती से हाथी एवं गौ से बैल का ग्रहण होता है।

**शिरस्त्राणादि**—शिरस्त्राणादि सात भी वर्म के अन्तर्गत हैं। इनमें केवल शिर को ढकनेवाला शिरस्त्राण (टोप), कण्ठ की रक्षा करनेवाला कण्ठत्राण, आधी भुजाओं तक ढकनेवाला कूर्पास, घुटनों तक आनेवाला कञ्चुक, गट्टों (एड़ी) तक आनेवाला वारवाण, हाथों को छोड़कर समस्त शरीर को ढकनेवाला लोहरहित आवरण पट्ट और हाथों की अङ्गुलियों की रक्षा करनेवाली नागोदरिका कहलाती है।

**करधार्याण्यावरणाण्याह—**

**पेटीत्यादि—पेट्यादयो नव। तत्र पेटी काष्ठवल्लीमयं खेटकं, धमनिका सूत्रमयी, कवाटं काष्ठमयफलकभेदः, किटिका चर्मवेणुविदलमयी अप्रतिहतः हस्तवारकाख्या वलाहकान्तः, अप्रतिहत एव लोहपट्टः।**

**मानसोल्लासे—**

**लोहचर्मविनिर्माणाः कार्पासरचिता अपि। शल्कैश्च घटिताः कार्याः सन्नाहाः सुदृढाः सदा॥५६२॥**
**बाहुत्राणैः शिरस्त्राणैरङ्गत्राणैश्च संवृतम्। पताकाभिर्ध्वजैः स्तम्भैः शोभमानं भवेद् बलम्॥५६३॥**
**वेत्रैर्वंशैश्च काष्ठैश्च चर्मभिर्दृढबन्धनैः। वर्त्तुलानि विधेयानि वर्माणि बलगुप्तये॥५६४॥**
**व्याघ्रचर्म पिनद्धानि शातकौम्भमयानि च। फलकानि विचित्राणि कारयेत्स्वबले सदा॥५६५॥**

*—मानसो० भाग १, वि० २ अ० ६*

---

जिनको हाथ में धारण किया जाता है उन आवरणों को कहते हैं—

पेटी इत्यादि नौ आवरण हाथ में धारण किये जाते हैं। इनमें काष्ठ की शलाकाओं से बनी हुई ढाल पेटी, (गेंडे आदि की चर्म से बनी ढाल चर्म, हाथी के कान के समान आकृतिवाली हस्तिकर्ण, ताल वृक्ष के काष्ठ से बना तालमूल) सूत से बनी ढाल धमनिका, काष्ठ का ही एक विभिन्न भेद कवाट चर्म और बांस की खपचियों से बनी हुई किटिका, हाथ की रक्षा के लिये बना दस्ताना, अप्रतिहत और अप्रतिहत के समान लोहे का बना दस्ताना बलाहकान्त कहलाता है।

**मानसोल्लास में**—लोह, चर्म, कपास तथा शल्क आदि से निर्मित सुदृढ़ कवच राजा को सदा बनवाकर रखने चाहियें॥५६२॥

सेना बाहुत्राण (हाथ के दस्ताने), शिरस्त्राण (सिर पर पहनने का टोप), अङ्गत्राण (कवच) इत्यादि एवं पताका, ध्वज, तथा स्तम्भ (दण्ड) से सुशोभित रहे॥५६३॥

सेना की रक्षार्थ बेंत, बांस, काष्ठ तथा चर्म के दृढ़ बन्धनों से युक्त गोल कवच बनवाने चाहियें। इसी भाँति व्याघ्रचर्म से मढ़ी हुई और शातकुम्भ आदि मणियों से जड़ी हुई फलक (ढाल) इत्यादि का निर्माण करवाना चाहिये॥५६४-६५॥

# षष्ठ अध्याय

## दिव्यास्त्र

इन अध्यायों में दिव्यास्त्रों का वर्णन किया जायेगा। इनके दो भेद नालिक और मान्त्रिक शुक्रनीति में कहे हैं।[1] नालिक अस्त्रों से किया जानेवाला युद्ध आसुर या मायिक और मान्त्रिक दैविक कहलाता है।[2] नालिक के अन्तर्गत वे अस्त्र आते हैं, जिनकी नाल से गोली या गोला छोड़ा जाये। भुशुण्डी (बन्दूक), शतघ्नी (तोप) और अन्य पत्थर फेंकनेवाले यन्त्र उष्ट्रग्रीव, जामदग्न्य प्रभृति नालिक में सम्मिलित हैं और ब्रह्मास्त्र प्रभृति जिनका प्रतिकार सम्भव नहीं है मान्त्रिक कहे जाते हैं। सर्वप्रथम बहुचर्चित आयुध शतघ्नी पर विभिन्न शास्त्रों के प्रमाण देकर विचार किया जायेगा।

### * नालिकास्त्र *

**शतघ्नी**—संस्कृतभाषा में शत और सहस्र बहुत्ववाची शब्द के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। जिस आयुध के एक ही प्रहार से बहुत-से लोग मारे जायें, उसे शतघ्नी कहते हैं।

**वेद में शतघ्नी**—वेद में स्पष्ट शतघ्नी शब्द का प्रयोग तो नहीं हुआ, परन्तु उसके अभिप्राय को कहनेवाले शब्द सहस्रभ्ष्टि, शतवधं अवश्य आये हैं।[3] अथर्ववेद में सीसे की गोली से गोघातक को बींधने का वर्णन है।[4] इसी भाँति नालीक[5] बाण का नाम भी आया है। नालीक उन बाणों को कहते हैं जिनका आकार छोटा और जो नलयन्त्र (बन्दूक) से छोड़े जाते हैं। बहुत दूर लक्ष्यवेधन या दुर्गयुद्धों में इनकी बहुत उपयोगिता है।

कुछ विद्वान् वेद में कही सूर्मी[6] को शतघ्नी-जैसा ही आयुध मानते हैं। इसका समर्थन तैत्तिरीय संहिता[7] और उसके भाष्यकार सायणाचार्य[8] ने किया है। पं० जयदेव विद्यालङ्कार भी सूर्मी को

---

१. अस्त्रं तु द्विविधं ज्ञेयं नालिकं मान्त्रिकं तथा। —शुक्र० ४।१०२५

२. मन्त्रास्त्रैर्दैविकयुद्धं नालाद्यस्त्रैस्तथासुरम्। —वही ४।१०५३

३. (क) धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधम्। —अथर्व० ११।२।१२

(ख) त्वष्टा यद् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिम्। —ऋ० १।८५।९

४. यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्। तं त्वा सीसेन विध्यामो यथानोऽसो अवीरहा। —अथर्व० १।१६।४

५. जिह्वा ज्या भवति कुडमलं वाङ् नालीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः। —अथर्व० ५।१८।८

नालीका लघवो बाणा नलयन्त्रेण चोदिताः। अत्युच्चदूरपातेषु दुर्गयुद्धेषु ते मताः॥ —वा० ध० ७४

६. सुदेवोऽसि वरुणः यस्य ते सप्तसिन्धवः। अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव॥ —ऋ० ८।६९।१२

७. एषा वै सूर्मी कर्णिकावती। एतया ह स्म देवा असुरान् शततर्हास्तृहन्ति। य एतया समिधमादधाति वज्रमेवैतच्छतघ्नीं यजमानो भ्रातृव्याय प्रहरति। —तैतति० सं० १।५।७

८. **सायणाचार्य का भाष्य—**

ज्वलन्ती लोहमयी स्थूणा सूर्मी। सा च कर्णिकावती छिद्रवती। अतएव ज्वलन्तीत्यर्थः। एकेन प्रहारेण शतसंख्यकान् मारयन्तः शूराः शततर्हाः। असुराणां मध्ये तादृशान् (सूर्मी योद्धृन्) एतया ऋचा देवा हिंसन्ति।

—तैत्ति० सं० सायणभाष्य, भाग २, पृष्ठ ७७८

शतघ्नी ही मानते हैं।[१]

स्वामी दयानन्दजी ने वेद के अनेक मन्त्रों से आग्नेयास्त्र, शतघ्नी, भुशुण्डी और इससे भी भयङ्कर अस्त्रों का अर्थ ग्रहण किया है।[२] अथर्ववेद के भाष्यकार पं० क्षेमकरणजी त्रिवेदी ने भी आग्नेयास्त्र तथा वारुणास्त्र, वज्रास्त्रादि का सङ्केत किया है।[३] स्वामी ब्रह्ममुनिजी भी अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या नामक ग्रन्थ में कृत्या एवं बलग को विनाश के प्रयोजन से भूमि में दबाई हुई सुरङ्ग-जैसा ही आयुध मानते हैं[४]। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत-से दिव्यास्त्रों का सङ्केत वेदमन्त्रों में किया है। जिन्हें दिव्यास्त्र प्रकरण में दिया जायेगा।

**रामायण में शतघ्नी**—बालकाण्ड में अयोध्या का वर्णन करते हुए उसे ऊँचे बुर्ज, ध्वज और सैकड़ों शतघ्नीयुक्त बताया है।[५] राम द्वारा सीता की खोज करके आये हनुमान् से लङ्का का समाचार पूछने पर हनुमान् ने बताया कि लङ्का की चारों दिशाओं में चार विशाल प्रवेशद्वार हैं, जिनपर तीर एवं पत्थर फेंकनेवाले अति शक्तिशाली यन्त्र स्थापित किये हुए हैं जो आगत शत्रुसेना को पराङ्मुख करने में समर्थ हैं। राक्षस वीरों ने इन द्वारों पर लोहे से निर्मित तीक्ष्ण सैकड़ों शतघ्नी भी रखी हुई हैं। जब कुम्भकर्ण की निद्रा (प्रमाद) किसी भी साधन से नहीं टूटी तब रस्सियों से बँधी हुई शतघ्नियों से प्रहार किया गया।[६] युद्धक्षेत्र में सुग्रीव ने वृक्षों को उखाड़ कर कुम्भकर्ण के ऊपर फेंका। उसने अपनी ओर आते हुए वृक्षों को बाणों द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया। बाण गड़े हुए वे वृक्ष इसी भाँति सुशोभित हुए जैसे कीलें लगी हुई शतघ्नियाँ होती हैं।[७]

---

१. संहिता में कहे शतघ्नी और असुरों का हनन करने का साधन होने से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वैदिक साहित्य में आई सूर्मी तोप अवश्य है। —सार्वदेशिक, फरवरी १९३० का लेख

२. यजु० १३।९-१०, ऋ० १।३८।१२

३. (क) यो नो मर्तो मरुतो दुर्हणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति।
द्रुहः पाशान् प्रति मुञ्चतां सस्तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम्॥ —अथर्व० ७।७७।२
(तपिष्ठेन) अति तपानेवाले (तपसा) ऐश्वर्य वा—तुपक (तोप) आदि हथियार से मार डालो।
(ख) इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः। —अथर्व० ८।४।५
(ग) विष्वञ्चो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः। दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत॥
—अथर्व० १।१९।२
इन मन्त्रों में पं० श्री क्षेमकरणजी त्रिवेदी ने तोप, बन्दूक, आग्नेयास्त्र और वारुणास्त्र का सङ्केत किया है।

४. अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या, पृष्ठ १५२

५. (क) उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसंकुलाम्। —रामा० बाल० ५।११
(ख) तत्रेषुपलयन्त्राणि बलवन्ति महान्ति च। आगतं प्रतिसैन्यं तैस्तत्र प्रतिनिवार्यते॥
द्वारेषु संस्कृता भीमाः कालायसमयाः शिताः। शतशो रचिता वीरैः शतघ्न्यो रक्षसां गणैः॥
—रामा० युद्ध० २।१२-१३

६. रज्जुबन्धनबद्धाभिः शतघ्नीभिश्च सर्वतः। —रामा० युद्ध० ६०।५४

७. अर्दितास्ते द्रुमा रेजुर्यथा घोराः शतघ्नयः॥ —वही युद्ध० ७६।६८
अन्य द्रष्टव्य स्थल —युद्ध० ८६।२२, ९५।२६, ३।२३

यहाँ शतघ्नी को लोह से निर्मित, रस्सियों से बँधी हुई और चारों ओर लोहे की कीलों से युक्त बताया गया है और यह आयुध राक्षसों के पास था—यह स्पष्ट हो गया, परन्तु इसका स्वरूप क्या था और इससे कैसे कार्य लेते थे इसका कोई सङ्केत नहीं है। रघुवंश में रावण द्वारा लोहे की कील लगी हुई वैवस्वत की गदा के सदृश आयुध का प्रयोग करने का प्रसङ्ग आया है।[1] मल्लीनाथकृत टीका में वैजयन्तीकोष एवं अन्य कोषों के आधार पर शतघ्नी चार हाथ लम्बी, कीलों से युक्त, गदा-जैसी स्वीकार की गई है।[2] इन प्रमाणों के आधार पर रामायण में वर्णित शतघ्नी तोप या उस-जैसा अन्य कोई आयुध है, ऐसा कहना कठिन है। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि छोटी तोप का आकार गदा-जैसा ही प्रतीत होता है।

**महाभारत में शतघ्नी**—महाभारत में शतघ्नी का स्वरूप बदल गया है। यहाँ वह चक्रों से युक्त आयुध है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य है कि अधिकांश स्थलों पर शतघ्नी शब्द का जहाँ प्रयोग हुआ है, वहाँ अश्मगुड या अयोगुडा का प्रायः आगे-पीछे प्रयोग किया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि यह पत्थर या लोहे के गुड (गोले) फेंकनेवाला आयुध था।[3]

इस आयुध से पत्थर एवं गोले क्या अग्निसंयोग (बारुद) से फेंके जाते थे अथवा दण्डाघात (लीवर) से, यह विचारणीय है।

शुक्रनीति के अनुसार नालास्त्र (तोप, बन्दूक) से किया जानेवाला युद्ध आसुर या मायिक कहलाता है। घटोत्कच ने रात्रि-युद्ध में इसी मायिक युद्ध को प्रारम्भ किया, जिसमें भुशुण्डी एवं चक्रयुक्त शतघ्नी का खुलकर प्रयोग हुआ।[4] जिनके प्रहारों से आहत योद्धाओं की लाशों से वहाँ की भूमि ढक गई।

द्रोणाचार्य के वध किये जाने पर अश्वत्थामा ने कुपित होकर नारायणास्त्र का सन्धान करके उसे पाण्डवों पर छोड़ दिया, जिससे चार चक्र एवं दो चक्रवाली शतघ्नियाँ तथा लोहे के गोले प्रकट होकर शत्रु-सैन्य को जलाने लगे।[5]

इन्द्रप्रस्थ का वर्णन करते हुए उसे तीक्ष्णाङ्कुशों से युक्त शतघ्नी और अनेक यन्त्रों से सुशोभित

---

१. अयः शङ्कुचितां रक्षः शतघ्नीमथ शत्रवे। हृतां वैवस्वतस्यैव कूटशाल्मलिमक्षिपत्॥ —रघुवंश १२।९५

२. इस श्लोक पर मल्लिनाथ की टीका—
अथो रक्षो रावणः अयः शङ्कुभिः कीलैश्चितां कीर्णां शतघ्नीं लौहकण्टकयष्टिविशेषाम्। शतघ्नी तु चतुस्ताला लौहकण्टकयष्टिः इति केशवः।
शतघ्नी तु चतुस्ताला लोहकण्टक सञ्चिता। अयः कण्टकसंछन्ना शतघ्न्येव महाशिला॥
—वैजयन्तीकोष, क्षत्रियाध्याय

३. (क) परिगृह्य शतघ्नीश्च सचक्राः सगुडोपलाः। चिक्षिपुर्भुजवेगेन लङ्कामध्ये महास्वनाः॥
—महा० वन० रामो० २८४।३१
(ख) वज्रैः पिनाकैरशनिप्रहारैः शतघ्नीचक्रैर्मथिताश्च पेतुः। —द्रोण० १७९।३६
(ग) तेनोत्सृष्टा चक्रयुता शतघ्नीसमं सर्वांश्चतुरोऽश्वान् जघान॥ —वही १७९।४६

४. शूलाभुशुण्ड्योश्मगुडाः शतघ्न्यः स्थूणाश्च कार्ष्णायसपट्टनद्धाः। —वही १७९।३७

५. प्रादुरासन् महाराज कार्ष्णायसमया गुडाः। चतुश्चक्रा द्विचक्राश्च शतघ्न्यो बहुला गदाः॥
—द्रोण० १९९।१८-१९

बताया गया है।[१] इसी भाँति द्वारिका के बुर्जों पर भुशुण्डी, पत्थर के गोले, परशु इत्यादि आयुध और लोह तथा चर्म से निर्मित अग्निसंयोग से गोले फेंकनेवाले शृङ्गिका यन्त्र रखे हुए थे।[२] शान्तिपर्व में भीष्मपितामह युधिष्ठिर को राजधर्म का उपदेश करते हुए दुर्ग-निर्माण करके उसके बुर्जों पर भारी यन्त्र और शतघ्नी चढ़ाकर उन्हें अपने नियन्त्रण में रखने का उपदेश देते हैं।[३] शतघ्नी के साथ तीक्ष्ण अङ्कुश या कीलों का वर्णन अनेक बार आया है। इसका अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि इनकी रक्षार्थ चारों ओर लोहे का जाल या कीलें लगा दी जाती थीं, जिससे शत्रु उनको सहसा ही हस्तगत न कर सकें।

अर्जुन के स्वर्गलोक गमन के समय इन्द्र ने उसके लिये रथ भेजा, जिसमें विविध अस्त्र-शस्त्र लगे हुए थे। इनमें अशनि, चक्रोंवाली अशनियाँ भी थीं और तुला-प्रमाण (१ मन भारवाले) गोले भी थे जो वायु में ही फूटकर भयङ्कर शब्द और आघात करते थे।[४] यह अर्थ आचार्य रामदेवजी ने किया है।[५] प्रो० दीक्षितार ने तुला का लीवर और गुडा पत्थर यह अर्थ किया है[६] अर्थात् लीवर द्वारा पत्थर को फेंकनेवाला यन्त्र। यहाँ आचार्य रामदेवजीकृत अर्थ ही युक्तिसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि लीवर द्वारा फेंके गये पत्थर का वायु में विस्फोट और भारी शब्द होना असम्भव है। यहाँ अशनि को चक्रयुक्त तथा गोले फेंकनेवाला यन्त्र कहा है। यह गुण शतघ्नी का भी कहा है, अत: दोनों समानार्थक या मिलते-जुलते गुणोंवाले आयुध हो सकते हैं। इसी भाँति अग्नि से या आग तथा गोले बरसानेवाली शृङ्गिका भी अशनि-जैसा ही आयुध हो सकती है।

**पुराणों में शतघ्नी**—पुराणों में शतघ्नी को यन्त्रों में मुख्य स्थान प्राप्त हुआ है[७] तथा इसे आग्नेयास्त्र के रूप में स्वीकार करके दुर्गों पर स्थापन के निर्देश दिये हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में शतघ्नी और बहुत-से सहस्रघाती यन्त्रों से युक्त दुर्ग बनाने को कहा है।[८] मत्स्यपुराण में शतघ्नी को दीप्त कहा है।[९] यह दीप्त तभी हो सकती है जबकि इसे आग्नेयास्त्र माना जाये।

---

१. तीक्ष्णाङ्कुशशतघ्नीभिर्यन्त्रजालैश्च शोभितम्। —आदिपर्व २०७।३४
यहाँ नीलकण्ठ शास्त्री ने शतघ्नी का अर्थ तोप किया है—
"आग्नेयौषधबलेनोत्क्षिप्तेन, दृषत्पिण्डेन या युगपत् शतं सहस्रं वा मनुष्यान्घ्नन्ति ताभि: शतघ्नीभिर्दुर्गारूढाभि:।"

२. स भुशुण्ड्यश्मगुडका सायुधा स परश्वधा। लोहचर्मवती चापि साग्नि: सगुडशृङ्गिका॥ —वन० १५।७,८

३. द्वारेषु च गुरुण्येव यन्त्राणि स्थापयेत् सदा। आरोपयेच्छतघ्नीश्च स्वाधीनानि च कारयेत्॥
—शान्तिप० ६८।४५

४. तथैवाशनयश्चैव चक्रयुक्तास्तुलागुडा:। वायुस्फोटा: सनिर्घाता: महामेघस्वनास्तथा॥ —वन० ४२।४

५. भारतवर्ष का इतिहास, भाग १ पृष्ठ

६. वार इन एनशियण्ट इण्डिया, फायर आर्म्स प्रकरण।

७. दुर्गञ्च परिखोपेतं वप्राट्टालकसंयुतम्। शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च तथा युतम्॥
—वि० ध० पु० खण्ड २।२६।८, म० पु० ९५।८

८. दुर्गे च यन्त्रा: कर्तव्या नाना प्रहरणान्विता:। सहस्रघातिनो राम तैस्तु रक्षा विधीयते॥
—वि० ध० पु० २।२६।२७

९. शतघ्नीभिश्च दीप्ताभि:। —म० पु० ६२।३२

गर्गसंहिता में तो एकघ्नी, दशघ्नी, शतघ्नी और भुशुण्डी का स्पष्ट उल्लेख किया है।[1] जिसमें शुष्कमदिरा (बारूद) भरकर तांबे के गोले फेंके जाते थे। इसी भाँति हरिवंशपुराण में शतघ्नी को तीक्ष्ण यन्त्र माना है[2], जिसके बड़े-बड़े लोहे के चक्र लगे हुए थे।

**धनुर्वेद ग्रन्थों में शतघ्नी**—नीतिप्रकाशिका में भुशुण्डी मुक्तास्त्रों में और शतघ्नी की अमुक्तों में गणना की है। इसके अनुसार शतघ्नी काँटों से युक्त चार हाथ लम्बी मुद्गर जैसी गोलाकार मूठवाली होती है। इसे चलाने की विधि गदा जैसी ही है।[3] इसी भाँति भुशुण्डी ३ हाथ लम्बी, बड़ी गाँठ (कुन्दा, पृष्ठभाग) तथा काले सर्प की भाँति भयङ्कर होती है।[4] इन लक्षणों से इसे बन्दूक नहीं माना जा सकता, परन्तु इसी ग्रन्थ में नालिका को मध्य में छिद्रयुक्त, नीला वर्ण और द्रोणी चाप से फेंके जानेवाले बाणों को फेंकनेवाली बताया है।[5] आगे पञ्चम अध्याय में लोहे और सीसे की गोलियाँ फेंकनेवाले और पत्थर फेंकनेवाले यन्त्रों का कलियुग में कूटयुद्धार्थ प्रचलन होगा यह भी कहा है।[6] इसकी टीका में बारुद का भी सङ्केत किया है।

**शुक्रनीति**—इस ग्रन्थ में तो आग्नेयास्त्र एवं अग्निचूर्ण बनाने का स्पष्ट ही उल्लेख है। मन्त्र, यन्त्र और अग्नि के संयोग से फेंके जानेवाले अस्त्र और तलवार, भाला इत्यादि शस्त्र कहे गये हैं।[7] अस्त्रों के दो भेद नालिक और मान्त्रिक होते हैं। जब मान्त्रिक अस्त्र नहीं हों तब नालिक का प्रयोग किया जाता है। नालिक के भी दो भेद क्षुद्रनालिक और बृहन्नालिक हैं। क्षुद्रनालिक काष्ठ के कुन्देयुक्त तथा बृहन्नालिक बिना कुन्दे (बट आंगल भाषा) के ही होती है। बृहन्नालिक को शकटादि द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले-जाया जाता है। इसके अतिरिक्त शुक्रनीति में अग्निचूर्ण (बारूद) बनाने की भी अनेक विधियाँ बताई हैं, परन्तु इतना अवश्य ध्यान रहे कि शतघ्नी और भुशुण्डी का यहाँ नाम नहीं आया है।

**वाशिष्ठ धनुर्वेद में शतघ्नी**—इस ग्रन्थ में स्पष्टरूप से शतघ्नी को आग्नेयास्त्र तथा बारूद से चलनेवाला आयुध माना है। दुर्ग की रक्षार्थ राजा को शतघ्नी तथा गोला-बारूद (रञ्जक)

---

१. गर्गसंहिता
(क) एकघ्नीभिर्दशघ्नीभिः शतघ्नीभिर्भुशुण्डीभिः । —गर्ग० सं० खण्ड १, २२।२३
(ख) दृष्ट्वा शतघ्नीं तत्रापि प्रतप्तां मदपूरिताम्। ताम्रगोलकसंयुक्तामग्नियुक्तां भयङ्कराम्॥
(ग) शतघ्न्यां शुष्कमदिरागोलकेन समन्विता। —गर्ग० स० खण्ड १०, ३३।३८-३९-५२
अन्य स्थल खण्ड १०, अ० १६।२०-२१-२२-२३
वही, अध्याय २२।१२-१३
वही, अध्याय २९।७

२. तीक्ष्णयन्त्रशतघ्नीभिर्हेमजालैश्च भूषितम्। आयसैश्च महाचक्रैर्ददर्श द्वारकापुरीम्॥
—हरि० पु० विष्णु० ९८।२६

३. शतघ्नी कण्टकयुता कालायसमयीदृढा। मुद्गरा चतुर्हस्ता वर्तुला त्सरुणायुता॥ —नी० प्र० ५।४८

४. भुशुण्डी तु बृहद्ग्रन्थिर्बृहद्देहसुसत्त्सरुः। बाहुत्रयः समुत्सेधः कृष्णसर्पोग्रवर्णवान्॥ —नी० प्र० ४।५१

५. नालिका ऋजुदेहा स्यात् तन्वङ्गी मध्यरन्ध्रिका। मर्मच्छेदकरी नीला द्रोणीचापशरासनी॥ -नी० प्र० ४।४०

६. नी० प्र० ५।५२-५३

७. अस्यते क्षिप्यते यत्तु मन्त्रयन्त्राग्निभिश्च यत्। अस्त्रं तदन्यतः शस्त्रमसिकुन्तादिकं च यत्॥ —शुक्र०नी०

रखने को कहा है।[१] यहाँ खग नामक विशिष्ट बाण का नाम भी लिया है, जिसकी नाली में रञ्जक (बारूद) भरा रहता था और वायु के सम्मुख फेंकने पर यह पुनः उसी स्थान पर वापस आ जाता था।[२] युद्ध करते समय वृक्ष या झाड़ियों में छिपकर धनुष या भुशुण्डी से युद्ध करना चाहिये इसका भी सङ्केत किया है।[३]

**अन्य ग्रन्थों में शतघ्नी**—कौटिल्य अर्थशास्त्र में शतघ्नी चलयन्त्रों में कही गई है।[४] जिसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले-जाया जा सके, उसे चलयन्त्र कहते हैं। महाराजा भोजरचित समराङ्गणसूत्रधार ग्रन्थ में शतघ्नी और अन्य उष्ट्रग्रीव (ऊँट की जैसी लम्बी ग्रीवावाले) यन्त्रों को दुर्गरक्षा के लिये युक्तिपूर्वक बनाने को कहा है।[५] महर्षि भारद्वाजरचित यन्त्रसर्वस्व के विमान प्रकरण[६] में विमान का लोहा इतना सुदृढ़ बनाने को कहा है, जिसे शतघ्नी और सहस्रघ्नी के प्रहार से भी छेदा नहीं जा सके।[७] इसी ग्रन्थ में विमान में गुहागर्भादर्श यन्त्र स्थापन का निर्देश किया है। यह यन्त्र शत्रु द्वारा विमान का नाश करने के लिये भूमि में छिपाये, जिनके गर्भ में आग्नेय पदार्थ रखे हैं, ऐसे पाँच यन्त्रों का पता लगाता था और फिर विमान से प्रक्षेपास्त्र छोड़कर उन भूमिगत प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट किया जाता था।[८] इस प्रकरण को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है जैसे आजकल के रूस एवं अमेरिका द्वारा लगाये गये एक-दूसरे को नष्ट करनेवाले प्रक्षेपास्त्रों का वर्णन हो रहा हो। उपग्रहों से जिनका चित्र लेकर लेजर किरणों या अन्य आयुधों से संहार करने के उपाय सोचे जा रहे हों।

**अग्निचूर्ण (बारूद)**—अग्निचूर्ण का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि आग्नेयास्त्र। ये आयुध रामायण, महाभारत के समय सुविदित थे। अथर्ववेद में सीसे की गोली से गो, अश्व और मनुष्यों के घातक को वेधने का आदेश दिया है। बिना अग्नि संयोग के सीसे में वेधने

---

१. सिंहासनरक्षार्थं शतघ्न्यः स्थापयेद् गढे। रञ्जकं बहुलं तत्र स्थाप्यं वटयो धीमता॥
—वा० ध० श्लोक ७५

२. खगं बाणं तु राजेन्द्र प्रक्षिपेद् वायु सम्मुखः। रञ्जकस्य च नालाभिरतो ह्यागमनं भवेत्॥
—वही, श्लोक १६२

३. वही, पृष्ठ ७७

४. कौ० अ० आयुधागाराध्यक्षः १८।२

५. ये चापाद्या ये शतघ्न्यादयोऽस्मिन्नुष्ट्रग्रीवाद्याश्च दुर्गस्य गुप्त्यै।
ये क्रीडाद्याः क्रीडनार्थं च राज्ञां सर्वेऽपि स्युर्योगस्ते गुणानाम्॥ —समरा० सू० ३१।१०८
उष्ट्रग्रीवा (तमञ्चे) अनुवादक डॉ० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल

६. इसका मुद्रण बृहद् विमानशास्त्र के नाम से सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली-२ ने किया है।

७. द्विसहस्रकक्ष्योष्णं वेगसहं सुरुचं दृढम्। सहस्रघ्नी शतघ्नीभिरच्छेद्यं चातीशीतलम्॥ २९१॥
—बृ० वि० शास्त्र, पृष्ठ २८१

८. विमानखण्डनार्थाय शत्रुभिर्भूमुखान्तरे। महागोलाग्निगर्भादियन्त्रपञ्चकमद्भुतम्॥ २॥
यत्र यत्र रहस्येन स्थापितं सर्वतोमुखम्। तत् स्वरूपं परिज्ञानसिद्ध्यर्थं शास्त्रतः क्रमात्॥ ३॥
गुहागर्भादर्शयन्त्रं स्थापयेद् व्योमयानके। महागोलाग्नियन्त्रादीन् शत्रुभिः सन्निवेशितान्।
ज्ञात्वा तेन ततः शीघ्रं समूलं नाशयेत् सुधीः॥ २४॥ —बृ० वि० शास्त्र, पृष्ठ १४६

का सामर्थ्य कैसे उत्पन्न हो सकता है?

पाश्चात्य इतिहासविदों की यह धारणा है कि भारतवर्ष में सर्वप्रथम तोप का प्रयोग बाबर के समय में हुआ। इसका समय १५२६ ई० है। इससे पहले कहीं प्रयोग देखने को नहीं मिलता। बारूद का आविष्कार यूरोप में १४वीं शताब्दी में बर्थोल्ड श्वार्त्ज नामक पादरी ने किया, परन्तु अब इस भ्रान्त धारणा का खण्डन स्वयं उन्हीं देशों के विद्वानों ने कर दिया है। एन्साईक्लोपीडिया ब्रिटानिका का मत है कि बारूद का आविष्कार चीन या हिन्दुस्तान में हुआ।[१] दी कोलम्बिया एन्साईक्लोपीडिया के अनुसार सम्भवतः चीन में हुआ। बर्थोल्ड पादरी ने इसमें परिवर्धन किया न कि आविष्कार। बारूद का यह विज्ञान यूरोप में अरबों द्वारा आया,[२] परन्तु यह नहीं लिखा कि अरबों ने किनसे सीखा। जैसीकि समस्त ज्ञान-विज्ञान की परम्परा है भारतवर्ष से पूर्वदेश चीन-जापानादि में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ अन्य कलाओं का भी प्रचलन हुआ। इसी भाँति अरबों के भारत के साथ बहुत पुराने व्यापार-सम्बन्ध होने से उन लोगों ने गणित, आयुर्वेद, ज्योतिष इत्यादि यहीं से सीखे। अरबी में आज भी अङ्क को हिन्दसा (हिन्दुस्तान से आया) कहा जाता है। तोप शब्द भी संस्कृत की तुप तुफ़ पीड़ार्थक धातु से निष्पन्न होता है, परन्तु यहाँ उसका यह नाम न होकर नालिक या शतघ्नी प्रचलित था, जिसका अर्थ अधिक स्पष्ट है।

महाभारत के वनपर्व में द्वारिका में अग्नि के सहित गोले फेंकनेवाले आयुध का वर्णन आया है।[३]

इन्द्र के रथ में अशनि आयुध लगा हुआ था जो गोले बरसाता था। ये गोले वायु में ही फूटकर भयङ्कर शब्द करते थे।[४] बृहद् विमानशास्त्र में विमान को गिराने के लिये महागोलाग्निगर्भ यन्त्र का नाम आया है।[५] कौटिल्य अर्थशास्त्र में उष्ट्रग्रीवादि यन्त्रों के साथ अग्निसंयोग शब्द का प्रयोग भी बारूद का ही सङ्केत करता है।[६] नीतिप्रकाशिका में गोली फेंकनेवाले यन्त्र तथा धूमगुलिका को कूट आयुधों में माना है।[७] मनुस्मृति में धर्मयुद्ध में अग्नि लगानेवाले बाणों का प्रयोग करने का निषेध किया है।[८] शुक्रनीति में अग्निचूर्ण बनाने के अनेक योग दिये हैं।[९] इसी भाँति गर्गसंहिता में बारूद को शुष्कमदिरा,[१०] वाशिष्ठ धनुर्वेद में रञ्जक[११] और जामदग्न्य धनुर्वेद में जामदग्न्य चूर्ण[१२] कहा है।

---

१. Encyclopaedia Britannika, Page 5.
२. The Columbia Encyclopaedia, Page 896.
३. साग्निः सगुडशृङ्गिका (वन० १५।७-८)
४. महा० वन० ४२।४
५. बृ० वि० शा०, पृष्ठ १४६
६. कौ० अ० दुर्गाधिकरण ३।१२
७. नी० प्र० ५।५२-५४
८. मनु० १०।८३
९. शुक्र० अ० ४
१०. गर्ग० १०।३३।३८-३९-५२
११. वा० ध० श्लोक ७५
१२. राजराजेश्वर परशुराम ग्रन्थ में जामदग्न्य धनुर्वेद संकलन

डॉ० सत्यप्रकाशजी प्राचीन भारत में रसायनशास्त्र का इतिहास नामक ग्रन्थ में चीन देश में सातवीं शताब्दी में आतिशबाजी का प्रचलन था, ऐसा मानते हैं।[१] डॉ० पी० के० गोड़े भी इसकी पुष्टि करते हैं।[२] नैषध काव्य में दमयन्ती की नाक को नालिका से उपमा दी गई है।[३] भारतचम्पू काव्य में वर्षा-बिन्दुओं की नलिका से निकलती हुई गोलियों से उपमा दी है।[४] इन दोनों ग्रन्थों का समय ईसा की १२-१४वीं सदी माना जाता है। आकाशभैरवकल्प नामक ग्रन्थ में—आकाश में भयङ्कर गर्जना और अग्नि की चिनगारियाँ छोड़नेवाले बाण का उल्लेख किया है।[५]

डॉ० गायत्रीनाथ पन्त सन् १२९९ ई० में रणथम्भोर विजय के समय तोप का प्रयोग हुआ था, ऐसा मानते हैं।[६] कवि श्यामल दासजी द्वारा लिखित 'वीरविनोद' में अलाउद्दीन खिलजी द्वारा रणथम्भौर विजय के समय राजपूत स्त्रियों द्वारा बारूद के ढेर पर बैठकर जौहर करने का उल्लेख किया है।[७] पुरुषोत्तम नागेश ओक द्वारा लिखित 'भारत में मुस्लिम सुल्तान' नामक ग्रन्थ में सन् १००८ ई० में मुहम्मद बिन कासिम और १०२६ ई० में महमूद गजनवी द्वारा आग्नेयास्त्रों के प्रयोग करने की साक्षी दी है।[८] सैयद इकबाल जौनपुरी लिखता है कि मुबारक शाह की सेना में (१३९९ ई०) कुछ तोपची भी थे।[९] आगे इसी ने २००० तोपची इब्राहीम की सेना में कहे हैं।[१०] कबीर द्वारा लिखित साहित्य में भी तोप, गोलाबारूद का वर्णन आता है।[११]

इन सब प्रमाणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतवर्ष में अग्निचूर्ण का प्रचलन प्राचीन काल से ही था। तोप और बन्दूक-जैसे आयुध भी थे, किन्तु सामान्यत: धर्मयुद्धों में इनका बहुत ही कम प्रयोग किया जाता था। छल-कपट द्वारा संहार न करके योद्धा परस्पर सामने होकर ही समान शस्त्रास्त्रों से लड़ना अपना धर्म समझते थे।

---

१. प्राचीन भारत में रसायन का विकास, पृष्ठ ७८९ से ७९१
२. भारत में बन्दूक और बारूद का प्रचलन, त्रिपथगा पत्रिका, सित० १९६४
३. नैषध २।२८
४. भारतचम्पू ३।५४
५. आ० भै० त० साम्राज्य लक्ष्मीपीठिका पटल १०७।२९-३१
६. Studies in Indian Weapons and Warfare, Page-5.
७. वीरविनोद, भाग २, पृष्ठ ७२
८. भारत में मुस्लिम सुल्तान भाग १, पृष्ठ ११, ३९, ५४
९. शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास, पृष्ठ १७१
१०. वही, पृष्ठ १७२
११. कबीर साहब की शब्दावली, भाग १ शब्द १७।६१

# सप्तम अध्याय

## युद्ध के यन्त्र

जिस साधन से पृथिवी, जल, वायु और अग्नि को नियन्त्रित करके उनसे कार्य लिया जाये, उसे यन्त्र कहते हैं।[1] अथवा इन भूतों को बुद्धिपूर्वक अपने वश में जिस साधन से किया जाये, वह भी यन्त्र कहलाता है।[2] इन यन्त्रों का बीज (चलाने का साधन अर्थात् ईंधन) इन पूर्वोक्त चार तत्त्वों से पृथक्-पृथक् अथवा परस्पर मिलाकर तैयार किया जाता है।[3] प्राचीनकाल में महर्षि भारद्वाजकृत यन्त्रसर्वस्व नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ था, जिसके ४० अध्यायों में विभिन्न यन्त्रों का सुविस्तृत वर्णन था। इस समय इस बहुमूल्य दुर्लभ ग्रन्थ का एक अध्याय बृहद् विमानशास्त्र के नाम से उपलब्ध है, जिसमें सैकड़ों यन्त्र जोकि विमान के चलाने में आवश्यक हैं, उनका वर्णन दिया है। इसी भाँति समराङ्गणसूत्रधार ग्रन्थ का इकत्तीसवाँ अध्याय यन्त्राध्याय के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें राजा के आमोद-प्रमोद के लिये बहुत-से यन्त्रों का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त यन्त्र कल्पतरु, यन्त्रार्णव इत्यादि बहुत-से ग्रन्थों के उद्धरण मिलते हैं, जिनसे प्राचीनकाल में यह विद्या सुविकसित थी, इसका निश्चय होता है।[4] प्रसङ्गानुसार यहाँ केवल युद्ध में प्रयुक्त होनेवाले यन्त्रों का ही वर्णन किया जायेगा।

इस विद्या के अनेक ग्रन्थ रचे गये थे। इसीलिये नारद ने युधिष्ठिर को राजनीति का उपदेश देते हुए यह भी पूछा कि क्या तुम धनुर्वेद के सूत्र और यन्त्रसूत्र को जानते हो।[5] क्या तुम्हारे दुर्गों में सभी प्रकार के आयुध, यन्त्र और उनके बनानेवाले शिल्पि विद्यमान हैं।[6] उस समय दुर्ग-रक्षार्थ यन्त्रों की सहायता लेना आवश्यक कर्त्तव्य था। रावण की लङ्का चारों ओर से परकोटे से घिरी हुई थी। चारों दिशाओं में चार विशाल द्वार थे जिनपर बाण और पत्थर बरसानेवाले शक्तिशाली यन्त्र स्थापित किये हुए थे।[7] राम की सेना के इञ्जिनियर नल-नील ने यन्त्रों की सहायता से हाथी-जैसे विशालशिला खण्डों को ढोकर समुद्र पर पुल बाँधा।[8] इन्द्रप्रस्थ नगर

---

१. यदृच्छया प्रवृत्तानि भूतानि स्वेन वर्त्मना। नियम्यास्मिन् नयति यद् तद् यन्त्रमिति कीर्तितम्।

२. स्वरसेन प्रवृत्तानि भूतानि स्वमनीषया। कृतं यस्माद् यमयति तद् वा यन्त्रमिति स्मृतम्॥

—समरा० सू० ३१।३-४ पृ० १७४

३. (क) समरा० सू० ३१।८४

(ख) तस्य बीजं चतुर्धा स्यात् क्षितिरापोऽनलोऽनिलः। —वही ३१।५

४. अधिक ज्ञान के लिये बृहद् विमानशास्त्र देखना चाहिये।

५. धनुर्वेदस्य सूत्रं वै यन्त्रसूत्रञ्चं नागरम्॥ —महा० सभा० ५।२१

६. कच्चिद् दुर्गाणि सर्वाणि धनधान्यायुधोदकैः। यन्त्रैश्च परिपूर्णानि तथा शिल्पिधनुर्धरैः॥ —वही ५।३६

७. तत्रेषुपलयन्त्राणि बलवन्ति महान्ति च। आगतं प्रतिसैन्यं तैस्तत्र प्रतिनिवार्यते॥

—रामा० यु० ३।१२

८. हस्तिमात्रान् महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः॥ —यु० २२।५७

पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च॥ —रामा० यु० २२।५७

की प्राचीर तीक्ष्ण शतघ्नी और विभिन्न यन्त्रों से सुशोभित थी।[१] युद्ध की तैयारी करते समय पाण्डव सेना ने बड़े-बड़े यन्त्रायुध भी एकत्रित किये।[२] शान्तिपर्व में भीष्मपितामह ने युधिष्ठिर को दुर्ग-रक्षार्थ भारी यन्त्र एवं शतघ्नी स्थापित करने का उपदेश किया है।[३]

नीतिप्रकाशिका में लोहे और सीसे की गोलियाँ तथा पत्थर बरसानेवाले आयुधों को यन्त्र कहा है।[४] दूसरे स्थान पर आग्नेयास्त्रों से युद्ध करने का निषेध किया है।[५] सेना के साथ बड़े-बड़े यन्त्रों को साथ ले-जाने को भी कहा है।[६] शुक्रनीति में यन्त्रों द्वारा अस्त्र फेंकना कला माना है।[७] वहीं पर मन्त्र और यन्त्राग्नि द्वारा छोड़े जानेवाला अस्त्र होता है, यह भी कहा है।[८] इसी भाँति मत्स्यपुराण में शतघ्नी को मुख्य यन्त्र मानकर उसे दुर्ग पर रखने का विधान है।[९] इसी बात की हरिवंश और विष्णुपुराणों ने पुष्टि की है।[१०] अग्निपुराण में क्षेपणी, चाप और अन्य यन्त्रों से फेंके गये अस्त्र को यन्त्रमुक्त की श्रेणी में रखा गया है।[११] मानसोल्लास में राजा शत्रुदेश पर आक्रमण करके उसके दुर्गों पर पाषाण बरसानेवाले तथा अग्नि लगानेवाले यन्त्रों से आक्रमण करे, ऐसा निर्देश दिया है।[१२]

समराङ्गणसूत्रधार में दुर्गरक्षार्थ अग्नि इत्यादि की सहायता से चाप, शतघ्नी और उष्ट्रग्रीवादि यन्त्र बनाने का विधान किया है।[१३] जातक कथाओं में लिखा है कि महाराजा अजातशत्रु ने लिच्छवी राज्य पर चढ़ाई की तब दो यन्त्रों का युद्धार्थ प्रयोग किया। उनसे एक महाशिला कण्टक और दूसरा रथमुसल नाम का था। ये स्वयं चालित थे।[१४]

यन्त्रायुधों का प्रामाणिक विवरण कौटिल्य अर्थशास्त्र में आयुधागार अध्यक्ष नामक अध्याय

---

१. तीक्ष्णाङ्कुशशतघ्नीभिर्यन्त्रजालैश्च शोभितम्॥ —महा० आ० २०७।३४
२. (क) महायन्त्राणि नाराचाः। —उद्योग० १५३।१५
 (ख) कोशं यन्त्रायुधं चैव। —वही १५१।५८
३. द्वारेषु च गुरूण्येव यन्त्राणि स्थापयेत् सदा। —महा० शान्ति० ६९।४५
४. यन्त्राणि लोहसीसानां गुलिकाक्षेपकानि च। तथा चोपलयन्त्राणि कृत्रिमाण्यपराणि च॥ —नी० प्र० ५।५२
५. नी० प्र० ७।४५
६. वही ६।४७
७. कलाभिलक्षिते देशे यन्त्राद्यस्त्रं निपातनम्। —शुक्र० ४।३१८
८. अस्यते क्षिप्यते यत्तु मन्त्रयन्त्राग्निभिश्च तत्। अस्त्रं तत्........। —शुक्र० ४।१०२४
९. शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतम्। —म० पु० ९५।८
१०. (क) तीक्ष्णयन्त्र शतघ्नीभिर्यन्त्रजालैश्च भूषिताम्। —हरि० पु० ९८।२६
 (ख) अश्मयन्त्रायुधोपेता...। —विष्णुपु० ४१।९०
 (ग) अश्मयन्त्राणि युज्यन्ताम्। वही ४२।२१
११. अग्निपु० २४९।३-५
१२. आरभेत ततो युद्धं यन्त्रपाषाणपातकैः। अनलं चानुकूलेन वायुना समुदापयेत्॥
 पाषाणपातिभिर्यन्त्रैर्दाहनाद् दहनेन वा॥ —मानसो० भाग १ वि० २ अ० २०।१०७०-७३
१३. ये चापाद्या ये शतघ्न्यादयोऽस्मिन्नुष्ट्रग्रीवाद्याश्च दुर्गस्य गुप्त्यै।
 ये क्रीडाद्या क्रीडनार्थं च राज्ञां सर्वेऽपि स्युर्योगतस्ते गुणानाम्॥ —समरा० ३१।१०
१४. त्रिपथगा—अगस्त १९६४, पृष्ठ ५९

में मिलता है। इनमें सर्वतोभद्र, जामदग्न्य, बहुमुख, विश्वासघाती, सङ्घाटी, यानक, पर्जन्यक, बाहुयन्त्र, ऊर्ध्वबाहु और अर्धबाहु ये दश स्थिर यन्त्र तथा पञ्चालिक देवदण्ड इत्यादि सतरह चल यन्त्र कहलाते हैं।[1] इसकी श्रीमूलाख्या टीका में भट्टस्वामी का यह श्लोक दिया है, जिसमें यन्त्र की परिभाषा की गई है—

**व्याधितं भ्रमितं चैव भारयुक्तञ्च कारयेत्। पीडनाद् भ्रमणाद् भारात्त्रिधा यन्त्रं प्रवर्तते॥**

अर्थात् पीडन (लीवरादि के प्रयोग से) भ्रमण (घुमाना चक्र-दन्तादि द्वारा) और भार (जैसे पास्कल सिद्धान्त के अनुसार रूई की गाँठे बनाई जाती हैं) इन तीन साधनों से यन्त्र कार्यक्षम होता है।

शिल्पशास्त्र के राजवल्लभ नामक ग्रन्थ में राजधानी एवं अन्य नगरों की रक्षा के लिये आठ यन्त्र लगाने को कहा है। यहाँ इनका उल्लेख करना उचित होगा।

**यन्त्राः पुराणामथ रक्षणाय संग्रामवह्न्यम्बुसमीरमाख्या।**
**विनिर्मितास्ते जयदा नृपाणां भवन्ति पूज्याः सुरया च मांसैः॥ २१॥**

**अर्थ**—नगरों की रक्षा के लिये एवं युद्धार्थ अग्नि, जल और वायु के नामवाले अथवा इनके सहयोग से श्री शङ्करजी द्वारा निर्मित अनेक यन्त्र हैं जो राजा को विजय दिलानेवाले और सुरा (बारूद?) तथा शत्रुमांस से पूजित होते हैं॥ २१॥

**हस्ता अष्ट च भैरवो नरकरश्चान्द्रो दशाद्यो भवेत्, रुद्रो भीमगजोऽपि भास्करकरैर्युगमन्तु विश्वैः शिखी। प्रोक्तोऽसौ यमदण्ड एव मुनिभिस्तिथ्या महाभैरवो ह्यष्टौ शंकरनिर्मिताश्च समरे देवासुरे भैरवे॥ २२॥**

**अर्थ**—इन यन्त्रों में भैरवयन्त्र आठ हाथ प्रमाण, चान्द्र दश हाथ, रुद्र और भीमगज सात हाथ, शिखी चौदह हाथ, मुनियों द्वारा कहा यमदण्ड, तिथ्या और महाभैरव (परिमाण नहीं दिया) ये आठ यन्त्र देवासुर संग्राम में शङ्करजी ने बनाये॥ २२॥

**यन्त्रे चाष्टकरेऽ ष्टहस्तफणिनी सूर्याङ्गुला विस्तरे, स्तम्भा मर्कटिका च पञ्जरमतः षट्त्रिंश हस्ताक्रमात्। यष्ट्यापृष्ठविभागतोऽपि गदित रदनैस्तुल्योष्टमात्राङ्गुलैः, प्रोक्ता कुण्डलवल्लवी च वहितो मध्यादशीत्यङ्गुलैः॥ २३॥**

**अर्थ**—आठ हाथ परिमाणवाले यन्त्र में फणिनी (कमानी) सूर्याङ्गुल (?) जितनी चौड़ी होती है। इसके स्तम्भ, मर्कटिका और पञ्जर (ढाँचा) क्रम से ३६ हाथ होते हैं। दण्ड का पिछला भाग भी आठ अङ्गुल चौड़ा रखा जाता है। मध्य में कड़े और बल्लवी (?) भी ८० अङ्गुल के लगाये जाते हैं॥ २३॥

**यष्ट्या दृढा मर्कटिकां विदध्याल्लोहस्य कीलेन च चर्मणापि।**
**यन्त्रं प्रकुर्याद् दृढकाष्ठकञ्च तन्मानया ज्योतिकया समेतम्॥ २४॥**

**अर्थ**—यष्टि के द्वारा सुदृढ़ मर्कटिका (कमानी?) का निर्माण लोह की कील एवं चर्म द्वारा करे। सुदृढ़ लकड़ी द्वारा इस यन्त्र का निर्माण ज्योतिका (शिखी) जितना करे॥ २४॥

---

१. कौ० अ०, आ० २।१८

की प्राचीर तीक्ष्ण शतघ्नी और विभिन्न यन्त्रों से सुशोभित थी।[१] युद्ध की तैयारी करते समय पाण्डव सेना ने बड़े-बड़े यन्त्रायुध भी एकत्रित किये।[२] शान्तिपर्व में भीष्मपितामह ने युधिष्ठिर को दुर्ग-रक्षार्थ भारी यन्त्र एवं शतघ्नी स्थापित करने का उपदेश किया है।[३]

नीतिप्रकाशिका में लोहे और सीसे की गोलियाँ तथा पत्थर बरसानेवाले आयुधों को यन्त्र कहा है।[४] दूसरे स्थान पर आग्नेयास्त्रों से युद्ध करने का निषेध किया है।[५] सेना के साथ बड़े-बड़े यन्त्रों को साथ ले-जाने को भी कहा है।[६] शुक्रनीति में यन्त्रों द्वारा अस्त्र फेंकना कला माना है।[७] वहीं पर मन्त्र और यन्त्राग्नि द्वारा छोड़े जानेवाला अस्त्र होता है, यह भी कहा है।[८] इसी भाँति मत्स्यपुराण में शतघ्नी को मुख्य यन्त्र मानकर उसे दुर्ग पर रखने का विधान है।[९] इसी बात की हरिवंश और विष्णुपुराणों ने पुष्टि की है।[१०] अग्निपुराण में क्षेपणी, चाप और अन्य यन्त्रों से फेंके गये अस्त्र को यन्त्रमुक्त की श्रेणी में रखा गया है।[११] मानसोल्लास में राजा शत्रुदेश पर आक्रमण करके उसके दुर्गों पर पाषाण बरसानेवाले तथा अग्नि लगानेवाले यन्त्रों से आक्रमण करे, ऐसा निर्देश दिया है।[१२]

समराङ्गणसूत्रधार में दुर्गरक्षार्थ अग्नि इत्यादि की सहायता से चाप, शतघ्नी और उष्ट्रग्रीवादि यन्त्र बनाने का विधान किया है।[१३] जातक कथाओं में लिखा है कि महाराजा अजातशत्रु ने लिच्छवी राज्य पर चढ़ाई की तब दो यन्त्रों का युद्धार्थ प्रयोग किया। उनसे एक महाशिला कण्टक दूसरा रथमुसल नाम का था। ये स्वयं चालित थे।[१४]

यन्त्रायुधों का प्रामाणिक विवरण कौटिल्य अर्थशास्त्र में आयुधागार अध्यक्ष नामक अध्याय

---

१. तीक्ष्णाङ्कुशशतघ्नीभिर्यन्त्रजालैश्च शोभितम्॥ —महा० आ० २०७।३४

२. (क) महायन्त्राणि नाराचा:। —उद्योग० १५३।१५
(ख) कोशं यन्त्रायुधं चैव। —वही १५१।५८

३. द्वारेषु च गुरूण्येव यन्त्राणि स्थापयेत् सदा। —महा० शान्ति० ६९।४५

४. यन्त्राणि लोहसीसानां गुलिकाक्षेपकानि च। तथा चोपलयन्त्राणि कृत्रिमाण्यपराणि च॥ —नी० प्र० ५।५२

५. नी० प्र० ७।४५

६. वही ६।४७

७. कलाभिलक्षिते देशे यन्त्राद्यस्त्रं निपातनम्। —शुक्र० ४।३१८

८. अस्यते क्षिप्यते यत्तु मन्त्रयन्त्राग्निभिश्च तत्। अस्त्रं तत्........। —शुक्र० ४।१०२४

९. शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतम्। —म० पु० ९५।८

१०. (क) तीक्ष्णयन्त्र शतघ्नीभिर्यन्त्रजालैश्च भूषिताम्। —हरि० पु० ९८।२६
(ख) अश्मयन्त्रायुधोपेता...। —विष्णुपु० ४१।९०
(ग) अश्मयन्त्राणि युज्यन्ताम्। वही ४२।२१

११. अग्निपु० २४९।३-५

१२. आरभेत ततो युद्धं यन्त्रपाषाणपातकै:। अनलं चानुकूलेन वायुना समुदापयेत्॥
पाषाणपातिभिर्यन्त्रैर्दाहनाद् दहनेन वा॥ —मानसो० भाग १ वि० २ अ० २०।१०७०-७३

१३. ये चापाद्या ये शतघ्न्यादयोऽस्मिन्नुष्ट्रग्रीवाद्याश्च दुर्गस्य गुप्त्यै।
ये क्रीडाद्या क्रीडनार्थं च राज्ञां सर्वेऽपि स्युर्योगतस्ते गुणानाम्॥ —समरा० ३१।१०

१४. त्रिपथगा—अगस्त १९६४, पृष्ठ ५९

में मिलता है। इनमें सर्वतोभद्र, जामदग्न्य, बहुमुख, विश्वासघाती, सङ्घाटी, यानक, पर्जन्यक, बाहुयन्त्र, ऊर्ध्वबाहु और अर्धबाहु ये दश स्थिर यन्त्र तथा पञ्चालिक देवदण्ड इत्यादि सतरह चल यन्त्र कहलाते हैं।[१] इसकी श्रीमूलाख्या टीका में भट्टस्वामी का यह श्लोक दिया है, जिसमें यन्त्र की परिभाषा की गई है—

**व्याधितं भ्रमितं चैव भारयुक्तञ्च कारयेत्। पीडनाद् भ्रमणाद् भारात्त्रिधा यन्त्रं प्रवर्तते॥**

अर्थात् पीडन (लीवरादि के प्रयोग से) भ्रमण (घुमाना चक्र-दन्तादि द्वारा) और भार (जैसे पास्कल सिद्धान्त के अनुसार रूई की गाँठे बनाई जाती हैं) इन तीन साधनों से यन्त्र कार्यक्षम होता है।

शिल्पशास्त्र के राजवल्लभ नामक ग्रन्थ में राजधानी एवं अन्य नगरों की रक्षा के लिये आठ यन्त्र लगाने को कहा है। यहाँ इनका उल्लेख करना उचित होगा।

**यन्त्राः पुराणामथ रक्षणाय संग्रामवह्न्यम्बुसमीरमाख्या।**
**विनिर्मितास्ते जयदा नृपाणां भवन्ति पूज्याः सुरया च मांसैः॥ २१॥**

**अर्थ**—नगरों की रक्षा के लिये एवं युद्धार्थ अग्नि, जल और वायु के नामवाले अथवा इनके सहयोग से श्री शङ्करजी द्वारा निर्मित अनेक यन्त्र हैं जो राजा को विजय दिलानेवाले और सुरा (बारूद?) तथा शत्रुमांस से पूजित होते हैं॥ २१॥

**हस्ता अष्ट च भैरवो नरकरश्चान्द्रो दशाद्यो भवेत्, रुद्रो भीमगजोऽपि भास्करकरैर्युगमन्तु विश्वैः शिखी। प्रोक्तोऽसौ यमदण्ड एव मुनिभिस्तिथ्या महाभैरवो ह्यष्टौ शंकरनिर्मिताश्च समरे देवासुरे भैरवे॥ २२॥**

**अर्थ**—इन यन्त्रों में भैरवयन्त्र आठ हाथ प्रमाण, चान्द्र दश हाथ, रुद्र और भीमगज सात हाथ, शिखी चौदह हाथ, मुनियों द्वारा कहा यमदण्ड, तिथ्या और महाभैरव (परिमाण नहीं दिया) ये आठ यन्त्र देवासुर संग्राम में शङ्करजी ने बनाये॥ २२॥

**यन्त्रे चाष्टकरेऽ ष्ट्हस्तफणिनी सूर्याङ्गुला विस्तरे, स्तम्भा मर्कटिका च पञ्जरमतः षट्त्रिंश हस्ताक्रमात्। यष्ट्यापृष्ठविभागतोऽपि गदित रदनैस्तुल्योष्टमात्राङ्गुलैः, प्रोक्ता कुण्डलवल्लवी च वहितो मध्यादशीत्यङ्गुलैः॥ २३॥**

**अर्थ**—आठ हाथ परिमाणवाले यन्त्र में फणिनी (कमानी) सूर्याङ्गुल ( ?) जितनी चौड़ी होती है। इसके स्तम्भ, मर्कटिका और पञ्जर (ढाँचा) क्रम से ३६ हाथ होते हैं। दण्ड का पिछला भाग भी आठ अङ्गुल चौड़ा रखा जाता है। मध्य में कड़े और बल्लवी ( ?) भी ८० अङ्गुल के लगाये जाते हैं॥ २३॥

**यष्ट्या दृढा मर्कटिकां विदध्याल्लोहस्य कीलेन च चर्मणापि।**
**यन्त्रं प्रकुर्याद् दृढकाष्ठकञ्च तन्मानया ज्योतिकया समेतम्॥ २४॥**

**अर्थ**—यष्टि के द्वारा सुदृढ़ मर्कटिका (कमानी?) का निर्माण लोह की कील एवं चर्म द्वारा करे। सुदृढ़ लकड़ी द्वारा इस यन्त्र का निर्माण ज्योतिका (शिखी) जितना करे॥ २४॥

---

१. कौ० अ०, आ० २।१८

की प्राचीर तीक्ष्ण शतघ्नी और विभिन्न यन्त्रों से सुशोभित थी।[१] युद्ध की तैयारी करते समय पाण्डव सेना ने बड़े-बड़े यन्त्रायुध भी एकत्रित किये।[२] शान्तिपर्व में भीष्मपितामह ने युधिष्ठिर को दुर्ग-रक्षार्थ भारी यन्त्र एवं शतघ्नी स्थापित करने का उपदेश किया है।[३]

नीतिप्रकाशिका में लोहे और सीसे की गोलियाँ तथा पत्थर बरसानेवाले आयुधों को यन्त्र कहा है।[४] दूसरे स्थान पर आग्नेयास्त्रों से युद्ध करने का निषेध किया है।[५] सेना के साथ बड़े-बड़े यन्त्रों को साथ ले-जाने को भी कहा है।[६] शुक्रनीति में यन्त्रों द्वारा अस्त्र फेंकना कला माना है।[७] वहीं पर मन्त्र और यन्त्राग्नि द्वारा छोड़े जानेवाला अस्त्र होता है, यह भी कहा है।[८] इसी भाँति मत्स्यपुराण में शतघ्नी को मुख्य यन्त्र मानकर उसे दुर्ग पर रखने का विधान है।[९] इसी बात की हरिवंश और विष्णुपुराणों ने पुष्टि की है।[१०] अग्निपुराण में क्षेपणी, चाप और अन्य यन्त्रों से फेंके गये अस्त्र को यन्त्रमुक्त की श्रेणी में रखा गया है।[११] मानसोल्लास में राजा शत्रुदेश पर आक्रमण करके उसके दुर्गों पर पाषाण बरसानेवाले तथा अग्नि लगानेवाले यन्त्रों से आक्रमण करे, ऐसा निर्देश दिया है।[१२]

समराङ्गणसूत्रधार में दुर्गरक्षार्थ अग्नि इत्यादि की सहायता से चाप, शतघ्नी और उष्ट्रग्रीवादि यन्त्र बनाने का विधान किया है।[१३] जातक कथाओं में लिखा है कि महाराजा अजातशत्रु ने लिच्छवी राज्य पर चढ़ाई की तब दो यन्त्रों का युद्धार्थ प्रयोग किया। उनसे एक महाशिला कण्टक दूसरा रथमुसल नाम का था। ये स्वयं चालित थे।[१४]

यन्त्रायुधों का प्रामाणिक विवरण कौटिल्य अर्थशास्त्र में आयुधागार अध्यक्ष नामक अध्याय

---

१. तीक्ष्णाङ्कुशशतघ्नीभिर्यन्त्रजालैश्च शोभितम्॥ —महा० आ० २०७।३४
२. (क) महायन्त्राणि नाराचाः। —उद्योग० १५३।१५
(ख) कोशं यन्त्रायुधं चैव। —वही १५१।५८
३. द्वारेषु च गुरूण्येव यन्त्राणि स्थापयेत् सदा। —महा० शान्ति० ६९।४५
४. यन्त्राणि लोहसीसानां गुलिकाक्षेपकानि च। तथा चोपलयन्त्राणि कृत्रिमाण्यपराणि च॥ —नी० प्र० ५।५२
५. नी० प्र० ७।४५
६. वही ६।४७
७. कलाभिलक्षिते देशे यन्त्राद्यस्त्रं निपातनम्। —शुक्र० ४।३१८
८. अस्यते क्षिप्यते यत्तु मन्त्रयन्त्राग्निभिश्च तत्। अस्त्रं तत्.........। —शुक्र० ४।१०२४
९. शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतम्। —म० पु० ९५।८
१०. (क) तीक्ष्णयन्त्र शतघ्नीभिर्यन्त्रजालैश्च भूषिताम्। —हरि० पु० ९८।२६
(ख) अश्मयन्त्रायुधोपेता...। —विष्णुपु० ४१।९०
(ग) अश्मयन्त्राणि युज्यन्ताम्। वही ४२।२१
११. अग्निपु० २४९।३-५
१२. आरभेत ततो युद्धं यन्त्रपाषाणपातकैः। अनलं चानुकूलेन वायुना समुदापयेत्॥
पाषाणपातिभिर्यन्त्रैर्दाहनाद् दहनेन वा॥ —मानसो० भाग १ वि० २ अ० २०।१०७०-७३
१३. ये चापाद्या ये शतघ्न्यादयोऽस्मिन्नुष्ट्रग्रीवाद्याश्च दुर्गस्य गुप्त्यै।
ये क्रीडाद्या क्रीडनार्थं च राज्ञां सर्वेऽपि स्युर्योगतस्ते गुणानाम्॥ —समरा० ३१।१०
१४. त्रिपथगा—अगस्त १९६४, पृष्ठ ५९

में मिलता है। इनमें सर्वतोभद्र, जामदग्न्य, बहुमुख, विश्वासघाती, सङ्घाटी, यानक, पर्जन्यक, बाहुयन्त्र, ऊर्ध्वबाहु और अर्धबाहु ये दश स्थिर यन्त्र तथा पञ्चालिक देवदण्ड इत्यादि सतरह चल यन्त्र कहलाते हैं।[१] इसकी श्रीमूलाख्या टीका में भट्टस्वामी का यह श्लोक दिया है, जिसमें यन्त्र की परिभाषा की गई है—

**व्याधितं भ्रमितं चैव भारयुक्तञ्च कारयेत्। पीडनाद् भ्रमणाद् भारात्त्रिधा यन्त्रं प्रवर्तते॥**

अर्थात् पीडन (लीवरादि के प्रयोग से) भ्रमण (घुमाना चक्र-दन्तादि द्वारा) और भार (जैसे पास्कल सिद्धान्त के अनुसार रूई की गाँठे बनाई जाती हैं) इन तीन साधनों से यन्त्र कार्यक्षम होता है।

शिल्पशास्त्र के राजवल्लभ नामक ग्रन्थ में राजधानी एवं अन्य नगरों की रक्षा के लिये आठ यन्त्र लगाने को कहा है। यहाँ इनका उल्लेख करना उचित होगा।

**यन्त्राः पुराणामथ रक्षणाय संग्रामवह्न्यम्बुसमीरमाख्या।**
**विनिर्मितास्ते जयदा नृपाणां भवन्ति पूज्याः सुरया च मांसैः॥ २१॥**

**अर्थ**—नगरों की रक्षा के लिये एवं युद्धार्थ अग्नि, जल और वायु के नामवाले अथवा इनके सहयोग से श्री शङ्करजी द्वारा निर्मित अनेक यन्त्र हैं जो राजा को विजय दिलानेवाले और सुरा (बारूद ?) तथा शत्रुमांस से पूजित होते हैं॥ २१॥

**हस्ता अष्ट च भैरवो नरकरश्चान्द्रो दशाद्यो भवेत्, रुद्रो भीमगजोऽपि भास्करकरैर्युगमन्तु विश्वैः शिखी। प्रोक्तोऽसौ यमदण्ड एव मुनिभिस्तिथ्या महाभैरवो ह्यष्टौ शंकरनिर्मिताश्च समरे देवासुरे भैरवे॥ २२॥**

**अर्थ**—इन यन्त्रों में भैरवयन्त्र आठ हाथ प्रमाण, चान्द्र दश हाथ, रुद्र और भीमगज सात हाथ, शिखी चौदह हाथ, मुनियों द्वारा कहा यमदण्ड, तिथ्या और महाभैरव (परिमाण नहीं दिया) ये आठ यन्त्र देवासुर संग्राम में शङ्करजी ने बनाये॥ २२॥

**यन्त्रे चाष्टकरेऽ ष्टहस्तफणिनी सूर्याङ्गुला विस्तरे, स्तम्भा मर्कटिका च पञ्जरमतः षट्त्रिंश हस्ताक्रमात्। यष्ट्यापृष्ठविभागतोऽपि गदित रदनैस्तुल्योष्टमात्राङ्गुलैः, प्रोक्ता कुण्डलवल्लवी च वहितो मध्यादशीत्यङ्गुलैः॥ २३॥**

**अर्थ**—आठ हाथ परिमाणवाले यन्त्र में फणिनी (कमानी) सूर्याङ्गुल ( ?) जितनी चौड़ी होती है। इसके स्तम्भ, मर्कटिका और पञ्जर (ढाँचा) क्रम से ३६ हाथ होते हैं। दण्ड का पिछला भाग भी आठ अङ्गुल चौड़ा रखा जाता है। मध्य में कड़े और बल्लवी ( ?) भी ८० अङ्गुल के लगाये जाते हैं॥ २३॥

**यष्ट्या दृढा मर्कटिकां विदध्याल्लोहस्य कीलेन च चर्मणापि।**
**यन्त्रं प्रकुर्याद् दृढकाष्ठकञ्च तन्मानया ज्योतिकया समेतम्॥ २४॥**

**अर्थ**—यष्टि के द्वारा सुदृढ़ मर्कटिका (कमानी ?) का निर्माण लोह की कील एवं चर्म द्वारा करे। सुदृढ़ लकड़ी द्वारा इस यन्त्र का निर्माण ज्योतिका (शिखी) जितना करे॥ २४॥

---

१. कौ० अ०, आ० २।१८

**कराङ्गुलैः पञ्जरकस्य दैर्घ्यं केषां मते हस्तमिते च यन्त्रे।**
**याटी कुली वह्निजलानिलाख्यास्ते लक्षणज्ञैः परिकल्पनीयाः॥ २५॥**

**अर्थ**—किन्हीं के मत में जितने हाथ लम्बा यन्त्र का ढाँचा है, उतनी ही अङ्गुल मोटे काष्ठों से पञ्जर का निर्माण करना चाहिये। याटी, कुली और अग्न्यादि नामक इन यन्त्रों के जाननेवालों से निर्माण करवाये॥ २५॥

*इति सूत्रधारमण्डनविरचिते वास्तुशास्त्रे—राजवल्लभे प्राकारयन्त्रवापीकूपतडागलक्षणम् चतुर्थोध्यायः। शब्दकल्पद्रुम के शिल्पशास्त्रप्रकरण से उद्धृत।*

## आकाशभैरव में यन्त्र—

**नाभिमात्रे ततस्सालवलये पंक्तिशः क्रमात्॥ १७॥**
**शिलासु भैरवयन्त्रं नागयन्त्रञ्च मौसलम्। विषकण्टकयन्त्रञ्च शुक्लं शूलमुखं तथा॥ १८॥**
**धनुर्यन्त्रादियन्त्राणि व्यस्तमिति यन्त्रकम्।** *(आ० भै०, साम्राज्यपीठिका-अष्टविधसालदुर्गकथनम्)*

**अर्थ**—दुर्ग की दीवारों पर नाभिमात्र गहरा छिद्र करके पंक्ति में क्रमशः इसकी शिलाओं पर भैरवयन्त्र, नागयन्त्र, त्रिशूलयन्त्र, रज्जुयन्त्र (पाश आदि) मौसलयन्त्र, विषकण्टकयन्त्र, शूलमुखयन्त्र और धनुर्यन्त्रादि को लगवाये। यह यन्त्रों का कथन पूरा हुआ॥ १७-१८॥

# अष्टम अध्याय

## मान्त्रिक अस्त्र

विद्युत् आदि पदार्थों की शक्ति से किया जानेवाला युद्ध दैविक युद्ध कहा जाता है और विद्युत्, सूर्यकिरण, चुम्बक शक्ति द्वारा सञ्चालित आयुधों को दैविक, दिव्य या मान्त्रिक अस्त्र कहते हैं। बृहद् विमानशास्त्र में मान्त्रिक विमानों के नाम बताते हुए यह परिभाषा की है कि जो विमान मन्त्रप्रभाव से स्वत:चालित हो, उसे मान्त्रिक कहते हैं।[१] इसी भाँति मान्त्रिक अस्त्र उन्हें कहा जा सकता है, जो स्वत: चालित (जैसे आजकल के चन्द्रादि यान और गाइडिड मिसाइल) हों, जिनका प्रतीकार सम्भव न हो सके अथवा जो लक्ष्य को गिराकर पुन: प्रयोक्ता के पास आ जाये, जैसे श्री कृष्णजी का सुदर्शनचक्र। इनके लिये ईंधन, सूर्यकिरण या विद्युत् इत्यादि से प्राप्त किया जाता था।

अथवा दण्ड (लीवर), चक्र, दन्त (गिरारी), सरणि (पटा इत्यादि) भ्रमण इत्यादि के द्वारा शक्ति को बढ़ाकर उससे अस्त्र चलाना मन्त्र कहा जाता है।[२]

मन्त्र शब्द संस्कृत की 'मत्रि गुप्तपरिभाषणे' धातु से बना है। रहस्यमय बात को मन्त्र कहते हैं। अथवा मन्त्र नाम विचार का है। जैसे राजमन्त्री, गृहमन्त्री आदि। इसी भाँति विचार तथा सूक्ष्मविज्ञान के आधार पर निर्मित अस्त्रों को मान्त्रिक कहते हैं। जैसे आजकल अनेक देशों में विविध आयुधों की निर्माणविधि को गुप्त रखा जाता है। सङ्केतानुसार लक्ष्य पर जाकर भेदन करनेवाले प्रक्षेपास्त्र मान्त्रिक श्रेणी में ही आते हैं। भूमि पर रहकर ही जिनके द्वारा उपग्रहों को सन्देश भेजकर अभीष्ट कार्य करवाये जाते हैं, एक आयुध के संहार के लिये दूसरा आयुध छोड़ा जाने पर वह उसका पीछा करके उसे भेदता है, ये सब मान्त्रिक अस्त्र ही कहे जा सकते हैं। इन्हीं का दूसरा नाम दिव्यास्त्र है, परन्तु यहाँ अभिप्राय स्वत:चालित दिव्यास्त्रों से ही है।

यहाँ इस भ्रान्ति का निवारण स्वत: ही हो जाता है कि अमुक मन्त्र का उच्चारण करने या जाप करने से अमुक अस्त्र की सिद्धि हो जाती है। वाशिष्ठ धनुर्वेदसंहिता में गायत्रीमन्त्र को उलटे-सीधे जपने से विविध ब्रह्मास्त्रादि की सिद्धि बतलाई है। रामायण, महाभारत में भी ऐसे सङ्केत किये हैं। वहाँ अभिमन्त्र शब्द का प्रयोग प्राय: देखा जाता है। इसका वास्तविक अर्थ क्या है, इसपर आगे विचार किया जायेगा। मन्त्र शब्दमय है और शब्द से द्रव्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि मन्त्र पढ़ने से अग्नि उत्पन्न हो जाती है तो सर्वप्रथम उच्चारण करनेवाले का मुख ही जल जाना चाहिये, इसलिये मन्त्र का पहले किया अर्थ ही उपयुक्त है।

दिव्यास्त्रों का उल्लेख वेदों में अनेक बार किया है। विद्युत्, वज्र, अशनि, आग्नेयास्त्र,

---

१. यस्तु मन्त्रप्रभावेन व्योम्नि संचरति स्वयम्॥५७॥ —बृहद् वि० शा० पृष्ठ २३५

२. दण्डैश्चचक्रैश्च दन्तैश्च सरणी भ्रमणादिभि:। शक्तेश्च वर्धनं कृत्वा चालनं मन्त्रमुच्यते। —यन्त्रार्णव

मारुतास्त्रादि का भी वर्णन आता है।[१] रामायण[२], महाभारत में युद्ध में दिव्यास्त्रों का प्रयोग सामान्य बात थी। वहाँ एक अस्त्र का उपसंहारक दूसरा अस्त्र भी कहा है जैसे आग्नेयास्त्र का पर्जन्यास्त्र, पर्जन्यास्त्र का वायव्यास्त्र, उसका पार्वतास्त्र, नागपाश का गारुडास्त्र। इसी भाँति ब्रह्मास्त्र का निरोध ब्रह्मास्त्र से ही किया जाता था। अस्त्रों को वापस लौटाने की विधि का भी ज्ञान था। महाभारत में इनके चार भेद किये हैं।[३]

**दिव्य अस्त्रों की चार जातियाँ—**

१—जिनका प्रतिकार किया जा सके, जैसे आग्नेयास्त्र का वारुणास्त्र से प्रतिकार किया जाता है। नीतिप्रकाशिका में दण्ड-चक्रादि ४४ अस्त्रों के सत्यवान् इत्यादि उपसंहारक भी गिनाये हैं।[४]

२—जिन्हें छोड़े जाने पर झुककर या भूमि पर लेटकर अथवा अन्य किसी साधन से अपना बचाव किया जा सके, जैसे अश्वत्थामा द्वारा नारायणास्त्र छोड़े जाने पर पाण्डव योद्धाओं ने अस्त्र-शस्त्रों को त्याग, रथादि वाहनों से नीचे उतरकर निहत्थे खड़े होकर अपनी रक्षा की थी।

३—जिसे प्रयोग करनेवाला व्यक्तिविशेष पर ही चला सके, पुनः उसकी निवृत्ति हो जाये जैसे अश्वत्थामा द्वारा उत्तरा के गर्भ पर चलाया गया ब्रह्मशिर अस्त्र।

४—जिनका अन्य किसी भी प्रकार से निवारण नहीं हो सके। इन्हें अमोघ अस्त्र कहते हैं।[५] मन्त्रमुक्त अस्त्र इसी श्रेणी में आते हैं। नीतिप्रकाशिका में विष्णुचक्र (सुदर्शनचक्र), इन्द्र का वज्र, ब्रह्मास्त्र, वरुण का कालपाश, नारायणास्त्र और पाशुपत—ये छह मन्त्रमुक्तों में कहे हैं। इनका उपसंहार अन्य अस्त्रों से नहीं हो सकता। उद्योगपर्व में अस्त्रों की अन्य आठ जातियाँ भी कही गई हैं।[६] विषय को स्पष्ट करने के लिये उन श्लोकों पर की गई भारतभावदीपटीका का अर्थ देना उपयुक्त रहेगा।

काकुदीक, शुक, नाक, अक्षिसन्तर्जन, सन्तान, नर्तक, घोर और आस्यमोदक—ये आठ अस्त्रों की जातियाँ हैं, जिनसे आहत होने पर सभी मानव मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

---

१. (क) मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः संस्रा दिव्येनाग्निना। अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम्॥
—अथर्व० ११।२।२६

(ख) दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत। —वही १।१९।२

(ग) यद् वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधय। —ऋ० १।८०।१३

(घ) न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेकसृष्टा दिव्या यथाशनिः। —ऋ० १।१४३।५

**मारुतास्त्र**—इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम्। अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय॥

**धूमास्त्र**—तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात्। —अथर्व० काण्ड ३, अ० २

२. रामा० बाल० ३०।२२-२३, युद्ध० ५९।८२, ६७।५५, ९०।५५, १०८।५०-५१, २२।५

३. यस्मिन् महास्त्राणि समर्पितानि चित्राणि शुभ्राणि चतुर्विधानि।
दिव्यानि राजन् विहिता वि चैव द्रोणेन वीरेन द्विजसत्तमेन॥
इसी श्लोक की भारतभावदीपटीका (महा० कर्ण० ७।६)

४. नी० प्र०, पृष्ठ २२-२३

५. मन्त्रमुक्तश्चापि वक्ष्ये सावधानमनाः शृणु॥
विष्णुचक्रं वज्रमस्त्रं ब्रह्मास्त्रं कालपाशकम्। नारायणं पाशुपतं नाशाम्यमितरास्त्रकैः॥ —नी०प्र० २।३९-४०

६. काकुदीकं शुकं नाकमक्षिसंतर्जनं तथा। सन्तानं नर्तकं घोरमास्यमोदकमष्टमम्॥ —महा० उद्यो० ९६।४२-४५

१. काकुदीक—जिस अस्त्र के प्रभाव से योद्धा रथ, हाथी इत्यादि के ककुद (पीठ) पर बैठे हुए ही सोने लगते हैं, उसे काकुदीक (प्रस्वापनास्त्र) कहते हैं।

२. शुक—जैसे शुक (तोता) नालिका को पकड़कर स्वयं भय से चिल्लाता है उसे शुकनलिका न्याय कहते हैं। वैसे ही जिससे आहत होकर योद्धा बिना भय के ही हाथी-घोड़ों के पैरों से लिपटकर चिल्लाते हैं, उसे शुक या मोहनास्त्र कहते हैं।

३. जिस अस्त्र से आहत होकर योद्धा स्वर्गनगर (काल्पनिक चित्र देखना) को देखता है और कुछ-का-कुछ बकता है, वह नाक-(उन्मादन)-अस्त्र होता है।

४. जिसके फेंकनेमात्र से सैनिक आहत होकर भय से मल-मूत्र का विसर्जन करने लगते हैं, वह अक्षिसंतर्जन (त्रासनास्त्र) कहलाता है।

५. जिस अस्त्र के चलाने पर निरन्तर शस्त्रास्त्रों की वृष्टि होने लगती है, वह ऐन्द्रास्त्र या सन्तानास्त्र होता है।

६. जिससे अभिभूत होकर योद्धा नाचने लग जाये, वह नर्तन या पैशाच कहा गया है।

७. अत्यधिक संहार करनेवाला राक्षसास्त्र होता है।

८. जिसके प्रभाव से योद्धा मुख में पत्थर रखकर मरने के लिये निकल पड़ते हैं, वह आस्यमोदक या याम्यास्त्र होता है। इनका स्वरूप आजकल की विषैली गैसों या जीवाणु तथा रोग फैलानेवाले कीटाणुयुद्ध के बमों-जैसा ही प्रतीत होता है।

उत्तररामचरित में जृम्भकास्त्र का उल्लेख किया है, जिसके प्रभाव से योद्धा जंभाई लेने लगते थे।[१] इसी भाँति अस्त्रों के विविध कार्य नीतिप्रकाशिका में बताये हैं।

## अस्त्रों का अभिमन्त्रण

विभिन्न अस्त्रों को अभीष्ट लक्ष्य पर फेंकने के लिये उन्हें शरों (बाणों) के साथ संयुक्त करना ही अभिमन्त्रण कहलाता है। रामायण, महाभारत में इसका सर्वत्र उल्लेख मिलता है।[२] जैसे आजकल के अणुबम, हाईड्रोजन इत्यादि बम इच्छित स्थान पर गिराने के लिये प्रक्षेपास्त्रों से युक्त करके ही गिराये जाते हैं। कौन-सा प्रक्षेपास्त्र किस आयुध को अमुक स्थान पर ले-जाने में समर्थ है, इसका सारा विचार करना पड़ता है। इसी का नाम अभिमन्त्रण है। यदि लक्ष्य निकट ही है और अस्त्र की प्रहार क्षमता सीमित है तो उसे धनुष द्वारा ही फेंका जाता था। दूर लक्ष्य पर अस्त्र गिराने के लिये भी किसी दूरगामी साधन का प्रयोग किया जाता था।

## दिव्यास्त्रों के आविष्कारक

वाल्मीकि रामायण के अनुसार ताटका वध के पश्चात् महर्षि विश्वामित्र ने राम को सरहस्य और उपसंहारसहित जिन अस्त्रों को दिया उनका निर्माण कृशाश्व मुनि की दो पत्नियाँ जोकि दक्ष की कन्यायें थी और जिनका नाम जया तथा सुप्रभा था, उन्होंने किया था।[३] इन्हीं कृशाश्व

---

१. उत्तरराम० अङ्क १

२. ब्राह्मेणास्त्रेण संयोज्य ब्रह्मदण्डनिभं शरम्। संयोज्य धनुषि श्रेष्ठे विचकर्ष महाबल॥ —रामा० यु० २२।५
अन्य सन्दर्भ—युद्ध० ५९।८५-८९, ७१।८४-८५, ८७-१०५

३. (क) नी० प्र० १।४४-४५-४६
(ख) रामा०

मुनि ने जृम्भकास्त्र का निर्माण करके विश्वामित्र को दिया।[१] इसी भाँति ब्रह्मा, महेश्वर, इन्द्र, भारद्वाज, जमदग्नि, द्रोण इत्यादि धनुर्वेद के प्रवक्ता आचार्यों ने भी दिव्यास्त्रों का आविष्कार किया। ब्रह्मा ने ब्रह्मास्त्र का निर्माण किया, जिसके पंखों में वायु, मुख पर अग्नि और सूर्यादि का संयोग था।[२] गाण्डीव धनुष भी ब्रह्मा द्वारा ही निर्मित था।[३] इसके अतिरिक्त रावण की तपश्चर्या से प्रसन्न होकर उसे भी ब्रह्मा ने शस्त्रास्त्र दिये।[४] महादेवजी द्वारा भैरवादि आठ यन्त्रों का निर्माण यन्त्रप्रकरण में आ ही चुका है। आठ चक्रोंवाली और भयङ्कर घण्टानाद करनेवाली अशनि भी रुद्र ने ही बनाई थी[५] जिसे घटोत्कच ने अश्वत्थामा पर फेंका, परन्तु उसने पकड़कर घटोत्कच पर ही दोबारा फेंका, जोकि एक साथ चारों घोड़े, ध्वज, रथ तथा सारथि को भस्म करके भूमि में प्रवेश कर गई। इसे विद्युत् अस्त्र ही माना जा सकता है।[६] रुद्र का पाशुपतास्त्र तो सुप्रसिद्ध है ही। देवों में दिव्यास्त्रों के तीसरे निर्माता देवराज इन्द्र हैं, जिन्होंने इन्द्रास्त्र, अशनि, शक्ति और वज्र का आविष्कार किया था।[७]

दिव्यास्त्रों के चौथे आविष्कारक महर्षि विश्वकर्मा हुए जिन्होंने सुदर्शनचक्र, शार्ङ्गधनुष, वरुण का पाश, कुबेर की गदा इत्यादि आयुधों का सौर-ऊर्जा से निर्माण किया।[८]

असुरों में मय, शम्बर, मारीच, विद्युद्जिह्व और इन्द्रजित् ने कङ्कालास्त्र, मौसलास्त्र, कापालास्त्र, कङ्कण और पैशाचास्त्र का निर्माण किया।[९] मय ने रौद्र अस्त्र और शक्ति का भी आविष्कार किया।[१०] इनके अतिरिक्त आचार्य द्रोण और परशुराम ने अस्त्रों के विविधरूप आविष्कृत किये। परशुरामजी के नाम से बारूद का एक नाम जामदग्न्य है।[११] इसी भाँति कौटिल्य अर्थशास्त्र में जामदग्न्य यन्त्र का नाम भी आया है।

## दिव्यास्त्रों की वर्त्तमान आयुधों से तुलना

प्राचीन काल के दिव्यास्त्र कैसे थे तथा उनकी प्रहारक क्षमता कितनी थी और आजकल के आयुधों से उनकी तुलना की जा सकती है या नहीं इस विषय पर विचार करना आवश्यक है।

---

१. उत्तरराम० अङ्क १
२. ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वमिन्द्रार्थममित्तौजसा। यस्य वाजेषु पवनः फले पावकभास्करौ। —रामा०यु० १०८।५-६
३. तच्च दिव्यं धनुः श्रेष्ठं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। —महा० आदि २२५।१९
४. रामा० युद्ध० ५९।१०४-१०७-४
५. अष्टचक्रां महाघोरामशनिं रुद्रनिर्मिताम्। —महा० द्रोण० १७६।९५
६. यदवप्लुत्य जग्राह घोरां शङ्करनिर्मिताम्। —वही द्रोण० १५६।५७-६०
७. स तां मातलिनानीतां शक्तिं वासवनिर्मिताम्॥ —रामा० युद्ध० १०४।२६-२७
८. (क) देखिये पूर्वार्ध अ० ६ चक्रप्रकरण
   (ख) वा० ध० श्लोक ४४
९. नीतिप्रकाशिका पृष्ठ २४
१०. रामा० यु० १००।२, १०१।३०
११. (क) जामदग्न्य धनुर्वेदसंकलनम्।
   (ख) कौ० अ० आयुधा० अ० १८ अधि० २

दिव्यास्त्रों का अस्तित्व तो वेदमन्त्रों से ही सिद्ध होता है। रामायण, महाभारत, पुराण, नीतिग्रन्थ एवं धनुर्वेद ने इनकी पुष्टि की है। इस विषय में पाश्चात्य दृष्टिकोण का अनुकरण करनेवाले विद्वान् इन्हें काल्पनिक मानते हैं और अन्य ज्ञान-विज्ञान से शून्य, मन्त्र पठनमात्र से दिव्यास्त्रों की सिद्धि होने में विश्वास रखते हैं। इन दोनों प्रकार के लोगों का कथन असंगत है। वायुयान का आविष्कार होने से पहले रामायण का पुष्पक विमान और महाभारतकालीन शाल्वराज का सौभनगर नामक विमान काल्पनिक माने जाते थे, परन्तु आज सहसा ही इनका निषेध नहीं किया जा सकता। यद्यपि महर्षि दयानन्दजी ने उस समय भी वेदमन्त्रों की साक्षी देकर विमानविद्या की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया था, परन्तु महर्षि भारद्वाजकृत यन्त्रसर्वस्व के विमान अध्याय का मुद्रण होने से पूर्वकाल में विमान का होना कोई अन्यथा नहीं कह सकता।

इसी शास्त्र में लिखा है कि जब अपने विमान को नष्ट करने के लिये शत्रु ने दम्भोलि आदि आठ यन्त्र (अस्त्र या प्रक्षेपास्त्र) स्थापित किये हों तब विश्वक्रियादर्शक यन्त्र से इनको जान वक्र कील घुमाकर यान की गति को बदलने से इन घातक अस्त्रों से विमान की रक्षा करनी चाहिये।[१]

महागोलाग्नि गर्भादि ५ प्रक्षेपास्त्र जोकि भूमि में छिपाये गये हों उन्हें गुहागर्भदर्शक यन्त्र (रडार के समान) से जानकर नष्ट करने को कहा है।[२] शत्रु-विमान द्वारा अपने विमान को घेर लेने पर तमोयन्त्र द्वारा अन्धकार का सृजन करके स्वयं को या शत्रु-विमान को अदृश्य कर देना, वैरूप्यदर्पण-यन्त्र द्वारा विषाक्त धूम एवं प्रकाश ८७ लिङ्क (डिग्री) तापक्रम का उत्पन्न करके उसे शत्रु-विमान पर फेंकना जिससे उसमें बैठे हुए शत्रु दग्ध होकर कुरूप हो जायें या शरीर जलकर फफोले पड़ जायें।[३] क्या यह कथन आधुनिक लेजर किरण जिसका रूस ने सफल प्रयोग किया है और अमेरिका अन्तरिक्षयुद्ध के लिये परीक्षण कर रहा हैं, की ओर स्पष्ट सङ्केत नहीं करता। इसी भाँति ४०८७ तरङ्गें फेंककर शत्रु-विमान की गति को रोकना, डगमगाना या उसे उलट देना इसका भी उल्लेख किया है।[४] इस विधि का ज्ञान अभी पाश्चात्य वैज्ञानिकों को भी नहीं है। अभी त्रिपुर विमान का निर्माण तो हुआ ही नहीं है जो पृथिवी, जल एवं आकाश—सर्वत्र अव्याहत गति से चलता था। अपने चक्रविशिष्टों के कारण पहाड़ों के ऊँचे-नीचे स्थान एवं चोटियों पर भी चढ़ जाता था तथा जिसे चलाने के लिये सौर ऊर्जा प्रयुक्त होती थी।[५] महाभारत में आया है कि वनवास के समय जब अर्जुन इन्द्र के यहाँ से दिव्यास्त्रों का ५ वर्ष तक प्रशिक्षण लेकर आया तो युधिष्ठिर के आग्रह पर उसने दिव्यास्त्रों का प्रदर्शन प्रारम्भ किया। उस समय प्रलय की अग्नि का दृश्य उपस्थित हो गया। भूमि डोलने लगी, नदी और समुद्र में ज्वार आ गया, पर्वत फट गये, सूर्य निःस्तेज हो गया आदि।[६] क्या ये लक्षण वर्त्तमान काल

---

१. बृहद् विमानशास्त्र, पृष्ठ १८९
२. वही, पृष्ठ १४६
३. वही, वैरुप्यदर्पणयन्त्र पृ० १२०, कर्षणरहस्य पृ० १६
४. वही, चापलरहस्य पृष्ठ १६
५. वही, बृ० वि० शा० का अन्तिम प्रकरण
६. महा० वन० १७५।७-८-९

के अणुबम और उद्जनबम का परीक्षण करने से नहीं मिलते? इस प्रयोग के समय नारदजी प्रगट हुए और कहने लगे कि हे अर्जुन! तुम इन दिव्यास्त्रों का प्रयोग मनुष्यों पर नहीं कर देना। ये अस्त्र किसी प्रबल शत्रु के बिना अन्यत्र नहीं चलाये जाते हैं। हे पाण्डव! यदि इनके प्रयोग को रोककर नहीं रखा तो ये त्रिलोकी के विनाश का कारण बन जायेंगे।[१]

पाण्डवों के पुत्रों तथा धृष्टद्युम्न इत्यादि का रात्रि में वध करके अश्वत्थामा भाग निकला। पाण्डवों द्वारा उसका पीछा किया गया। उनके समीप आने पर उसने ब्रह्मशिर-(ब्रह्मास्त्र)-अस्त्र का सन्धान करके पाण्डवों पर छोड़ दिया। ब्रह्मास्त्र का प्रतीकार केवल ब्रह्मास्त्र से ही हो सकता था सो अर्जुन ने भी प्रत्युत्तर में ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया। यह दृश्य देखकर महर्षि वेदव्यासजी एवं नारदजी पुनः उपस्थित होकर कहने लगे कि हे अर्जुन और अश्वत्थामन्! तुम दोनों अपने अस्त्रों को वापस लौटा लो, क्योंकि जहाँ ब्रह्मास्त्र का निवारण ब्रह्मास्त्र से ही किया जाता है वहाँ १२ वर्ष तक वृष्टि नहीं होती।[३] यह वर्त्तमान युग के युद्ध का कितना वास्तविक और मार्मिक दृश्य है, जबकि महाशक्तियों को विश्व के अनेक शान्तिप्रिय देश और विचारशील व्यक्ति अणुयुद्ध से समस्त विश्व का सर्वनाश, रेडियोधर्मी धूलि की विषाक्तता और लाखों टन धूल आकाश में उठने के कारण सूर्यप्रकाश के भूमि पर न आने से भयङ्कर सर्दी तथा मौनसून पवनों के न चलने से वृष्टि न होकर प्रभावित देशों की करोड़ों जनता का मृत्युमुख में जाना ः खतरों की चेतावनी दे रहे हैं।

अभी नारायणास्त्र जैसे भयङ्कर अस्त्रों का तो आविष्कार ही नहीं हुआ है, जिसे द्रोणाचार्य के वध के पश्चात् अश्वत्थामा ने पाण्डव सेना पर छोड़ा था। इसका प्रतीकार श्री कृष्णजी जानते थे। उन्होंने पाण्डव सेना के सभी योद्धाओं को सभी अस्त्र-शस्त्रों का परित्याग करके निहत्थे होकर रथ, हाथी एवं घोड़ों से नीचे उतरकर भूमि पर खड़े रहने का आदेश दिया। इसकी भीम ने अवहेलना की तब यह अस्त्र सब ओर से उसी को जलाने लगा। इसपर अर्जुन ने वारुणास्त्र से भीम को ढक लिया और श्री कृष्णजी के साथ माया (अणुनिरोधक छत्री) का आश्रय लेकर बलपूर्वक भीम के सभी आयुध छीनकर उसे रथ से नीचे ले-आये। तब कहीं जाकर यह अस्त्र शान्त हुआ।[४] महाभारत के रूसीभाषा में अनुवादक और रूसी विद्वान् तथा भारत के अनेक विद्वान् भी इसकी पुष्टि करते हैं कि रामायण और महाभारत कालीन ब्रह्मास्त्र अणुबम जैसा ही आयुध था।[५]

---

१. महा० वन० १७५। १९-२३
२. अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम दहेत पृथिवीमपि। —सौप्तिक० १२। ४
३. अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रेण वध्यते। समाद्द्वादश पर्जन्यस्तद् राष्ट्रं नाभिवर्षति॥ —वही १५। २३
४. महा० द्रोण० अ० २०० नारायणास्त्रमोक्षपर्व
५. (क) 'महाभारत में अणु आयुधों का प्रयोग हुआ था', प्रो० सुरेशकुमार त्रिखा का लेख, दैनिक हिन्दुस्तान १० दिसम्बर, १९७६ ई०
(ख) 'महाभारत में आणविक अस्त्रों का प्रयोग' ले० डॉ० परमानन्द, नवभारत टाइम्स २७। २। १९७७

## धनुर्वेद संकलन में सहायक ग्रन्थों की सूची

१. अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या—ले० स्वामी ब्रह्ममुनि, प्र० जनज्ञान मासिक, अगस्त १९७५, दयानन्द, संस्थान नई दिल्ली।
२. अथर्ववेदः—भाष्यकारः पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, मु० दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली।
३. अग्निपुराणम्—चौ० सं० सीरीज, वाराणसी
४. अग्निपुराणम् (हिन्दी अनुवादः)—गीता प्रेस, गोरखपुर (४५वें वर्ष का विशेषांक)
५. अमरकोषः—
६. अपराजितपृच्छा—ले० भुवनदेवः, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा।
७. अष्टाध्यायी काशिकावृत्तिः—चौ० सं० सीरीज, वाराणसी।
८. उत्तररामचरितम्—(भवभूतिः)
९. ऋग्वेदः (महर्षि दयानन्द भाष्यम्)—दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली।
१०. औशनस धनुर्वेद संकलनम्—सं० पं० राजाराम शास्त्री, प्रो० डी०ए०वी० कॉलेज लाहौर, संवत् १९८० वि०।
११. कामन्दकीय नीतिसारः—(जयमङ्गलोपाध्यायनिरपेक्षाभ्यां संवलितः) प्र० आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, क्रमाङ्क—१३६
१२. कौटिल्य अर्थशास्त्रम्—(महामहोपाध्याय श्री गणपतिशास्त्रिविरचित श्रीमूलाख्य-व्याख्योपेतम्) प्र० त्रिवेन्द्रम् सरकार, त्रिवेन्द्रम्। सन् १९२४ ई०
१३. कौटिल्य अर्थशास्त्र—पं० रामतेज शास्त्री, पण्डित पुस्तकालय, राजा दरवाजा, वाराणसी-१
१४. गर्गसंहिता—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
१५. गर्गसंहिता—हिन्दी अनुवाद, गीताप्रेस गोरखपुर, कल्याण के ४५वें वर्ष का विशेषांक
१६. चम्पूभारतम्—(अनन्तभट्टकृतम्)
१७. तैत्तिरीय संहिता—(कृष्णयजुर्वेदीय) सायणाचार्यविरचितभाष्यसमेता, प्र० आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना। सन् १९०१ ई०
१८. त्र्यम्बकधनुर्वेदः—सं० पं० राजाराम शास्त्री, डी०ए०वी० कॉलेज, लाहौर सं० १९८० वि०
१९. त्रिपथगा (अस्त्रशस्त्र विशेषांक) (भाग १-२)—सं० काशीनाथ उपाध्याय, प्र० सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, अगस्त १९६४ ई०
२०. दयानन्द-सन्देश—सं० आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री, जनवरी १९४१ ई०
२१. धनुर्वेद (आग्नेयास्त्र का इतिहास तथा प्राचीन धनुर्वेद की पुनरावृत्ति)—ले० पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मु० कर्मचन्द भल्ला, स्टार प्रेस, प्रयाग संवत् १९७४ वि०
२२. निरुक्तम्—पं० चन्द्रमणि वेदालङ्कारकृत, वेदार्थदीपिकाभाष्यसहितम्। प्र० गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार सं० १९९१ वि०

२३. नीतिप्रकाशिका (सीताराम तत्त्ववृत्तिसंहिता)—महर्षि वैशम्पायन, सं० टी० चन्द्रशेखर, मु० गवर्नमेण्ट प्रेस मद्रास, सन् १९५३ ई०

२४. नैषधमहाकाव्यम्—

२५. प्राचीन भारत में रसायनशास्त्र का इतिहास—ले० डॉ० सत्यप्रकाश डी०एस०सी०, प्रयाग विश्वविद्यालय प्रकाशनशाखा सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश।

२६. प्राचीन संस्कृत साहित्य में आयुध (शोधप्रबन्ध)—ले० जितेन्द्रकुमार वेदालङ्कार आगरा विश्वविद्यालय, सन् १९६८ ई०

२७. पौरस्त्य धनुर्वेद—ले० महेन्द्रकुमार वेदशिरोमणि मु० गुरुकुल वृन्दावन, संवत् १९८८ वि०

२७. (क) बृहत् शार्ङ्गधरपद्धति—मु० संस्कृत पुस्तकालय, काशी

२७. (ख) बृहत् संहिता—ले० वराहमिहिर आचार्य, लखनऊ, १८९३ ई०

२८. बृहद् विमानशास्त्र—भारद्वाजमुनिकृत, भाष्यकार स्वामी ब्रह्ममुनि, प्र० सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली, १९५८ ई०

२९. भारतवर्ष का इतिहास १-२ भाग—ले० प्रो० रामदेव, मु० गुरुकुल कांगड़ी, सन् १९२४ ई०

३०. भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास—ले० डॉ० सत्यकेतु विद्यालङ्कार, प्र० सरस्वती सदन मसूरी, १९५३ ई०

३१. भारत में मुस्लिम सुल्तान—पी०एन० ओक, द्वितीय संस्करण, सूर्य प्रकाशन, नई दिल्ली-६

३२. महाभारतम् (भारतभावदीपटीकासहितम्)—टीकाकार नीलकण्ठ शास्त्री, मु० शङ्कर नरहर जोशी, चित्रशाला प्रेस, पूना, १९२९ ई०

३३. महाभारतम्—गीताप्रेस गोरखपुर

३४. महाभारतम्—मु० भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट

३५. मत्स्यपुराणम्—श्रीराम शर्मा आचार्यकृतभाष्यसहितम्, प्र० संस्कृति संस्थान, बरेली

३६. मत्स्यपुराणम्—प्र० गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी बड़ौदा, १९६४ ई०

३७. मनुस्मृति—

३८. मानसोल्लासः, भाग १-२—महाराजा सोमेश्वर विरचित, प्र० गायकवाड़ ओरि० सीरीज नं० २०, बड़ौदा

३९. मानसोल्लास (एक सांस्कृतिक अध्ययन)—ले० डॉ० शिवशेखर मिश्र, प्र० चौखम्बाविद्याभवन, वाराणसी

४०. यजुर्वेदः दयानन्दभाष्योपेतः—मु० दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली

४१. युक्तिकल्पतरुः—महाराजा श्री भोजविरचित, मु० पं० ईश्वरचन्द्रशास्त्री, सिद्धेश्वर प्रेस, कलकत्ता १९१७ ई०

४२. यशस्तिलकचम्पूकाव्यम्—प्र० पं० सुन्दरलाल शास्त्री, भेलपुर, वाराणसी, १९६० ई०

४३. राजराजेश्वर परशुराम (जामदग्न्य धनुर्वेद)—
४४. रघुवंशमहाकाव्यम्—कालिदास
४५. राजवल्लभमण्डनम् (शिल्पग्रन्थः)—सूत्रधार मण्डन विरचितम्, प्र० मैट्रोपोलिशियन एण्ड पब्लिशिंग हाउस लि०, कलकत्ता, १९४८ ई०
४६. रामायणम् (महर्षि वाल्मीकिविरचितम्)—सं० प्र० दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल पारडी, (सूरत)
४७. ललितविस्तरः—बौद्ध संस्कृतग्रन्थावलि-१ सं० परशुराम वैद्य, मिथिला विद्यापीठ, दरभङ्गा।
४८. वाशिष्ठ धनुर्वेदसंहिता—मु० संस्कृत पुस्तकालय, सदर बाजार मेरठ, १८९९ ई०
४९. विष्णुपुराणम्—गीता प्रेस, गोरखपुर
५०. विष्णुधर्मोत्तरपुराणम्—वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई
५१. वीरविनोद (राजस्थान का इतिहास)—ले० कविवर श्यामलदास
५२. वीरमित्रोदयः (लक्षणप्रकाश)—ले० श्री मित्रमिश्रः, सं० पं० विष्णुप्रसाद शर्म्मा, प्र० चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, प्रकाशन १९६
५३. वेदविमर्शः—सं० वेदव्रत शास्त्री, गुरुकुल झज्जर, रोहतक।
५४. वैजयन्तीकोषः
५५. शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास—ले० सय्यद इकबाल अहमद जौनपुरी, प्र० शीराज हिन्द प्रेस
५६. शब्दकल्पद्रुमः—प्र० चौ० सं० सीरीज, वाराणसी
५७. शुक्रनीतिः
५८. सत्यार्थप्रकाश—ले० स्वामी दयानन्द सरस्वती
५९. सनत् कुमार संहिता—मु० वी० कृष्णमाचारी, अडयार लाइब्रेरी, मद्रास।
६०. संस्कृत साहित्य विमर्शः—ले० आचार्य द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री, मेरठ
६१. समराङ्गणसूत्रधार—महाराजा भोजविरचितः। गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, न० २५ बड़ौदा
६२. साम्राज्य लक्ष्मीपीठिका (आकाशभैरवतन्त्र)—प्र० तञ्जौर सरस्वती महाल सीरीज, न० ५८
६३. हिन्दीविश्वकोष—मु० नागेन्द्र वसु, कलकत्ता सन् १९२५ ई०
६४. हरिवंशपुराणम्—गीता प्रेस, गोरखपुर

# English Books

1. A Catalogue of the Indian Coins in British Museum.
2. A guide to the principal Coins of Greeks. From British Museum London. 190 to 100 B.C.
3. A Study in the Cultural Conditions of Chandella Society by D.B. Tara Paurwala and sons. Naroji Road, Bombay.
4. An unknown source of the History of Vijayanagar. P.K. Gode Cornatae Historical Review Dharwar. 1939.
5. Daily life in Ancient India. From 200 B.C. to 700 A.D.
6. Encyclopedia of Indian Physical Culture by D.C. Mujumdar, Raopura Baroda.
7. Encyclopedia Britannica.
8. Himalayan Art. by Madanjit Singh. Macmillan London. Unesco art books.
9. Iconography of Visnu. R. Kalpna Desai. Abhinava Publications, New Delhi.
10. Museum of fine arts-Bostem, elements of Buddhist Iconography by MunsiRam, Manoharlal, New Delhi.
11. Studies in Indian Weapons and Warfare. by G.N. Pant Printed by Educational Stores, New Delhi-5. 1970.
12. Sanskrit English Dictionary by Sir Monier Williams.
13. "The art of war in Encient India" by P.C. Chakravarti, Oriental Publishers Pataudi House, Daryaganj, Delhi-6.
14. The art of Indian Asia Volume-II, New York, Bollington Series.
15. The Columbia Encyclopedia Columbia University Press, New York.
16. The Encyclopedia of India and Eastern and Southern Asia, Vol. I, by Surgeon General Edward Balfour. Printed in Austria.
17. The Dynastic Art of the Kushanas, University of California Press Barkeley and Las-Angeles. 1967.
18. The Dhanurveda and its contribution to hoxicography. by E.D. Kulkarni. A paper read at the 11th session of the All-India conference held at Ahmedabad. 1958.
19. The Euecauations at Kausambi 1957-59 by C.R. Sharma University of Allahabad.
20. War in Ancient India (2nd Edition.)

## चित्रों के विवरण

| पृष्ठ संख्या | चित्र संख्या | विवरण |
|---|---|---|
| ३० | १ | गुप्तकालीन धनुर्धारिणी स्त्री की रेखानुकृति। अहिछत्रा से प्राप्त। वैणव धनुष। |
| | २ | चन्द्रगुप्त द्वितीय, सिंह निहन्ता। शाङ्‌र्ग धनुष। |
| ७२ | १-२ | गुप्ता क्वाइन्ज, चन्द्रगुप्त द्वितीय सिंह निहन्ता आलीढ़ स्थान, कैशिक व्याय, अध सन्धान या दृढ़ लक्ष्य वेध। |
| | ३-४ | चन्द्रगुप्त द्वितीय सिंह निहन्ता, प्रत्यालीढ़ स्थान—ए कैटेलाग ऑफ इण्डियन क्वाइन्ज इन ब्रिटिश म्यूजियम। |
| | ५ | चन्द्रगुप्त द्वितीय, असम पाद स्थान। समसन्धान। |
| | ६ | मण्डल स्थान, कैशिक व्याय, चित्र लक्ष्य वेध। |
| | ७ | कुमार गुप्त प्रथम जात स्थान, कैशिक व्याय। |
| ९७ | | तराई की सभ्यताकालीन (८०० ई०पू०) कुन्त फल का रेखा चित्र। पुरातत्त्व संग्रहालय, गुरुकुल कांगड़ी। |
| १०८ | १ | कार्त्तिकेय शक्ति लिए हुए। कुषाणकालीन प्रतिमा मथुरा म्यूजियम। |
| | २ | इण्डोसीथियन गार्ड, नागार्जुन कोण्डा प्लेट नं० १५७ शक्ति का अधो भाग बिल्वफलाकार। |
| | ३ | पंचिका कुबेर टाकल पेशावर के निकट, लाहौर म्यूजियम प्लेट नं० ६२। बायें हाथ में घण्टा लगा हुआ शक्तिफल। |
| १०९ | | सिन्धु सभ्यता कालीन ताम्रयुक्त कुन्त फलों के रेखा चित्र। पुरातत्त्व संग्रहालय, गुरुकुल झज्जर। |
| १२० | १ | शेषशायी विष्णु, नीचे अग्रपृथु खड्‌ग लिये हुए योद्धा, लखनऊ म्यूजियम। |
| | २ | मूलपृथु खड्‌ग, बायें हाथ में खड्‌ग पकड़े हुए कनिष्क, मथुरा म्यूजियम। |
| | ३ | सेना प्रयाण, खजुराहो लक्ष्मण मन्दिर से प्राप्त कुटिलाग्र खड्‌ग लिये हुए योद्धा। |
| | ४ | मार की सेना का शाक्यमुनि को प्रलोभित करना ऊपर त्रिशूल तथा मध्य और नीचे संक्षिप्त मध्य खड्‌गधारी योद्धा प्लेट नं० ८१ (दी आर्ट ऑफ कुशाणाज्)। |
| | ५ | सर्पाकार खड्‌ग, पहाड़ी शैली में निर्मित, १६वीं शताब्दी ई० राष्ट्रिय संग्रहालय, नई दिल्ली। |

| पृष्ठ संख्या | चित्र संख्या | विवरण |
|---|---|---|
| १२० | ६ | महिषासुर मर्दिनी, मल्लापुरम् ७वीं सदी पूर्व ऊपर समकाय खड्ग और विविध आयुध धारण किये हुए महिषासुर मर्दिनी। नीचे महिषासुर दोनों हाथों में स्थूलाकार गदा उठाये हुये है। |
| १२१ | १ | शूलाग्र—पोर्ट मुनरों की तलवारें, १२०० बी०सी० इण्डियन वीपन्स एण्ड वारफेयर पृष्ठ ८१। |
| | २-३-४ | खजुराहो पृष्ठ ९६ से उद्धृत। |
| | ५-६-७ | खजुराहो पृष्ठ ९६ से उद्धृत। |
| | ८ | दक्षिण भारतीय खड्ग मूर्त्तिकला से प्राप्त पहली सदी ई० (इण्डियन वीयन्स एण्ड वारफेयर पृष्ठ ८१) |
| | ९-१०-११ | खजुराहो पृष्ठ ९६ से उद्धृत। |
| | १२ | इण्डियन वीपन्स एण्ड वारफेयर पृष्ठ १३४। |
| १७८ | १ | अष्टभुज विष्णु प्रतिमा झालावाड़ म्यूजियम दाहिनी ओर के हाथों में बाण, गदा, खड्ग, पद्म और बायीं ओर ढाल, तलवार, चक्र, धनुष तथा शंख गदा कलशाकार है। चक्र के मध्य में सूत्र पिरोया हुआ है। |
| | २ | विष्णु विश्वरूप, छंगुनारायण, नेपाल ५-६ शताब्दी ई० ऊपर विविध आयुध धारण किये हुए तथा नीचे हल मूसल धारण करके शेषशय्या पर लेटे हुए विष्णु। |
| | ३ | ताम्बे का परशु ८०० ई०पू० म्यूजियम गुरुकुल कांगड़ी। |
| | ४ | यूनानी देवता हरक्यूलिस (विष्णु) की कांस्य प्रतिमा प्लेट नं० १५७ (दी डैन्शटिक आर्ट ऑफ दी कुषाणाज्)। दाहिने हाथ में लिया हुआ आयुध गदा का ही एक प्रकार प्रतीत होता है। |
| | ५ | परशुधारी परशुराम १६वीं सदी चम्बा |
| २२६ | ३-४ | वज्रमुष्टि मद्रास म्यूजियम |
| २२९ | १-६ | वज्रमुष्टि के प्रहार स्थल एन्साइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन फिजिकल कल्चर पृष्ठ २३० से उद्धृत। |
| २३१ | १ | सामूहिक उत्सवों पर मल्लयुद्ध, डेली लाइफ इन एन्शियन्ट इण्डिया प्लेट नं० २७। |
| | २ | भीम द्वारा हिडिम्बासुर को पृष्ठभंग दाव लगाकर मारना, महा० आदिपर्व० अ० १३६.२६। |
| | ३ | भीम द्वारा जरासन्ध को बाहुकण्टक दाव लगाकर दो टुकड़े करना। |